आधुनिक हिन्दी
कविता में चित्र-विधान

आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र-विधान

डा० रामयतन सिंह 'भ्रमर'
एम० ए० पी-एच० डी०

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
चन्द्रलोक जवाहर नगर दिल्ली-७
बिक्री केन्द्र नई सड़क दिल्ली ६

प्रथम संस्करण
मई, १९५५

मूल्य
२०.००

मुद्रक
पुरी प्रिंटर्स
करोल बाग नई दिल्ली-५

पूज्य पिता तथा
स्मृति-शेष ममतामयी माँ को

प्राक्कथन

'आधुनिक हिन्दी कविता म बिम्ब-विधान' नागपुर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत 'आधुनिक हिन्दी कविता में रूप विधान' शीर्षक शोध-ग्रन्थ का संशोधित रूप है। सामान्यत रूप विधान और बिम्ब-विधान में सैद्धांतिक दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अत शीर्षक बदल देने के पीछे मेरा कोई विशेष उद्देश्य नहीं है। फिर भी पाठकगण बिम्ब विधान के चौखटे के भीतर रूप-विधान देखकर चौंकेंगे नहीं इसका मुझे विश्वास है। विश्वास इसलिए कि चौखटा बदल जाने पर भी चौखटे के भीतर का चित्र नहीं बदला गया है।

इस ग्रंथ के प्रणयन म अनेक विद्वानों तथा मित्रों से विविध प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है जिसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। सर्वप्रथम परम पूज्य गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के श्रीचरणों में श्रद्धा प्रसून समर्पित करता हूँ जिनके सुन्दर निरीक्षण एवं निर्देशन मे रह कर मैंने अपना प्रस्तुत शोध-कार्य समाप्त किया। श्रद्धेय डा० विनयमोहन शर्मा क प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपनी अमूल्य सम्मतियों स मुझे उपकृत किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य सीताराम चतुर्वेदी से समय-समय पर जो सुझाव मिलते रहे हैं इसके लिए मैं उनका चिर ऋणी हूँ। डा० जयनाथ नलिन तथा कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह ऐसे मित्रों का सदैव ऋणी रहूँगा जिन्होंने निरन्तर प्रोत्साहन देकर मुझस इस ग्रंथ को पूरा करा लिया।

हिन्दी विभाग
रुइया कालेज
बम्बई

—रामयतन सिंह 'भ्रमर

विषय-संकेत

दृष्टिकोण

आधुनिक हिन्दी कविता में रूप विधान* का विश्लेषण प्रस्तुत करते समय मेरे मस्तिष्क में जो कतिपय प्रश्न उठे प्रथमतः उन्हें आपके सम्मुख उपस्थित कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है विशेषतः इसलिए कि उन प्रश्नों के निराकरण से प्रस्तुत प्रबन्ध के मूल्यांकन के निमित्त एक ठोस आधार भूमि तैयार हो जाती है। वे प्रश्न हैं

(१) विश्लेषण के आधार-सूत्र कहाँ से लिये जायँ ?

(२) विश्लेषण की कोई वैज्ञानिक पद्धति हो सकती है या नहीं ? हो सकती है तो किस प्रकार की ?

(३) आधुनिक हिन्दी कविता में रूप-विधान का स्वरूप क्या है ? उसे किस प्रकार विभाजित किया जाय ? अपने स्वरूप ग्रहण में हिन्दी कविता को भारतेन्दु-युग से लेकर आज तक अनेक मोड़ लेने पड़े हैं। फिर, रूप-विधान के विश्लेषण के निमित्त आधुनिक हिन्दी कविता के सम्पूर्ण क्षेत्र को एक साथ ही लिया जाय या उसे काल-क्रमानुसार पृथक्-पृथक् खंडों में विभाजित करके ? फिर, उस विभाजन का आधार क्या हो ?

(४) इस विश्लेषण का प्रयोजन क्या हो सकता है ?

प्रस्तुत विश्लेषण के आधार-सूत्रों को खोजने में बड़ी कठिनाई पड़ी। इसके पूर्व इस प्रकार के विशेष उद्देश्य को लेकर इतनी विस्तृत पृष्ठभूमि पर किया गया प्रयास न तो संस्कृत आलोचना-साहित्य में मिलता है न हिन्दी में। हिन्दी में कुछ वर्ष पूर्व, सुधी समालोचक और मर्मज्ञ काव्य-मर्मज्ञ आचार्य श्री रामदहिन मिश्र ने काव्य में अप्रस्तुत योजना को हिन्दी-संसार के सम्मुख उपस्थित कर, कविता के मूल्यांकन के एक नये मार्ग की ओर संकेत किया था। किन्तु मिश्र जी का प्रयास प्रमुखतः अप्रस्तुत योजना के कला-पक्ष तक ही सीमित है उसके वस्तु-पक्ष को उन्होंने अपने विश्लेषण का आधार नहीं बनाया है। दूसरे, उसका उद्देश्य रूप-विधान की विविध निर्माण प्रक्रियाओं को सोदाहरण उपस्थित कर देना प्रतीत होता है वहाँ वे विस्तार में नहीं गये हैं। अतः रूप-विधान का पूर्ण विश्लेषण या इस विश्लेषण के माध्यम से हिन्दी कविता की कलात्मक परिणति का अपेक्षित विवेचन नहीं दे सके हैं। हो सकता है उनका यह उद्देश्य ही न रहा हो। इस प्रकार का एक और प्रयास मराठी वाङ्मय में मिलता है। डा० रामचन्द्र शंकर वाळिंबे ने अपने प्रबन्ध 'ज्ञाने श्वरीतील विदग्ध रसवृत्ति' में संत ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी' के कलात्मक सौन्दर्य के उद्घाटन का स्तुत्य प्रयास किया है। जहाँ तक अलंकार, भाव अनुभावादि की योजना के विश्लेषण का प्रश्न है डा० वाळिंबे के प्रयास में कोई नवीनता नहीं मिलती। विशेषतः जहाँ उन्होंने पृथक्-पृथक् रूप-विधान (Sense imagery) का प्रसंग उठाया है वहाँ वस्तु-परिगणन शैली को ही अपनाया है। वस्तु-परिगणन शैली से यहाँ तात्पर्य यह है कि काव्य में प्रयुक्त विभिन्न उपकरणों से रूप के निर्माण में योग मिलता हो अथवा नहीं, उनके नाम पर रूप विधान का नामकरण अथवा वर्गीकरण कर लिया गया है। जैसे नाद रस के प्रयोग से कोई बिम्ब

* रूप-विधान Imagery अथवा अप्रस्तुत योजना के अर्थ में लिया गया है।

मत न बनता हो पर जहाँ जहाँ वह आया है, वहाँ-वहाँ उसी के नाम पर चित्रों को (जो अधिकांशतः प्रस्तुत होते हैं) गिनाया गया है। यह वस्तु-परिगणन शैली आज से बहुत वर्ष पूर्व आंग्ल-साहित्य में अपनायी जा चुकी है। अधिक सत्य तो यह कहना होगा कि इस शैली का सूत्रपात भी प्रथमतः आंग्ल-साहित्य में ही और वह भी डा० (Miss Caroline Spurgeon द्वारा हुआ। डा० स्पर्जन ने रूप-विधान पर अपने बहुत वर्षों के सुचिंतित अध्ययन को Shakespeare s Imagery and what it tells us' के रूप में आज से बहुत पूर्व साहित्य-भंडार के समक्ष उपस्थित कर रूप विधान के विश्लेषण और उसके माध्यम से काव्य-सौन्दर्य के मूल्यांकन के विधायक क्षेत्र की ओर काव्य-पारखियों का ध्यान आकर्षित किया। तब से विभिन्न कवियों की कृतियों को लेकर रूप-विधान पर अध्ययन प्रस्तुत करने का एक क्रम बँध गया। उसके परिणामस्वरूप आज हमारे सम्मुख अनेक पुस्तकें उपस्थित है जिनमें W H Clemen की 'The Development of Shakespeare s Imagery और Richard Harter Fogle की 'The Imagery of Keats and Shelley' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रसंग में रूप-विधान के विश्लेषण का सूत्रपात करने के कारण डा० स्पर्जन को सर्वाधिक महत्त्व दिया जा सकता है। किन्तु विश्लेषण की गहराई और वैज्ञानिकता को लेकर क्लीमेन और फोगले उनसे आगे बढ़े हुए हैं। फिर भी समस्या यह है कि इनमें से किसी एक का भी अनुसरण करके रूप-विधान के सर्वांगीण विश्लेषण को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। उसके लिए, इन सब का आधार लेकर एक स्वतंत्र मार्ग ग्रहण करने की आवश्यकता पड़ती है।

जहाँ स्वतंत्र मार्ग ग्रहण करने की बात आती है वहीं पर दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है। रूप-विधान से संबद्ध संपूर्ण उपलब्ध साहित्य का वर्षों तक अध्ययन-मनन करते रहने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रस्तुत विश्लेषण की कोई विशेष वैज्ञानिक पद्धति निकाली जा सकती है। इसी दृष्टि से मैंने अपने प्रबंध में रूप विधान और उसकी भिन्न स्थितियों एवं प्रक्रियाओं का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत करते हुए उसके व्यावहारिक पक्ष पर भी विस्तार के साथ विचार किया है। रूप विधान के प्रमुखतः दो पक्ष सम्मुख आते हैं (१) वस्तु-पक्ष और (२) कला पक्ष। वस्तु-पक्ष में वे सभी उपकरण समाहित हो जाते हैं जो रूप विधान के मूल में अवस्थित होते हैं। कला पक्ष रूप विधान की विभिन्न निर्माण-प्रक्रियाओं से संबद्ध है। काव्य में कतिपय परंपरित उपादानों के साथ-साथ सामयिक और मध्य उपादान भी व्यवहृत होने लगे हैं। इन्हीं उपादानों के आधार पर मैंने वस्तु-पक्ष की दृष्टि से रूप विधान की प्रमुखतः तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं (१) परंपरित (२) सामयिक और (३) मध्य। आज समीक्षकों ने रूप-विधान के विश्लेषण के क्रम में अपनी दृष्टि को प्रमुखतः वस्तु-पक्ष पर ही केंद्रित रखा है। किन्तु, मात्र इन उपकरणों के प्रयोग से किसी चित्र का निर्माण नहीं होता। चित्र के निर्माण में प्रमुखतः अनेक रूप तत्त्व अलंकार और भाषा सहायक होती है। 'काव्य में अप्रस्तुत योजना' में इसी बात को विभिन्न उद्धरणों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। रूप विधान के विश्लेषण के क्रम में मुझे सबसे वैज्ञानिक और सटीक बात यही लगी कि रूप-विधान में वस्तु और कला दोनों ही पक्षों के योग की भिन्न स्थिति का विश्लेषण करते हुए इस बात की स्थापना की

जाय कि रूप-विधान में उसकी एकत्र स्थिति का महत्त्व क्या है। इसलिए रूप विधान के विश्लेषण की जिस वैज्ञानिक पद्धति की मैं कल्पना कर सकता था वह उक्त दोनों पक्षों के अपेक्षित समन्वय पर खड़ी होती है।

तब प्रश्न उठता है आधुनिक हिन्दी कविता में रूप-विधान के स्वरूप का कैसे निर्धारण किया जाय। आधुनिक हिन्दी कविता को—जिसका जन्म एक प्रकार से भारतेन्दु-युग से माना जा सकता है—भारतेन्दु-युग से लेकर आज तक अपने स्वरूप-ग्रहण में विभिन्न मोड़ लेने पड़े हैं और इन मोड़ों में से प्रत्येक उसके विकास क्रम में एक-एक सीढ़ी का काम करता है। इस दृष्टि से हिन्दी-कविता के विकास के साथ ही रूप-विधान के विकास क्रम का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने के निमित्त मुझे यह युक्ति-संगत नहीं प्रतीत हुआ कि भारतेन्दु-युग से लेकर आज तक की कविता के सम्पूर्ण अंश को एक साथ ही लिया जाय क्योंकि ऐसा करने से न तो विभिन्न युगों की विशेषताओं और त्रुटियों का पृथक्-पृथक् निरूपण किया जा सकता था और न रूप-विधान की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संभावनाओं पर दृष्टि निक्षेप ही। इसीलिए मैंने आधुनिक हिन्दी कविता को विकास क्रम की दृष्टि से काल क्रमानुसार पृथक्-पृथक् खण्डों में विभाजित कर अपने विश्लेषण का केन्द्र बनाया है।

फिर भी एक प्रश्न बना ही रह जाता है। हिन्दी कविता की यह अपनी एक विशेषता रही है कि लगभग एक ही समय में दो बिल्कुल भिन्न काव्य-प्रवृत्तियाँ समानान्तर चलती रही हैं। जो काल द्विवेदी-युग के प्रमुख कवियों के काव्य-निर्माण का रहा है लगभग वही काल छायावाद के उद्भव और विकास का भी रहा है। ऐसे ही कुछ काल तक प्रगतिवादी काव्य-धारा के समानान्तर प्रयोगशील काव्य-धारा भी चलती परिलक्षित होती है। इस काल के कितने कवि तो एस भी हैं जो प्रगतिवादी होने के साथ ही प्रयोगशील भी हैं। फिर प्रश्न उठता है—उन्हें किस कोटि के अन्तर्गत रखा जाय ? ऐसे ही कुछ प्रश्न और उठते हैं। निराला छायावादी होने के साथ ही प्रगतिवादी और प्रयोगवादी के रूप में भी आते हैं। छायावाद का आधार-स्तंभ होकर भी पंत ने प्रगतिवाद का नारा बुलन्द किया। आज भी उनकी कविता नित नये मोड़ लेती जा रही है। उत्तरछायावाद काल में जिन कवियों को सम्मिलित किया गया है उनमें से कोई भी किसी एक कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। उन पर एक साथ ही छायावादी कुहेलिका, प्रगतिवादी हलचल और अन्तश्चेतनावादी अवगुंठन—सबका प्रभाव दीखता है। ऐसी परिस्थिति में विभाजन की कोई सही-सही रेखा खींचना संभव प्रतीत नहीं हुआ। फिर भी निरूपण की सुविधा की दृष्टि से मैंने कालक्रम और प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर आधुनिक हिन्दी कविता को पृथक्-पृथक् खण्डों में विभाजित किया है और जिन कवियों को जिस युग के अन्तर्गत सम्मिलित किया है वह इस दृढ़ निश्चय के साथ ही कि वे कवि उस युग की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं और साथ ही उसी युग-विशेष में चमके हैं। इसी दृष्टि से मैंने पंत और निराला को आवश्यकतानुसार अन्यत्र उद्धृत करके भी छायावाद के अन्तर्गत ही लिया है। दिनकर जैसे सशक्त कवि को प्रगतिवाद के अन्तर्गत सम्मिलित न करके उत्तरछायावाद काल में लिया है क्योंकि दिनकर को दिनकर बनाने में प्रगतिवाद का नहीं छायावाद की समृद्ध काव्य परम्परा और चिन्तन-धारा का प्रमुख हाथ रहा है। यह दूसरी बात है कि अपने विकास-क्रम

में क्रांति-गर्भ समसामयिकता के विद्युत-स्पर्श से वे अछूते नहीं रहे हैं।

इस दृष्टि से मैंने आधुनिक हिन्दी कविता को उसके विकास-क्रम को दृष्टि में रखते हुए प्रमुखतः छः वर्गों में विभाजित किया है (१) हरिश्चन्द्र-युग (२) द्विवेदी-युग (३) छायावाद-युग (४) उत्तरछायावाद (५) प्रगतिवाद-युग और (६) प्रयोगवाद-युग। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप-रेखा देते समय 'प्रयोगवाद' को सम्मिलित नहीं किया गया था। कारण उस समय प्रयोगवाद (अब नाम भेद से नयी कविता) अपने निर्माण-काल में था और उसकी सुनिश्चित आधार भूमि तैयार नहीं हो सकी थी। किन्तु, आज प्रयोगवाद ने अपना एक विशेष स्वरूप ग्रहण किया है और उसकी बहुत सारी मान्यताएँ भी स्पष्ट हो चुकी हैं। प्रयोगवाद के पक्ष में एक और बात यह है कि जहाँ उसमें अतिशय बौद्धिकता का कहीं-कहीं आग्रह मिलता है, वहाँ कहीं-कहीं कलात्मक परिणति की उत्तमोत्तम निदर्शना भी दृष्टिगत होती है। विशेषतः प्रयोगवाद के कला-पक्ष के विश्लेषण से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सम्प्रति-कालीन अभिव्यंजकता और मान्यता संबंधी अराजकता के बावजूद जहाँ सफल प्रयोग हुए हैं वहाँ हमें एक उच्च कोटि का कलात्मक सौष्ठव भी मिलता है। दूसरे, प्रयोगवाद (नयी कविता) अपने अन्दर रूप विधान के उत्तरोत्तर विकास की अनेकविध संभावनाओं को समेटकर प्रकट हो रहा है। इसलिए मैंने आधुनिक हिन्दी कविता में रूप-विधान के विकास-क्रम का विश्लेषण प्रस्तुत करने के क्रम में प्रयोगवाद को भी अपने विषयान्तर्गत सम्मिलित कर लिया है।

यहाँ इस प्रसंग में एक और बात आती है जिसका स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। उपर्युक्त चार 'वादों' के अन्तर्गत हिन्दी के सब कवि नहीं आते। कुछ ऐसे कवि शेष रह जाते हैं जो प्रत्यक्षतः किसी 'वाद' विशेष से नहीं प्रभावित हैं किन्तु उनकी रचनाओं में छायावाद के भी तत्त्व मिलते हैं प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के भी। इन कवियों में सर्वश्री जानकीवल्लभ शास्त्री गोपालसिंह नेपाली नीरज श्रीनाथ द्विवेदी शिवशंकर वशिष्ठ नीलकंठ तिवारी बलवीरसिंह रंग रमानाथ अवस्थी राममनोहर त्रिपाठी सत्यप्रकाश जोशी तथा सरस्वतीकुमार 'दीपक' आदि आते हैं। किन्तु स्थान-संकोच से हम इन कवियों का विश्लेषण करने में असमर्थ रहे हैं।

चौथा प्रश्न है—रूप-विधान के विश्लेषण का प्रयोजन क्या है? ऐसे, ऊपर से यह प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं लगता। किन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो रूप विधान के बिना न तो कविता की कलात्मक परिणति संभव है न ही उसके अपेक्षित विश्लेषण के बिना उसका अंतरंग विवेचन। रूप विधान का सर्वाधिक महत्त्व इसी बात में है। रूप-विधान को दृष्टि में रखकर कविता के विश्लेषण से कविता-संबंधी अनेक गलत धारणाओं का निराकरण हो जाता है। उदाहरणार्थ आज अधिकांश मान्य आलोचकों और प्रबुद्ध पाठकों की धारणा है कि कवि वस्तुतः पूर्व पंत ही है उत्तर पंत का कवि तो बौद्धिकता के नीचे दब सा गया है। पंत को अब कविता नहीं लिखनी चाहिये वे अपने तथाकथित दर्शन को गद्य में ही दें तो अच्छा। छायावाद वायवी कविता है कल्पना के लिए कष्ट-साध्य है उसके पारायण से काव्यानंद की प्राप्ति नहीं होती। प्रगतिवाद में कलात्मकता है ही नहीं। प्रयोगवाद कवि के उलझे मस्तिष्क और असम्बद्ध विचार धारा की उलझी हुई अभिव्यक्ति है।

इस प्रस्तुत प्रबंध के प्रणयन के पूर्व मेरी भी धारणा कुछ ऐसी ही थी। किन्तु इस प्रबन्ध के प्रणयन के क्रम में मेरी वे धारणायें शनैः-शनैः मिटती गयीं। और अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि कविता के अध्ययन में रूप विधान को भी यदि एक आधार बनाकर चला जाय तो कविता के साथ न्याय करना सम्भव हो।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि मैं कविता की प्राणवत्ता को रूप-विधान पर ही आश्रित मानता हूँ। कविता की प्राणवत्ता अपने खड़े होने के लिए बहुत कुछ विचार-वहन का भी आधार लिया करती है। किन्तु, यह दूसरा और भिन्न प्रश्न है। यहाँ मैं रूप-विधान के प्रयोजन पर विचार कर रहा हूँ। सम्प्रति रूप-विधान के विषय में मुझे यही कहना है कि वह काव्य के प्रणयन-पारायण और न्यायसंगत मूल्यांकन में बहुत सहायक होता है। अपने विश्लेषण के क्रम में छायावाद के अतिरिक्त प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में भी मुझे कलात्मक परिणति के दर्शन हुए हैं पूर्व पंत तो प्रिय हैं ही, उत्तर पंत भी समर्थ कवि प्रतीत हुए हैं, विशेषकर उनकी काव्य-कल्पना अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ और विराट रूप में मिलती है। अन्तर, मात्र यही है कि कविता की भाव भूमि का स्तर कुछ अधिक ऊँचा उठ गया है। मुझे ऐसा लगता है कि कविता के आधार-भूत जन-जीवन के अत्यधिक उलझे होने पर भी कविता का कला पक्ष उत्तरोत्तर प्रौढ़ से प्रौढ़तर होता जा रहा है उसके विकास की अन्यानेक संभावनाओं की भूमि अपने विस्तार में नित नये-नये रंग और रूप ग्रहण करती जा रही है।

अन्त में यह निवेदन कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है कि रूप-विधान का वर्गीकरण जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है उस प्रकार उसके उदाहरण नहीं दिये जा सकते हैं। इसका कारण मेरे प्रयत्न की शिथिलता नहीं, आलोच्य काल के कवियों में उन तत्वों का अभाव है। फिर भी, मैंने सभी प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करने का यथासाध्य प्रयत्न किया है। जहाँ वे नहीं मिले हैं, वहाँ उनका अभाव समझना चाहिये। उदाहरणार्थ, गुण-रूप रूप-विधान (Sense imagery) का अभाव सामान्य रूप से सभी जगह परिलक्षित होता है यत्र-तत्र वे मिलते भी हैं तो न्यूनता में। दूसरी बात यह है कि रूप-विधान के वर्गीकरण के फलस्वरूप मेरे विश्लेषण का एक निश्चित क्रम (Pattern) बन गया है। इसलिए ऊपर ऊपर से देखने में कहीं-कहीं अपरिहार्य पुनरावृत्ति-दोष आ गया है। फिर भी वहाँ एक विविधता मिलती है। इसके अतिरिक्त, मैंने अपने इस प्रयास में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपनाया है। मेरा प्रयास इस बात के लिए रहा है कि एक ही प्रकार के रूप-विधान के उदाहरण एक ही स्थल पर भिन्न-भिन्न युगों में प्रस्तुत कर दिये जाँय जिससे उनके तुलनात्मक अध्ययन में सुविधा हो और भिन्न भिन्न युगों में उनके विकास का एक सुनिश्चित रूप ढूँढ़ा जा सके।

अध्याय १

रूप-विधान

विविध स्थितियाँ विविध प्रक्रियाएँ

विभिन्न पौर्वात्य और पाश्चात्य आचार्यों ने कविता की अनेकानेक परिभाषाएँ गढ़ीं फिर भी कविता की कोई निश्चित परिभाषा न बन सकी वह परिभाषा की सीमा में न बंध सकी। इसी प्रकार रूप-विधान को भी परिभाषा की सीमा में सीमित करना काफी दुरूह है। कभी-कभी रूप-विधान का उपयोग रूपक के पर्याय के रूप में होता है जब कि दोनों का अस्तित्व सर्वथा भिन्न भिन्न है। बहुत से मनोविज्ञान-वेत्ताओं और आलोचकों का मत है कि रूप-विधान इन्द्रिय-ज्ञान की अभिव्यक्ति है, अर्थात् हम अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा (श्रवण चक्षु, घ्राण स्पर्श तथा जिह्वा) वस्तुओं का अनुभव करते हैं। उन अनुभवों और अनुभूतियों को कविता में व्यक्त करना ही रूप-विधान का मुख्य प्रयोजन है। 'एक समय के इन्द्रिय ज्ञान के लेखे-जोखे को कविता में प्रस्तुत कर देना ही रूप-विधान है।'[1] कविता में सबसे सुन्दर और सजीव कल्पना-चित्र अथवा रूप विधान वही है, जिसका अनुभव हमें इन्द्रियों द्वारा हो सके, जिसे हम स्पर्श कर सकें देख सकें और सुन सकें।'[2] ब्लिसपेरी का कथन है कि कविता का दूसरा नाम रूप-विधान है और रूप-विधान का इन्द्रिय-ज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता इन्द्रियों के माध्यम से पदार्थों को स्पष्ट करती और बोधगम्य बनाती है किन्तु उसकी जानकारी नहीं देती। अतः हम कह सकते हैं कि रूप विधान का निर्माण शब्दों से नहीं होता बल्कि वह तो एक इन्द्रियानुभूति मात्र है।'[3] मिस एडिथ रेकर्ट का भी यही मत है। रूप विधान *की परिभाषा देती हुई वे कहती हैं कि यह तो मानसिक पुनरुत्पत्ति है जिसका प्रादुर्भाव* शब्दों के माध्यम से देखी हुई, सुनी हुई, स्पर्श की हुई और सूंघी हुई वस्तुओं द्वारा होता है। अतः रूप विधान मानसिक चित्रों के रूप में अनुभवों की अभिव्यक्ति का नाम है।

कुछ कवि अद्भुत रूप विधान के कारण विश्व विख्यात हैं किन्तु सभी कवियों का यह प्रधान गुण नहीं है अतएव रूप विधान कविता को ऊँचा उठाने की शक्ति रखते हुए भी उसकी उच्चता का अनिवार्य साधन नहीं है। कुछ मनोविज्ञानवेत्ताओं का मत है कि चाक्षुष

---

१ Richard Harter Fogle 'The Imagery of Keats and Shelley P 3-4

२ Robert Tristram Coffin 'The substance that is Poetry P 15

३ Bliss Perry 'A study of Poetry P 48 94-95

४ मिस एडिथ रेकर्ट 'New method for the study of Literature P 24 27

अध्याय १

रूप-विधान

विविध स्थितियाँ विविध प्रक्रियाएँ

विभिन्न पौर्वात्य और पाश्चात्य आचार्यों ने कविता की अनेकानेक परिभाषाएँ गढ़ीं फिर भी कविता की कोई निश्चित परिभाषा न बन सकी यह परिभाषा की सीमा में न बंध सकी। इसी प्रकार रूप-विधान को भी परिभाषा की सीमा में सीमित करना काफी दुरूह है। कभी-कभी रूप-विधान का उपयोग रूपक के पर्याय के रूप में होता है जब कि दोनों का अस्तित्व सर्वथा भिन्न भिन्न है। बहुत से मनोविज्ञान-वेत्ताओं और आलोचकों का मत है कि रूप-विधान इन्द्रिय ज्ञान की अभिव्यक्ति है अर्थात् हम अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा (श्रवण चक्षु, घ्राण स्पर्श तथा जिह्वा) वस्तुओं का अनुभव करते हैं। उन अनुभवों और अनुभूतियों को कविता में व्यक्त करना ही रूप विधान का मुख्य प्रयोजन है। एक समय के इन्द्रिय ज्ञान के छोटे-मोटे को कविता में प्रस्तुत कर देना ही रूप-विधान है।[1] कविता में सबसे सुन्दर और सजीव कल्पना-चित्र अथवा रूप-विधान वही है, जिसका अनुभव हमें इन्द्रियों द्वारा हो सके, जिसे हम स्पर्श कर सकें देख सकें और सुन सकें।[2] ब्लिसपरी का कथन है कि कविता का दूसरा नाम रूप विधान है और रूप-विधान का इन्द्रिय-राग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता इन्द्रियों के माध्यम से पदार्थों को स्पष्ट करती और बोधगम्य बनाती है किन्तु उसकी जानकारी नहीं देती। अतः हम कह सकते हैं कि रूप विधान का निर्माण शब्दों से नहीं होता बल्कि वह तो एक इन्द्रियानुभूति मात्र है।[3] मिस एडिथ रेकर्ट का भी यही मत है। रूप-विधान की परिभाषा देती हुई वे कहती हैं कि यह तो मानसिक पुनरुत्पत्ति है जिसका प्रादुर्भाव शब्दों के माध्यम से देखी हुई, सुनी हुई, स्पर्श की हुई और सूंघी हुई वस्तुओं द्वारा होता है। अतः रूप विधान मानसिक चित्रों के रूप में अनुभवों की अभिव्यक्ति का नाम है।[4]

कुछ कवि अद्भुत रूप विधान के कारण विश्व-विख्यात हैं किन्तु सभी कवियों का यह प्रधान गुण नहीं है अतएव रूप-विधान कविता को ऊँचा उठाने की शक्ति रखते हुए भी उसकी उच्चता का अनिवार्य साधन नहीं है। कुछ मनोविज्ञानवेत्ताओं का मत है कि मानुप

---

१ Richard Harter Fogle 'The Imagery of Keats and Shelley P 3-4

२ Robert Tristram Coffin 'The substance that is Poetry P 15

३ Bliss Perry 'A study of Poetry P 48 94-95

४ मिस एडिथ रेकर्ट 'New method for the study of Literature P 24-27

रूप-विधान के अभाव में भी कविता बन सकती है। यह अनिवार्य नहीं कि कवि दृश्य-जगत् की समग्र वस्तुओं का ज्यों का त्यों वर्णन करें अथवा उन दृश्यों से प्रेरणा लें। कुछ कवियों के लिए शब्द ही भाव प्रेषण हो जाते हैं। और चाक्षुष रूप-विधान के अभाव में भी उनकी कविता का प्रभाव अक्षुण्ण रहता है।[1]

ग्रीनिंग लैम्बार्न का कथन है कि कविता के लिए संगीत सगीत तथा चाक्षुष रूप विधान की अत्यन्त आवश्यकता है।[2] जिस कविता में रूप-विधान की मात्रा जितनी ही अधिक होती है वह कविता उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है।[3] प्रेसकाट का तो यहाँ तक कहना है कि कविता की सच्ची कसौटी कल्पना और रूप-विधान है।[4] वास्तव में कल्पना और अनुभूति के बिना रूप विधान की सृष्टि ही असम्भव है। अनुभूति की सृष्टि पहले और रूप विधान की बाद में होती है। अस्तु अनुभूतियाँ जितनी तीव्र होती हैं, रूप विधान उतना ही सशक्त और भाव-प्रवण होता है।[5]

जान क्रोव रेन्सम ने काव्यात्मक कल्पना की व्याख्या इस भाँति की है—काव्यात्मक कल्पना ज्ञान का एक अंग है जिसकी कला रूपात्मक है।[6] ह्यूम का कथन है कि कविता कोई भाषा मात्र नहीं है वरन् वह तो एक दृश्यात्मक कथ्य है टी० ई० ह्यूम के अनुसार प्रातिभ-ज्ञान की भाषा के लिए एक समझौता मात्र है, जो इन्द्रिय-बोध के रूप में परिणत होता है। कविता में रूप विधान या बिम्बात्मकता का उपयोग केवल शृंगार के लिए ही नहीं होता वह तो प्रातिभ ज्ञान की भाषा का एक तत्व है।

कविता का सौन्दर्य नवीन रूप विधान नये रूपक और नये उपमानों से निखर उठता है क्योंकि प्राचीन रूप-विधान तथा प्रतीक निरंतर प्रयोग के कारण काफी घिस जाते हैं जिनमें अर्थ-वहन करने की क्षमता प्राय कम हो जाती है। किन्तु रूप-विधान का सम्बन्ध अतरंग से अधिक और बहिरंग से कम होना चाहिए। कविता के बहिरंग से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ने पर रूप-विधान केवल चमत्कार ही पैदा करके रह जाता है, भावों का स्फुरण नहीं कर पाता। अत जो रूप विधान कविता की आत्मा को योग दे भावों को मूर्त रूप देने में जहाँ तक समर्थ हो सके वहीं तक उसकी सार्थकता है अन्यथा वह शृंगार का बाह्य प्रसाधन

१. मिलाइये Michel Roberts Critique of Poetry' P 47 48
तथा—T H Pear Imagery and Mentality'—
British Journal of Psychology XIV P 291 99
२ Greening Lamborn 'Rudiments of Criticism
३ Prof. E. Allison Peers Imagery in Imaginative Literature P 274
४ Prescott 'The Poetic Mind. P 140
५ C W Valentine 'The British Journal of Psychology' Oct. 1923 Functions of Images in the Appreciation of Poetry
६ John Crowe Ransom 'The Worlds Body P 157
७ Hughes Glenn Imagism and the Imagists P 135

मात्र बनकर रह जाता है।

जहाँ कहीं दो वस्तुएं इसलिए साथ-साथ रखी जाती हैं कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाय वहीं रूप-विधान की पैठ हो जाती है किन्तु इन सम्बन्धों में एकरूपता अनिवार्य है।[1] अतः हम कह सकते हैं कि काव्यात्मक रूप-विधान का सिद्धान्त तुलना पर आधारित है जो समस्त काव्यात्मक अनुभूतियों को अभिव्याप्त करता है, किन्तु एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ से तथा एक मनोभाव की दूसरे मनोभाव से की गई तुलना उपमा नहीं है। वास्तव में रूप-विधान के अन्तर्गत पदार्थों की तुलना मनोभावों से अमूर्त से मूर्त की अथवा मूर्त की अमूर्त से की जाती है, और कभी-कभी रूप-विधान के स्वरूप की व्याख्या अमूर्त की अमूर्त से, मूर्त की मूर्त से तुलना करके की जाती है। तुलना करना भाषा का सार्वभौम सिद्धान्त है। किन्तु तुलनात्मक सिद्धान्तों के द्वारा ही काव्यात्मक रूप-विधान की पहचान नहीं होती। विज्ञान के तथ्यों को भी समझाने के लिए रूप-विधान का आश्रय लिया जाता है।[2] कविता में तुलना की महत्ता सर्वविदित है क्योंकि कविता में प्रायः अनिवार्य का उतना महत्त्व नहीं है जितना रूपता और व्यंजना का। कविता की अभिव्यक्ति सीधी-सादी होने से वह प्रभाव-शून्य हो जाती है, उसमें तुलनात्मक भावनाओं का समावेश अनिवार्य है अन्यथा न तो उसमें रस होगा न प्रभाव—एक सीमा तक मौलिकता का भी अभाव होगा।[3]

रूप-विधान का सामान्य वस्तुगत वर्गीकरण तक ही सीमित नहीं है। रूप-विधान एक 'रूप' भी हो सकता है जिसे हम स्पष्ट कह सकते हैं। यह दो वस्तुओं की तुलना में भी पाया जाता है जैसे उपमा। मानवीकरण (Personification) में भी पाया जाता है मानवीय विचारों को जड़ पदार्थों के आरोपण में अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त बनाने की क्रिया तथा अमूर्त की अमूर्त से तुलना करने में इसका योग रहता है। साधारण रूप-विधान को हम तात्त्विक तुलना तथा अलंकारों की श्रेणी में रख सकते हैं। रूप विधान में सृजनात्मक शक्ति, भाव सघनता तथा तत्त्वों के एकीकरण की क्षमता अनिवार्य है। इसका मुख्य काम है भिन्न-भिन्न तत्त्वों एवं विभिन्न मानसिक दशाओं को एकता के सूत्र में बाँधना तथा मनोभावों का नवीन सम्बन्ध खोज निकालना। रूप-विधान जितना मौलिक एवं नवीन होगा भावों को ग्रहण करने की उतनी ही शक्ति उसमें होगी किन्तु नवीनता की खोज में विचित्रता की सम्भावना न हो। साधारण बातें हम पहले से ही जानते हैं किन्तु वही साधारण बात यदि रूप-विधान के घूँघट से झाँकती है तो वह असाधारण और सुन्दर प्रतीत होने लगती है इससे हमें विशेष प्रकार का आनन्द मिलता है। जब हम वृद्धावस्था को उपमा रूप 'सूखा ठूँठ' से देते हैं तब बुढ़ापा साकार हो उठता है।

कल्पना चित्र या रूप-विधान एक मन्हा-सा शब्द चित्र है जिसका उपयोग कवि अथवा लेखक अपने भावों एवं विचारों की व्याख्या करने तथा उसे बोधगम्य और स्पष्ट

---

१ Rosemond Tuve 'Imagery and Logic' Ramus and Metaphysical poetics Journal of the History of Ideas III

२ Sir James Jean 'The Stars in their courses.

३ T. E. Hulme 'Notes on Language and style.

करने के लिए करता है।[1] यह चित्र कवि के मानस में बनता है जिसका सम्बन्ध उन पदार्थों से होता है जिसकी छवि कवि के मानस-पटल पर अंकित हो उठती है। जैसे शेर साहस का और लोमड़ी धूर्तता की प्रतीक है किन्तु यह असम्भव है कि लोमड़ी का विचार-मात्र ही धूर्तता का बोध करा दे। लोमड़ी कहने से पहले लोमड़ी जानवर का बोध होता है तब हम उसके अर्थ का प्रयोग करते हैं जो लोमड़ी के एक विशेष गुण की ओर संकेत करता है।[2]

रूप विधान और कल्पना

विचार जहाँ तुलना का चेतन रूप है विवेक बोध का चेतन स्वरूप है। विचार और विवेक से चित्त अथवा चैतन्य की वृत्ति पूर्ण बलवती होने लगती है। बलवती चेतना में बड़ी गति और चंचलता रहती है। यह उदय होकर मानस और मस्तिष्क की प्रत्येक प्रवृत्ति पर शासन जमाती और प्रेरणा देती है। यही चेतना आत्मसाक्षात्कार के लिए विकल हो उठती है। यह अपनी गति और व्यग्रता से उपलब्ध सामग्री से अपनी मौलिक चाह के सन्तोष के निमित्त स्वयं कितने ही रूपों का निर्माण करने के लिए प्रवृत्त होती है। चेतना का यह आत्म रूप उद्योग ही कल्पना कहलाता है। यह कल्पना ही चेतना का यथार्थ लक्षण है। इसकी ऊर्ध्व गति में ही आनन्द की अनुभूति हो पाती है। 'यहीं व्यक्ति कुछ सृजन करने का दावा कर सकता है।'[3]

कल्पना मानव-मस्तिष्क की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो अपने सचेष्ट क्षणों में उन नूतन और अनेक-रूप छाया-छवियों का बिम्ब ग्रहण किया करती है जो कभी दृष्टि-पथ या अनुभूति की परिधि में आ जाने के कारण अन्तःपटल पर सुप्त अथवा जागृत संस्कारों के रूप में पड़ी रहती है जब कि रूप-विधान उस कल्पना के उन सचेष्ट क्षणों की परिपूर्णता की स्वतःस्फुरित निष्पत्ति या सचित्र भाषा है। एक गुण से विधायक है दूसरा सहज विधान दोनों में कार्य-कारण का सम्बन्ध है। कल्पना कार्य-रूप सर्जन-अवस्थिति है रूप-विधान उस सर्जन अवस्थिति की कारण-रूप फलान्विति। कल्पना सप्राण होने के लिए रूप में लय होना चाहती है जब कि अदृश्य रेखाओं में बिखरा हुआ रूप जीवन की रंग रेखा की प्राप्ति के निमित्त कल्पना का मुखापेक्षी हुआ करता है। दोनों प्रकृति से भिन्न हैं पर अस्तित्व से अभिन्न। ये वे दो भिन्न इकाई-सत्ता हैं जो अपने अस्तित्व की रक्षा के हेतु परस्पर मिलकर एक पृथक् अस्तित्व का निर्माण करती हैं जो काव्य को प्राण रूप और रंग देने के निमित्त अवनि से अम्बर तक सब कुछ प्रस्तुत किया करती हैं।

कल्पना की आवश्यकता

कवि जिस विषय को अपने पाठकों या श्रोताओं के समक्ष उपस्थित करना चाहता है

---

१ Dr Cardline Spurjeon Shakespeare s Imagery and what it tells us. P 5

२ Mind Vol. xvi 1907 P 72

३ देखिये : डा. सत्येन्द्र का 'विचार-वल्लरी' में संकलित 'कल्पना' लेख

उसके प्रति उसकी स्वत: एक निष्ठ अनुभूति या भावना होती है। वह स्वयं उस विषय से विभावित होकर उसमें इतना तन्मय हो जाता है कि वह उसकी एकान्त अनुभूति से पुष्ट म होकर अपनी निष्ठा या भावना को ज्यों का त्यों किसी दूसरे के हृदय में संक्रांत कर देना चाहता है। सम्प्रीति अथवा दूसरे के हृदय में अपनी अनुभूति को प्रविष्ट कर देने की भावना इतनी बलवती हो जाती है कि सहसा सृष्टि के समस्त साधन उसकी सहायता करने के लिए मानस बिम्ब बनकर स्फुरित होने लगते हैं और इन्हीं मानस-बिम्बों के सहारे वह अपने काव्य का रूप शृंगार करता है। मानस-बिम्ब के साक्षात करने की क्षमता उसी प्रकार सिद्धि से प्राप्त होती है जैसे किसी योगी को अंतर्दृष्टि प्राप्त हो। जयदेव ने अपने 'चन्द्रालोक' में इसीलिए कहा है, 'शक्तिर्निपुणता लोक-शास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्' अर्थात् वह शक्ति और निपुणता आती है संसार का, शास्त्रों का और काव्यों का सूक्ष्म अध्ययन करने से। जब कवि अनेक मानस-बिम्बों का साक्षात करने के लिए अपनी अन्तर्दृष्टि के कपाट खोलता है तब वही वस्तुएँ उसे गोचर हो पाती हैं जिनका उसने शास्त्रों में, काव्यों में या अपने जीवन में अनुभव किया होता है। तात्पर्य यह कि हमारे सम्पूर्ण मानस-बिम्बों का आधार हमारा प्रत्यक्ष जगत् ही है और यह प्रत्यक्ष जगत् हमारे कल्पनीय विषयों का सुन्दरतम शृंगार करने के लिए यथा-अवसर हमारी मानसिक चिन्तन-धारा को उत्तम पदार्थ देकर निरंतर पुष्ट करता रहता है। मन की यह प्रकृति है कि जहाँ एक ओर बीती हुई घटनाओं, देखी हुई वस्तुओं, सुनी हुई बातों, चखे हुए स्वादों और छुए हुए स्पर्शों का स्मरण दिलाता है वहाँ उसमें एक विशेष दोष भी है कि वह उन्हें अंश से विस्मृत भी करता है। यह स्मरण और विस्मरण की क्रिया मन का स्वाभाविक गुण होने पर भी कुछ परिस्थितियों से भावित भी होती रहती है —जैसे जब कभी हम किसी क्रिया या वस्तु के साथ ऐसे संस्कार या सम्पर्क स्थापित करते हैं तो संपर्क की वस्तुओं का साक्षात्कार होते ही तत्सम्बन्धी पदार्थों की स्मृति जाग्रत हो जाती है।

अत: हमारी स्मृति को पुष्ट करने के लिए संपर्क की आवश्यकता है। किन्तु काव्य में कवि का उद्देश्य स्मृति को ही पुष्ट करना नहीं है अपितु प्रस्तुत विषय की तीव्रतम व्यंजना करना है, क्योंकि जब तक यह तीव्र व्यंजना न हो तब तक साधारणीकरण नहीं होता और साधारणीकरण न होने से न तो रस आता है और न मन में उस भाव या विषय की स्पष्ट तथा तीव्र प्रतीति ही होती है। भावों की तीव्रतम व्यंजना करने के लिए कल्पना की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है।

कल्पना तथा उसके क्रिया-कलाप

अंग्रेजी शब्द 'इमजिनेशन' का अभिप्राय है रूपों का सृजन। संस्कृत में इसे कल्पना कहते हैं जो क्लृप धातु से निष्पन्न है। कल्पना का काम सृजन करना है। किसी वस्तु या पदार्थ के विषय में इन्द्रियजन्य जो संवेदना होती है उसे अनुभूति कहते हैं। उसमें कल्पना का योग होने से एक सम्पन्नता और सहज कमनीयता का समावेश हो जाता है। यह मस्तिष्क का प्रत्यक्ष से समन्वय कराके ध्यान और प्रतिविधान की क्रिया के द्वारा कला का सृजन करती है, शृंगार करती है।

कुछ कार्यों का अनुमान है कि कल्पना दृश्य बिम्ब उपस्थित करती है और साथ ही साथ भावात्मक विचारों के प्रतीक बड़ी समर्थता से उपस्थित करती है। कुछ अन्य विद्वानों का कथन है कि कल्पना रहस्यात्मक स्वान्तः प्रेरणा की वह काव्यात्मक समवर्तिनी है जिसमें विवेक और इन्द्रियानुभव दोनों का सम्पर्क नहीं हो पाता। कुछ लोग इसे स्वयं रचना-शक्ति मानते हुए कहते हैं कि मनुष्य में स्वभावतः मूर्तिकरण की एक प्रवृत्ति होती है।[1] अरस्तू ने पोषरता धारणा स्मृति और बुद्धि के सम्बन्ध में विचार करते हुए कल्पना के सम्बन्ध में कहा है कि इसमें विचारों को योजनाबद्ध करने की बड़ी प्रबल शक्ति होती है और इस शक्ति के अभाव में कोई सुनिश्चित धारणा बन ही नहीं पाती। कालरिज ने कल्पना के दो वर्गीकरण किये हैं आदिम कल्पना (Primary imagination) और दूसरी प्रतिनिधि कल्पना (Secondary imagination)। आदिम कल्पना तो वह सजीव शक्ति है जो ऐन्द्रिय प्रतीति को ज्ञानगम्य बनाती है मानों परब्रह्म की सृजन-क्रिया का सचेतन मस्तिष्क मे प्रतिबिम्ब हो। दूसरी जिसे हम प्रतिनिधि कल्पना कहते हैं वह आदिम कल्पना की छाया मात्र है। यह प्रकृति वस्तु के टुकड़े-टुकड़े करती है उन्हें फैलाती है छिन्न-भिन्न करके देखती है ताकि अपनी इच्छानुसार उनका सृजन कर सके। वह मनुष्य की इच्छा की सहगामिनी है। अतः हम कह सकते हैं कि कल्पना आत्मा और प्रकृति में समान रूप से अवस्थित रहने वाली वस्तु है, जिसके कारण कवि प्रकृति-वस्तु का आदर्शीकरण कर सकता है और उसे मनन का रूप दे सकता है।[2]

कल्पना की परिभाषा करते हुए स्टैफेन जे० ब्राउन ने कहा है कि कल्पना शब्द या वाक्य है जो इन्द्रियगोचर पदार्थ की कमनीयता अन्य किसी दूसरे पदार्थ के समकक्ष रखकर बढ़ा देता है।[3] 'अलंकारशास्त्रों' ने प्रतिसर्जन करने वाली भावना और कल्पना को अलग-अलग बताते हुए कहा है कि ये दोनों मिलकर शिल्पकार, संगीतज्ञ और चित्रकार तो बना सकती हैं किन्तु कवि नहीं। रोस्काई पुट्टेनहम और सिडनी ने कहा कि काव्य-कल्पना में अन्वेषण की शक्ति होती है। हॉब्स ने अपने भौतिक मनोविज्ञान में कल्पना को ह्रासोन्मुख भावना कहा है और यह बताया है कि उसकी उपयोगिता केवल शृंगार में है किन्तु 'ड्राइडन' का विश्वास है कि कल्पना काव्य में यहाँ तक सजीवता लाती है कि उसके योग से कविता अपने आप बोलने लगती है। अनादि काल से चित्रकला मूर्तिकला काव्यकला इत्यादि में प्रतीकों का बाहुल्य रहा है, और प्रतीक कल्पित मनोभावों के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं और उनका क्षेत्र कल्पना का ही क्षेत्र है। इस प्रकार मनोभावों की अभिव्यक्ति जब साधारण शब्दों से नहीं हो पाती तब कल्पना का आश्रय लिया जाता है। स्टेफेन जे ब्राउन का तो मत है कि किसी स्वर्गीय यथार्थ को प्रकट करने में जहाँ साधारण शब्द असमर्थ हो उठते हैं वहाँ कल्पना की आवश्यकता पड़ती है।[4]

---

१ पं सीताराम चतुर्वेदी समीक्षाशास्त्र पृ २९५

२ डा देवराज उपाध्याय 'रोमांटिक साहित्यशास्त्र', पृ १६७

३ Stephen J Brown 'The world of Imagery P 1

४ पं सीताराम चतुर्वेदी 'समीक्षाशास्त्र' पृ २९८

५ Stephen J Brown 'The world of Imagery P 1* 14

यह विराट जगत् तथा उसका समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य मानव-मस्तिष्क के लिए एक रूपक ही तो है। विश्व का प्रत्येक पदार्थ अपने दो रूप रखता है, उसका पहला रूप सत्य शिव और सुन्दरता का है और दूसरा रूप है—वह किसी अन्य पदार्थ का प्रतीक चित्र अथवा बिम्ब है। अम्बर में हँसते तारागणों को एक ज्योतिषी भौतिक विज्ञानवेत्ता तथा नाविक तीनों देखते हैं और तीनों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है और तीनों अपने-अपने ढंग से उसका अर्थ लगाते हैं। एक के लिए वह स्वर्गीय ग्रह है (मंगल बुध गुरु शुक्र शनि रवि के रूप में) दूसरे के लिए वह रासायनिक पदार्थ का पुंज है और तीसरे के लिए वह मार्ग दर्शक का काम देता है। वही तारा कवि के लिए सौन्दर्य का स्रोत है जो प्रतीक बनकर कल्पना का आवाहन करता है। कविवर टैगोर और मिल्टन के लिए वह आशा का प्रतीक और शान्ति का अग्रदूत बन जाता है।

कल्पना अलंकार तथा रूप-विधान

कल्पना और अलंकार का अभिन्न सम्बन्ध है दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर साहित्य में आते हैं। मैक्समूलर के कथनानुसार मानव का बौद्धिक विकास रूपक के अभाव में अवरुद्ध हो जाता है।[1] हमारे कोई भी विचार अपने में स्वतन्त्र नहीं हैं उनके साथ-साथ कल्पना भी विचारों का वाहन बनकर चलती है। अतः हमारे विचारों की प्रगति कल्पना की प्रगति पर अवलम्बित है। हम चिन्तन के क्षणों में अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति के लिए कल्पना-बिम्ब की आवश्यकता अनुभव करते हैं। क्योंकि जब हम कहते हैं कि उसका दिल पत्थर अथवा नवनीत है तब उसके हृदय की कठोरता या कोमलता का सजीव बिम्ब करने के लिए पत्थर और नवनीत की कल्पना करते हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कल्पना हमारे आंतरिक मनोभावों की भाषा बनकर अमूर्त को मूर्त रूप देती है हमें अपरिचित से परिचित कराती है अतीन्द्रिय विषयक तत्त्वों को इन्द्रिय विषयक बनाकर बोध गम्य कर देती है। जब हमारी विचारधारा आवेग के क्षणों में परिचित और साधारण भाव-भूमि से अपरिचित और असाधारण भाव भूमि की ओर प्रवाहित होती है तब उसे कल्पना और अलंकार का संबल लेना ही पड़ता है। जैसे शेक्सपियर कहता है—

> I have no spur
> To prick the sides of my intent.

ोड़ा एड़ लगाने से आगे बढ़ता है। यहाँ कवि अपनी अद्भुत और मौलिक काल्पनिक-शक्ति मनोरथ जैसे अमूर्त पदार्थ को घोड़ा बनाता है और इच्छा-शक्ति को 'एड़' लगाता ता है।

इस प्रकार कल्पना 'संवेगों' का परिणाम होने के कारण हमारी अभिव्यक्ति को सजग , रंगीन तथा स्पष्ट बनाती है किन्तु उसके स्पष्टीकरण के लिए वह नहीं प्रस्तुत करती। ात को मैक्समूलर ने यों स्पष्ट किया है—भाषा के लिए रूपक और उपमा का वही है जो पुष्प और पत्र का पादप के लिए। जैसे वे दोनों पादप में आन्तरिक अभि

---

1. The world of Imagery P 36

वृद्धि करते हैं उसी प्रकार रूपक और उपमा भावों को गतवान बनाते हैं।[1] इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि भाषा कितनी ही प्रगति क्यों न कर ले वह बिना कल्पना के भावों की पूर्णाभिव्यक्ति नहीं कर सकती। इसका मूल कारण यह है कि कवि की चित्तवृत्ति बच्चे तथा आदि मानव के मस्तिष्क की भाँति पवित्र तथा अकलुषित होती है, वह अपने *विचारों एवं भावों पर कल्पना का रेशमी आवरण डालती ही है। किसी पुस्तक में दिये गये* दृष्टांत और चित्र देखकर जैसे हम उस पुस्तक के वर्ण्य-विषय को शीघ्र ही समझ जाते हैं उसी प्रकार कल्पना विचारों को स्पष्ट कर देती है। किन्तु कल्पना का काम विचार-वहन *करना ही नहीं है बल्कि श्रोता या पाठक के हृदय में आकर्षण एवं विकर्षण के भावों को* भी जागृत करना है, जिससे कवि के भावों से श्रोता या पाठक तादात्म्य स्थापित कर लें। एक शब्द में कल्पना का साधारणीकरण अनिवार्य है। रूपक और उपमा की अलग श्रेणियाँ हैं, उनके अलग विभाग हैं, कल्पना-चित्र रूपक और उपमा दोनों का विश्लेषण करता है अतः हम उन्हें उसी श्रेणी में रख सकते हैं किन्तु यदि हम रूप-विधान को मानुष ही मानें और उसे कल्पना का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व समझें तो जितनी अभिव्यक्ति रूपक और उपमा में है उससे अधिक इसमें है।[2]

रूप-विधान एक मन्द्रा-सा शब्द चित्र है जिसका उपयोग कवि अथवा लेखक अपने भावों एवं विचारों की व्याख्या करके उसे बोधगम्य और स्पष्ट करने के लिए करता है।[3] साहित्य के अतिरिक्त दार्शनिक वैज्ञानिकों में भी कल्पना की प्रचुरता होती है, उसी के सहारे वे नये-नये अन्वेषण करते हैं। किन्तु वैज्ञानिक कल्पना को वस्तुओं एवं तज्जन्य अनुभूतियों में नियमबद्धता स्वीकार कर चलना है अन्यथा कोई नवीन आविष्कार नहीं हो सकता। किन्तु कवि-कल्पना शिल्पकला की अनुगामिनी बनकर ही चल सकती है। विज्ञान तथा अध्यात्मविद्या इत्यादि को भी उपमा और रूपक की आवश्यकता पड़ती है। काल्पनिक चित्रों के अभाव में भावों का अस्तित्व नहीं के बराबर होता है। भावों पर अंकुश न होने से वे अनियमित हो जाते हैं। रूप-विधान और कल्पना ही अंकुश का काम करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कविता में कल्पना एक अनिवार्य गुण है। इलिस राबियर के शब्दों में कविता अलंकारिक तथा प्रतीकात्मक होती है, विचारों की सीधी-सादी अभिव्यक्ति कविता की सृष्टि नहीं कर सकती।[4] वेल्स के मत से कवि-कल्पना में आवेगों का इतना महत्त्व स्फुरण होता है कि उसके स्पर्श मात्र से वर्ण्य-विषय अधिक सुन्दर या असुन्दर आह्लादकारी या विषादयुक्त प्रतीत होते हैं।[5] मानवीकरण भी कल्पना का एक रूप है। कवि इसका प्रयोग करता है

---

१ Max Muller 'The Science of thought P 485
२ John Middleton Murry Countries of the Mind. P 4
३ Dr Caroline Spurjeon Shakespeare's Imagery and what it tells us. P 9
४ मिलाइये पं० रामचेलावन पाण्डेय, 'काव्य और कल्पना' पृष्ठ १०
५ Elis Rabier Psychology
६ W H. Wells 'Poetic Imagery, New York, 1924

यह मानव-मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मानवीकरण हमारे संवेगों का परिणाम है और कविता संवेगों की काल्पनिक अभिव्यक्ति है। सी० डे० लीविस का कथन है कि हमें किसी कवि का मूल्यांकन उसके रूपक और उपमा अलंकारों की मौलिकता तथा प्रचुरता से करना चाहिए। ड्राइडन थोड़ा और आगे बढ़कर कहते हैं कि कविता का प्राण रूप-विधान ही है।[1] कविता में कल्पना-चित्र रहते हैं और प्रत्येक कविता कल्पना-चित्र है। शब्दभण्डार और शैली परिवर्तित हो सकती है छन्दों में रद्दोबदल हो सकता है यहाँ तक कि मुख्य विषय वस्तु भी परिवर्तित हो सकती है किन्तु उपमा और रूपक जो कविता के वास्तविक तत्त्व सौन्दर्य और कसौटी हैं सदैव रहेंगे।[2] प्रत्येक कल्पना-चित्र चाहे वह कितना ही बौद्धिक एवं भावुक हो इन्द्रियविषयक होता है। क्योंकि जब कोई उपमा या रूपक की भाषा में बोलता है तब हमारा चित्त प्रसन्न हो उठता है हम आत्मविभोर हो जाते हैं। जैसे 'तुम मेरे जीवन की दीप-शिखा हो' 'जनता का रोष भूकम्प है' इसी प्रकार की उक्तियाँ हैं। कविता-जगत् कृत्रिम होने पर भी सारगर्भित होता है। बशर्ते उसके काल्पनिक-चित्र वास्तविक संसार के अनुरूप हों। यह अनुरूपता उपमा और रूपक के ही माध्यम से लाई जा सकती है। इसी मत को पुष्ट करते हुए सी० डे० लीविस कहते हैं कि कल्पना-चित्र का आविष्कार कविता के निमित्त हुआ है, अमरिकन प्राध्यापकों की सुख सुविधा के लिए नहीं।[3] इजरा पाउण्ड ने एक बार कहा था कि जीवन में एक काल्पनिक-चित्र खड़ा कर देना एक मोटे ग्रन्थ लिखने से अच्छा है। डॉ० स्पर्जन ने एक स्थल पर लिखा है कि जब मैं कल्पना-चित्र कहता हूँ तो मेरा तात्पर्य हर प्रकार की तस्वीरों से है जिनका निर्माण उपमा अथवा रूपक से होता है। कल्पना जहाँ किसी रूप का निर्माण करती अथवा छवि का विधान करती है वहाँ अलंकार का सहारा वह भले ही ले किन्तु कल्पित और परम्परायुक्त उपमान प्रयोग में कल्पना का होना अनिवार्य नहीं। हाँ नवीन रूप-विधान के उत्कर्ष में कल्पना बड़ी सुन्दर हो उठती है। कवि जब अलंकारों के संयोग से सुषुप्त रागात्मक वृत्तियों को जागृत करता है वहाँ कल्पना और अलंकार का चोली-दामन का सम्बन्ध हो जाता है। यों तो हमारी बोल-चाल की भाषा में भी रूपक और उपमान यत्र-तत्र अनायास आ ही जाते हैं और कविता में उनका सहज प्रवेश पाना तो साधारण-सी बात है ऐसी अवस्था में यह कल्पना का काम नहीं होता वह तो स्वयंभू बनकर ही आता है।

मोटे तौर पर कल्पना को तीन कोटियों में विभाजित कर सकते हैं —बौद्धिक सौन्दर्यात्मक और व्यावहारिक। बुद्धि के धरातल पर जब कल्पना प्रस्फुटित होती है तब उसमें बौद्धिकता की प्रचुरता रहती है। बौद्धिक-कल्पना वैज्ञानिकों और विचारकों को सहायता करती है इसी के सहारे वैज्ञानिक नित नवीन अन्वेषण करता है और विचारक नये-नये

---

१ C. D. Lewis 'The Poetic Image, P 18

२ मिलाइए C. D. Lewis 'The Poetic Image, P 17

(The Clark Lectures given at Cambridge in 1946)

३ " " Page 40

४ Dr F E. Spurjeon Shakespeare's Literative Imagery P 4

विचारों का प्रस्तुत करता है। ऐसी कल्पनायें तर्कों के बाद प्रतिवाद को झेलने में पूर्णतया सफल होती हैं। जो कल्पना सौन्दर्य-निर्माण करती है सौन्दर्य-बोध कराती है तथा सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न करती है वही कल्पना सौन्दर्यात्मक कही जा सकती है।[१] सौन्दर्य विधान रूपगत गुणों की सापेक्षता (Proportion) समता (Symmetry) संगति (Harmony) और संतुलन (Balance) आदि से निर्दिष्ट करता है। केवल अवयवों के समूह से 'रूप' नहीं उत्पन्न होता जैसे ईंट चूना लकड़ी को समूह में एकत्रित कर देना ही भवन नहीं कहला सकता। योजनानुसार अंगों का संयोजन रूप का उत्पादक होता है यहाँ प्रत्येक अंग दूसरे की अपेक्षा रखकर ही 'समग्र' 'भवन' के निर्माण में भाग लेता है।[२] जिस प्रकार सृष्टि तत्त्वों के उचित सम्मिश्रण से अभिनव रूप की सृष्टि होती है उसी प्रकार कारयित्री कल्पना विभिन्न इन्द्रिय सम्बन्धी मूर्त-विधान की सहायता से अभिनव लोक की सृष्टि करती है। अतः सौन्दर्य उत्पादन करने वाली कल्पना में सापेक्षता समता संगति और संतुलन की अपेक्षा रहती है। इनके अभाव में काव्यगत सौन्दर्य का अभाव रहेगा। किन्तु कल्पना नवीन रूप विधान का आयोजन तभी कर सकती है जबकि उसकी अभिव्यक्ति स्वच्छन्द हो उसके कोमल पैरों में परम्परागत रूढ़िग्रस्त सौन्दर्य का महावर शोभा नहीं देता और जब-जब कलाकार ने नियमों के आतंक से कला की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति में बाधा डाली है तब-तब कला निर्जीव नीरस और लकीर पीटने वाली हो गई है—इतिहास इसका साक्षी है। व्यावहारिक कल्पना उपयोगी कला में सहायक होती है औद्योगिक कला से वस्तु के निर्माण में सहायता ली जाती है जैसे इंजीनियर, मिस्त्री सेनापति आदि को इसकी आवश्यकता पड़ती है।[३]

अपनी अनुभूति आशा-निराशा सुख-दुख एवं मनोभावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए कवि किसी न किसी माध्यम का आश्रय लेता है। माध्यम एक ओर कवि की अभिव्यक्तियां एवं भावनाओं को समाज बना देता है और दूसरी ओर वह कवि की अभिव्यक्तियों को एक सीमा में बाँध भी देता है। माध्यम की इसी अनिवार्यता के फलस्वरूप कल्पना पद पद रूप और रंग धारण करती है। 'चित्रकार की कल्पना जहाँ चाक्षुष मूर्त विधान उपस्थित करती है, वहाँ कवि-कल्पना चाक्षुष एवं श्रव्य दोनों प्रकार के संतुलित मूर्त विधान करती है।[४]

सौन्दर्य-विधायिनी कल्पना के सहारे कविता का अर्थसम्भाव्य कृत्रिम रूप संभाव्य प्राकृत रूप में बदल जाता है। अलंकार के रूप-विधान में इसका आंशिक रूप प्रकट होता है किन्तु पूर्णरूप समान-प्रभाव उत्पन्न करने में है। केवल अलंकारत्व की रक्षा में प्रयत्नशील उपमा रूपक उत्प्रेक्षा आदि के प्रयोग में इसका माधुर्य नष्ट हो जाता है। किन्तु प्रभाव की तीव्रता गम्भीरता और स्थायित्व अंकित करने के प्रयास में अलंकार विधान कल्पना का अंग बन अभिनव सौन्दर्य की सृष्टि करता है। छायावादी कविताओं में कल्पना के इस रूप का विशद

१　देखिये : पं० रामखेलावन पाण्डेय 'काव्य और कल्पना' पृ० १
२.　देखिये : डा० हरद्वारीलाल शर्मा 'सौन्दर्यशास्त्र' पृ० ७२
३　देखिये : पं० रामखेलावन पाण्डेय 'काव्य और कल्पना' पृ० ११
४.　देखिये : पं० रामखेलावन पाण्डेय, 'काव्य और कल्पना' पृ० १७

चित्र उपस्थित किया गया है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रूप विधान की तीन कोटियाँ की हैं १ प्रत्यक्ष रूप विधान २ स्मृत रूप विधान ३ कल्पित रूप विधान। प्रत्यक्ष के अन्तर्गत रूप रस, गंध, नाद तथा स्पर्श आते हैं। स्मृति दो प्रकार की होती है—विशुद्ध स्मृति और प्रत्यक्षाश्रित स्मृति। मानव मन अपने वर्तमान को अतीत से सम्बन्धित करके देखने का अभ्यासी होता है। कभी कभी यह अतीत की घटनाओं का स्मरण करके आत्मविभोर हो उठता है उस समय वह वर्तमान से उठकर अतीत की उस भाव भूमि पर पहुँच जाता है जहाँ पहुँचकर एक विशेष आनन्द का अनुभव करता है। यही आनन्द का कारण रस का शाय-क्षण है। "किन्तु रति हास और करुण से सम्बद्ध संस्मरण ही अधिकतर रसात्मक कोटि में आते हैं।[2] स्मृति और प्रत्यभिज्ञान में बड़ा अटूट सम्बन्ध है। किसी खण्डहर को देखकर अतीत की स्मृतियाँ बिजली की भाँति मानस-पटल पर कौंध जाती हैं—वे यह याद दिला जाती हैं कि यह वही स्थल है जहाँ हमने वर्णमाला का पहला अक्षर लिखा था, यह वही पेड़ है जिसकी एक टहनी तोड़कर गुरुजी ने मुझे पीटा था आदि-आदि। इस प्रकार अतीत सजीव होकर वर्तमान के साथ कल्पना का एक अक्षय भण्डार खोल देता है जिसे कवि या भावुक देख-समझकर अघाता नहीं। ताजमहल के देखने से प्रणयी युगल शाहजहाँ और मुमताज दोनों सशरीर हमारे मानस में आ धमकते हैं। उनके प्रणय-निवेदन उनके क्रियाकलाप हमें उस लोक में पटक देते हैं जहाँ वे दोनों प्राणी अपने यौवन के मधुमय क्षणों को वैभव की छाया में बिताते थे। यदि उनकी कल्पना तीव्र और प्रचुर हुई तो बड़े-बड़े तोरणों से युक्त उन्नत प्रासादों की, उत्तरीय और उष्णीषधारी नागरिकों की अलक्त रंजित चरणों में पड़े हुए नूपुरों की झंकार की कटि के बीच लचकती हुई काँची की लड़ियों की धूप-वासित कच-कलाप और पत्रभंग मण्डित गण्डस्थल की भावना उसके मन में चित्र-सी खड़ी होगी।'[3]

कल्पित रूप विधान का मूल स्रोत प्रत्यक्ष रूप-विधान और स्मृत रूप विधान ही माना जाता है। जीवन में जिन बातों को हमने देखा या सुना है अथवा जिन्हें हम प्रत्यक्ष रूप से देख या सुन रहे हैं उन्हीं से कल्पित रूप विधान अपने निर्माण की क्रिया-प्रक्रिया व उपादानों को जुटाता है। यही कल्पित रूप-विधान काव्य के स्वरूप को साकार करता है। किसी तथ्य या वस्तु की मार्मिकता का बोध कराने के लिए उसका एक मूर्तरूप सामने प्रस्तुत कर देता है। कल्पित रूप-विधान की योजना यदि किसी भाव के संकेत पर होगी—सौन्दर्य, माधुर्य भीषणता कान्ति दीप्ति इत्यादि की भावना में वृद्धि करने वाली होगी—तब तो वह काव्य के प्रयोजन की होगी यदि केवल रंग आकृति लम्बाई चौड़ाई आदि का ही हिसाब किताब बैठाकर की जायगी तो निष्फल ही नहीं बाधक भी होगी। अतः जो अप्रस्तुत रूप विधान वैसे ही भाव को मन में जागृत कर दे जैसा कि प्रस्तुत के सम्बन्ध में हम देखते हैं वही रूप-विधान कविता में ग्रहणीय है अन्यथा चमत्कार पैदा करके क्षण भर में प्रभावशून्य

१. देखिये रामसेवक पाण्डेय काव्य और कल्पना पृ० १६
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रस मीमांसा', पृ० २०७
३. देखिये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि दूसरा भाग, पृ० ४० व ४२

हो जाते हैं। प्रत्यक्ष रूप विधान से असहयोग करके कल्पित रूप-विधान एक चमत्कार भले ही पैदा कर दे किसी भाव या प्रभाव को मूर्त स्वरूप देने में वह सर्वथा असमर्थ रहेगा। कल्पित रूप विधान का भव्य भवन जिस आधारशिला पर खड़ा किया जाता है वे सब उपादान हमारे जड़ और चेतन जगत् के ही होते हैं। नदी-नद पर्वत लता वृक्ष फूल मनुष्य पशु इत्यादि तक ही हमारी दृष्टि जा सकती है, इन्हीं के बीच से हमें कल्पित रूप-विधान की सामग्री चुननी पड़ती है।

कविता अर्थ का ही बोध नहीं कराती वरन् वर्ण्य-विषय का रूप भी चित्रित कर देती है और यह रूप चित्रण किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु का होता है सामान्य का नहीं। कल्पना के द्वारा सामान्य या जाति की मूर्त भावना नहीं प्रस्तुत की जा सकती है।[1] भारतीय आचार्यों ने कल्पित रूप-विधान का उपयोग भावोत्कर्ष में किया है बाहरी तड़क भड़क में नहीं। छायावाद में विदेशी मूर्तिमत्तावाद (Imagism) का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसके आदि प्रवर्तक फ्लिण्ट (F S Flint) माने जाते हैं। इनके मत से प्रगीत काव्य ही सर्वोत्तम होता है जिसमें वस्तुओं या भावों को मूर्त स्वरूप दिया जाता है। बड़ी-बड़ी कविताओं में भावों की तन्मयता और उसकी एकतानता नष्ट हो जाती है अत कोई रूप नहीं खड़ा हो सकता। वे मूर्त भावना को चित्रित करने के निमित्त मूर्त शब्द (concreate) का ही प्रयोग समीचीन समझते थे। इनके मत से मूर्त भवन को चित्रित करने वाले शब्द कल्पना में सजीव रूप-विधान की सृष्टि करते हैं। वर्णनात्मक तथा विचारात्मक कविता में सिद्धान्त-निरूपण अधिक होता है अत कोई रूप खड़ा करना असम्भव हो जाता है।

प्रस्तुत को उद्दीप्त करने के लिए अप्रस्तुत की योजना की जाती है। काव्य में ऐसी ही अप्रस्तुत-योजना प्रभावोत्पादक तथा भावोत्तेजक मानी जाती है जो हमारी भाव भूमि के सन्निकट होती है जिससे हमारा चिरकालीन परिचय है। अप्रस्तुत-योजना रूप-साम्य धर्म साम्य और प्रभाव-साम्य पर निर्भर करती है क्रोचे की दृष्टि में सादृश्य और साधर्म्य का अलंकारशास्त्र की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। किन्तु सादृश्य और साधर्म्य को यदि हम *त्याग दें तो रूप विधान अथवा अलंकार में कुछ शेष ही नहीं रह जाता। जहाँ तक कल्पना* भाव का आश्रय लेकर रूप विधान की सृष्टि करती है वही तक वह काव्य की अक्षय निधि समझी जा सकती है किन्तु तर्क का सहारा लेकर कल्पना रूप-विधान की सृष्टि नहीं कर सकती वस्तु वह कविता की वस्तु न होकर तर्कशास्त्र की वस्तु बन जायगी। किसी एक अंश में भी किसी प्रकार के सादृश्य का आरोप कर काव्य की भावना सम्पुष्ट हो जाती है किन्तु तर्क और विचार तो अपूर्ण ही रहेगा।[2]

काव्य में यह नितान्त आवश्यक नहीं कि रूप-साम्य के लिए आकार प्रकार में सम्पूर्ण समानता हो अथवा धर्म-साम्य के लिए गुण की पूरी समानता दोनों पदार्थों में समान रूप से ही विद्यमान रहे। सादृश्य बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप और साधर्म्य-वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म दोनों ही काव्य में भाव-व्यंजकता में सहायक होते हैं। यदि भावोत्कर्ष सादृश्य या साधर्म्य के संचित

---

१ मिलाइये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रसमीमांसा' पृ० २६५

२ Prescott 'The Poetic Mind. P 217

मात्र से ही पाय, तो फिर उनके पूरे आरोप की आवश्यकता नहीं ।[1] छायावादी कविता में रूप-साम्य और धर्म-साम्य से अधिक जोर प्रभाव-साम्य पर दिया गया है—इसीलिये छाया वादी कविता के अधिकांश रूप-विधान और अप्रस्तुत योजनाएँ रस प्रतीति में साधक ही हुई हैं बाधक नहीं। आधुनिक कविता में रूप-साम्य और धर्म-साम्य दोनों की अवहेलना करके हृदय पर पड़े तज्जन्य प्रभाव का ही विश्लेषण किया गया है। ऐसी परिस्थिति में प्रस्तुत अप्रस्तुत मिलकर एक हो जाते हैं।

'निराला' की 'जूही की कली' का मानवीकरण उसे रूपवती युवती बना देता है तथा पवन को नायक के प्रतीक का रूप दे देता है। जूही की कली और युवती में किसी प्रकार का रूप-साम्य नहीं है। वंकिम विलास नेत्र सुन्दर सुकुमार देह गोरे गोल कपोल चकित चितवन आदि किसी मानवी युवती के ही अंग प्रत्यंग बन सकते हैं, फिर भी रूपक के सहारे नायिका के सारे गुणों का आरोप जूही की कली में कर दिया गया है। इसी प्रकार पवन में नायक के सारे गुण हैं। नायक की निपट निठुराई, सुन्दर सुकुमार देह का झकझोरना गोरे गोल कपोल का मसलना आदि नायक के धर्म हैं जो पवन में आरोपित किये गये हैं। यहाँ कवि अपनी कल्पित नायक-नायिका की प्रणय-क्रीड़ाओं का चित्रण करते समय प्रस्तुत अप्रस्तुत के भेद को भूल उसी में तन्मय हो गया है। यहाँ तक तो ठीक है किन्तु जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों इतने दूर-दूर हो जाते हैं कि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर भी प्रस्तुत का पता नहीं चलता केवल अप्रस्तुत ही दिखाई देता है वहाँ कविता बड़ी अस्पष्ट और दुरूह हो जाती है। जैसे पंत की 'नक्षत्र' शीर्षक कविता का उत्तरार्ध । तात्पर्य यह कि अप्रस्तुत रूप-विधान जीवन की अनुभूति का चित्रण छोड़कर जहाँ कल्पना का घटाटोप खड़ा करने में तल्लीन हो जाता है वहीं कविता मर जाती है और कल्पना कटी पतंग की तरह आकाश में बिना आधार के मँडराती रहती है। अतः काव्य में जीवन और जगत् (प्रस्तुत) का होना अनिवार्य है।

अप्रस्तुत रूप-विधान उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा संदेह भ्रांति, अपह्नुति, दीपक अप्रस्तुत प्रशंसा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के रूप में आता है और लक्षणा के रूप में भी । सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतों की ओर जाती है जो प्रस्तुतों के समान ही सौन्दर्य दीप्ति कांति कोमलता प्रचंडता भीषणता उग्रता उदासी अवसाद खिन्नता आदि की भावना जगाते हैं।[2] सामञ्जस्य में सहायता न पहुँचाकर दूर की कौड़ी लाने वाले कल्पित रूप-विधान दिमागी ऐयाशी के सिवा और कुछ नहीं हैं।

रूप विधान और मनोविज्ञान

मानव-मन असंख्य भावों और विचारों का कोश है वे भाव और विचार अपनी अभिव्यक्ति के लिए कल्पना-चित्र का आश्रय ढूँढते हैं जिससे मन के अमूर्त भाव मूर्त रूप धारण करके बाहर आते हैं। मन की दो क्रियाएँ होती हैं, एक में वह विचारों या भावों का ग्रहण

१. निबन्ध : लक्ष्मीनारायण सुधांशु काव्य में अभिव्यंजनावाद पृ० ६७
२. [illegible] गुप्त : हिंदी कविता [illegible] परिस्थिति [illegible] पृ० ३०८

करके तुलनात्मक ढंग से सोचता है; दूसरे से स्मृति की आधार-शिला पर विचारों का भवन खड़ा करता है। उदाहरण के लिए अतीत की किसी घटना का स्मरण करने के लिए हम पहले उन सम्पर्कों का स्मरण करते हैं जिनके सहयोग से वे घटनाएँ घटित हुई थीं। हमारे परिवार की महिलाएँ अनेक घटनाओं की तिथि इसी सम्पर्क के सिद्धान्त के आधार पर स्मरण कर लेती हैं। यदि उनसे कोई पूछे कि अमुक बालक का जन्म कब हुआ था तो वे सटीक तिथि बताते हुए तत्सम्बन्धी घटनाओं का भी विवरण देना नहीं भूलेंगी। वे कहेंगी कि जिस साल बाढ़ आई थी उसी वर्ष कार्तिक की एकादशी का व्रत करने जा रही थी तब इस बालक का जन्म हुआ था। यही सम्पर्क हमारी रचनात्मक कल्पना का आधार है।[1] मान लिया हम किसी भाव या विचार की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं और वे भाव या विचार यदि सीधे और साधारण हुए तो हम ज्यों का त्यों कह देते हैं। उसके लिए हम ऐसी भाषा का उपयोग करते हैं जो उन विचारों को वहन कर सके और विचारों में स्पष्टता आ जाय। किन्तु वह यदि इतने असाधारण अथवा दुरूह हुए कि उनकी अभिव्यक्ति के लिए पर्यायवाची शब्द न मिले तो हम उनसे मिलती-जुलती वस्तु की कल्पना कर लेते हैं और उसी के माध्यम से हम अपने विचारों अथवा भावों को श्रोता या पाठक तक पहुँचा देते हैं।

मनोवैज्ञानिक विचार (idea) को कल्पना चित्र कहता है और तार्किक उसे अर्थ (meaning) कहता है। जैसे घोड़ा कहने से एक बार हमारे समक्ष घोड़े का चित्र आ जाता है। दूसरी ओर हमारा ध्यान वास्तविक घोड़े की ओर जाता है जो घास-दाना इत्यादि खाता है और जिस पर हम सवारी करते हैं। तात्पर्य यह कि हमें वास्तविक घोड़े का ध्यान घोड़े के काल्पनिक चित्र से ही आता है।[2]

रूप-विधान का पहला गुण उसकी चेतनता है। भावों या विचारों को मूर्त रूप देकर चैतन्य बना देना ही बिम्ब है। किसी वस्तु का चित्र खींचने के पहले हमें उस वस्तु को चेतन मन में बैठाना होगा तभी उस वस्तु का हू-बहू चित्र हम खींच सकते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि किसी वस्तु का रूप हमारी चेतना और उस वस्तु में सम्बन्ध स्थापित करता है।

इसका दूसरा तत्त्व है निरीक्षण करना। हमारे चेतन मन की तीन विभिन्न अवस्थाएँ हैं। पहले हम किसी वस्तु को देखते हैं तब उस पर मनन करते हैं तत्पश्चात् उसका रूप मन पर उतरता है। किसी वस्तु का निरीक्षण करते समय हम उसे एक निगाह में सम्पूर्ण रूप से नहीं देख पाते। जैसे हम किसी व्यक्ति को देखते ही उसके अंग-प्रत्यंग का भलीभाँति निरीक्षण नहीं कर पाते व्यक्ति का सम्पूर्ण शरीर धीरे-धीरे ही देखा जा सकता है। इस प्रकार *हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निरीक्षण करते समय हम वस्तु के एक* [illegible] *वस्तु को एक बार में देख सकते हैं। लेकिन जब हम उस व्यक्ति का मनन करते हैं* उ[illegible] *की बात* सोचते हैं तब हम समूचे व्यक्ति को ही सोचते हैं। इस क्रिया में हमा[illegible] एक ही

---

१ The world of Imagery P 62

२ Mind Vol. xvi 1907 P 71
Psychology and Philo

बार में उस व्यक्ति को पकड़ लेता है पहचान लेता है। यहीं पर 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' की अवस्था आ जाती है। निरीक्षण में जहाँ हमें धीरे-धीरे किसी वस्तु का ज्ञान होता है वहाँ रूप विधान से उसका ज्ञान तत्काल हो जाता है। किसी पदार्थ को हम ज्यों-ज्यों बारीकी से देखते जायेंगे त्यों-त्यों उसका रूप नजरों में निखरता जायेगा किन्तु किसी बिम्ब को हम कितनी ही देर क्यों न देखें उसे हम उसी रूप में पायेंगे जिसकी वह प्रतिछवि है। एक शब्द में निरीक्षण हमारी चेतनता की परिधि से घिरा रहता है। हमारा बनाया हुआ बिम्ब हमारे ज्ञान का परिचय होता है। जितना हम जानेंगे उससे विस्तृत चित्र नहीं बना सकते।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की खोज के अनुसार मन के तीन स्तर माने गये हैं। चेतन उपचेतन तथा अवचेतन। चेतन की परिधि में धारणा विचार, भावना तथा विवेक आते हैं किन्तु चेतन मन को अपदस्थ कर उपचेतन और अवचेतन ने उसका स्थान घेर लिया है। कहा जाता है कि आधुनिक युग में धीम सदाचार तथा मर्यादा की मोटी दीवारों को पार कर हमारी अनन्त इच्छाएँ तथा अभिलाषाएँ पूर्णरूप से प्रस्फुटित न होकर भीतर ही भीतर कुण्ठित होकर अवचेतन मन में बैठ जाती हैं जिनकी पूर्ति स्वप्न या कला के माध्यम से की जाती है। योगियों की कुण्डलिनी की भाँति अवचेतन मन ही उपचेतन तथा चेतन को प्रेरणा देता है क्रियाशील बनाता है। वास्तव में हमारी जो इच्छाएँ सामाजिक अथवा नैतिक नियंत्रणों के कारण अपना विकास नहीं कर पातीं वे वस्तुतः समूल नष्ट नहीं होतीं, वे हमारे अवचेतन मन के गर्त में समा जाती हैं जो समय पाकर कुछ तो उभर आती हैं और कुछ चिता के साथ जल जाती हैं। इस मनोवैज्ञानिक खोज ने आधुनिक काव्यात्मक संवेदनाओं तथा रचना प्रक्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। भावों एवं संवेगों की असम्बद्ध लहरें एक दूसरे को आगे ढकेलती हुई उठती तो अवश्य हैं किन्तु विशृंखल रूप में, जिसे हम चेतना का मुक्त प्रवाह (फ्री एसोसियेशन) ही कहेंगे। परिणामस्वरूप अति आधुनिक कविता में (जिसे कुछ लोग नयी कविता अथवा प्रयोगवादी कविता कहते हैं) हमारे दमित अहं का विस्फोट अधिक देखा जाता है और हमारा अहं मर्यादातीत इच्छाओं को अवचेतन मन में दबाये हुए है अतः उनके विस्फोट में असम्बद्धता का समावेश देखा जाता है अतः कविता में एक चित्र उभरता नहीं कि दूसरा उसे दाब लेता है। इसी कारण कविता में खंडित रूप-विधान (Broken images) की भरमार सी आ गई है। सम्भवतः इसी से आज की कविता में असंबद्धता और दुरूहता आ गई है। सेसिल डे० लेविस की मान्यता है कि इस प्रकार की रचना प्रक्रिया पाठक को कविता समझने का काम दुरूह कर देती है क्योंकि किसी भी वस्तु से संबंधित उनके भाव अथवा कल्पना-चित्र कवि के तत्सम्बन्धी भावों से मुख्यतः भिन्न होते हैं। अतः पाठक अपने को ऐसी स्थिति में पाता है जैसे कि कविता न सुनकर किसी मात हुए व्यक्ति का प्रलाप सुन रहा हो।[1] कविता में खंडित रूप विधान देने का एक और कारण है। मानव-जीवन आज स्वतंत्र एवं स्थूल इकाई न रहकर अचेतन प्रतिक्रियाओं का विशृंखल समूह-मात्र रह गया है। इसलिए आज कवि भाव को सम्पूर्णता न देकर उसके खण्ड-चित्र ही हमें देते हैं और उनमें तारतम्य

१. Cecil Day Lewis A hope for Poetry Seventh Edition, P 20

गया इसीलिए कविता में रहस्यात्मकता और अस्पष्टता का होना आवश्यक माना गया। कविता की इस दुरूहता को कायम रखने के लिए उलझे-सुलझे और क्लिष्ट रूप-विधान अत्याधुनिक कविता में आश्रय पाने लगे हैं। ये प्रतीक कवि की वैयक्तिक रुचि के अनुकूल ही कविता में प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में मौन प्रतीकों का प्रयोग 'अज्ञेय' ने बड़ी ढिठाई से किया है। यद्यपि परंपरानुगत देशगत तथा युगगत प्रतीकों का भी अभाव हिन्दी की नयी कविता में नहीं मिलेगा। इन प्रतीकों के सहारे कवि-काव्य सजीव-सा हो उठता है किन्तु कहीं-कहीं व्यक्तिगत कुंठाओं से आक्रांत प्रतीक न तो अर्थ की प्रतीति कराते हैं न ही भाव की। उनका अर्थ कवि स्वयं समझता है इनका साधारणीकरण नहीं हो पाता। फिर भी रूप खड़ा करने में प्रतीकों का बड़ा हाथ है। इन प्रतीकों में जितनी ही स्वाभाविकता और प्रेषणीयता होगी रूप उतना ही स्पष्ट और सुन्दर होगा।

प्रतीकों का प्रयोग अनादि काल से होता आ रहा है वेदों और उपनिषदों की अनेक गाथाएं प्रतीकवादी हैं। कबीर, दादू आदि निर्गुणवादी कवियों ने भी प्रतीकों का सहारा लिया सूफी कवियों की समूची कविता ही प्रतीकों पर आधारित है। रीतिकाल में भी यत्र तत्र प्रतीकों के दर्शन हो जाते हैं। इस प्रकार कविता में प्रतीक का महत्त्व हमारे भारतीय कवियों ने भी माना है, किन्तु यह भावाभिव्यक्ति का साधन है साध्य नहीं।

रूप-विधान और अति-यथार्थवाद (Su-realism)

प्रतीकवाद की भाँति अति-यथार्थवाद का भी जन्म फ्रांस में हुआ था। युग की पुंजीभूत निराशा ने साहित्य में अति-यथार्थवाद को जन्म दिया। प्रथम महायुद्ध की विभीषिकाओं और यातनाओं से संत्रस्त जनता अति-यथार्थवाद में प्रश्रय ढूंढने लगी। यह वास्तविक जगत् से काल्पनिक जगत् में पलायन करने तथा मन बहलाने का एक विरामस्थल बन गया। इसका बन्धन से चिर विरोध है यह उन्मुक्तता स्वच्छन्दता तथा स्वतंत्र चिंतनधारा का समर्थक है। साहित्य और चित्रकला दोनों समान रूप से इसके प्रभाव में आ गये। विशृंखल कल्पनाओं दमित कुंठाओं तथा असंगत विचारों से प्रसूत मानस-छवियों तथा भाव-चित्रों का चित्रांकन करना अति-यथार्थवादी चित्रकारों का मूल मंत्र बना। इसका प्रभाव लेकर कविता में भी तदनुकूल कल्पनाओं और रूप-विधानों का आयोजन हुआ। इसका क्षेत्र स्वप्नों तथा व्यक्ति की अर्द्धजागृत अवस्थाओं से है। मानव-जीवन में उसके देखे हुए स्वप्नों का महत्त्व पूर्ण स्थान है, ये मनुष्य के अवचेतन मन में प्रसुप्त भावों और अभिलाषाओं को जगा देते हैं। हर्बर्ट रीड की मान्यता है कि समस्त कला-कृतियाँ प्रकृत रूप में प्राय असम्बद्ध स्वप्नों के समान होती हैं। मिथ 'ड्रीम एण्ड पोयम' शीर्षक निबन्ध में वे एक स्थल पर कहते हैं कि "यदि एक अपने सपनों को दूसरों को समझा सके तो हम अविभ्रांत गति से बोल कर कविता लिखा सकते हैं। इस प्रकार रीड महोदय ने काव्य रचना के लिए तंद्रा को अधिक महत्त्व देते हुए यह स्वीकार किया है कि उनकी उत्तम कविताएं तंद्रा की अवस्था में लिखी गई थीं। अति यथार्थवाद की यह मान्यता है कि व्यक्ति के विचार स्वतः गतिशील हैं और अवचेतन मन में जो झंकार होती रहती है उसे आत्मा सुन लेती है, समझ लेती है और कवि बिना तर्क के भंवर में फंसे उसे ज्यों-का-त्यों अंकित कर देता है।

यह 'वाद' अतिशय व्यक्तिवादी, संकीर्ण एवं अनीश्वरवादी भी है। व्यवस्था और क्रमबद्धता से इसका जन्मजात विरोध है, परंपरागत रूढ़ियों और मान्यताओं को खंड-खंड करने में ही यह अपनी सार्थकता मानता है। इसीलिए यथार्थवादी कविताओं और चित्रों को सर्वसाधारण समझ नहीं सकता। स्वच्छन्दतावादी कविता की कल्पना प्रियता इस वाद में भी आई और अधिकांश कला-कृतियों में कल्पना की उड़ान स्वच्छन्दतावाद से बहुत ऊँची हो गई है। इसकी आधार-शिला स्वतन्त्रता एवं प्रेम है। पाप-पुण्य की सीमारेखा से यह 'वाद' पूर्ण तथा मुक्त है। अतः इसका आग्रह है कि व्यक्ति की आदिम एवं मौलिक प्रवृत्तियों पर कोई प्रतिबंध न होना चाहिए। कानून बुराइयों को दबाने में असमर्थ साबित होता है किन्तु कुछ समय के उपरान्त बुराइयाँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं। प्रयोगवादी धारा के बहुत से कवियों की कविताओं के रूप-विधान तथा भाव चित्रण अति-यथार्थवाद से अत्यधिक प्रभावित हैं, जिसमें ग्रथित विचार एक दूसरे से असम्बद्ध हैं। जो रूप विधान स्वप्न का संबल लेकर कविता का शृंगार करेगा उसमें अस्पष्टता और दुरूहता आ जाना स्वाभाविक है। उन कल्पनाओं और रूप-विधानों के लिए जीवन का कोई ठोस आधार भी चाहिए। पाप-पुण्य की दीवाल तोड़ने के बहाने यदि कवि अति-यथार्थवाद के नाम पर उन्मुक्त यौनता अश्लीलता तथा नग्नता के गीत गाने लगेगा तो कविता वहीं मर जायगी और जीवन वहीं बिखर जायगा।

अरविंद का दर्शन तथा रूप विधान

योगी अरविंद ने भी मानवीय चेतना के विभिन्न कोठों की खोज की है, उन सब कोठों में पहुँचना मानव-शक्ति के बाहर की बात है। अतः उन भावनाओं को अंकित करने के लिए अमोघ स्वप्न-शक्ति अनिवार्य है। अति-यथार्थवादियों की पैठ चेतना के गहन अंतराल में नहीं हो पाती इसी कारण उनकी कृतियाँ उथली-उथली और रहस्यमयी रहती हैं।

अरविन्द का कथन है कि हमारे धर्म-नीति तथा साहित्य के अधिकांश ग्रन्थ अवचेतन मन से प्रेरित होकर ही लिखे जाते हैं जो यौन भावना से चालित होता है किन्तु भारत का प्राय साहित्य अवचेतन मन की क्रिया प्रक्रिया मानने को ये तैयार नहीं। कवि व्यवहार-जगत् में बहिर्मुखी होते हुए भाव-जगत् में अन्तर्मुखी रहता है। अपनी अनुभूतियों संवेदनाओं तथा राग विराग को वाणी देने के लिए उसके हृदय में एक व्याकुल छटपटाहट रहती है। भाव दशा में वह अपने व्यक्तित्व के किसी भी अंग की ओर झुक सकता है। "वह अंग सामान्य बहिर्मुख चेतना भी हो सकता है और वहाँ इसमें शरीर प्राण और मन-बुद्धि तथा आन्तर शरीर, आन्तर प्राण और आन्तर मन-बुद्धि भी हो सकते हैं। जिस चेतना स्तर में बैठकर कवि अपनी रचना करेगा, अपनी कृति में वह उसी का रस ओज और आनन्द भरेगा।"[1]

काव्य रचना के वे तीन मुख्य तत्त्व मानते हैं—प्राण-शक्ति प्रेरणा और वाक्रूप। वस्तुतः प्रेरणा मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर से ही मिलती है। और प्राणशक्ति उसे वाक्रूप में गमन-शक्ति प्रदान करती है और बाह्य-मन उसे अभिव्यक्त करता है। अरविंद की मान्यता है कि भावी कवियों की भाषा वेद-मंत्रों जैसी होगी। "कवि अनन्त की पूर्ण चेतना में बैठकर

---

१ देखिए : आलोचना अंक ६, अरविन्द का साहित्य दर्शन —डा० [illegible]

जन और जगत् की गतिविधियों को घनिष्ठ आन्तरिकता के सम्बन्ध से अनुभव करेगा उसे अभिव्यक्त करने के लिए उसकी भाषा में प्रत्यक्ष ही अनन्त की अभिव्यंजना-शक्ति होगी।"[१] भावी कवि की कल्पना सत्य के साक्षात दर्शन पर आधारित होगी। अरविन्द के दर्शन के प्रभाव से आधुनिक कविता यत्र-तत्र आध्यात्मिक चेतना की अनुवर्तिनी होती जा रही है और तदनुकूल कल्पनाएँ और रूप विधान तथा प्रतीक भी अपनी केंचुल बदल रहे हैं।

साधारणीकरण और रूप विधान

टी० एस० इलियट की मान्यता है कि प्रत्येक कवि अपने ही संवेगों से सोचना प्रारम्भ करता है।[२] किन्तु कविता लिखते समय कवि अपनी व्यक्तिगत आसक्तियों से निर्लिप्त हो अपने प्रतिपाद्य विषय को सामान्य लोक-भूमि पर पटक देता है। कालिदास तुलसी दांते शेक्सपियर आदि महान कवियों का व्यक्तित्व उनकी समस्त कृतियों में अभिव्याप्त हो गया है। कुछ आलोचकों का कहना है कि कवि का उद्देश्य सामान्य भावों की सृष्टि करना नहीं है यह आवश्यक नहीं कि कवि के मानस् में उठने वाले संवेग जनसाधारण को समान रूप से प्रभावित ही करें। यह बात साधारण कवियों के ऊपर घटित हो सकती है जो अपने व्यक्तिगत अनुभवों एवं संवेगों की परिधि में ही चक्कर काटते रहते हैं किन्तु साधारण प्रतिभाशाली कवि अपने व्यक्तित्व के निर्वैयक्तीकरण द्वारा अपने संवेगों का इस प्रकार उदात्तीकरण कर देता है कि जन-साधारण के संवेगों भावनाओं एवं अनुभूतियों को सहज ही आत्मसात कर लेता है साधारणीकरण कर देता है। दांते तथा शेक्सपियर दोनों को कठिन मानसिक संघर्ष तथा यातनाएँ भरनी पड़ी थीं किन्तु इन लोगों ने अपने व्यक्तिगत हर्ष और विषाद को व्यापक रूप देकर उन्हें देश-काल निरपेक्ष बना दिया है।[३] जहाँ तक सम्भव हो कवि की भाषा भाव कल्पना तथा रूप विधान अधिक से अधिक संश्लिष्ट हो। काव्य में प्रयुक्त विविध अलंकार तथा कल्पना चित्र युगानुकूल और सार्वजनीन होने से वह जन-जन का प्यार बटोर लेता है, क्योंकि कविता कवि की व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहकर सब की अपनी वस्तु बन जाती है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं जीवन के बहुमुखी दृष्टिकोणों के कारण हम आज वह नहीं रहे जो आज से सहस्र वर्ष पूर्व थे। मानव बर्बरता के आदिम युग से आज तक सभ्यता और अनुभवों की एक-एक सीढ़ी पार करता हुआ बहुत कुछ सभ्य हो चुका है और उसके अनुभव भी जीवन और जगत् को हर पहलुओं से देखने के कारण पर्याप्त मात्रा में पक चुके हैं। आदिम युग में यदि एक लंगोटी से काम चल सकता था तो राम-युग में धोती नुमा पीताम्बर धारण करना पड़ा (उस समय भी कटि के ऊपर का भाग प्रायः खुला ही रहता था)।

कालान्तर में हम पूरे शरीर को सिले हुए वस्त्रों से ढकने लगे। और आज उसी शरीर

---

१ वैदिक आलोचना भाग १ 'अरविंद का साहित्य दर्शन'—डा० रामसेन

२ Selected Essays P 137

३ John Ford Selected Essays' P 137

को सजाने के लिए हम विभिन्न उपादानों को चुनते हैं, तरह-तरह के कपड़े बनाते और शरीर को सजाते हैं। उसी प्रकार हमारी अनुभूतियों को भी शृंगार करके और उन अनुभूतियों को व्यक्त करने के विविध उपकरण या तो बदल गये या उनमें समुचित विकास हो गया है। हमारे राग-विराग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले विभिन्न उपादान बदल गए। आज कवियों के सामने एक विशाल क्षेत्र बिखरा पड़ा है जहाँ से वे अपनी कविता की सामग्री का चयन करते हैं तथा कल्पना और रूप-विधान के सहारे अपनी अनुभूतियों को रूप देते हैं। ऐसा करने में कविता को प्राचीन साधारणीकरण के नियम और सीमा से उन्हें कभी-कभी बाहर भी जाना पड़ता है। तात्पर्य यह कि आज की कविता का साधारणीकरण प्राचीन युग से विस्तृत और भिन्न है। इस भिन्नता और विस्तार में कभी-कभी साधारणीकरण असाधारण सा लगने लगता है, वहाँ पहुँच कर आज का कवि यह कहने लगता है कि आवश्यक नहीं कि अमुक किसान मजदूर तथा शिक्षित प्राध्यापक सब समान रूप से हमारी कविता का रसास्वादन करें। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक दार्शनिक और कवि के कथ्य तथा तथ्य में अन्तर होता है उसी प्रकार उनके साधारणीकरण के नियम में भी।

वस्तुतः शब्द घिसते घिसते अपना रागात्मक आकर्षण भी खो बैठते हैं अर्थ की प्रतीति उन शब्दों से उस रूप में नहीं होती जैसा कवि चाहता है अतः कवि नये उन अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिनसे पुनः राग का संचार हो पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो। साधारणीकरण का यही अर्थ है।'[1] इसीलिए आज का कवि यह समझकर कविता लिखता है कि यदि मेरी कविता को एक भी व्यक्ति समझ लेता है तो भी मेरा श्रम सार्थक है। अज्ञेय के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कल का सत्य कल सब समझते थे आज का सत्य अगर आज सब एक साथ नहीं समझते तो हम उसे छोड़कर कल ही का सत्य कहें—'[2] किन्तु कल के उस सत्य की न कोई आवश्यकता है न अनिवार्यता अतः उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर साधारणीकरण करने से कविता जहाँ से चली थी फिर वहीं पहुँच जायगी उसके गुणानुकूल विकास के सारे मार्ग अवरुद्ध हो जायेंगे।

आचार्य शुक्लजी के कथनानुसार जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है।'[3] इस प्रकार शुक्ल जी ने आलम्बन के साधारणीकरण को साधारणीकरण माना है। क्रोचे की भी यही मान्यता है कि काव्य के रसास्वादन में कवि तथा पाठक दोनों में अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और अन्त में दोनों एक ही हो जाते हैं। अभिनव गुप्त ने भी कवि एवं प्रमाता दोनों के अनुभवों के साधारणीकरण का निरूपण किया है। कवि जिस सौन्दर्य अथवा सत्य की अनुभूति व्यक्ति के रूप में करता है वह मानव प्रतिनिधि के रूप में दूसरों तक पहुँचाना चाहता है। वह मानव 'व्यक्ति' की इकाई को विश्व की पूर्ण इकाई

---

१. मिलाइये 'दूसरा सप्तक भूमिका' पृ० ११
२. " " पृ० ११
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'चिन्तामणि' भाग १, पृ० १०८

में मिला देना चाहता है। जिस सत्य को जिस सौन्दर्य तथा भाव को एक कृपण की तरह कवि अपने मानस में संकलित करता है उसे दानी हरिश्चन्द्र की भाँति विश्व को बाँटने में संकोच नहीं करता। इस प्रकार कवि अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को साधारणीकरण के माध्यम से विश्व के काव्य-प्रेमियों को बाँट देता है तभी उसे पूर्ण संतोष मिलता है। यह बाँटने की क्रिया सहज हो सकती है किन्तु लेने की क्रिया उतनी सहज संभाव्य नहीं है। जब तक कवि की कृति का साधारणीकरण नहीं होगा विश्व उसे लेने से इनकार कर देगा। इसलिए किसी भाव या दृश्य का मूर्तिकरण करने के लिए साधारणीकरण एक अनिवार्य तत्व है। किन्तु साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि सभी के हृदयों में समान अनुभूति जाग सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है।[1] साधारणीकरण का यह अभिप्राय नहीं है कि आश्रय के साथ पाठक या प्रेक्षक सर्वत्र तादात्म्य स्थापित कर ले। प्रेम के मधुर प्रसंगों में तो यह बात संभव मानी जा सकती है किन्तु अप्रिय प्रसंगों में उसकी संभावना नहीं हो सकती।

वर्गीकरण और व्यावहारिक विश्लेषण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसात्मक-बोध के अन्तर्गत मन की भीतरी प्रक्रियाओं के आधार पर रूप-विधान की दो कोटियाँ निश्चित की हैं। एक को इसलिए कि वह प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का हू-ब-हू चित्र होता है और उसकी रूप प्रतीति बहुत कुछ स्मरण-क्रिया पर अवलंबित होती है स्मृत रूप-विधान कहा है और दूसरी को इसलिए कि वह प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं के रूप रंग गति आदि के आधार पर खड़ा हुआ एक सर्वथा नवीन चित्र होता है संभावित या कल्पित रूप-विधान कहा है। प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं के रूप रंग, और गति के आधार पर नयी रूप-योजना एक विशिष्ट काव्य-प्रक्रिया है जिसमें विशेषतः कल्पना सहायक होती है। देखी हुई वस्तुओं के रूप रंग और गति के आधार पर एक नया वस्तु-व्यापार-विधान कल्पना की प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने ऐसे रूपों को कल्पित रूप विधानों के अन्तर्गत माना है। किन्तु, इस स्मृत रूप-विधान और कल्पित रूप-विधान के मूल में भी प्रत्यक्ष अनुभव किये हुए बाहरी रूप विधान हैं। इस आधार [प]र उन्होंने रूप-विधान तीन प्रकार के माने हैं

१—प्रत्यक्ष रूप-विधान

२—स्मृत रूप विधान

३—संभावित या कल्पित रूप-विधान

काव्य का संबंध इस तृतीय अर्थात् संभावित कल्पित रूप-विधान से है। इस कल्पित रूप विधान की भी दो कोटियाँ हैं (१) प्रस्तुत रूप-विधान और (२) अप्रस्तुत रूप विधान। प्रस्तुत रूप-विधान से विभाव अनुभाव संचारी आदि संबद्ध हैं। अप्रस्तुत रूप विधानों से प्रमुखतः अलंकार संबद्ध हैं। काव्य की कलात्मकता में काव्य-भाषा की चित्रात्मकता में विभिन्न रूपों में ये अलंकार ही सहायक होते हैं ये अलंकार ही कथा के मनोमय

[1] डा० नगेन्द्र, 'रीतिकाव्य की भूमिका' पृ० ५

जगत् में कल्पना को अपनी अभिव्यक्ति पाने में योग देते हैं। नूतन उपमा-छवियों का सजीव अंकन, नये-नये भावों का उन्मेष इसी क्षेत्र में इन्हीं अलंकारों के योग से होता है। यहीं कल्पना रूप पाकर सँवरती है, भाषा शृंगार करती है, भाव आकार पाते हैं और इस तरह उस मनोमय जगत् की रसस्थिति का निर्माण होता है जिसमें भावक-मन को पहुँचाना कविता का लक्ष्य होता है।

प्रस्तुत रूप विधान और अप्रस्तुत रूप-विधान की उपयोगिता निम्नलिखित उद्धरणों और उनके विश्लेषण से स्पष्ट हो जाती है

१—(क) पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश
पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार,
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल।

—पल्लव पंत

(ख) तीस कोटि सन्तान नग्न तन
अर्ध क्षुधित, शोषित निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य अशिक्षित निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी
भारत माता
ग्राम-वासिनी।

—ग्राम्या, पंत

२—(क) दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे धीरे।

—परिमल निराला

(ख) इस करुणा कलित हृदय में
क्यों विकल रागिनी बजती,
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।

—आँसू प्रसाद

प्रस्तुत उदाहरणों में से १ 'क' और 'ख' विशुद्ध प्रस्तुत रूप-विधान की कोटि में न आने पर भी प्रस्तुत के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, जबकि २ 'क' और 'ख' विशुद्ध अप्रस्तुत

रूप विधान की कोटि में आते हैं। अब देखना यह है कि काव्योत्कर्ष में इनका अलग-अलग क्या योग है।

१—(क) पावस ऋतु में पर्वत प्रदेश के सौन्दर्य को रूप की रेखाओं में बाँधने का प्रयास किया गया है। इन पंक्तियों से दूर तक फैले हुए महाकार पर्वत का बोध सहज ही हो जाता है। नीचे स्वच्छ जल वाले ताल की स्थिति का भी बोध होता है। दूसरी ओर पर्वत का अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़कर अपने रूप को बार-बार देखने में मानवीय व्यापार की संस्थिति है, फिर ताल के जल की स्वच्छता और चमक को मूर्त करने के निमित्त 'दर्पण' को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ गुण-साम्य से (दर्पण चम-चम चमकता है और स्वच्छ ताल चमचमाता है।) ताल की स्वच्छता का और स्पष्ट बोध होता है। फिर भी ये वस्तुएं बहुत स्थूल हैं, पहले ही से सामने हैं, अति साधारण हैं। यहाँ मानवीकरण और 'गुण-साम्य' का प्रयोग किसी विशेष चमत्कार के निमित्त नहीं है। इसलिए चित्र के स्वाभाविक रूप से सुन्दर और साफ होने पर भी वह काव्यात्मक चमत्कार नहीं आ पाया है जो किसी अप्रस्तुत के विधान में सम्भव था।

इसी प्रकार 'ख' में निम रात आँखों के सामने रहने वाली वस्तुओं के आधार पर 'भारत माता' के दीन-दुखी रूप को प्रस्तुत किया गया है। विदेशी सत्ता के दमन और शोषण की चक्की के नीचे दम तोड़ रहे भारत की निर्मम और असहाय स्थिति सामने हो जाती है। पर, इसलिए कि यहाँ कोई अप्रस्तुत चित्र न आकर प्रस्तुत चित्र ही है, काव्यात्मक चमत्कार आने से रह गया है। भारत के प्रति करुणा और हमदर्दी तो उत्पन्न होती है पर इस चित्र से काव्यात्मक आनन्द वाली स्थिति नहीं आती।

किन्तु इसके ठीक विपरीत २ 'क' और 'ख' में यह बात नहीं रह गई है। 'क' में 'संध्या-सुन्दरी' का वर्णन है। सहज मानवीय व्यापारों के आरोपण से कवि संध्या को एक सजीव सुन्दरी का रूप देने में सफल हुआ है। मेघमय आसमान से संध्या के उतरने में एक विशेष चमत्कार है। 'उतरने' मात्र से पूरा चित्र सामने आ जाता है। उस पर 'परी' का योग रूप-आकर्षण में चार-चाँद लगाता है। परियों के अतीव सुन्दरी और मोहक होने की बात हम बार-बार सुनते रहे हैं। 'परी' के जिक्र से ही संवेदन के विषय में मस्तिष्क सचेत होकर कुछ सोचने लग जाता है और 'परी' पर आधारित रूप और रंग की कल्पना रेखाओं में 'संध्या' का सप्राण चित्र उतर आता है। उसके बाद 'धीरे-धीरे उतरने' के व्यापार में 'संध्या' के अपनी सहज रूप-गरिमा और आकर्षण में पास आने के सहज बोध से एक अपूर्व आनन्द और रस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। 'संध्या सुन्दरी' कल्पना की आँखों और भाव के मन में बसी कोई परिचित सुन्दरी बन जाती है। ठीक ऐसे ही 'ख' है। पर यह विशेषतः भाव-जगत् का चित्र है। कवि अपनी वेदना की तीव्रता को व्यक्त करना चाहता है। उस स्वर के हाहाकार विशेषण से भी सतोष नहीं हुआ। हृदय में वेदना उठती नहीं गरजती है। 'वेदना का गरजना' एक मूर्त योजना है। चित्र प्रस्तुत करता है। गरजने से हम भलीभाँति परिचित हैं। जोरों से वेदना उठ रही है या बहुत अधिक वेदना होती है इसमें हमारे मन में कोई मूर्त भावना नहीं उठती है, कोई चित्र खड़ा नहीं होता। पर 'गरजना' कहने से हम भलीभाँति हृदयंगम कर लेते हैं। इससे टीस और वेदना का भाव हमारे हृदय में अक्क

उठता है। कवि की वेदना के उठने की बात तो आती ही नहीं, सरसता के बल पर कहने, बोलने, चिल्लाने की बात से भी उसे अरुचि है। वह 'गरजन' की बात कहकर उसकी आन्तरिक गंभीरता और अभिव्यक्ता का हमें अनुभव कराता है। गरजन की प्रभविष्णुता से वह ऐसा मूर्त बिम्ब उपस्थित करता है कि संवेदनशील हृदय तड़प उठता है। दो के ये दोनों उदाहरण क्रमशः कल्पना-बिम्ब और भाव-बिम्ब के योग से भावक-पक्ष को रसानुभव कराने के उदाहरण हैं।

अप्रस्तुत रूप विधान की भी वस्तुपक्ष और कलापक्ष के आधार पर विभिन्न कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। यहाँ वस्तुपक्ष से अभिप्राय उस वस्तु से है जिस पर मूर्त्त बिम्ब आधारित रहता है। विविध वस्तुएँ विविध स्थितियों में विविध रूपों का आधार बन सकती हैं। जैसे १ और २ के 'क' उदाहरणों में विभिन्न रूपों के आधार रूप में क्रमशः पवन और संध्या-सुन्दरी हैं। ये दोनों ही उपकरण प्रकृति से लिये गये हैं। उक्त रूप विधान प्राकृतिक उपकरणों पर आधारित हैं, इसलिए हम इन्हें प्राकृतिक या प्रकृति पर आधारित रूप-विधान कह सकते हैं। ऐसे ही इन प्राकृतिक उपकरणों की जगह पर अगर कोई सांस्कृतिक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक या इसी तरह के 'विवरण-पत्र' में दिखाये गये अन्य प्रकार के उपकरण होते, तो इन रूप-विधानों की कोटि भी उन्हीं उपकरणों के आधार पर निर्धारित की जाती और वे सांस्कृतिक पौराणिक ऐतिहासिक सामाजिक आदि रूप विधान की संज्ञा पाते। जैसे, १ के (ख) में चित्रित रूप भारत-माता का है और निश्चित रूप से इस पर तत्कालीन भारत का सामयिक प्रभाव है। यहाँ भारत-भूमि प्रकृति-रूप में सामने नहीं आती राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से तब के पराधीन और उत्पीड़ित भारत का चित्र सम्मुख प्रस्तुत होता है। रूप के मूल में सामयिक प्रश्न और परिस्थितियाँ ही हैं। इस दृष्टि से इस रूप विधान को प्राकृतिक न कहकर सामयिक और इसमें भी राजनीतिक रूप-विधान कहेंगे क्योंकि प्रभाव प्रमुखतः समसामयिक राजनीति का है। वस्तुपक्ष से रूप विधान के कोटि-निर्धारण का यही अभिप्राय है। इसके उपरान्त कलापक्ष की बात आती है। हमने कलापक्ष के आधार पर रूप विधान का कोटि-निर्धारण नहीं किया है। कारण, कलापक्ष से अभिप्राय यहाँ मात्र इस बात का विश्लेषण करना है कि रूप-विधान में कोई क्रिया, विशेष्य-विशेषण, या अलंकार भिन्न-भिन्न रूपों में अपना योग देते हैं। रूप-विधान में इनके योग-दान के अनेक विध हैं। इस दृष्टि से इनके आधार पर रूप विधानों का कोटि-निर्धारण हमने नहीं किया है। हमने इन्हें रूप-विधान की निर्माण प्रक्रिया के दायरे में ही सीमित रखा है। अपितु रूप-विधान को दिखाने की हमारी पद्धति यह होगी कि पहले हम वस्तुपक्ष के आधार पर उनका नामकरण करेंगे फिर कलापक्ष की दृष्टि से उसकी निर्माण प्रक्रिया को दिखायेंगे जिसमें इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास होगा कि अमुक रूप-विधान में किस प्रकार कोई शब्द या अलंकार ऐसा कोई विशेष चमत्कार ला देता है जिससे उसका चित्र स्पष्ट हो जाता है। जैसे उपर्युक्त १ के 'क' में संध्या सुन्दरी के चित्र को स्पष्ट और जीवंत बनाने में 'धीरे-धीरे उतरना' और 'परी-सी' ये शब्द सहायक हुए हैं। 'उतरना' क्रिया रूप में और 'परी-सी'—उपमान रूप में आकर संध्या-सुन्दरी को स्वाभाविक रूप और गति प्रदान करते हैं। इसी प्रकार १ के 'ख' में असीम वेदना की तीव्रता दिखलाने के प्रयोजन से उसका सम्बन्ध 'गरजने' से स्थापित

कर उसे मूर्त रूप दिया गया है। वस्तुपक्ष की दृष्टि से रूप-विधान के कोटि-निर्धारण और कलापक्ष की दृष्टि से रूप-विधान की निर्माण प्रक्रिया का अभिप्राय यही है। हमारा आगे का प्रयास विभिन्न-कोटि के रूप विधानों के उद्धरणों को प्रस्तुत करने के साथ ही निर्माण प्रक्रिया की दृष्टि से भी उनकी अन्तरंग व्याख्या करने और विभिन्न प्रक्रियाओं और रूप विधान में उनकी उपयोगिता की ओर संकेत करते हुए चलने का रहेगा।

इसके पूर्व कि रूप-विधानों का उपरोक्त पद्धति पर विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वस्तुपक्ष की दृष्टि से निर्धारित उसकी विविध कोटियों का क्रम से उल्लेख कर दिया जाय और तत्पश्चात् उसके निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं और उन प्रक्रियाओं के सहायक उपकरणों को गिना दिया जाय। संलग्न विवरण-पत्र को समझने के लिए भी इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है।

वस्तुपक्ष की दृष्टि से रूप विधान (प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों) के निर्माण में जो उपकरण सहायक होते हैं उनकी कोटियाँ सुविधा की दृष्टि से निम्न प्रकार से दिखायी जा सकती है।

प्रथमतः समस्त रूप-विधानों को वस्तु की दृष्टि से तीन कोटियों में विभक्त किया गया है (१) परंपरित (२) सामयिक और (३) नव्य। फिर परंपरित रूप-विधानों को चार कोटियों में विभक्त किया गया है (१) सांस्कृतिक (२) पौराणिक (३) ऐतिहासिक और (४) प्राकृतिक। ऐसे ही सामयिक रूप-विधानों को भी (१) राजनीतिक, (२) आर्थिक और सामाजिक वर्गों में विभक्त किया गया है। और नव्य रूप विधान में पृथक्-पृथक् व्यावसायिक दैनंदिन वैज्ञानिक भावात्मक और गुणात्मक कोटियाँ निर्धारित की गयी हैं। तदनन्तर, उक्त कोटियों में भी उपकोटियाँ निर्धारित की गयी हैं जिन्हें आगे क्रम से सोदाहरण समझाने का प्रयास किया गया है।

परंपरित में प्रथमतः सांस्कृतिक रूप-विधान आते हैं। इसके उपकरण तीन वर्गों में प्राप्य है (१) मानवी रूप जिसमें पुरुष और नारी दोनों ही रूप मिलते हैं। ऐसे नारी रूप की प्रधानता है। (२) गुण-रूप इसका अभिप्राय उन सांस्कृतिक उपकरणों से है जो अब हमारे बीच एक विशिष्ट भावना या संस्कार के रूप में अवशिष्ट हैं। (३) शास्त्रीय उपकरण वाद्य-संगीत नृत्य मंत्र आदि से सम्बन्धित हैं। फिर, पौराणिक और ऐतिहासिक उपकरण आते हैं जो क्रमशः पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं या घटना-सत्रों से सम्बन्धित हैं। इसके बाद प्राकृतिक उपकरणों पर आधारित रूप-विधान हैं। इनका क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से अपेक्षाकृत विस्तृत है। सुविधा के लिए इन्हें भी तीन कोटियों में किया गया है। प्रथम कोटि में चाँद, तारा नदी सागर, पर्वत लहर, हवा शाम उषा रात दिन धरती आकाश, आँधी पानी आग बिजली इन्द्रधनुष इत्यादि हैं। द्वितीय कोटि में पशु-पक्षी और कीट-पतंग आते हैं। तृतीय कोटि में विशुद्ध मानवीकरण के आधार पर खड़े प्राकृतिक चित्र दिये गये हैं।

परंपरित रूप-विधानों के बाद सामयिक रूप-विधानों को लिया गया है। ऐसे इन्हें भी नव्य-रूप विधान के अन्तर्गत ही रखा जा सकता था क्योंकि बहुत से ऐसे सामयिक उपकरण मिलते हैं जो नव्य-रूप-विधान के अन्तर्गत दिये गये उपकरणों से भिन्न नहीं लगते।

फिर भी सामयिक रूप-विधान की कोटि अन्य ही निर्धारित की गयी है। कारण, 'सामयिक' शब्द के व्यापक क्षेत्र को दृष्टि में रखा गया है और आज के ही नहीं किसी समय के सामयिक उपकरणों को—जो आज के लिए पुराने पड़ गये हैं—भी लिया गया है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक—तीनों ही प्रकार के प्रश्न और परिस्थितियाँ आती हैं। सामाजिक उपकरण दो रूपों में मिलते हैं—एक वे जो जनगत संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं—और दूसरे वे जो विशेष आचरण के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

सम्भव-रूप विधान के अन्तर्गत प्रायः व्यावसायिक उपकरण लिये गये हैं। इनके प्रमुखतः तीन क्षेत्र हैं (क) कृषि-क्षेत्र (ख) कल-कारखाना और (ग) विभिन्न व्यवसाय तथा अन्य क्षेत्र। इसके बाद दैनन्दिन क्षेत्र है। घर और बाहर के विभिन्न कार्यों से सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। फिर वैज्ञानिक रूप-विधान के अन्तर्गत अनन्त वैज्ञानिक उपकरण आते हैं। यह दूसरी बात है कि इन अनन्त उपकरणों को हमारे कवि अब तक सफल काव्य का उपकरण नहीं बना सके हैं जिसका सरसता से उपमान-रूप में व्यवहार हो सकता था उन सबको भी नहीं। भावात्मक रूप-विधान की ओर प्रायः सभी कवियों की प्रवृत्ति दौड़ती मिलती है। कवि के अन्तर्जगत् की कतिपय सूक्ष्म-स्तर भावनाओं और कल्पनाओं की व्यंजना के लिए यह क्षेत्र बहुत ही अनुकूल प्रमाणित हुआ है। इसके अन्तर्गत प्रेम और तत्संबंधी अन्य व्यापारों की व्यंजना मिलती है। प्रमुखतः कुछ रूप-विधान (क) विरह, मिलन, सुख-दुःख, आशा-निराशा और उत्कंठा आदि की विभिन्न स्थितियों पर आधारित हैं तो कुछ (ख) कतिपय मनोवैज्ञानिक तथ्यों जैसे लज्जा, मुसकराहट, ऐंठन आदि पर तो कुछ (ग) रति क्रियाओं पर। रति-क्रिया या चेष्टा पर आधारित चित्र श्लील और अश्लील दोनों ही रूपों में मिलते हैं।

भावात्मक रूप-विधानों के समान ही गुणात्मक रूप-विधानों का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। इन्हें Sense imagery के रूप में आधुनिक कविता में पर्याप्त मात्रा में खोजा जा सकता है। स्वयं मैंने पंत-प्रसाद के काव्य में विविध-रूप विधानों की योजना का अध्ययन प्रस्तुत करने के क्रम में Sense imagery पर एक अलग अध्याय ही दे दिया है जो आलोच्य कवि और संबंधित आलोचक की सूक्ष्म-दृष्टि और सूक्ष्म काव्य भावना का परिचायक है। किन्तु, हमारे आधुनिक काव्य में ये गुणात्मक रूप-विधान बहुत खोजने पर मुश्किल से कहीं-कहीं मिल जाते हैं। इसका कारण सामान्य कवियों की स्थूल के प्रति अत्यधिक आस्था और आस्था के अतिरिक्त और कुछ समझ में नहीं आता। गुणात्मक रूप विधान के क्षेत्र में विभिन्न इन्द्रियों के धर्म-स्वरूप भिन्न-भिन्न आधार हैं। त्वचा का धर्म स्पर्श है, ऐसे ही नेत्र, नासिका, जिह्वा और कर्ण का धर्म भी क्रमशः रंग, गंध, स्वाद और श्रवण है। इन सबके उपकरणों से भी चित्रों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ स्पर्श-गुण को आधार बनाकर किसी मसृण चित्र का निर्माण करना हो तो किसी सुकुमार अंग के कोमल में आने का चित्र किसी फूल के स्पर्श में भर पाने के सुख को अनुभव कर प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसे स्पर्शानुभूति का आधार चित्र ग्रहण कराने की प्रक्रिया में पर्याप्त सहायता मिलती है। ऐसे ही अन्य धर्मों से रूप विधान में सहायता ली जा सकती है। अन्त में मन की चर्चा भी अपेक्षित है। इसकी स्थिति अन्य इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न और ऊपर है। इसकी क्रियाएँ प्रमुखतः स्मृति और अनुभूति के रूप में प्रकट

होती है जो क्रमशः कल्पना और भाव के क्षेत्र हैं।

कलापक्ष की दृष्टि से रूप-विधान की विविध निर्माण-प्रक्रियाओं का विश्लेषण निम्न आधारों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

(१) एक शब्द से :—शब्द प्रमुखतः (क) विशेष्य (ख) विशेषण और (ग) क्रिया रूप में आकर रूप-विधान में अपना योग देते हैं।

(२) अलंकार :—ये प्रमुखतः भावोत्कर्ष में सहायक होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि भावोत्कर्ष के साथ ही रूप भी स्पष्ट होते जाते है या ये अलंकार रूप की रेखाओं को ही पहले गाढ़ी कर तत्पश्चात् उस पर अवलंबित भावों का उत्कर्ष करते हैं। अलंकारों के विविध कार्य होते हैं और वे कार्य अपनी विविधता में अलग-अलग विविध रूपों के निर्माण में सहायक होते हैं। जैसे वे वस्तुओं के (क) रूपानुभव (ख)गुणानुभव और (ग) क्रियानुभव के सहारे उनके विविध चित्र प्रस्तुत कर सकते है। यहाँ प्रमुख रूप से रूपक उपमा और व्यतिरेक आदि सहायक होते हैं।

(३) वस्तु व्यापार और गुण सादृश्य —इन आधारों पर भी रूपों का विधान होता है। इस क्षेत्र में विशेषकर (क) प्रभाव-साम्य (ख) व्यापार-साम्य और (ग) गुण-साम्य का आधार लिया जाता है। इसके अतिरिक्त 'नाद-व्यंजकता' का आधार लेकर भी रूप का विधान करते हैं फिर, कुछ ऐसे नव-निर्माण स्वरूप शब्द होते हैं जिनके प्रयोग से किसी विशेष अर्थ और रूप की प्रतिष्ठा हो जाती है। जैसे—निझरी आँसू, धरती के बालक आदि के प्रयोग बहुत ही सुन्दर, और स्वाभाविक हैं तथा एक विशेष व्यंजना-संपन्न हैं। ऐसे शब्दों के सफल प्रयोग की स्थिति में इनकी व्यंजकता और चित्रात्मकता रूप-विधान और भावोत्कर्ष में बहुत सहायक होती है।

(४) चित्र भाषा-शैली के माध्यम से —यह काव्य-कला की विशेष संपत्ति है। इसमें शब्द रेखा और वस्तु आदि की योजना और संकेत अमूर्त मधि आदि के योग से काव्य में एक विशेष चमत्कार लाया जाता है इस कार्य में लक्षणा का प्रमुख योग है। लक्षणा की यहाँ प्रमुखतः दो स्थितियाँ हैं (क) विविध रूप—जैसे क्रिया विशेष्य-विशेषण वाक्य और प्रकार आदि की ओर (ख) अलंकार की इसमें प्रतीक मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय आदि का योग होता है। कलापक्ष की दृष्टि से इसका क्षेत्र विशेषकर छायावादी युग में बहुत विस्तृत है।

वस्तुपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से रूप-विधान के वर्गीकरण और निर्माण-प्रक्रिया के व्यावहारिक विश्लेषण को और स्पष्ट और सुबोध करने के लिए नीचे विभिन्न वर्गों से कुछ उदाहरण देकर यथासंभव सभी निर्माण-प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। एक ही स्थल पर उन सबको बटोर कर रख देना तो बहुत मुश्किल कार्य है। फिर भी उसके अन्यत्र बिखरे हुए उपकरणों का उपकथन स्यात् कोई निश्चित परिधि रेखा अंकित करने में समर्थ हो।

पारम्परिक रूप-विधान

सांस्कृतिक

नारी-रूप

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये

—आँसू : प्रसाद

यहाँ सुन्दरी के शशिमुख पर घूँघट डालकर अंचल में दीप छिपाये सामने आने में किसी कुल-सुन्दरी का रूप आँखों के सामने उभर आता है। मुख पर झीना-झीना घूँघट है जिसके अन्दर से चाँद के झाँकने की बात सौन्दर्योन्मेष में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त अंचल में दीप की कल्पना उस भावना को उद्दीप्त करती है जिसमें जीवन का कोई एक क्षण ज्योतिपूर्ण हो जाता है। 'घूँघट' और 'अंचल में दीप' ये दोनों ही हमारी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा के उपमान भी हैं। 'अंचल का दीप' इस बात का भी प्रतीक है कि नारी के अंचल—प्यार—में आलोक रहता है। इन चार पंक्तियों में रूपक और उपमा मिलकर पूरे चित्र को सजीव कर देते हैं और साथ ही प्रतीकात्मक अर्थ भी दे जाते हैं। प्रतीकात्मक अर्थ—यह कि शशिमुख आवरणयुक्त सौन्दर्य का प्रतीक है और 'कौतूहल' शब्द (अरमानों) की [illegible] और [illegible] का प्रतीक।

पुरुष-रूप

(क) अरी वरुणा की शान्त कछार।
तपस्वी के विराग की प्यार।
सतत व्याकुलता के विश्राम
अरे ऋषियों के कानन कुञ्ज।
जगत नश्वरता के लघु त्राण
लता-पादप-सुमनों के पुञ्ज।

—प्रसाद

(ख) [illegible] इन [illegible] करोड़ों में
आँखों में सजल सी [illegible]।
[illegible] सपनों की [illegible]
मन का [illegible] बनकर [illegible]।

—[illegible]

(ग) वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
दलित भारत की ही विधवा है। —निराला : विधवा

(क) में व्यंग्य व्यंजक के रूप में आये हुए उपकरण—सारनाथ की पवित्रता तपोभूमि की योग्यता एकान्तता और शांति आदि सांस्कृतिक संस्कार गुण-रूप में हैं। (ख) में आये हुए उपकरण—आँखों में अंजन और कुंचित अलकें आदि भारतीय रहन-सहन और वेश भूषा से चुने गये हैं। (ग) में जो क्रमशः पलकों के झुक जाने से सौन्दर्य में हुई वृद्धि और लज्जा के आविर्भाव पर मन में उत्पन्न मरोर के व्यंजक हैं। ऐसे ही (ग) में इष्टदेव के मन्दिर की पूजा दीप-शिखा क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा आदि मूर्त उपमान भी सांस्कृतिक चित्रण स्वरूप हैं जो क्रमशः पवित्रता निर्विघ्न शांति और उत्पीड़ित तथा तन-मन से टूटी हुई भारतीय विधवा की मार्मिक स्थिति के परिचायक हैं प्रथम दो गुण रूप में प्रतिष्ठित हैं। कवि ने अपने काव्य की सीधी और सशक्त अभिव्यक्ति के लिए इन गुण (विशेषण) रूप उपकरणों को उस सांस्कृतिक वृत्त से चुना है जिसमें वह पला हुआ है।

(यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि भारतीय विधवा पर आधारित इस रूप विधान को साम मिक (सामाजिक) रूप विधान की कोटि में क्यों नहीं रखा गया। सामयिक रूप विधान की कोटि में इसका रखा जाना ठीक होगा यदि हम सामयिक प्रभाव और समाज के सांस और रूढ़ि ग्रस्त कायदे-कानून को ही सम्मुख रखें। पर यहाँ हमने अपने तथ्य का आधार स्वयं विधवा को न बनाकर प्रस्तुत रेखाओं में व्यक्त उसकी स्थिति और गुण व्यंजक उन तत्वों को बनाया है जो या तो भारतीय समाज की परम्परा से चली आती हुई कतिपय रूढ़ियों में फल हैं या अब विशिष्ट भावना या संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।)

पौराणिक

पौराणिक कहानियों और तथ्यों पर जो रूप-विधान आधारित होंगे उन्हें पौराणिक कहेंगे। उदाहरणार्थ

कौंधता है धर्म की तलवार बनकर
पत्थरों के पेट से नरसिंह के अवतार।
कांपती है वज्र की दीवार।

—नीम कुसुम दिनकर, पृष्ठ ७०

हिरण्यकश्यप के अत्याचार से प्रह्लाद के रक्षार्थ पत्थर के खंभे को फाड़कर नृसिंह भगवान् का प्रकट होना एक पौराणिक कथा के रूप में प्रचलित है।

दूसरा उदाहरण लीजिये

और नव-कृषि-सभ्यता का राम बनकर रम रहा था
कारवाँ यायावरों का बस रहा था जम रहा था
झोंपड़ों में ज्योति जीवन का प्रदीप जला गयी थी।
धरा की बेटी मनुज की ब्याहता बन आ गयी थी।

—विश्वास बढ़ता ही गया सुमन पृष्ठ ८९

यहाँ राम और जानकी (धरा की बेटी) में सन्निहित पौराणिक तथ्यों का आधार लेकर कवि ने नव-कृषि-सभ्यता के विकास और प्रसार को रूपकों के माध्यम से मूर्त रूप दिया है। वनवास काल में जिस तरह राम जगह-जगह रम रहे थे उसी तरह कृषि-सभ्यता

भी अपने प्रारम्भिक चरण में जगह-जगह विकास पा रही थी। घर में दीप जलाने के लिए गृहिणी होनी चाहिए। मनुष्य अपने पराक्रम से सब कुछ जुटा सकता है किन्तु घर में दीपक नहीं जला सकता। इसके लिए उसे 'धरा' की बेटी (सम्पत्ति और रोशनी) का वरण करना पड़ता है। मतलब स्पष्ट है। मनुष्य ने अपने पराक्रम से धरती के गर्भ से संपत्ति प्राप्त की, उस संपत्ति प्राप्ति के फलस्वरूप उसके जीवन में आनन्द और प्रकाश का आविर्भाव हुआ। 'राम' और धरा की बेटी और ज्योति आदि प्रस्तुत उपकरणों में कृषि-सम्पदा सम्पत्ति और रोशनी आदि अप्रस्तुतों की योजना है। साथ ही रूप-निर्माण स्वरूप शब्दों—'जीवन का प्रदीप' का प्रयोग जीवन के आनन्द उल्लास और प्रकाश के अर्थ में हुआ है। ज्योति के 'जीवन का प्रदीप' जगाने में मानवीय व्यापार की व्यंजना है।

प्राकृतिक रूप-विधान

इसका विस्तृत विश्लेषण पद के प्राकृतिक रूप-विधान के अन्तर्गत देखिये।

सामयिक रूप विधान

राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक—इन तीनों ही क्षेत्रों से उत्पन्न समसामयिक प्रश्नों और संस्कारों पर आधारित रूप-विधानों के उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं

राजनीतिक

विजित देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली पराधीन भारत की जलती हुई कहानी
मरे हुओं की ग्लानि जीवितों को रण की ललकार,
दिल्ली वीर विहीन देश की गिरी हुई तलवार।

—दिल्ली और मास्को दिनकर

अप्रस्तुत है। रेखांकित पंक्तियों में उभरे हुए रूपों के अन्तर्गत का विश्लेषण कर दिया है। दिल्ली को जो प्रस्तुत वस्तु-रूप है—पाँच भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। (क) वह विजित देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी है (ख) पराधीन भारत की जलती हुई कहानी है (ग) जो स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर कुर्बान हो गए हैं उनके मन की ग्लानि है (घ) जो जीवित बचे हैं उनके लिए रण में उतर पड़ने की ललकार है और (ङ) वीरों से शून्य देश के हाथ से गिरी हुई तलवार है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ रूप-विधान में अप्रस्तुत योजना प्रस्तुत वस्तु के साथ साम्य में सार्थक हुई है।

आर्थिक

विवश देखती माँ अंचल से नन्हीं जान तड़प उड़ जाती
अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती।
कब्र-कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है,
"दूध-दूध" की कदम-कदम पर सारी रात रुदन होती है।
"दूध दूध" ओ वत्स! मन्दिरों में बहरे पाषाण यहाँ हैं
"दूध-दूध!" तारे, बोलो, इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं?

—हुंकार दिनकर, पृष्ठ १२

मानवीकरण की योजना द्रष्टव्य है।

(ख) कल-कारखाना और अन्य मशीनों से संबंधित उपकरण

(१) अब उठा दूर साइरन निर्मम
हुंकार उठा ज्यों काल-पुरुष
घुस गई ज्योति काली-काजल
सहसा डंक से ज्यों, हत-कलुष
जैसे सिंदूर जगमग विधवा के
सिर से घुलता क्षण-क्षण
मुँह बाये तम बरसा बेसुध
रे घुमड़ा हँस-हँस महाकाय।

—पिघलते पत्थर—ब्लैक आउट   रांगेय राघव

चित्र स्पष्ट है। ब्लैक आउट के सहसा नगर के ऊपर से अन्धकार के हाथों प्रकाश को पोंछते हुए साइरन के किसी महाकाय (दानव) के समान चिग्घाड़ उठने की स्थिति सजीव और मूर्त हो उठती है। चित्र की रेखाओं को और उभारने के निमित्त आदि से अंत तक उपमाओं की योजना श्लाघनीय है।

(२) कई तलों के पर्वत जैसे
सड़क चूमने वाले इंजन
मनों बोझ के वायर फूले
चलने वाले लाखों मोटर,
लोहे की पटरी की सड़कें,
भारी भरकम रेल-गाड़ियाँ
उस हुड़ी पर उस पतली पर
चलने-फिरने में तन्मय हैं।

—युग धारा—कानपुर   केदारनाथ अग्रवाल

रेखांकित पंक्तियों में उपमा की योजना स्पष्ट है। वैसे पूरा चित्र कानपुर का है जो एक प्रसिद्ध व्यावसायिक केन्द्र है। ध्यान देने की बात यह है कि इन वस्तुओं की भरमार से कानपुर की यह व्यस्त जिन्दगी सामने आ जाती है जो यहाँ अप्रस्तुत है।

(३) श्रम अथवा काम से संबंधित रूप-विधान के लिए रांगेय राघव की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

कोयले की खान की मजदूरनी सा रात
बोझ ढोती तिमिर की विश्रान्त सी अनुदात।

ऐसे यह चित्र रात्रि का है जो अनासक्त भाव से अंधकार को ढोने में स्वयं कटती जा रही है ठीक, कुछ ऐसे ही भाव से खान की मजदूरनी भी कोयला ढोते-ढोते अपनी सारी जिन्दगी के दिन काटती जाती है। इसी को उपमान बनाकर रात्रि का रूप खड़ा किया गया है। उपमान का यह उपकरण बिल्कुल नवीन एवं कवि के युग चैतन्य होने का प्रतीक है। यथार्थ का संस्पर्श इस रूप में जान डालता है और नित्य की मजदूरनी के सम्मुख रहने के कारण

रूप में प्रतिपादित भाव से भावक-वर्ग का सहज ही प्रत्यक्षीकरण भी हो जाता है।

दैनन्दिन

इसके अन्तर्गत दिन प्रतिदिन के जीवन के विविध-व्यापारों और घटनाओं पर आधारित रूप-विधान आते हैं। स्वयं जीवन के बहुत विस्तृत होने के कारण उसके व्यापारों और घटनाओं का भी असीम विस्तार है। ऐसी स्थिति में कहीं-कहीं ऐसे भी रूप-विधान दृष्टिगत होते हैं जिन्हें व्यावसायिक रूप-विधानों से पृथक करना मुश्किल कार्य हो जाता है। फिर भी, सुविधा के लिए घर, आँगन और उनके बाहर से चुने हुए कुछ उपकरणों पर आधारित कुछ रूप-विधानों को प्रस्तुत करना यहाँ अभीष्ट है।

(क) इस नोन, तेल, लकड़ी के घोर अभावों की,
जंजीरों में जीवन का जकड़ा पड़ा पाँव।
सूखी आँखें, कंकाल देह, है रुद्ध कंठ,
हम जीवित लाशें ताका करतीं आसमान।

—भूमि की अनुभूति मिलिन्द पृ० ५१

नून तेल और लकड़ी की समस्या हम में से अधिकांश लोगों के जीवन के दिन प्रति दिन की समस्या है। इसमें अधिकांश व्यक्ति इस तरह फँसे हुए रहते हैं कि जीवन का आगे बढ़ना यानी प्रगति करना किसी भी तरह सम्भव प्रतीत नहीं होता। 'जीवन का पाँव' नहीं होता। पर इसके विधान से जीवन के कीचड़ में फँसी किसी गाड़ी के समान फँसे रहने का स्पष्ट बोध हो जाता है।

(ख) अनजाने चुपचाप अधखुले वातायन से
आती हुई जुन्हाई-सा ही
तेरी छवि का मृदु सम्मोहन
आज बिखर कर सिमट बसा है मेरे मन में।

—तार सप्तक नेमिचन्द्र, पृ० १९

इससे, कभी कवि के सम्मुख रात रहने वाली उसकी प्रेयसी की अनजाने चुपचाप अधखुले वातायन से आती हुई जुन्हाई-सी छवि की रेखाएँ स्पष्ट अंकित हो जाती हैं फिर उनका एक बार बिखरकर पुनः उसके मन में सिमटना (गड़े रह जाना) उसकी आन्तरिक स्थिति का सजीव भान कराता है।

(ग) किस रजनीगन्धा के मद से तरल अलसाकर
भरे हुए उन चंचल नैनों के ऊपर से
हटा-हटा देती होंगी वे केश हठीले।

—तार सप्तक पृ० १९

यहाँ भी प्रेयसी के दिन प्रतिदिन के सहज व्यापार से स्वयं प्रेयसी का ही (जो अप्रस्तुत है) चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें स्मृति सहायक हुई है।

(घ) सजि भिखारिणी-सी तुम पथ पर फैलाकर अपना अंचल।
सूखे पत्तों को ही पा क्या प्रमुदित रहती हो प्रतिपल। —पंत

यहाँ प्रस्तुत भिखारिणी के सादृश्य से जो घर के बाहर कहीं से चुना गया है छाया को मूर्त करने के निमित्त उपमा की योजना की गयी है। साथ ही प्रश्न में अभिव्यक्त 'प्रमुदित रहने के व्यापार' से छाया के प्रति एक सहज उत्सुकता और हमदर्दी को जगाकर उसकी स्थिति को और सजीव कर दिया गया है। निश्चित है कि यहाँ जो उपमान के सादृश्य से चमत्कार उत्पन्न कर अप्रस्तुत का प्रत्यक्षीकरण कराया गया है वह छाया के साधारण चित्रांकन से संभव नहीं होता।

वैज्ञानिक

> जिसकी जवानी
> खुद जिसके लिए क्लोरोफार्म का
> एक मीठा नींद भरा हल्का झोंका है,
>
> —सर्वेश्वर : नयी कविता अंक १ पृ० ११

यहाँ जवानी की मादकता को मूर्त करने के लिए 'क्लोरोफार्म' के प्रभाव को सम्मुख लाया गया है।

भावात्मक

> (क) बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल —प्रसाद
>
> (ख) अरे यही है प्रेम विश्व की चिर विध्वंसमयी ज्वाला
> उतर-उतर कर चढ़ने वाली भीम वासना की हाला।
>
> —मधूलिका संचय पृ० ११

यहाँ 'क' में तर्क-जाल को उपमान बनाकर प्रस्तुत 'अलकों' का चित्र अंकित किया गया है। 'ख' में प्रेम को वासना की हाला बतला कर उसके सदा प्यासी रहने की स्थिति की ओर संकेत किया गया है। और फिर एक विशेषण 'भीम' का प्रयोग वासना को प्रबल बतलाने के लिए हुआ है।

विशेष 'प्रयोगवाद' में लिये गये भावात्मक चित्रों के विश्लेषण में देखिये।

गुणात्मक रूप-विधानों का विश्लेषण भी वहीं द्रष्टव्य है।

अध्याय २

हरिश्चन्द्र-युग

विषय-प्रवेश और सामान्य प्रवृत्तियाँ

सन् १८५७ के विद्रोह का भीषण विस्फोट शान्त हो जाने पर अगस्त १८५८ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 'एक्ट फार दि बटर गवर्नमेंट आफ इंडिया' स्वीकार किया और भारत का शासन-सूत्र इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया के आधीन हो गया और विक्टोरिया की घोषणा का जनता ने अभिनन्दन किया। इस प्रकार सन् १८५७ ई० तक भारतवर्ष ने राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक आधीनता पूर्णरूपेण स्वीकार कर ली। स्वतन्त्रता का गम सहू जनता की नसों में अंग्रेजों के दमन और अत्याचार से पानी बन गया। अत इस समय की कविताएं महारानी विक्टोरिया के सुशासन की प्रशंसा और वायसराय तथा गवर्नरों के प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने वाली होती थीं। भारतेन्दु[1] की 'भारत-भिक्षा' 'भारत वीरत्व' 'विजयवल्लरी' 'विजयिनी' 'विजयवैजयन्ती' प्रेमघन के 'आर्याभिनन्दन' 'भारत बधाई' 'हार्दिक हर्षादर्श' एवं अम्बिकादत्त व्यास रचित 'देव पुरुष दृश्य'[2] में राजभक्ति के गुणगान किये गये हैं।' इसी तरह राधाकृष्णदास विक्टोरिया के निधन पर करुण विलाप करते हैं।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु-युग के कवि वास्तव में विक्टोरिया के सुशासन रेल तार, तथा बिजली इत्यादि के आविष्कार से मन्त्रमुग्ध होकर अंग्रेज-राज को ईश-कृपा का फल बताते थे। भारतेन्दु-युग के कवियों का यह शिष्टतम दरबारी रूप है। किन्तु धीरे धीरे शिक्षा प्रसार और इंगलैंड से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर इन कवियों को अपनी हीनावस्था तथा गुलामी का आभास हुआ। इसीलिए 'राजभक्ति' के स्वर में देशभक्ति के भी स्वर सुनाई पड़ते हैं। १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना के बाद कवियों की अनुभूतियों ने थोड़ी करवट ली। फलस्वरूप भारतेन्दु मण्डल के कवियों का स्वर बदला भाव तथा चेतना तथा आत्मा बदली।

ब्रिटिश शासन की चाटुकारिता का गीत गाते-गाते आलोच्य काल के कवियों की सहानुभूति में विस्तार हुआ। उस सहानुभूति की व्यापक परिधि में किसान मजदूर तथा अन्य दलितवर्गों की मजबूरियों उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ एवं आँसुओं का जमाव हुआ। देशवासियों की अकर्मण्यता उदासीनता तथा कायरता से भारतेन्दु बहुत दुखी हुए। व 'दन

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, भारत-भिक्षा पृ० ७०२
२. भव की दशा देव पुरुष पृ० २४
३. राधाकृष्ण ग्रन्थावली, विजयिनी विलाप पृ० ६

विवेक नहिं जात तऊ जिय होत न चंचल'[1] कहकर उन देशवासियों की निन्दा करते हैं जो विदेशी मलमल और मारकीन का उपयोग करके 'परदेसी जुलाहन के गुलाम' बने जा रहे थे।

बामरसैड रूस ईथ्योपिया चीन जापान तथा सार्वभौम इस्लाम आदि आन्दोलनों से भी भारतवासियों में राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।[2] इसके अतिरिक्त लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की प्रेरणा से जनता अपने अस्तित्व के प्रति और भी जागरूक हुई। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप हरिश्चन्द्र प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी राधाकृष्णदास प्रतापनारायण मिश्र बालमुकुन्द गुप्त आदि आलोच्य काल के कवियों ने भारत के स्वर्णिम युगों की याद की और साथ-साथ वर्तमान जीवन की दरिद्रता आर्थिक दासता एवं कठिनाइयों का भी वर्णन किया। फलत अम्बिकादत्त व्यास ने पाश्चात्य सभ्यता की रंगीनियों से आकर्षित होने वाले कोट-पतलून पहनने वाले भारतीय नवयुवकों पर व्यंग्य किया।[3]

इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र भी तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों का चित्र देते हुए कहते हैं कि हम आज आनन्दपूर्वक होली क्यों नहीं मना सकते।

महँगी और टिकस के मारे सबरी वस्तु अमोली है,
कौन भाँति त्योहार मनैये कैसे कहिये होली है।

इस प्रकार वेस्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से आलोच्य काल तक लूटा-खसोटा ही जा रहा था और ऊपर से अकाल दुर्भिक्ष तथा महामारी के प्रकोप से भी यह कम आक्रान्त नहीं था। जनता दाने-दाने को तरस रही थी फिर भी नाना प्रकार के सरकारी टैक्सों से उसकी मुक्ति नहीं थी। इन सबका विशद वर्णन करके भारतेन्दु मंडल के कवियों ने जनता में असंतोष की आग लगा दी। फलस्वरूप राष्ट्रीय कविताओं का प्रचलन उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

आलोच्य काल की देशभक्ति की रचनाओं में कहीं-कहीं कवियों ने अपने राजनीतिक अधिकारों की ओर संकेत किया है कहीं-कहीं धनाभाव से जर्जरित भारत का करुण चित्र खींचा है, कहीं-कहीं मातृभूमि की प्रशस्तियाँ की गई हैं और कहीं भारत के विगत वैभव की ओर संकेत हैं। राधाकृष्णदास अपने हार्दिक हर्षादर्श में राजा परीक्षित जनमेजय भोज चन्द्रगुप्त आदि प्रतापी राजाओं की याद दिलाते हुए प्रश्न करते हैं कि

हा कबहूँ वह दिन फिर ह्वै है, वह समृद्धि वह सीमा
मन की उमंग' देशपुरुष पुरुष

इसी प्रकार अम्बिकादत्त व्यास भारत के प्राचीन नर रत्नों की याद करते हैं। इक्ष्वाकु मांधाता, दिलीप रघु, दशरथ, पृथ्वीराज हमीर, विक्रम रनजीतसिंह के सम्मुख कवि भारत की वर्तमान कारुणिक अवस्था की झाँकी प्रस्तुत करता है। इन रचनाओं से हम निःसंकोच कह सकते हैं कि ये कवि हिन्दू पहले और कवि बाद में थे। हिन्दू होने के नाते ही कवियों

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रबोधिनी पृ० १८४
२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० ७४
३ मन की उमंग भारत धन
४ होली

ने हिन्दू राजाओं और महापुरुषों का आवाहन किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे साम्प्रदायिक अथवा संकीर्ण विचारधारा के थे उनके ये आचरण गीत समग्र भारतीय जनता के निमित्त थे।

इन कवियों की रचनाओं पर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। जो हिन्दू समाज अतीत में मुसलमानों की धर्मगत कट्टरता तथा अत्याचारों से अनुदार और संकीर्ण बन गया था वह आज आर्य-समाज तथा राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अपनी कूप-मंडूकता छोड़ जागरण की अंगड़ाई ले रहा था। आलोच्य काल में हिन्दू समाज में दो दल अलग-अलग प्लेटफार्म पर खड़े थे। एक वर्ग हिन्दू पुराणों तथा धार्मिक ग्रन्थों का अन्धभक्त था जो वर्तमान युग की क्षण-क्षण बदलती हुई परिस्थितियों से मुँह फेर कर बैठा था। दूसरा वर्ग पाश्चात्य सभ्यता में आपादमस्तक गोते लगाकर इस परिणाम पर पहुँच चुका था कि हमारी प्राचीन सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियाँ और रीतिरिवाज सड़ गये हैं, इनमें आमूल परिवर्तन करने से ही देश का स्वास्थ्य ठीक रह सकता है।

भारतेन्दु ने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया इसीलिए इन्होंने प्राचीन और नवीन के समन्वय पर ही जोर दिया है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की उदार दृष्टि में सामाजिक परिवर्तन सराहनीय था। प्रतापनारायण मिश्र भी उदारमत वाले थे। इन कवियों के दृष्टिकोण में थोड़ा बहुत मतभेद भले ही रहा हो किन्तु समाज की उन्नति सभी चाहते थे। सांस्कृतिक दासता नहीं। भारतेन्दु-युग के कवि समाज और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हिन्दूपन निजत्व अपनत्व और भाषा भोजन वेष की ओर संकेत कर हिन्दुओं को बार-बार चेतावनी देते थे। वे चाहते थे कि हिन्दू अपने रूप को पहचान लें जिससे उन्हें दूसरे बहका कर अपनी संस्कृति से विमुख न कर सकें। ऐसे उद्गार भारतेन्दु-युग के सभी प्रमुख कवियों में मिलते हैं।[1] ऐसी विकट परिस्थिति में इस युग के कवियों को प्रमुखतः पत्रकार, प्रचारक और सुधारक ही बनना पड़ा। इन्हें कवि कहना कविता का उपहास करना होगा। (यह बात केवल खड़ी बोली की कविताओं पर ही लागू होती है) उनके देश प्रेम में एक ओर तो हिन्दू पुनरुत्थानवाद का स्वर मिला था दूसरी ओर राज-भक्ति के आवेश में वे 'चिर जीवहु विक्टोरिया माई' का भी आलाप करते थे। साथ ही हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों धार्मिक ढोंगपरस्ती, जमींदारों और अमीरों की खून चूसने वाली वृत्ति अदालतों में प्रचलित अन्याय, कर्मचारियों की लूटखसोट, गाँवों की दयनीय दशा दुर्भिक्ष और महामारी से पीड़ित जनसमुदाय आदि को कविता का विषय बना कर जनता में नवचेतना की फूंक मार रहे थे।

भारतेन्दु-युग के कवियों की खड़ी बोली की कविताएं बहुत ही बचकानी और निर्जीव हैं उनमें न अनुभूति है न कल्पना। अतः उन्हें हम कविता नहीं तुकबन्दी कह सकते हैं जिसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक तथा धार्मिक विचारों को छन्दोबद्ध किया गया है। उनमें न तो भाषा का निखार है न भावों की मार्मिक व्यंजना। अतः इस युग की खड़ी बोली की छोटी कविताएं बाल प्रयास-सी जान पड़ती हैं। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता

---

१. डा० केसरीनारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा पृ० ७१

है कि कविता इस युग में जन-जीवन के सम्पर्क में आ गयी । रीतिकालीन कविताओं में पायलों की रुनझुन, कमर की किंकिणी का स्वर मुखरित होता था और परकीया नायिका की अश्लील चेष्टाओं के उद्गारों से आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती थी। परिणामस्वरूप उस युग की कविता जन-जीवन से एकदम पृथक हो गई। उसका देश और समाज से सम्बन्ध-विच्छेद-सा हो गया। कविता राजमहलों की रंगरेलियों में बोल देने का एक साधन बन गयी। किन्तु आलोच्य काल में जीवन और कविता का युग-युग से टूटा हुआ सम्बन्ध पुनः स्थापित हुआ। कविता-कामिनी कवि गृह से निकल कर लोक-जीवन के राजमार्ग पर निर्भीक खड़ी हो गयी। कवियों ने कामिनी के वक्षस्थल की धड़कन छोड़ पीड़ित समाज के वक्षस्थल की कराह को जिसे अंग्रेजी साम्राज्य कैंसर की तरह खाये जा रहा था सुना। परिणामस्वरूप कविता का अन्तरंग और बहिरंग बदल गया।

हिन्दी कविता में अभी तक संस्कृत प्रणाली पर प्रकृति चित्रण होता था। अधिकांश प्रकृति वर्णन राजमहल के बागों और उपवनों की ही सीमारेखा में बंधा था और उसका उपयोग कवि नायक-नायिकाओं के सुख-दुख और विरह-मिलन के रंग में रंग कर उद्दीपन के ही लिए करते थे। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने का इन कवियों को अवकाश न था, इसीलिए उसका स्वतन्त्र वर्णन करने में इनकी वृत्तियाँ नहीं रमीं। प्रकृति वर्णन का स्वतन्त्र रूप भारतेन्दु, बालमुकुन्द गुप्त प्रतापनारायण मिश्र ठा॰ जगमोहनसिंह आदि कवियों की रचनाओं में पाया जाता है। कहने को तो यह प्राचीन रूढ़िवादी परम्परा से उन्मुक्त स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन है किन्तु काव्यानुभूति के अभाव में काफी निर्जीव और वस्तु परिगणनमात्र ही रह गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रधानतः ब्रजभाषा के कवि थे। खड़ी बोली में वे समसामयिक कविता लिखते थे और ब्रजभाषा में रीतिकालीन परम्परा ही निभाते रहे हैं। एक सवैया देखिये

> क्यों इन कोमल गोल कपोलन देखि गुलाब को फूल लजायो ?
> त्यों हरिचंद जू पंकज के दल सों सुकुमार सबै अंग भायो।
> अमृत से जुग ओंठ लसे नवपल्लव सो कर क्यों है सुहायो।
> पाहन सो मन होते सबै अंग कोमल क्यों करतार बनायो।

—भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रेम माधुरी पृ॰ १५४

उपर्युक्त सवैया में विषय, भाषा तथा भाव सब प्राचीन हैं। सभी दृष्टियों से यह कवित्त रीतिकालीन कवियों की रचनाओं से पूरी तरह मेल खाता है। रीतिकालीन कवियों में प्रधानतः खंजन नागिन कामदेव के नगाड़े संवार, त्रिवेणी कदली श्रीफल, मृणाल, काम सरोवर, प्रवाल हंस नख कहुरि, बीणा पल्लव चन्द्र आदि प्रतीकों का सबसे समान रूप से उपयोग किया है। अलंकारों में उपमा संदेह, भ्रम उत्प्रेक्षा रूपक श्लेष और अनुप्रास आदि का आधिक्य पाया जाता है। सदियों तक इन प्राचीन उपमानों रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग कविता में होने से वे अपनी सजीवता और नवीनता खो बैठे, उनमें मात्र केवल परम्परा का निर्वाह अधिक मिलता है। इसलिए गुलाब का फूल देखकर कोमल कपोल लजा गये अथवा पंकज के समान सब अंग सुकुमार हैं अमृत के समान ओंठ और

पाहन-सा मन इत्यादि अप्रस्तुत रूप-विधान रीतिकालीन परम्परा में प्राप्त हैं। इनमें आपू
निकता नहीं है।

भारतेन्दु के प्रति आचार्य शुक्ल की स्थापनाओं का विशेष महत्त्व है। शुक्लजी कहते
हैं कि वे सिद्धवाणी के अत्यन्त सरस-हृदय कवि थे। इससे एक ओर तो उनकी लेखनी से
शृंगार रस के ऐसे रसपूर्ण मर्मस्पर्शी कवित्त सवैये निकलते थे जो उनके जीवन काल में ही
इधर-उधर लोगों के मुँह से सुनाई जाने लगे थे और दूसरी ओर स्वदेश-प्रेम से भरे हुए
उनके लेख और कविताएँ चारों ओर मगल का मन्त्र-सा फूंकती थीं। अपनी सर्वतोमुखी
प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विज देव की परम्परा में दिखाई
पड़ते थे दूसरी ओर बंग देश के मधुसूदन और हेमचन्द्र की श्रेणी में एक ओर तो राधा
कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्त-माला गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी
बगला भगतों की हँसी उड़ाते तथा स्त्री-शिक्षा समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये
जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य
है। प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल और मृदुल कला का संचार अपे
क्षित था वैसी ही शीतल और मृदुल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ इसमें सन्देह
नहीं। इतना होते हुए भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा की रचनाओं में
कवि रीतिकालीन परम्परा से बिल्कुल आगे नहीं बढ़ा। वही प्रेम की नोकझोंक वही छीना
झपटी वही मान-मनौवल का चित्रण कवि ने किया है जिसमें रीतिकालीन कवि राजा
महाराजाओं के लिए लिखते थे। उनकी प्रसन्नता ही कवियों को प्रेरणा देती थी। उसी
प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी मित्र-मण्डली के लिए ही कलम चलाते गये। उन्होंने अपनी
कवियों के कलात्मक और भावात्मक पहलू पर विशेष ध्यान नहीं दिया। जिन कविताओं का
उद्देश्य उपदेश और प्रचार हो उसमें कविता की बारीकियों को ढूँढ़ना रस-अलंकार अथवा
रूप विधान ढूँढ़ना एक असफल प्रयत्न होगा।

"एक शब्द में कहा जाय तो हिन्दी कविता का 'भाव-पक्ष' ही भारतेन्दु काल की देन
है। भारतेन्दु और उनके कवि-मंडल ने 'भाव' की क्रांति के द्वारा ही युगान्तर किया था।
यह 'भाव-पक्ष' पूर्णतया अतीत की परम्परा से विच्छिन्न न हो सका। रीतिकालीन भाषा
परम्परा भारतेन्दु में थी उनमें भक्तिकालीन भाव-परम्परा का भी मनोल्लास था परन्तु इसके
साथ ही वे नवयुग की कविता के अग्रदूत भी थे।"[1]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भारतेन्दु ने हिन्दी काव्यधारा को नव
नव विषयों और भावभूमियों की ओर मोड़ा किन्तु उनमें कलात्मकता का सर्वथा अभाव है।
उनके प्रकृति वर्णन में भी हृदय का अनहृद्‌नाद-सा प्रतीत होता है उनमें उपमा और उत्प्रेक्षा
अलंकार काव्य-चमत्कार के लिए ही प्रयुक्त हुए जान पड़ते हैं।

व्यावहारिक पक्ष

परपरित : प्राकृतिक रूप विधान

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये
झुके कूल सों जल-परसनहित मनहुँ सुहाये॥

1. श्री रवीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० ५१

किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।

उपर्युक्त पंक्तियों में भारतेन्दुजी ने यमुना नदी के किनारे पर उगे हुए तमाल वृक्षों का मानवीकरण करके चित्रांकन किया है। कूल पर झुके हुए तमाल वृक्षों की कवि उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है मानो वे जमुना-जल का स्पर्श करने के निमित्त ही झुके हों। अथवा मुकुर (जमुना जल) में झुक-झुक कर वे अपनी शोभा देख रहे हैं अथवा पवित्र जल को प्रणाम कर रहे हैं। सन्देहालंकार तथा उत्प्रेक्षालंकार के संयोग से तमाल वृक्षों के तीन स्पष्ट चित्र खड़े किए गये हैं। पहले चित्र में वृक्ष जल का स्पर्श करते हुए देखे जाते हैं दूसरे चित्र में वे अपना प्रतिबिम्ब जमुना-जल में देखते हैं तीसरे में वे प्रणाम की मुद्रा में झुके हैं। पहला और तीसरा चित्र धार्मिक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया गया है।

भारतेन्दुजी को वर्षा और बसन्त ऋतु से बड़ी ममता है। इन दोनों ऋतुओं में उपवन की शोभा का बड़ा सरस वर्णन किया है। बसन्त ऋतु का एक चित्र देखिये

नवल बन फूली द्रुम बेली
कह मह महकहिं, मह मह महकहिं, मधुर गुंजहिं रेली
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मधु सुमन बसन बनाई
आँचल उड़त बात-बस फहरत प्रेम धुजा लहराई
गूंजहिं भंवर, विहंगम डोलहिं बोलहिं प्रकृति बधाई

—सती प्रताप

उपर्युक्त पंक्तियों में ऋतुराज के स्वागतार्थ लता, द्रुम फूल पत्ते, भौंरे, तितली तथा पक्षी तल्लीन हैं। दूसरी पंक्ति में इन्द्रिय मूल रूप-विधान पर चित्र आधारित है। 'मह मह महकहिं' में गंध चित्र मूर्तिमान हो जाता है। अगली पंक्तियों में प्रफुल्लित प्रकृति को नवोढ़ा नायिका का रूप दे दिया है जिसका आँचल प्रेम-ध्वजा की भाँति उड़ रहा है। भौंरे गूंजते हैं, तितलियाँ पुतली-सी फिरती हैं तथा विहंगम डोलते और बोलते हैं। इसमें प्रकृति का साधारण चित्र खींचा गया है। विशेष कथात्मकता तथा साज-शृंगार का इसमें अभाव है।

सन सन करके रात झनकती झींगुर झनकारें
× × ×
साँप जोहर पर टनकारें
गिरैं करारे टूट टूट के नदी छलक मारें
पिया बिनु सबही दुखदायी।

उपर्युक्त पंक्तियों में इन्द्रिय मूल रूप विधान के माध्यम से वर्षा ऋतु का चित्र खींचा गया है। 'सन सन करके रात झनकती' में साँय-साँय करती हुई रात का चित्र सम्मुख आ जाता है और वह नीरवता जब झींगुर की झनकार तथा साँप की 'टनकार' से भंग हो जाती है उस समय रात के सुनसान वातावरण का चित्र और भी सजीव हो जाता है। यहाँ प्रकृति का उपयोग उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत किया गया है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी 'बगियान बसन्त बसेरो कियो' तथा 'पिऊँ मैंन की भाँवती चाह भरी बरखा बहिनी की 'कजराइमा' में प्रकृति का उद्दीपन विभाव के

अन्तर्गत ही वर्णन किया है।

बालमुकुन्द गुप्त की वसन्तोत्सव शीर्षक कविता में प्रकृति का आलम्बन विभाव की दृष्टि से वर्णन किया गया है। इस चित्रण में न तो भावों की कसमसाहट है और न कला का निखार। वस्तु परिगणन की शैली पर सीधा-सादा वसन्त ऋतु का यह चित्र यह अवश्य सूचित करता है कि कवियों का झुकाव अब उद्दीपन विभाव से हटकर आलम्बन विभाव की ओर हो रहा है।[1]

कवि ने केसर, सरसों गेंदा, टेसू, आम बेर, व नीबू नारंगी अनार इत्यादि प्राकृतिक उपकरणों का मानवीकरण करके चित्र में सजीवता लाने का प्रयत्न किया है।

भारतेन्दु-युग तक अंग्रेजी कविता का प्रभाव हिन्दी कविता पर नहीं पड़ा था सम्भवतः इसी कारण इस युग में विशुद्ध प्रकृति चित्रण का अभाव है। इस युग के कवियों ने जहाँ कहीं प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण किया है वहीं वे अलंकारों के मोहक जाल में बुरी तरह जकड़ गये हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' के अन्तर्गत 'गंगावर्णन' तथा 'चन्द्रावली' के अन्तर्गत 'यमुनावर्णन' प्रकृति के ऐसे ही अलंकृत स्थल हैं जहाँ सन्देह, उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का जमघट-सा लग गया है। प्रकृति पर जहाँ कहीं भी इन कवियों की दृष्टि गयी है वह चित्रण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ही आता है। हाँ एकाध स्थल पर आलम्बनगत चित्रण भी हुआ है किन्तु ऐसा लगता है कि कवियों के हृदय को प्रकृति के नाना रूपात्मक दृश्य झकझोरने और अभिभूत करने में असमर्थ रहे हैं।

सांस्कृतिक रूप विधान

करत मिलि दीप-दान ब्रज-बाला
जमुना सों कर जोरि मनावत मिलैं पिया नंदलाला॥
स्नान दान जप जोग ध्यान तप संजम नियम बिसाला।
इनके फल में हरिचन्द मम मिलैं कृष्ण गुनवाला॥

— अथ कार्तिक स्नान भा० ग्रं०, पृ० ८१

उपर्युक्त पंक्तियों में वियोगिनी ब्रजबालाएँ कृष्ण से मिलने के लिए जमुना में दीपक प्रवाहित करती हैं। भारतीय संस्कृति में नारियों का यह क्रिया-कलाप स्वाभाविक ही है। कलात्मकता का अभाव होते हुए भी दीप-दान करती हुई नारी का चित्र स्पष्ट हो उठता है। 'प्रेम-प्रकाश'[2] में भारतीय संस्कृति में पले दूसरे का सपाट चित्र देखिये। चित्र अलंकार विहीन होने पर भी काफी स्पष्ट है।

मानवीय रूप-चित्रण

श्रीकृष्ण के नख-शिख वर्णन में रीति-कालीन परम्परा का ही निर्वाह किया गया है। परिणामस्वरूप कृष्ण का स्वाभाविक रूप उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकारों के आवरण से प्रच्छन्न हो गया है।

---

१. कविता कौमुदी, भाग २, पृ० ३११ १०
२. प्रेमप्रकाश भा० ग्रं० पृ० १११

पट-तल लाल प्रवाल विद्रुम पुंज मंजुल मंडित सोहै ।
नव पल्लव पर सरस ओस-कन से मन सखि मन मोहै ॥
चरन मञ्जु मंजीर विविध मय-खचित न परत बखाने ।
मनु मनिमय मिस मुनिगन को मन रहत चरन लपटाने ॥
कदलि-खंभ सम जंघ जुगल च हि रमा पलोटन चाहैं ।
तापै लपटि रह्यो पीताम्बर सोभा सुख अवगाहैं ॥

—मधुमुकुल भा० ग्रं० पृ० ४११ १२

अगली पंक्तियों में कवि कल्पना करता है कि कृष्ण की कमर में कलित-किंकिणी इस प्रकार झूमती है जैसे कविगण की रसना । अथवा यह काम-मंदिर की वंदनवार है या 'रति रन' की विजय-घोष है । कमर पर लपेटा हुआ पचरंगी फेंटा ऐसा प्रतीत होता है जैसे सावन महीने का रंग बिरंगा बादल हो । इसी प्रकार बँधी बँधाई लीक पर चलता हुआ कवि अनेक सांस्कृतिक पौराणिक तथा प्राकृतिक उपमानों से कृष्ण की छवि को सँवारता है । इसी भाँति कृष्ण के रूप तथा उनकी वेशभूषा का जहाँ कहीं भी हरिश्चन्द्र ने चित्रांकन किया है, वहीं उपमा उत्प्रेक्षा तथा संदेहालंकार की बैसाखी का आश्रय लिया है । यथा "कृष्ण के मुख का डिठौना ऐसा प्रतीत होता है मानो श्याम कमल पर एक अलि बैठा है । उर पर बघनख ऐसा प्रतीत होता है जैसे अगस्त की कलिका फूली हो । कटि में क्षुद्र घंटिका ऐसी लगती है जैसे मदन में बन्दनवार बाँधा गया हो । तन पर पीत वसन घन में दामिनी के सदृश ज्ञात हो रहा है ।[1] 'श्याम सुन्दर-तन' पर 'केसर-खौर' इस प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे तमाल वृक्ष से चम्पक बेलि लिपटी हो ।[2]

नारी रूप चित्रण में भारतेन्दुजी राधा की ओर अधिक आकृष्ट हुए हैं । उन्होंने उनके रूप सम्बन्धी अनेकों पद लिखे हैं जिनमें अठारह पद बहुत ही उच्च कोटि के हैं । उन्होंने सूर की प्राचीन नख-शिख प्रणाली का जिसमें एक ही उपमान बार-बार आते हैं और पाठक को ऊबा जाते हैं, ग्रहण नहीं किया है । इस प्रकार भारतेन्दु कृत राधा रूप के सभी चित्र मौलिक हैं । 'नागरी रूप-सुधा सी सोहै'[3] पद में बदन नासिका नयन अधर, दाँत नाक वेणी बाहु कुच अंगा कटि तथा एड़ी के निमित्त क्रमश कमल अतसी-कुसुम खंजन-पत्र बिम्बाफल कुन्द, गुलाब फूल की माला मृणाल-नाल श्रीफल रम्भा की खम्भा फूलरि-फूल तथा मारुती आदि प्राकृतिक तथा पौराणिक उपकरणों को उपमान रूप में चुना गया है । इन उपमानों से राधा के अंगों का रूप खड़ा हो जाता है किन्तु अलंकारों के भार से कविता का भाव-सौन्दर्य दब गया है । इसका कलात्मक पक्ष भी रीतिकालीन परिपाटी पर ही आधारित होने के नाते मटमैला लगता है । 'फूलरि-फूल सरिस कटि' में भारतेन्दु की मौलिकता के दर्शन अवश्य होते हैं किन्तु ऊहात्मक-कल्पना और रचना-विधान के संयोग से भावपक्ष निर्बल हो गया है ।

सूर ने राधा को 'अद्भुत एक अनूपम बाग' कहकर अपनी उक्ति को रूपकातिशयोक्ति की दुरूह प्रणाली से सिद्ध किया है । यद्यपि राधा का रूपानुभव कराने के लिए उन्होंने

१ राग संग्रह, भा० ग्रन्था० पृ ४४१
२ वही पृ ४४४
३ „ पृ ४२९

सुप्रसिद्ध उपमानों को ही चुना है, फिर भी साहित्य के साधारण विद्यार्थी के लिए यह कुछ दुरूह हो गया है। रसलान की भी राधा अपने प्रिय को बाग में जाने से वर्जित करती और घर पर ही उन्हें रूप का मध्य भाग दिखाकर प्रसन्न कर देना चाहती है।[1]

यमुना का नारी-रूप द्रष्टव्य है

अहो सखि यमुना की गति ऐसी।
सुनत मुकुन्द-गीत मधु श्रवनन विह्वल ह्वै गई कैसी ॥
भँवर परत सोई काम-वेग सों चकित होत गति भूली।
तटनि घास अंकुरित दैखियत सोइ रोमावलि फूली ॥
कुवलय हित पावत लहरन सों कर मैं कमल अनेक।
मानहुँ पूजन-हेत चरन कों यह इक कियो विवेक ॥
चरन-कमल के सम्पुट जानि लेहि निसि-दिन उर प राख।
हरीचन्द जहँ जल को यह गति भक्तन की कहा भाखै ॥

—वेणु-गीति भा० ग्रं० पृ० ७५१

उपर्युक्त पंक्तियों में भारतेन्दुजी ने यमुना को प्रेम-विह्वल कामातुर नारी के रूप में चित्रित किया है। सात्विक अनुभावों के माध्यम से यमुना को नारी के रूप में सजीव कर दिया है। यमुना-जल में दिखलाई पड़ने वाले भँवर ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे अत्यधिक कामातुर नारी गति-हीन हो जाती है। उसके तट पर उगी हुई घास ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे हर्षातिरेक से नारी को रोमांच हो आया है। लहर रूपी हाथों में अनेकों कमल धारण किये हुए मानों पूजन के लिए दौड़ रही है। यमुना के इस रूप चित्रण में भी आधुनिकता नहीं है कोरी रीतिकालीन परम्परा का ही निर्वाह किया गया है।

भारतेन्दु का हिन्दी-गगन में जब उदय हुआ उस समय रीतिबद्ध शृंगार रस का सृजन प्रचुर मात्रा में हो रहा था। परिणामस्वरूप भारतेन्दुजी ने सर्वप्रथम इसी प्रकार के साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की। उन्होंने कोई रीतिबद्ध ग्रंथ नहीं लिखा। केवल रीतिमुक्त रचनाएं कीं। इनका 'सुन्दरी तिलक' सवैयों का संग्रह है। इस संग्रह में नायिका भेद के क्रम का परिपालन किया गया है।

भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी कवियों ने रीतिकाल की लीक पर नायिकाओं का चित्रण किया है।

नायिका के अतिरिक्त नायक-भेद का भी चित्रण भारतेन्दु ने किया है। इस भांति नायक-नायिका के मिलन-विरह सम्बन्धी जितने उपकरण हैं उन सबका चित्रण रीतिकालीन प्रणाली से बड़े सरल ढंग से किया गया है। सखी दूती अनुभाव, हाव भाव निर्वेद शंका, असूया मद, आलस्य विषाद, मति चिन्ता, स्मृति दीनता हर्ष व्रीड़ा निद्रा वितर्क, छल तथा वियोग एवं कतिपय दशाओं का जैसे अभिलाषा स्मरण, उद्वेग प्रलाप, उन्माद व्याधि तथा जड़ता आदि का बड़ा सजीव चित्रण हरिश्चन्द्र ने किया है।

---

१. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० ९०

पौराणिक रूप विधान

पौराणिक रूप-विधान का इस युग के कवियों में अभाव-सा रहा है। एकाध स्थल पर इसका चयन हुआ भी है तो वह नायिका के शृंगार अथवा उसके वियोग चित्रण का निमित्त बन गया है। वियोगिनी की विरह दशा का चित्रण करने के लिए पौराणिक रूप विधान के माध्यम से प्रस्तुत एक रूप-चित्र देखिए

प्रीतम पियारे मनभावन बिनु हाय यह
सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है।

—प्रेम माधुरी ६७ भा० ग्रं० पृ० १५९

गगन में घटाएं घिर आयी हैं। दामिनी की दमक और जुगनू की चमक देखकर विरह-व्यथा से नायिका व्याकुल है। करवटें बदलते-बदलते रात बीत नहीं रही है। उपर्युक्त पंक्तियों में सावन की लम्बी और न समाप्त होने वाली इस रात के लिए द्रौपदी की साड़ी को उपमान चुना गया है। इस प्रकार इस पौराणिक उपमान से वियोगिनी की रात की लम्बाई और उसके मन की व्यथा की गहराई नापी गयी है।

ऐतिहासिक रूप विधान

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से राजा पोरस के युद्ध कौशल का यथार्थ चित्रण देखिये :[1]

सिकन्दर से पंजाब के राजा पोरस की लड़ाई हो रही है उसी समय का चित्रण कवि करता है। पोरस के बरसते हुए बाणों के लिए पावस ऋतु उपमान बनकर आया है। पावस ऋतु में जिस प्रकार बिजली चमकती है बादल गरजते हैं, झींगुर झनकारते हैं और दादुर टर्र-टर्र करते हैं उसी प्रकार पोरस और सिकन्दर रणक्षेत्र में डटे हैं जहाँ बिजली की तरह तलवारें चमकती हैं बादल की तरह तोपें गरजती हैं; झींगुर की तरह बख्तर झनकते हैं, दादुर की तरह यवन टर्र-टर्र कर रहे हैं और बन्दूक का छर्रा जुगनू की तरह उड़ रहा है। सम्पूर्ण पंक्तियों से रणक्षेत्र के वातावरण का दृश्य सजीव हो गया है। चित्र यथार्थ और तीखा है। उपमा अलंकार के योग से थोड़ी कलात्मकता भी आ गयी है।

सामयिक रूप-विधान

भारतेन्दु मंडल के कवियों की काव्यधारा यदि एक ओर रीतिकालीन रस-सिन्धु की ओर बही है तो दूसरी धारा तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक कूलों को भी स्पर्श करती हुई गयी है। इसीलिए इनकी कविताओं में देश की सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई है। इन कवियों ने खड़ी बोली में जो कविताएं लिखी हैं उनमें रस और बिंब चमत्कार तथा लक्षणा व्यंजना का पूर्ण अभाव-सा है। उनके कहने में तन्मयता और सफाई है जिससे कथन चित्र की ही भांति सटीक और प्रभावोत्पादक बन जाता है।

---

१ भा० ग्रन्था० पृ० ८४१

राजनीतिक रूप विधान

भीतर-भीतर सब रस चूसै। हँसि-हँसि कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज। क्यों सखि साजन नहिं अंगरेज।।
—नये जमाने की मुकरी भा० ग्रं० पृ० ८११

उपर्युक्त पंक्तियों में अंग्रेजों के अफसरों की तस्वीर खींची गयी है जो हँस-हँस कर भारत का तन-मन-धन सब लूटे चले जा रहे हैं।

अंग्रेजी राज्य की दुरवस्था तथा प्रजा की आर्थिक दशा का यथार्थ चित्रण भारतेन्दु जी ने अपनी पुस्तक भारत दुर्दशा में किया है

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।
—भारत दुर्दशा (१८८०)

इस कविता में अंग्रेजों की शासन-नीति के परिणामस्वरूप देश में फैली महँगाई, अकाल तथा भुखमरी का चित्रण है।

आर्थिक रूप विधान

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने अंग्रेजी राज्य में भारत की गरीबी का दयनीय और यथार्थ चित्रांकन किया है —

हम करें नौकरी बहुत तलब कम पाते
ये किसी तरह से अब तक पेट जिलाते।।
इस महँगी से नित एकादशी मनाते
लड़के-बाले सब घर में हैं बिललाते।।[1]

देश की विपन्नावस्था का सजीव रूप ऊपर के उद्धरण में दिया गया है। नौकरी करते हैं किन्तु वेतन कम पाते हैं जिस किसी प्रकार इस महँगाई के दिनों में उपवास करके दिन निकाल रहे हैं। खाने के अभाव के साथ-साथ कपड़े का भी अभाव है। न सिर पर टोपी है न बदन पर कुरता। चारों ओर अकाल पड़ा है। भूख के मारे सब जन व्याकुल हैं। इस चित्र में भाव की सचाई तो है किन्तु कला का नितान्त अभाव चित्र की प्रभावोत्पादकता को कम कर देता है।

इसी प्रकार का चित्र बालमुकुन्द गुप्त ने भी दिया है

हा हे जननी पूजा करें तुम्हार
पेटहु के हित नित है हाहाकार
× × ×
अन हो गयो बिलाय कछू अब रह्यो न बाकी
उदर हेत हम बेच चुके माँ चूरहें चाकी।।[2]

१. कविता कौमुदी भाग २ पृ० ३१
२. बालमुकुन्द गुप्त देवीस्तुति (१८९५) पृ० २२

अध्याय ३

द्विवेदी-युग

विषय प्रवेश और सामान्य प्रवृत्तियाँ

सन् १९०१ से २० ई० तक का द्विवेदी-युग हिन्दी खड़ी बोली की कविता के जन्म और विकास का युग है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हिन्दी की कविता ब्रजभाषा का जीर्ण रेशमी परिधान उतार कर लोकभाषा खड़ी बोली का 'खादी बाना' परिधान धारण कर अपनी नयी सजधज से सामने आयी। १९ वीं शताब्दी के साहित्यिकों ने कविता को लोक-जीवन तक तो पहुँचाया किन्तु उसका परिधान ब्रजभाषा ही बना रहा। 'भारतेन्दु और द्विवेदी ये दो व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी कविता के शंकर और भगीरथ हैं। जिस भाँति की गंगा में हम अवगाहन कर रहे हैं उसका अवतरण तो शंकर के मस्तक पर (कैलाश पर नहीं काशी में,) हुआ किन्तु दिशा-निर्देशन करने वाले भगीरथ ही थे'।[1] 'सरस्वती' पत्रिका (स्थापित जनवरी १९०१ ई० प्रयाग) में उन्होंने नई कविता के युग का श्रीगणेश किया। बाबू मैथिलीशरण गुप्त कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय लोचनप्रसाद पांडेय सियारामशरण गुप्त रूप नारायण पांडेय मुकुटधर पांडेय लक्ष्मीधर वाजपेयी गोपालशरण सिंह श्रीधर पाठक हरिऔध श्री देवीप्रसाद पूर्ण प० नाथूराम शंकर शर्मा तथा सेठ कन्हैयालाल पोद्दार इत्यादि कवि द्विवेदीजी का आशीर्वाद लेकर कविता करते रहे। इसके अतिरिक्त माधव शुक्ल हरिभाऊ उपाध्याय भगवनारायण भार्गव, राय कृष्णदास देवीप्रसाद गुप्त मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' लक्ष्मण सिंह 'मयंक' द्वारकाप्रसाद गुप्त कृष्ण चैतन्य गोस्वामी पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी केशवप्रसाद मिश्र तथा पारसनाथ सिंह इत्यादि हिन्दी कवियों ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप में द्विवेदीजी तथा उनके युग का प्रभाव ग्रहण किया।

द्विवेदीजी के आदेश तथा आदर्श

१—सामान्य कवियों को विषयानुकूल छन्द-योजना करनी चाहिये।

२—छन्द-विधान में नवीनता हो। इस प्रसंग में द्विवेदीजी ने कहा 'दोहा चौपाई, सोरठा घनाक्षरी छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि इसके अतिरिक्त और छन्द भी वे लिखा करें। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्यों में प्रचलित छन्दों में द्रुतविलम्बित वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार भाषा में होने से भाषा काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी।"

---

१. हिन्दी कविता में युगान्तर, प्रो सुधीन्द्र पृ ९२

३—पादान्त में अनुप्रासहीन छन्द भी भाषा में लिखे जाने चाहिए।
४—भाषा सरल सुबोध और शुद्ध होनी चाहिए।
५—शब्द-प्रयोग रसानुरूप होना चाहिए।
६—गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिए।

हिन्दी कविता के वीरगाथा-युग में भुजंगी पद्धरी छप्पय रोला दोहा की, भक्तियुग में दोहा-चौपाई और गेय पदों की तथा रीतिकाल में कवित्त सवैया दोहा सोरठा और घनाक्षरी आदि छन्दों की प्रधानता थी। भारतेन्दु-युग से कवियों ने प्राचीन परम्परा को छोड़ना प्रारम्भ किया। इस मंडल के कवियों ने ठुमरी खिमटा लावनी होली कजली इत्यादि लोक गीतों को अपनाया। बंगला में प्रचलित 'पयार' छन्द को भी भारतेन्दुजी ने ग्रहण किया। द्विवेदीजी ने संस्कृत साहित्य में प्रचलित बहुत से प्राचीन छन्दों को ग्रहण किया। संस्कृत के अतिरिक्त मराठी काव्य का भी द्विवेदीजी पर प्रभाव पड़ा। संस्कृत के प्रायः सभी प्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग द्विवेदीजी ने किया है—यथा शिखरिणी भुजंगप्रयात नाराच मालिनी शार्दूलविक्रीडित द्रुतविलम्बित वंशस्थ मन्दाक्रान्ता चामर वसन्ततिलका उपेन्द्रवज्रा इन्द्रवज्रा आदि।

आचार्य द्विवेदी का दूसरा निर्देश कविता के विषय से सम्बन्धित है। उन्होंने आदेश दिया कि 'चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी सभी पर कविता हो सकती है।'[1]

अस्तु, इस युग के कवियों के सम्मुख चींटी से लेकर हाथी तक अनन्त आकाश से लेकर भूमण्डल तक का विशाल वस्तु जगत् वाला भूखण्ड आ गया। अतः उनको जो भी बात कहनी होती थी छन्दों में कहते थे। कविता में सरसता रमणीयता तथा कलापक्ष कुछ भी कहने की सोच में गौण हो गया। इसी कारण इस युग की आरम्भिक कविताओं को खड़ी बोली के प्रयोग काल की रचनाएँ कहा जा सकता है। द्विवेदीजी की पहली खड़ी बोली कविता 'बलीवर्द' उल्लेखनीय है। दृश्य जगत् के स्थूल और सूक्ष्म विषयों पर लिखी गई कविताओं के शीर्षक थे—हिमालय मातृभूमि प्रभात कोकिल प्रणय भिक्षा मृत्यु हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की प्रदर्शनी शरीर रक्षा ग्राम आदि।

'सरस्वती' में प्रकाशित होने वाले चित्रों पर भी इस युग के कवि परिचयात्मक कविताएँ लिखते थे। द्विवेदीजी ने रम्भा महाश्वेता कुमुदसुन्दरी इन्दिरा, पूर्णजी ने कादम्बरी तथा रामचन्द्र का धनुर्विद्या शिक्षण, शंकर ने वसंत सभा विलाप तथा मोहनी, गुप्तजी ने भारती प्रार्थना आदि चित्रों पर कविताएँ लिखीं।

मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध पुराणों से प्रेरणा ले रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती रंग में भंग जयद्रथ-वध शकुन्तला किसान, सियारामशरण ने मौर्यविजय, हरिऔध ने प्रियप्रवास, रामचरित उपाध्याय ने रामचरित चिन्तामणि, श्यामा भगवानदीन ने वीर पंचरत्न आदि आख्यानक काव्यों की रचना इसी काल में की।

आलोच्य काल में दो प्रकार की और कविताएँ हुईं अन्योक्तियाँ तथा सूक्ति काव्य।

---

१ श्री वेंकटेश्वर समाचार ११ अक्टूबर ११ ०

श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने 'अन्योक्तिदशक' अन्योक्ति पंचक (कोकिल भ्रमर, हंस हाथी कौआ तालाब मेघ माली आदि) सुन्दर अन्योक्तियाँ संस्कृत काव्य से अनुवादित करके खड़ी बोली में भी यह परम्परा चलाई। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त पं० रामचरित उपाध्याय गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' तथा पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि कवियों ने भी संस्कृत की अनेकानेक अन्योक्तियों का हिन्दी में अनुवाद किया। इस प्रकार कवियों ने अनेकानेक विषयों पर अन्योक्तियों की सृष्टि की। विषयों के नाम इस प्रकार हैं[2] तृण कनेर, केतकी कदली चन्दन आम खजूर खटमल घुन भ्रमर पतंग काक बक और कुक्कुट मैना, कोकिल चातक, बिल्ली मूषक मृग हाथी सिंह पथिक माली, मेघ वर्षा गंगा गंगा जल तड़ाग समुद्र वसन्त मलयानिल सन्ध्या हिमालय आदि।

सूक्तियों और सुभाषितों की भी रचना होने लगी। ये सूक्तियाँ धर्नै-शनै रसवती और भाव-प्रवण हो उठीं।

स्तुति से गुण से, रस से, मधुरता भी तथा अलंकृति से,
कविता हो या वनिता दोनों सब को नचाती हैं।[1]

तत्कालीन सामाजिक हलचलों राजनीतिक दाँव-पेंच दमन और अनुशासन के चक्र में फँसे हुए द्विवेदी मंडल के कवि प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए स्वतंत्रता संग्राम की ओर बड़ी सतृष्ण निगाहों से देख रहे थे। इस प्रकार वस्तु जीवन के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर इस युग की कविताएं इतिवृत्तात्मक हो गई हैं। रीतिकालीन कल्पना-लोक का जो कुछ कुहासा भारतेन्दु-युग में अवशेष था वह भी इस युग में मिट गया था। अतः जीवन का यथार्थ कवियों के सम्मुख नग्न रूप में खड़ा था—इसलिए कवियों ने जीवन के उसी सत्य को और उन्हीं समस्याओं को छंदोबद्ध कर दिया जो उस युग में प्रचलित थीं इसीलिए कविता में इतिवृत्तात्मकता आ गई। दूसरी बात है कि यह युग खड़ी बोली को खड़ा करने का युग था उसे सँवारने और सजाने का तो इन कवियों को अवकाश ही नहीं था। खड़ी बोली को काव्य का माध्यम बनाने का श्रेय यदि द्विवेदी-युग को है तो उसके शृंगार का समूचा श्रेय छायावादी कवियों को है। फिर भी इन कवियों की इतिवृत्तात्मक शैली में भी चित्रकला का श्रीगणेश हो चुका था उसमें इतनी नीरसता और शुष्कता नहीं थी जो हरिश्चन्द्र युग में थी। रामचरित उपाध्याय प्रकृति के माध्यम से अपनी राज्य के अन्याय की ओर संकेत करते हैं, वे ग्रीष्म ऋतु को लक्ष्य कर राजा के अन्याय तथा प्रजा के कष्ट की कहानी सुनाते हैं।[3]

इसी प्रकार स्नेही ने सन् १९१४ के महायुद्ध का एक छोटा-सा चित्र प्रस्तुत किया है। मनुज पतंग की भाँति रण की आग में जल रहे हैं और रण के रक्त आग की तरह भड़क रहे हैं। इस कथन में एक छोटा-सा चित्र है—पतंगों का जलना और आग का भड़कना।[4]

आलोच्य काल में जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं बची जिस पर कविताएँ नहीं हुई हैं—चाहे वे समस्याएँ सामाजिक रही हों या राजनीतिक। इस युग के कवियों ने एक

१. हिन्दी कविता में युगान्तर डॉ० सुधीन्द्र पृ० १२४
२. कवि और कविता पं० रामचरित उपाध्याय सरस्वती जुलाई, १९१६
३. रामचरित उपाध्याय (ग्रीष्म) सरस्वती जुलाई १९१९
४. स्नेही (युद्ध) सरस्वती नवम्बर, १९१४

ओर प्राचीन संस्कृत कवियों से (जैसे भारवि कालिदास) के प्रकृति वर्णन से प्रेरणा ली और दूसरी ओर अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के 'दि डफोडिल्स' और 'टु दि डेज़ी' कीट्स के 'ब्राइटस्टार' शैली के 'दि रिकलैक्शन' और 'दि इनविटेशन' आदि कविताओं से प्रेरणा ली।

इस युग की दूसरी विशेषता है कवियों का उपदेशात्मक दृष्टिकोण। उपदेश के अन्तर्गत स्वदेशप्रेम क्षमा दया धर्म-नीति सदाचार उद्बोधन आदि विषय आये हैं। जैसे मैथिलीशरण गुप्त रचित कविताएं 'पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो' (सरस्वती जनवरी १ १४) कामताप्रसाद गुरु की कविता 'जरा उचारो अपना रक्त बनो मातृभाषा के भक्त' (सरस्वती फरवरी १९०९) इसी कोटि की हैं। इस प्रकार उपदेशात्मक नीति को अपना कर कवियों ने सामाजिक और राजनीतिक क्रांति करने की अपील की। जीवन की समस्त दुर्बलताओं की ओर संकेत करते हुए जन जन को सद्गुणी होने की प्रेरणा दी। एक वाक्य में हम कह सकते हैं कि आलोच्य काल की कविताओं में लोकमंगल की भावना निहित थी इसीलिए उस समय अधिकांश कवि बहिर्मुखी प्रवृत्ति के थे अन्तर्मुखी नहीं 'स्व' को नहीं देखा 'पर' की कल्याण कामना पर विशेष बल दिया।

आलोच्य काल की कविता के विषय में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी कहते हैं कि— 'हिन्दी कवि प्राचीन शृंगारी कवियों के शृंगार से इतना भयभीत से हो गये कि वे उसे स्पर्श करने में ही संकोच मानने लगे जिसके कारण कविता के प्रति आकर्षण की कमी हो रही थी।'[1] अतः इस युग की कविताओं में रसाभाव का होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। इसके अभाव में अभिव्यक्ति का माध्यम सीधा और सपाट बन सका जो गद्य का शृंगार है। कला कल्पना तथा रूप विधान की बात खड़ी बोली के प्रचार के सामने व साथ भी नहीं सकते थे। इन कवियों की धुन तो यह थी कि 'कितना लिख गये' 'क्या लिख गये' को मुड़कर देखने का अवकाश उन्हें नहीं था। इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस युग की अधिकतर कविताएं इतिवृत्तात्मक हुईं। उनमें वह लाक्षणिकता, वह मूर्तिमत्ता और वह वक्रता बहुत कम पाई जाती है जो रस-संचार की गति को तीव्र और मन को आकर्षित करती है।'[2]

आलोच्य काल में भाषा को 'खड़ी' करने का प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण था इस प्रयत्न में कवियों की रचनाओं में संगीतात्मकता मिठास तथा अभिव्यंजना न आ सकी। अभिव्यंजना की वही प्राचीन प्रणाली उपमा और उत्प्रेक्षा का वही परंपरागत प्रयोग हरिऔध आदि की रचनाओं में पाया जाता है। इसी प्रकार रामचरित उपाध्याय ने भी अभिव्यंजना की कोई नूतन प्रणाली नहीं अपनाई। अलंकारों का मोह भी प्राचीन परिपाटी को ही लेकर चला है। 'कली' को सम्बोधित करते हुए कवि ने अन्योक्ति का अनुसरण किया है। कली के बहाने कवि यौवनशाली बालिका (जो यौवन की देहली पर कदम रख रही है) को शिक्षा देता है।[3] इसमें भी

---

१. नरोत्तम प्रसाद आधुनिक काव्य-निबन्ध पृ ५८
२. हिंदी साहित्य का इतिहास पृ ५१०
३ मधु के लिये भरे रहेंगे मधुप-रसवश हो घनो।
   मकरन्द मधुर यहाँ लिये बहेंगे तुम मकरन्द है बनो॥
      —कविता कौमुदी दूसरा भाग रामचरित उपाध्याय पृ० ३०९

गिरधर की 'कुंडलियों' की भाँति परम्परा का ही निर्वाह हुआ है। नवीनता यही है कि कविता को उपदेश का माध्यम बना लिया है।

इस काल के कवियों की वाणी में लोककल्याण का जो नवीन स्वर है वह भक्तियुग को छोड़कर हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ होगा। इस युग के राष्ट्रीय-गान में अतीत वर्तमान और भविष्य सभी समा गये हैं।

यहाँ हम द्विवेदी युग के कुछ प्रमुख कवियों की रचनाओं से उद्धरण देकर रूप विधान के व्यावहारिक पक्ष का विश्लेषण करेंगे। सब कवियों की समस्त कृतियों की छानबीन करना न तो इस छोटे से अध्याय में सम्भव है न अभीष्ट।

व्यावहारिक पक्ष

परंपरित प्राकृतिक रूप विधान

लगभग भारतेन्दु-युग के पहले तक हिन्दी काव्य में संस्कृत की लीक पर ही प्रकृति-वर्णन होता आ रहा था। शृंगार के अन्तर्गत उद्दीपन विभाव को दृष्टिगत रख कर प्राकृतिक चित्रण की प्रमुखता थी इस प्रकार के चित्रण में प्रकृति का स्वस्थ रूप सामने न आकर उसका कृत्रिम शृंगारी रूप ही आता रहा है। स्वयं भारतेन्दुजी ने भी प्रकृति-वर्णन में परम्परा का ही पालन किया है। प्रकृति का स्वतन्त्र निरूपण यद्यपि भारतेन्दु-युग से ही प्रारम्भ हो गया था किन्तु उसमें परम्परा की बद्धता विद्यमान थी। द्विवेदी-युग में सत्यशरण रतूड़ी मुकुटधर पांडे श्रीधर पाठक रामचरित उपाध्याय रामचन्द्र शुक्ल रामनरेश त्रिपाठी लक्ष्मीकान्त पोद्दार, जगन्नाथदास रत्नाकर, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध तथा मैथिली-शरण गुप्त इत्यादि प्रमुख कवियों ने परम्परा से हटकर प्रकृति को आलम्बन मानकर इसका चित्रण किया है। इनमें से अधिकांश कवियों के प्रकृति-वर्णन में कलात्मकता पर विशेष बल नहीं दिया गया है फिर भी प्रस्तुत के ही सहारे जो भी चित्रांकन हुआ है उसमें स्वस्थ प्रकृति के चित्र उपस्थित हैं जो प्रकृति के उज्ज्वल पक्ष का सहज संकेत कर देने में सर्वथा समर्थ हैं। चित्र प्रस्तुत करते समय प्राचीन प्रचलित उपमानों का ही विशेष प्रयोग हुआ है। द्विवेदी-युग के प्रथम चरण में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करते समय वर्णनात्मक शैली का उपयोग हुआ है। यह कवियों की अपनी विवशता और असमर्थता थी। बाद में हरिऔध और गुप्तजी की रचनाओं में परम्परा से हटकर कुछ मौलिक चित्र मिलते हैं। नाथूराम शंकर शर्मा की 'पावस ऋतु'[१] में चित्र प्रस्तुत के ही सहारे खड़ा किया गया है फिर भी प्रभावोत्पादकता का अभाव नहीं खटकता।

सत्यशरण रतूड़ी का विपिन वर्णन शर्माजी के चित्र से अधिक नवीन और स्वस्थ है देखिये 'सांतिमयी सन्ध्या'। इस कविता में लता को रंगीले फूलों की माला पहना कर स्नियोचित रूप दिया गया है जो पथिक जन को विपिन में लुभाती रहती है। इसी प्रकार सीमा के सदृश नदियाँ सुरीले स्वर में बोल रही हैं और झरने नवल नृत्य करते हैं।

---

१. कविता कौमुदी-भाग २, पृ० २०६

रामचरित उपाध्याय ने आश्वासन शीर्षक कविता में प्रकृति के माध्यम से उपदेश देने का प्रयत्न किया है जिससे जनता में आशा तथा विश्वास जगे।[1] श्रीधर पाठक अपने देहरादून के बगले में लगे हुए फूलों का बरवै छन्द में तथ्यातथ्य वर्णन करते हुए उस पक्षी की भी याद करते हैं जो आम की डाल पर बैठकर चहचहाता है।[2] कवि ने हिमालय का चित्र और भी यथार्थ और मोहक ढंग से खींचा है।[3]

हिमालय के शिखर पर प्रातःकालीन सूर्य की सुनहली किरणों की छाया पड़ने से शिखर स्वर्ण की भाँति चमकता है। लता-पुष्प वृक्षावलियों की शोभा कोकिल, कीर आदि के उस पर बैठकर गाने से और भी सजीव हो जाती है। यहाँ प्रकृति का आलम्बनगत वर्णन है किन्तु किसी भी अप्रस्तुत का आश्रय नहीं लिया गया है।

रामनरेश त्रिपाठी ने काश्मीर के चिनार वृक्षों की सायंकालीन शोभा का चित्र दिया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के योग से चित्र में कलात्मकता अधिक आ गई है। इसमें चिनार की छाया तथा किरणों का गत्यात्मक रूप दर्शनीय है। चिनार की छाया जैसे गिरि-कन्या को चूमने के लिए जा रही है और हिम-शृंगों से दिनकर की किरणें धीरे धीरे उतर कर घन-नौका पर विचर रही हैं। छाया और किरणों के मानवीकरण से चित्र में और भी सजीवता आ गई है।[4]

पंडित रामचन्द्र शुक्ल प्रकृति के सच्चे प्रेमी थे। इन्हें संवेदनात्मक चित्रण से चित्रात्मक वर्णन अधिक पसन्द है। इन्होंने प्रकृति को आलम्बन मान कर उसके चित्रण में अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है। कवि ने प्रकृति के सभी हरे भरे तथा रूखे-सूखे रूपों को प्यार भरी दृष्टि से देखा है। घने जंगल, पथरीले टीले जलती हुई ग्रीष्म ऋतु का कवि ने उतना ही मार्मिक चित्रण किया है जितना उसकी हरी भरी प्राकृतिक सुषमा का।[5] तवे-सी जलती हुई ग्रीष्म ऋतु का चित्रण उनकी 'हृदय का मधुर भार—शतक १' शीर्षक कविता में देखिये।[6]

ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड गर्मी से धूलधूसरित पीवर-पवन झपट रहा है और कहीं सूखे तृण-पत्र लिये बवंडर उठ रहा है। तपती हुई गर्मी की भीषण चोट को पेड़ खड़े-खड़े झेल रहे हैं चारों ओर नीरव वातावरण है केवल पेड़ों और पत्तों की मर्मर ध्वनि से निकला हुआ हू-हू शब्द सुनाई पड़ रहा है। चित्र अप्रस्तुत के योग के बिना ही काफी सजीव हो गया है।

बसंत ऋतु में प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में जब मानव बेसुध हो गाढ़ी नींद में सो जाता है उस समय अमराई में बैठी कोयल अपनी मधुर स्वर-लहरी से तन-मन को छूकर जगा देती है। कोकिल के उसी क्रियाकलाप का संकेत सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने अपनी 'कोकिल'

१ 'आश्वासन' सरस्वती भाग १७ संख्या ३, सन् १९१६

२. देहरादून पृ० १२२

३ हिमालय श्रीधर पाठक

४ स्वप्न पृ० ९६

५ आधुनिक काव्य-धारा—डा. केसरी नारायण शुक्ल पृ० १८०-८१

६. पं रामचन्द्र शुक्ल हृदय का मधुर भार—शतक १ 'माधुरी अगस्त तथा सितम्बर १९२२

शीर्षक कविता में किया है। इन पंक्तियों में बीतती हुई रात और प्रारंभ होते हुए प्रातःकाल का यथार्थ चित्रांकन हुआ है।

> उडुगण क्रम भी हों बीतते भी कहीं हों।
> गत जब रजनी से पूर्व संध्या बनी हो।
> मृदुल मधुर मिश्रा आहुता चित्त मेरा।
> तब पिक! करती तू शब्द प्रारम्भ तेरा।[1]

रात के समाप्त होने और सूर्य के निकलने की सन्धि बेला का कैसा यथार्थ चित्र है। कुछ तारागण डूब चुके हैं और कुछ बाकी हैं पूर्व में लालिमा छिटकी है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के गंगावतरण में प्रकृति के अनेक मार्मिक चित्र उपलब्ध होते हैं। डा० श्यामसुन्दरदास का कथन है कि स्वर्ग से उतर कर गंगा का पृथ्वी पर आना सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और चमत्कारी है। शुद्ध प्राकृतिक वर्णन का सम्पूर्ण ब्रजभाषा काव्य में प्रायः अभाव ही है। उसकी तो यहाँ परिपाटी ही नहीं चल पाई। तथापि गंगावतरण में गंगा के हिमालय से निकल कर समुद्र की ओर बढ़ने के दृश्य चाहे कुछ लोगों को भाषा की अतिरंजना के कारण यथार्थ न जान पड़ें फिर भी बहुत कुछ स्वाभाविक हैं और उपमाएं भी सबल चित्रोपम हैं।[2]

निम्नलिखित पंक्तियों में संगीत की पृष्ठभूमि पर प्रकृति का यह चित्र बड़ा ही स्वाभाविक और सुश्लिष्ट है

> नाचत मंजुल-मोर और साजत सारंगी।
> करति कोकिला गान तान तानति बहुरंगी॥
> श्यामा सीटी देति बटक चुटकी चुटकावत।
> घूमि-झूमि घुकि कल कपोत तबला पुटकावत॥[3]

मंजुल मोर नृत्य कर रहे हैं भौंरे गुनगुना रहे हैं मानो वे सारंगी साज रहे हों कोकिला आलाप भर भर के गा रही है। श्यामा सीटी देती और चुटकी बजाती है। कपोत का 'गुटरगों' 'गुटरगों' शब्द ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह झूम झूम कर तबला बजा रहा हो। इन पंक्तियों में नर्तकी तथा समाजी दोनों का यथार्थ चित्र उतर आया है। वर्ण में भी तथा श्रवण संबंधी गुणात्मक रूप विधान से चित्र की मोहकता और भी बढ़ गई है।

रीतिकालीन परिपाटी पर 'रत्नाकर' का एक चित्र देखिये वसंत का वर्णन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत रख कर किया गया है।

> पथिक तुरंत आइ कंतहि बताइ दीजौ
> आइगो वसंत उर अमित उछाह लै।

इन पंक्तियों में विरहिणी अपने परदेसी प्रियतम को संदेश देती हुई कहती है कि

---

१ कोकिल कविता कौमुदी भाग-२ पृ १८२

२ 'रत्नाकर' पहला भाग भूमिका पृ ११ १२

३ „ „ „ गंगावतरण पृ ११७

४ 'रत्नाकर' दूसरा भाग—वसंतायक, पृ ११५

बसंत ऋतु के आगमन के साथ-साथ कामदेव रूपी बादशाह ने हमारे ऊपर चढ़ाई कर दी है। कोकिल की कूक ही मानो तुरही की आवाज है, शीतल मंद समीर पर सरदार रूपी मन सवार होकर आ रहा है और भौंरे सिपाही के रूप में धीरे-धीरे आ रहे हैं। सम्पूर्ण चित्र ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। रूपक के सहारे कवि ने प्राकृतिक उपकरणों का सम्बल लेकर विरहिणी का विरह ही निवेदन किया है। प्राकृतिक-चित्र का तो बहाना मात्र है।

कवि की कल्पना से उसकी रागात्मक प्रवृत्ति का सामंजस्य होने पर चित्र अधिक चटकीला और मार्मिक बन जाता है। आचार्य शुक्ल ने प्रकृति के कुछ ऐसे ही चित्र लिए हैं। भगवान बुद्ध की प्रव्रज्या, खुलने पर उन्हें पूर्ण शांति मिली और उधर प्राची में ऊषा अपनी सम्पूर्ण सजधज से प्रकट हुई। देखिये

नभ अरुण आभा रेख प्रथम पुंधले दिगन्त में कढ़ी
नभ नीलिमा क्यों क्यों निरखि ज्योति ऊपर को बढ़ी।
त्यों-त्यों सहमि के पुंज तमको तेज खोयत जात है।
पीरो परो, फीको भयो अब शुक्र होत सजात है।

बुद्धचरित पृ० १२९

ऊषागमन के पश्चात् शुक्रतारा निष्प्रभ होकर अस्त हो जाता है पर्वत-शिखर ऊषा की मन्द मुस्कान से प्रभापूर्ण हो उठते हैं तथा पुष्प विकसित हो जाते हैं। प्रकृति के इन सब व्यापारों का कवि ने सूक्ष्म निरीक्षण किया है तभी तो उसने शुक के पीले पड़ने की पर्वतों के किरीट धारण करने की और पुष्पों के खिलने की संभावना पर प्रकृति में मानव भावनाओं का आरोप किया है।[1]

रामनरेश त्रिपाठी का प्रातःकाल का अलंकृत चित्रण देखिये

गगन नालिमा में हीरे का
ताज पुंज अभिराम।

कवि ने अंधकार के विलीन होने में उत्प्रेक्षा तथा सूर्योदय में रूपक अलंकार की योजना की है। विराजमान तथा सूर्योदय के वास्तविक रूप का यह कल्पनात्मक तथा आलंकारिक ढंग से निरूपण किया है।

मैथिलीशरण गुप्त लिखित जयद्रथ वध, पत्रावली, रंग में भंग तथा गुरुकुल इत्यादि पुस्तकों में प्रकृति का उपमान अलंकार के ही रूप में हुआ है इन पुस्तकों में कवि का मन प्रकृति के प्रति विशेष अनुरक्त नहीं हुआ है। प्रकृति के प्रति कवि की वृत्तियाँ पंचवटी में विशेष रूप से रमी हैं वहाँ कवि ने मानव मन की विभिन्न रागात्मक प्रवृत्तियों का सम्बन्ध प्रकृति से जोड़ा है। साकेत में यह रूप और भी निखरा हुआ प्रतीत होता है। कवि पंचवटी के प्रथम छन्द में ही देखता है कि चारु चन्द्र की चंचल किरणें जल-थल में खेल रही हैं और अवनि तथा अम्बर तक स्वच्छ चाँदनी छिटकी हुई है। हरी हरी घास पृथ्वी पर उगी हुई है, यह मानो धरती का प्रसन्नता-सूचक रोमांच है। मन्द पवन के झोंके से तरु भी झीम रहे

१ किरण कुमारी गुप्ता हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण पृ० २८०
२ मिलन पृ० ११

हैं। कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के योग से तृण और तरु में प्राण डाल दी है।[1]

रात को ओस बिन्दु पृथ्वी पर गिरते हैं और प्रातःकाल सूर्य का दर्शन करते ही वे लुप्त हो जाते हैं। इस शाश्वत सत्य का कितना यथार्थ चित्रण गुप्तजी ने पंचवटी में किया है, देखिये

है बिखेर देती वसुन्धरा मोती, सब के सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको सदा सवेरा होने पर।
और विरामदायिनी अपनी सन्ध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका नया रूप झलकाता है।

पंचवटी ७ पृ ८

प्रातःकाल ओस-मुक्ताओं को बटोरते हुए सूर्य की किरणों का चित्र बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। दिन भर के अनवरत परिश्रम के पश्चात् वह वे मोती विश्राम देने वाली सन्ध्या को उपहार स्वरूप दे जाता है जिससे रात्रि में सन्ध्या का श्याम शरीर असंख्य तारागणों से जग मगा उठता है। एक ही छंद में ओस बरसाती हुई रात प्रातःकाल तथा तारों से जड़ी रात तीन-तीन चित्र संकलित किये गये हैं।

पशु-पक्षी तथा कीट-पतंगों पर आधारित रूप विधान

काव्य का कलेवर अनुभूति की मार्मिक विभूति से समन्वित होने पर ही सुन्दर और सुरुचिपूर्ण बन पाता है। अनुभूति की सौन्दर्य ग्रहण करने की जितनी ही क्षमता होगी कविता उतनी ही सुन्दर तथा आनन्ददायक होगी। सुन्दर उपमान काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं, इसके विपरीत असुन्दर उपमान भावबोधन में नितान्त असमर्थ होते हैं। एक ऐसे ही असुन्दर उपमान की सुन्दरता द्रष्टव्य है। प्रसंग राम वन-गमन का है। राम के वियोग में राजा दशरथ भी मृत्यु के समीप पहुँच चुके हैं। उसी समय का यह दृश्य है :

गजराज पंक में धँसा हुआ,
छटपट करता था फँसा हुआ।
हथिनियाँ पास चिल्लाती थीं
वे विवश, विकल चिल्लाती थीं।

—साकेत षष्ठ सर्ग पृ० १५७

राजा दशरथ गजराज के सदृश दुःख-पंक में धँसे हुए छटपटा रहे थे और हथिनियों के सदृश रानियाँ बिलख-बिलख चिल्ला रही थीं। गजराज तथा हथिनियों को राजा दशरथ तथा रानियों के लिए क्रमशः उपमान चुना है। इससे राजा दशरथ तथा उनकी रानियों का बड़ा विकृत रूप सामने आता है। चित्र में न रूप-साम्य है न धर्म-साम्य केवल प्रभाव-साम्य की झलक मिलती है। वह भी असुन्दर उपमान से नष्ट हो जाता है। कवि ने ऐसे कारुणिक प्रसंग पर हास्य रस को उद्दीप्त करने वाले उपमानों का चयन करके रस में व्याघात पहुँचाया है, जिससे कला और कविता दोनों की साथ-साथ हत्या हो गई है।

---

१. पंचवटी, छंद सं १ पृ ५

इसी से मेल खाता हुआ दूसरा चित्र देखिये

लक्ष्मण तथा उर्मिला पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे से प्रेमालाप तथा छेड़छाड़ कर रहे हैं। उसी प्रसंग में लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं

क्यों न अब मैं मत्त-गज-सा झूम लूँ ?
कर-कमल लाओ तुम्हारा चूम लूँ।

—साकेत प्रथम सर्ग पृ० २१

कवि को हाथी से विशेष प्रेम-सा हो गया है इसीलिए मौके-बे-मौके उसका उपयोग करने से वह चूकता नहीं। लक्ष्मण को मत्त-गज बनाकर उर्मिला के कर-कमल को चूमने में पता नहीं कवि ने किस रस की उद्भावना की है। इसी प्रकार तीसरे चित्र में भी कवि ने 'कैकेयी' के लिए हथिनी का उपमान चुना है। कोप-भवन का प्रसंग है। कैकेयी दुर्गा के वेश में उग्र रूप धारण किये हुए हैं। इसी उग्रदशा में उसने अपने शृंगार तोड़-फोड़ कर फेंक दिये हैं। उसी दृश्य का चित्र गुप्तजी ने निम्नलिखित पंक्तियों में खींचा है

मत्त करिणी सी दलकर फूल
घूमने लगी आपको भूल।

—साकेत द्वितीय सर्ग, पृ० ३९

कैकेयी को 'मत्त करिणी-सी' बना कर कवि ने पुनः जुगुप्सा उत्पन्न की है, जिससे चित्र का सौन्दर्य नष्ट भ्रष्ट हो गया है।

गुप्तजी का साँपों से भी कम मोह नहीं रहा है। फलस्वरूप सर्प का यत्र-तत्र उपमान बनाकर काव्यसौंदर्य बढ़ाने की चेष्टा की है।

क—ग्रास में लेकर यों विष वस्त
नागिनी निकली वह हो हस्त — साकेत द्वितीय सर्ग पृ० ४९
ख—कहाँ था तू संशय के साथ — „ „ ३१
ग—मुझे सुत भक्षिणी साँपिन समझते — „ तृतीय सर्ग „ ६०
घ—खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह — „ „ ६१

उपर्युक्त चार उदाहरणों में (ख) को छोड़कर शेष में नागिनी 'कैकेयी' का उपमान बनकर आयी है। प्रत्येक उदाहरण में कैकेयी के लिए नागिन का उपमान काफी सटीक बैठता है। धर्मसाम्य पर आधारित ये चित्र पति हंता तथा पुत्र भक्षिणी कैकेयी का रूप प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण (ख) 'संशय' जैसे अमूर्त भाव को नाग का उपमान देकर मूर्त किया गया है। संशय नाग की ही भाँति जहरीला होता है, इसलिए चित्र में कोई भ्रष्टता नहीं है।

एक स्थल पर कैकेयी को सिंहिनी का भी रूप दिया गया है वह सिंहिनी जो शिकार न पाने पर बेचैन हो उठती है

न पाकर मानों आज शिकार
सिंहिनी सोती थी सविकार

—साकेत द्वितीय सर्ग, पृ० ४३

नवम सर्ग में उर्मिला की वियोग-दशा का मार्मिक चित्रण करते हुए गुप्तजी ने

है। कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के योग से तृण और तरु में प्राण डाल दी है।[1]

रात को ओस बिन्दु पृथ्वी पर गिरते हैं और प्रातःकाल सूर्य का दर्शन करते ही वे लुप्त हो जाते हैं। इस शाश्वत सत्य का कितना यथार्थ चित्रण गुप्तजी ने पंचवटी में किया है, देखिये

> है बिखेर देती वसुन्धरा मोती, सब के सोने पर,
> रवि बटोर लेता है उनको सदा सबेरा होने पर।
> और विरामदायिनी अपनी सन्ध्या को दे जाता है,
> शून्य श्याम तनु जिससे उसका नया रूप झलकाता है।

पंचवटी ७ पृ० ८

प्रातःकाल ओस-मुक्ताओं को बटोरते हुए सूर्य की किरणों का चित्र बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। दिन भर के अनवरत परिश्रम के पश्चात् वह वे मोती विश्राम देने वाली सन्ध्या को उपहार स्वरूप दे जाता है जिससे रात्रि में संध्या का श्याम शरीर असंख्य तारागणों से जग मगा उठता है। एक ही छंद में ओस बरसाती हुई रात प्रातःकाल तथा तारों से जड़ी रात तीन-तीन चित्र संकलित किये गये हैं।

पशु-पक्षी तथा कीट-पतंगों पर आधारित रूप विधान

काव्य का कलेवर अनुभूति की मार्मिक विभूति से समन्वित होने पर ही सुन्दर और सुरुचिपूर्ण बन पाता है। अनुभूति की सौन्दर्य वहन करने की जितनी ही क्षमता होगी कविता उतनी ही सुन्दर तथा आनन्ददायक होगी। सुन्दर उपमान काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं, इसके विपरीत असुन्दर उपमान भावबोधन में नितान्त असमर्थ होते हैं। एक ऐसे ही असुन्दर उपमान की सुन्दरता द्रष्टव्य है। प्रसंग राम वन-गमन का है। राम के वियोग में राजा दशरथ भी मृत्यु के समीप पहुँच चुके हैं। उसी समय का यह दृश्य है

> गजराज पंक में धँसा हुआ,
> छटपट करता था फँसा हुआ।
> हथिनियाँ पास चिल्लाती थीं,
> वे विवश विकल बिल्लाती थीं।

—साकेत षष्ठ सर्ग पृ० १९७

राजा दशरथ गजराज के सदृश दुःख-पंक में धँसे हुए छटपटा रहे थे और हथिनियों के सदृश रानियाँ विवश-विकल चिल्ला रही थीं। गजराज तथा हथिनियों को राजा दशरथ तथा रानियों के लिए क्रमशः उपमान चुना है। इससे राजा दशरथ तथा उनकी रानियों का बड़ा विकृत रूप सामने आता है। चित्र में न रूप-साम्य है न धर्म-साम्य केवल प्रभाव-साम्य की झलक मिलती है। वह भी असुन्दर उपमान से नष्ट हो जाता है। कवि ने ऐसे कारुणिक प्रसंग पर हास्य रस को उद्दीप्त करने वाले उपमानों का चयन करके रस में व्याघात पहुँचाया है, जिससे कला और कविता दोनों की साथ-साथ हत्या हो गई है।

---

१. पंचवटी, छ द सं १ पृ १

इसी से मेल खाता हुआ दूसरा चित्र देखिये

लक्ष्मण तथा उर्मिला पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे से प्रेमालाप तथा छेड़छाड़ कर हैं। उसी प्रसंग में लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं

क्यों न मत्त मैं मत्त-गज-सा झूम लूँ ?
कर-कमल लाओ तुम्हारा चूम लूँ।

—साकेत प्रथम सर्ग पृ० २१

कवि को हाथी से विशेष प्रेम-सा हो गया है इसीलिए मौके-बे-मौके उसका उपयोग रने से वह चूकता नहीं। लक्ष्मण को मत्त-गज बनाकर उर्मिला के कर-कमल को चूमने में ता नहीं कवि ने किस रस की उद्भावना की है। इसी प्रकार तीसरे चित्र में भी कवि ने कैयी' के लिए हथिनी का उपमान चुना है। कोप-भवन का प्रसंग है। कैकेयी दुर्गा के प में उग्र रूप धारण किये हुए हैं। इसी उन्मत्तता में उसने अपने शृंगार तोड़-फोड़ कर फेंक ये हैं। उसी दृश्य का चित्र गुप्तजी ने निम्नलिखित पंक्तियों में खींचा है

मत्त करिणी सी दलकर फूल
घूमने लगी आपको भूल।

—साकेत द्वितीय सर्ग पृ० ३६

कैकेयी को 'मत्त करिणी-सी' बना कर कवि ने पुनः जुगुप्सा उत्पन्न की है, जिससे चित्र का सौन्दर्य नष्ट भ्रष्ट हो गया है।

गुप्तजी का साँपों से भी कम मोह नहीं रहा है। फलस्वरूप सर्प को यत्र-तत्र उपमान बनाकर काव्यसौंदर्य बढ़ाने की चेष्टा की है।

क—अस्त में लेकर यों विष दन्त नागिनी निकली वह हा हन्त	साकेत द्वितीय सर्ग पृ० ४९
ख—कहाँ था तू संशय के नाग	" " ३३
ग—तुम्हें सुन मणिनी साविष समझने	तृतीय सर्ग , ६०
घ—खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह	" " ६१

उपर्युक्त चार उद्धरणों में (ग) को छोड़कर शेष में नागिनी 'कैकेयी' का उपमान बनकर आयी है। प्रत्येक उद्धरण में कैकेयी के लिए नागिन का उपमान काफी सटीक बैठता है। धर्मशास्त्र पर आधारित व चित्र पति ईर्ष्या तथा पुत्र-मदिरा कैकेयी का रूप प्रस्तुत करते हैं। उद्धरण (ख) 'संशय' जैसे अमूर्त भाव का नाग का उपमान देकर मूर्त किया गया है। संशय काल की ही भाँति डहरीला होता है, इसलिए चित्र में कोई दुर्बलता नहीं है।

एक स्थल पर कैकेयी को सिंहिनी का भी रूप दिया गया है, वह सिंहिनी जो शिकार न पाने पर बेचैन हो उठती है

न पाकर मानों अपना शिकार
सिंहिनी लौटी थी मविकार

—साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ४३

नवम सर्ग में उर्मिला की वियोग-दशा का मार्मिक चित्रण करते हुए, गुप्तजी ने

आकाश की उपमा सर्प से दी है। देखिए

हुआ विदीर्ण जहाँ-तहाँ श्वेत-आवरण जीर्ण,
व्योम दीर्घ कंचुक धरे विषधर सा विस्तीर्ण।

—साकेत नवम सर्ग पृ० २८२

उर्मिला के लिए आकाश सफेद पुरानी चादर सा लग रहा है जिसके फट जाने से उसकी नीलिमा दिखाई पड़ रही है। सम्भवतः बादलों के टुकड़ों को फटी हुई चादर बताया है। उस समय आकाश फटी हुई केंचुली धारण किए हुए सर्प-सा प्रतीत हो रहा है। तात्पर्य यह है कि वियोगावस्था में सुन्दर आकाश भी उर्मिला को काटने दौड़ रहा है। कीर खंजन शुक मराल और हिरण का भी उपमान के रूप में गुप्तजी ने प्रयोग किया है। एक स्थल पर हरिऔधजी ने कृष्ण की शुक से उपमा दी है।

मुखरित करता था सदन को था शुकों-सा

—प्रियप्रवास पृ० ७१

शुक को उपमान बनाकर बोलते हुए कृष्ण का बिम्ब मूर्तिमान किया गया है।

मानवीकरण

गुप्तजी ने पक्षियों में मानवीय व्यापारों की प्रतिष्ठापना करके उनका सजीव चित्र दिया है। सब पक्षियों के निद्रामग्न हो जाने पर 'मोर' रात्रि की निस्तब्धता भंग कर देता है इसका चित्र लक्ष्मण पंचवटी में रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से इस प्रकार रखते हैं

वैतालिक विहंग भाभी के सम्प्रति ध्यान लग्न से हैं।
नए गान की रचना में वे कवि-कुल तुल्य मगन से हैं।।
बीच-बीच में नर्तक केकी मानों यह कह देता है।
मैं तो प्रस्तुत हूं देखें कल कौन बड़ाई लेता है।।

—पंचवटी पृ० १४

निद्राभिभूत पक्षियों के लिए ध्यानमग्न कवि-कुल उपमान चुना गया है जो सोते हुए पक्षियों का प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर देता है।

पंचवटी में प्रकट होने वाली ऊषा का मोहक नारी रूप देखिए

इसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति-नटी का रंग
किरण-कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग।
कुछ-कुछ अरुण सुनहली कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी,
पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं ही ऊषा थी।।

—पंचवटी पृ० १७

किरण-कंटकों से श्यामाम्बर का फटना 'कुछ-कुछ अरुण सुनहली कुछ-कुछ' वेशभूषा में पंचवटी की कुटी में झांकने से सहज ही एक नारी की छवि पुतलियों में तैर जाती है। गुप्तजी ने ऊषा के वसन को रंगने के लिए अरुण और सुनहले रंगों का उपयोग किया है। रंगों के चयन तथा संतुलन और समन्वय से मूर्ति की कलात्मकता और बढ़ जाती है।

प्रातःकालीन सूर्य तथा उसके क्रिया-कलापों का गत्यात्मक चित्र देखिए

सखि, नील नभस्सर में उतरा
यह हंस अहा ! तरता-तरता
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं
निकला जिनको चरता-चरता।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी
चलता उनको धरता-धरता,
गड़ जाँय न कंटक भूतल के
कर डाल रहा डरता-डरता।

—साकेत नवम सर्ग पृ॰ २६९

उर्मिला कहती है कि हे सखी, नभ-रूपी इस नील-सरोवर में यह सूर्य-रूपी हंस तैरता-तरता उतरा है। इसने तारे-रूपी सब मोती चुग लिए हैं। पृथ्वी पर जो ओस-कण अवशेष थे उन्हें भी यह निगल गया। (ओस-कण और मोती में रूप-साम्य है) आकाश मार्ग तो निष्कंटक है किन्तु पृथ्वी कंटकाकीर्ण है इसीलिए यह डर-डर कर अपने हाथ डाल रहा है हंस के रूप में सूर्य का यह रूप तो काफी प्राणवान है पर उसका कार्य-व्यापार असंगत है। इसके विषय में कन्हैयालाल सहल का मत द्रष्टव्य है। उनका कथन है कि ऊपर के छंद में रूपकातिशय से रूपक तो सिद्ध हो गया। (नहीं तो कहना पड़ता सूर्य रूपी हंस) पर बेचारे हंस की दुर्दशा हो गई है। दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि हंस तारे रूपी मोतियों को चरता चरता निकला। 'चरना' शब्द बैलों के लिए आता है, हंस के लिए तो मोती चुगना ही प्रयुक्त होता है। कर डाल रहा डरता-डरता में भी कर श्लिष्ट शब्द है जो हाथ और किरण दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, पर यहाँ भी देखने की बात यह है कि हंस पंजे से मोती नहीं चुग सकता चोंच से ही चुग सकता है।[1]

रामचरण स्नेही ने 'कुमुदिनी' का मानवीकरण करके उसमें प्राण प्रतिष्ठा की है। उनकी कुमुदिनी का नारी रूप दर्शनीय है।[2]

इसी प्रकार 'काश्मीर सुषमा' में श्रीधर पाठक ने प्रकृति को नारी रूप में चित्रित किया है।

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति"[3]

इन पंक्तियों में मानवीयता प्रकृति को उसके विविध अनुभावों (हँसति विहँसति पुलकति निरखति विरमति) के माध्यम से सजीव किया गया है। द्विवेदी-युग में प्रकृति का इतना सजीव वर्णन सराहनीय कहा जा सकता है।

निम्नलिखित पंक्तियों में सूर्य मरघट के रूप में और पृथ्वी मरघटी के रूप में चित्रित की गई है

---

१ डॉ॰ कन्हैयालाल सहल, साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव पृ॰ ४२
२ सरस्वती भाग ६, संख्या २, सन् १९०५
३ काश्मीर सुषमा पृ॰ ५

आकाश-जाल सब ओर तना,
रवि तन्तुवाय है आज बना।
करता है पद-प्रहार वही,
मक्खी-सी भिन्ना रही मही ॥[1]

गुप्तजी ने उपर्युक्त पंक्तियों में विराट् रूपक का प्रयोग करके सूर्य को मकड़े का जाल कहा है जो आकाश मंडल में तना हुआ है। पृथ्वी मक्खी की तरह उस जाल में फँसी है और सूर्य-मकड़ा किरणरूपी पैरों से उसे मार रहा है। चित्र की कलात्मकता अलंकार के बोझ से दब सी गई है।

आदि काल से कविगण प्रकृति को मानव के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी चित्रित करते आये हैं। हरिऔध ने भी कृष्ण के वियोग में सारी प्रकृति को विपन्न और दुःखी बनाया है।

चिंता की सी कुटिल उठती अंक में जो तरंगें।
वे थीं मानों प्रकट करतीं भानुजा की व्यथायें।
धीरे-धीरे मृदु पवन में चाव से थी न डोली।
शाखाओं के सहित लतिका शोक से कंपिता थी।

—प्रियप्रवास पंचम सर्ग पृ० ४५

यमुना जी में जो तरंगें उठ रही थीं मानों वे व्यथायें मूर्तिमान हो रही हैं। इसी प्रकार शाखाओं सहित लतिका भी शोकमग्न थी। प्रभाव-साम्य पर आधारित ऐसे चित्र बड़े मार्मिक होते हैं। कालिदास ने मेघदूत में मेघ को यक्ष का दूत बनाकर विरहिणी यक्षिणी के पास भेजा था। ठीक उसी प्रकार हरिऔध ने भी वायु को राधा की दूती बनाकर कृष्ण के पास भेजा है। अकृत्रिमता यही है कि वायु स्वयं कुछ कहती नहीं राधा उसके कार्य-व्यापारों का विवरण देती हुई उसका भाव निवेदन करती है।

मानवीय रूप-चित्रण

नाथूराम शंकर शर्मा तथा जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की सुन्दर कृतियाँ ब्रजभाषा में ही उपलब्ध हैं। परिणामस्वरूप इन दोनों कवियों की कविता का कलात्मक निखार रीति कालीन परम्परा के अधिक समीप है। मानवीय छवि का चित्रांकन करते समय अंग प्रत्यंग के लिए रीतिकालीन प्राचीन रूढ़ उपमानों का सहारा लिया गया है जिनकी चमक-दमक छाया धाव-धूप तक आते-आते मंद पड़ गई। नाथूराम शंकर शर्मा की नायिका का नख-शिख चित्रण देखिये।

सीस घन हीर और धीरता तरंग तुंड।
चिबुकी चिबुक नाभि भंवर परत हैं॥
चाहीं भुज पाद मध्य मेघ कुच शृंग हिम।
कंचुकी की ओट ठीक बीच न परत हैं॥

---

१. साकेत, नवम सर्ग पृ० १७०

केश कोस करछम कपोल मुति सीप सौंक ।
भृकुटी कुटिल मय सोचन करत हैं ॥
'शंकर' रसिक पुरा गोपी बड़ भागी लोग
ऐसे रूप सागर में मज्जन करत हैं ॥
—कविता कौमुदी भाग २, पृ० १०८

उपर्युक्त पंक्तियों में त्रिवली, चिबुक, नाभी, कुच केश नाक तथा नेत्रादि के प्राचीन घिसे-पिटाए उपमान दिये गये हैं जिससे न रूप में मौलिकता आ पाई है और न ही काव्य सौष्ठव में ही वृद्धि हुई है।

इसी से साम्य रखता हुआ 'शृंगार लहरी' में 'रत्नाकर' की नायिका का रूप देखिये

"उन्नत ललाट नैन लोलनि कपोलनि पै,
अधर अमोलनि पै ललकि लुभान्यों लाल ॥'[1]

इन पंक्तियों में ललाट नयन, कपोल अधर तथा उरोजों के लिए कोई अप्रस्तुत नहीं है। इन अंगों का सीधा-सीधा कथन कर दिया है किन्तु त्रिवली तथा नाभी के लिए क्रमशः 'तरंगनि' और 'भौंर' उपमान चुने गए हैं। कटि का चित्र देते हुए 'रत्नाकर' ने रीतिकालीन ऊहात्मक प्रणाली का ही अनुसरण किया है। नायिका की कटि इतनी सूक्ष्म है कि खोजने पर भी नहीं मिलती। अलंकारों के बोझ से नायिका के अंग दब से गये हैं अतः रूप का स्वाभाविक निखार नहीं मिलता। कायिक अनुभावों पर आधारित नारी का एक मांसल चित्र द्रष्टव्य है

देखत की गोरी, मन श्याम, तन गोरी
गारी देत कोरी कोरी गोरी नेक न लजाति हो।
मेरी गेंद चोरी, तापै ऐसी सीनाजोरी,
रिस चोरी करो, 'शंकर' किशोरी क्यों रिसाति हो ॥
चोली के महावो, नहीं चोली दिखलाओ
जो न होय पर जाओ, आओ काहे सतराति हो।
सारी सरकाओ, अचरा में न दुराओ,
लाओ, कंचुकी में कंदुक दुराये कहाँ जाति हो ॥'[2]

नायिका निर्मोचित लज्जा से अपने उरोजों को दिखाना नहीं चाहती किन्तु नायक कहता है कि तुमने मेरी गेंद चोली के अन्दर छिपा रखी है। नायिका क्रुद्ध होकर कोरी-कोरी गाली देती है और रोष प्रकट करती है। नायक और नायिका की यह नोंक-झोंक रीतिकालीन कवियों की अभिजात शृंगारिक मनोवृत्ति का परिचय देती है।

वियोगिनी ब्रज बालाओं को उद्धव ब्रह्मज्ञान की दीक्षा देने गये हुए हैं किन्तु अब

---

१ रत्नाकर भाग १ पृ० ११

२ नाथूराम शंकर शर्मा, कविता कौमुदी, भाग २, पृ० [illegible]

गोपियों की वर्षा की क्षमा-सी, स्खलित लज्जित भूषा-सी भ्रमशीला स्मृति-सी चकित चौंकती श्रुति-सी भटकी भाषा-सी भावुक की माया-सी मर्म मृषा-सी भ्रान्त तृषा-सी थकान-सी हरिणी-सी बालक की कुचेष्टा-सी भट्टी-सी अबद्ध अचलता-सी धूली-सी उत्कंठा-सी बद्ध वारि लहरी-सी वृन्दावन की लकझोरी झाड़ी-सी, मृगतृष्णा-सी हत ईर्ष्या-सी विश्व व्याप्त समता-सी लोहित मसि-सी नलिनी-सी अलिनी-सी कलिका-सी वामतपस्विका-सी मति-सी जीवात्मा की गति-सी तिमिर तार माला-सी तथा ज्वाला-सी'[1] बनाकर उनका रूपानुभव तथा गुणानुभव कराया है। अमूर्त को मूर्त का उपमान बनाकर बिम्ब को प्राणवान् बना दिया है। इस प्रकार के सूक्ष्म और अशरीरी उपमान छायावादी कवियों की विशेषता रही है। यहाँ गुप्तजी में छायावादी कवि की प्रतिभा बोलती दृष्टिगत हो रही है बिम्ब का भाव तथा कलात्मक पक्ष दोनों सुन्दर बन पड़े हैं।

प्रियप्रवास में हरिऔध की राधा का रूप भी परंपरित उपमानों के सहारे खड़ा किया गया है। देखिए

रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य-मणि सी लावण्य-लीलामयी।
श्री राधा-मृदुभाषिणी मृग-दृगी-माधुर्य की मूर्ति थीं।

—चतुर्थ सर्ग, पृ० ११

राधा को रूपोद्यान की प्रफुल्ल कलिका तथा शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी बताया गया है। वे बिम्बानना तथा मृगदृगी हैं। इसी सर्ग के सातवें छंद में भी लगभग उन्हीं प्राचीन उपमानों से राधा के अंग-प्रत्यंग का शृंगार किया है। राधा के पग अधर तथा मुख के लिए क्रमशः सरोज बिम्बा तथा विद्रुम और अरविंद उपमान जुटाए गए हैं। पिटीपिटाई लकीर पर सँवारा गया राधा का रूप कोई विशेष आकर्षक नहीं बन पड़ा है।

पुरुष रूप

प्रियप्रवास में महाकवि हरिऔध ने प्राचीन उपमानों से अपने कृष्ण का कैसा शृंगार किया है देखिए

क—मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्र वाले—षष्ठ सर्ग, पृ० ५४
ख—तू देखेगी जलद-तन को— „ ५८
ग—नीले फूले कमल दल सी गात की श्यामता है। „ ५८
घ—प्यारे ही तू कमल दल से पाँव से पूत होगा „ ७०
ङ—मृदु विकसित ऐसा पंकजों के दलों सा।
वह नवल सलोने गात का लख मेरा। } सप्तम सर्ग पृ० ७८

उपर्युक्त पाँच उद्धरणों में कमल बार-बार उपमान बनकर आया है। कभी हरिऔध जी कृष्ण के नेत्र को कंज-सा बताते हैं कभी उनके पाँव को कमल दल-सा बताते हैं। कभी उनके गात की श्यामता कवि को नीले फूले कमल दल-सी लगती है, कभी वही गात 'मृदु'

1. मैथिलीशरण ग्रन्थ, १९५८, पृ १९१ से १९५ तक

बिम्बसम ऐसा पंकजों के दलों सा लगता है। यही नहीं श्याम के भ्राता भी 'सित सरसिज ऐसे गात'[1] वाले हैं। इस प्रकार हरिऔध के कृष्ण के अंग-प्रत्यंग के उपमान का अधिकांश भाग कमल के हिस्से पड़ा है—ओप में अवर, कालिन्दी दाड़िम, बिम्बा केला आदि उपमानों को जगह मिली है। इन उपमानों को संस्कृत तथा हिन्दी के प्राचीन कवियों ने भिन्न-भिन्न कर रूढ़ कर दिया है अब इनमें यह आभा नहीं है कि इनके प्रयोगमात्र से वर्ण्य विषय का चित्र अपनी सम्पूर्ण कमनीयता लेकर आँखों में झूल उठे।

स्मृति रूप-विधान

हरिऔधजी की विरह-विधुरा राधा कृष्ण के अनुरूप प्राकृतिक उपकरणों को देख-देख अपने मानस-पटल पर प्रियतम का चित्र बनाती तथा व्याकुल होती है। आकाश में उदित चन्द्र, अथवा कालिन्दी या सरोवर में विकसित पंकजों को देखकर राधा को कृष्ण के मुख पद्म और कर की स्मृति आ जाती है। पवन के स्पर्श में कृष्ण के कर-स्पर्श का अनुभव होता है। पुष्पों की सुरभि से उनके सुवासित मुख की गंध मन को उन्मत्त कर देती है।[2] उसी प्रकार 'फूली सन्ध्या परमप्रिय की कान्ति-सी दीखती है' रजनि-तन में भी श्याम का ही रंग पाती है और प्रफुल्लित ऊषा में कृष्ण की प्रसन्न मुख-मुद्रा की झलक मिलती है।[3] अपनी पंक्तियों में राधा कहती है कि मुझे 'भृंग मालिका' में उनकी अलकों की शोभा दिखाई पड़ती है, खंजनों और मृगों को देखकर उनके रसीले नैन याद आते हैं, कलभ-कर को देखकर उनकी दोनों बाँहें याद आती हैं—शुक को जब देखती हूँ तो उनकी नासिका की स्मृति मन को मरोर देती है। दाँतों में दाड़िमों की बिम्बाओं में अधर की कलों में 'वचन-सुख' की झलक दिखाई देती है। पक्षियों के मधुर स्वर में बाँसी की मधुर ध्वनि सुनाई देती है।[4]

इसी प्रकार साकेत में उर्मिला संयोगावस्था के दिनों का एक वर्षाकालीन स्मृति-चित्र देती है

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं, घटा छाई थी
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी,
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।

---

१ प्रियप्रवास सप्तम सर्ग, पृ० ७२
२ प्रियप्रवास षोडश सर्ग पृ० २२०
३ प्रियप्रवास, षोडश सर्ग पृ० २२१
४ „ „ २२१

उपर्युक्त पद्य का विश्लेषण करते हुए प० रामबहिन मिश्र[1] लिखते हैं कि इसमें उर्मिला आलम्बन विभाव है। उद्दीपन है बूँदों का पड़ना घटा का छाना फूल का चमकना झिल्लियों का झनकारना आदि। छाती में मुंह छिपाना आदि अनुभाव हैं। लज्जा, स्मृति हर्ष आदि संचारी भाव हैं। इन भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव विप्रलम्भ शृंगार रस में परिणत होकर ध्वनित होता है। सब मिलाकर प्रस्तुत पंक्तियों में पाठकों के समक्ष लक्ष्मण और उर्मिला के मिलन की घटना सजीव होकर आ जाती है।

सांस्कृतिक रूप विधान

हिन्दू स्त्रियों का भाल पर बिंदी लगाना एक अतिप्राचीन सांस्कृतिक प्रतीक है। इसी पृष्ठभूमि पर 'यामिनी' का चित्र गुप्तजी ने साकेत में खींचा है।

अरुण सन्ध्या को आगे ठेल
देखने को कुछ नूतन खेल,
सजे बिधु की बेंदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।—साकेत द्वितीय सर्ग पृ० ४१

इसमें यामिनी का मानवीकरण करके सौभाग्यवती सुंदरी का रूप दिया गया है जो अरुण सन्ध्या को आगे ठेल कर मस्तक पर चांद रूपी बिंदी लगाकर आ रही है। यामिनी के इस चित्रण द्वारा राम-वनवास की अप्रत्याशित घटना के घटित होने की पूर्व सूचना मिल जाती है।

मांगलिक अवसरों पर घरों के द्वार पर या मण्डप के चारों ओर बंदनवार बाँधी जाती है। बंदनवार एक सांस्कृतिक उपकरण है, प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से उसका चित्र देखिये

चली क्रौंच माला कहाँ लेकर बन्दनवार?
किस सुकृती का द्वार वह जहाँ मंगलाचार।

—साकेत नवम सर्ग पृ २८१

उड़ती हुई क्रौंच-माला उर्मिला को बन्दनवार के सदृश ज्ञात होती है जिसे देखकर वह कहती है कि वह किस पुण्यात्मा का द्वार होगा जहाँ मंगलाचार हो रहे हैं।

बच्चे को नजर या टोना न लग जाय इस भय से माताएँ बच्चों को काला टीका लगा देती हैं जिसे डिठौना कहते हैं, उसी डिठौने का चित्र निम्न पंक्तियों में देखिये

जन प्राची जननी ने शशि शिशु को जो किया डिठौना
उसे कलंक कहना, यह भी मानो कठोर होना है।

—साकेत नवम सर्ग पृ० २८४

पूर्व दिशा-रूपी जननी ने चन्द्रमा-रूपी बच्चे को पैदा किया है, बच्चे को नजर न लग जाय इसलिए डिठौना लगा दिया है इसे लोग भूल से चन्द्रमा का कलंक कहते हैं। इस चित्र से गोल-मटोल गोरे सुन्दर बच्चे का डिठौना लगा हुआ मुख सम्मुख नाच जाता है।

श्रावण के महीने में भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुसार स्त्रियाँ पेड़ों पर झूला डालकर झूलती हैं। 'रत्नाकर' ने शृंगारिक पृष्ठभूमि पर उसी का सरस चित्रण किया है,

१. काव्यदर्पण पृ ११४

देखिये

> मूरख हिलोरैं हुईं थोरे रस रंग भिजैं
> चौहल अर्मय-रति-सोमा कटि-कटि जात'[1]

इन पंक्तियों में हिंडोरे पर मुग्धा नायिका का लाज के मारे सिमट जाना तथा उसके घूँघट का हट जाना ये तीन गंध चित्र हैं जिनका निर्माण सांस्कृतिक उपकरणों से हुआ है।

इसी प्रकार 'रत्नाकर' ने यमुना से पानी भरकर लौटती हुई नायिका का वह चित्र प्रस्तुत किया है। देखिये

> दायें कर गागरि सँभारि मुकि बाईं ओर
> बाएँ कर-कंज मंजु घूँघट उठाइ कै।
>
> —रत्नाकर, भाग २ पृ० १२

इसमें बाएँ कर में गागर लिये हुए बाईं ओर झुकी हुई नायिका का चित्र काफी स्पष्ट है। चित्र की सरसता उस समय और बढ़ जाती है जब वह बाएँ हाथ से अपना घूँघट थोड़ा सा उठाती है।

भारतीय विधवा का एक सफल चित्र गुप्तजी के साकेत में देखिये

> सब ने रानी की ओर अचानक देखा
> वैधव्य तुषारावृता यथा विधुलेखा।
>
> —साकेत सप्तम सर्ग पृ० २१०

यहाँ कवि ने यह चाहा है कि वैधव्य को तुषार का रूपक देकर तथा रानियों को कान्तिहीन दिखाकर उनके दुःख की पराकाष्ठा को ही प्रकट न करें बल्कि यह भी सूचित करें कि राजा दशरथ अब इस लोक में नहीं रहे। विधुलेखा तो तुषारावृता हो सकती है पर वैधव्य के साथ इसका रूपक नहीं बन पाता। कवि का आशय है कि कुहरे में ढँकी धुँधली क्षीण चन्द्रकला जैसी रानी विवर्ण प्रतीत होती है। यहाँ रानी के रूप में वैधव्य साकार हो उठता है।

पौराणिक रूप विधान

> कटि के नीचे चिकुर-जाल में उलझ रहा था बायाँ हाथ
> खेल रहा हो ज्यों लहरों से लोल कमल भौंरों के साथ।
> दायाँ हाथ लिये था सुरभित—चित्र-विचित्र सुमन-माला
> टाँगा धनुष कि कल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला।
>
> —पंचवटी पृ० २१

उपर्युक्त पंक्तियों में गुप्तजी ने शूर्पणखा का रूप चित्रण करते समय पौराणिक उपकरणों को उपमान बनाया है। उसके दायें हाथ में चित्र-विचित्र सुमन-माला इस प्रकार प्रतीत हो रही थी मानों कल्पलता पर धनुष टँगा है अथवा मनसिज ने झूला डाला है। कल्पलता उसके हाथ का उपमान बनकर आया है और सुमन-माला का उपमान धनुष है। मनसिज का

---

1. रत्नाकर, दूसरा भाग वर्षाष्टक पृ० १११

भूषा फूलों का होता है इसीलिए कवि ने सुमन-माला को मनसिज का भूषा भी कहा है। इसमें कल्पकता तथा मनसिज पौराणिक उपकरण हैं जिनका उपयोग इस चित्र-निर्माण में किया गया है। उत्प्रेक्षा और संदेहालंकार का आश्रय पाने पर चित्र का कलापक्ष उभर आया है।

सीता और कौशल्या दोनों पौराणिक पात्र हैं। इन पात्रों का गुणानुभव कराने के लिए गुप्तजी ने इनके लिए क्रमशः उमा' और 'मेना' दो पौराणिक पात्रों को उपमान के रूप में चुना है।[1] चित्र साफ नहीं होता फिर भी उस रूप की कल्पना तो की जा सकती है जिसकी छवि उपमा अलंकार के माध्यम से खींची गई है।

निम्नलिखित पंक्तियों में अहिल्या-तारिणी भगवान् की चरण रज का प्रभाव-साम्य पर आधारित चित्र देखिये

बढ़ी पदों की ओर तरंगित सुरसरी,
मोद-भरी मदमत्त झूमती सी तरी।
बोली गुह ने धूलि अहिल्या-तारिणी,
कवि की मानस-कोष-विभूति-विहारिणी।

—साकेत पंचम सर्ग पृ० १२७

यहाँ 'अहिल्या-तारिणी' धूलि का विशेषण बन कर प्रयुक्त हुई है। इस विशेषण से भगवान् राम तथा अहिल्या का रूप छाया-छवि की भाँति सामने आ जाता है।

बहुत खोजबीन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस युग में ऐतिहासिक तथा पौराणिक वर्णन तो मिलते हैं किन्तु इन उपकरणों के माध्यम से चित्रों का निर्माण नहीं होता।

सामयिक रूप विधान। आर्थिक

गुप्तजी ने अपनी पुस्तक 'किसान' में किसानों की आर्थिक विपन्नता का भावपूर्ण चित्र खींचा है।[1]

कठिन वर्षा तथा शीत झेलते हुए किसान बैलों के साथ बैल बना हुआ कठिन परिश्रम में अनवरत लगा रहता है फिर भी उसका उदर भूखा रहता है। यह भाव-प्रधान चित्र इतिवृत्तात्मक शैली पर आधारित होने पर भी अपना प्रभाव पाठकों पर छोड़ ही जाता है। इसी प्रकार दूसरे चित्र में किसान यह बताना चाहता है कि हम लोग क्यों दुःखी रहते हैं।[1]

किसान पसीना और खून एक करके जो कुछ कमाता है उसे महाजन सूद में छीन लेता है, परिणामस्वरूप भूखा किसान आँसू के घूँट पी-पी कर दिन काटते-काटते ऐसा जीवन जीने के लिए विवश हो गया है। इस चित्र में भी कलात्मकता तो नहीं फिर भी प्रभावोत्पादकता विशेष रूप से परिलक्षित होती है। यथाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की सहानुभूति किसानों के प्रति विशेष रूप से प्रगट हुई है।

---

१ साकेत चतुर्थ सर्ग, पृ० ७७
२ किसान, पृ० ४
३ किसान पृ० ६
४ दुखिया किसान सरस्वती भाग १८, संख्या १५, सन् १९१०

सामाजिक रूप विधान

प्राचीन सामाजिक मर्यादाओं के अनुसार पुरुष एक समय एक ही पत्नी से विवाह कर सकता है। इस लक्ष्मण रेखा को उल्लंघन करने वाला समाजच्युत कर दिया जाता है। उसी प्रकार का संकेत गुप्तजी ने 'पंचवटी' में एक शब्द चित्र द्वारा किया है। लक्ष्मण सूर्पणखा से अपनी सामाजिक स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि—

आप शान्त हों, आप शान्त हों,
कि मैं विवाहित हूँ बाले

— पंचवटी, पृ० १२

गुप्तजी ने भारतीय समाज में पत्नी नारियों की विवशता का बड़ा ही प्रभाव-पूर्ण चित्रण किया है। साथ ही साथ पुरुषों की निरंकुशता की ओर संकेत करते हुए उनका भ अनुभूति-जन्य काल्पनिक चित्र दिया। देखिये

नर के बांटे क्या नारी की
नग्न-मूर्ति ही आई ?
माँ, बेटी या बहिन हाय ! क्या
संग नहीं वह लाई ? —द्वापर, पृ० १०

यद्यपि उपर्युक्त पंक्तियों में चित्र-निर्माण की क्रिया में किसी अप्रस्तुत का आश्रय नहीं लिया गया है फिर भी नारी की विवशता तथा पुरुषों की कामुक और पाशविक प्रवृत्ति की एक भावपूर्ण मार्मिक चित्र अपने पूर्ण वेग से उभर आया है।

भाव रूप विधान भावात्मक चित्र

उद्धव के ब्रह्मज्ञान की नीरस शिक्षा सुन कर गोपियों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण 'रत्नाकर' ने उद्धव-शतक में किया है, देखिये

सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान।
कोऊ थहरानी कोऊ थानहि थिरानी हैं॥[1]

गोपियों के ऊपर उद्धव के संदेश का अलग-अलग प्रभाव पड़ा है। कोई कम्पित हो उठी, कोई अपने स्थान पर जड़वत् हो गई, कोई क्रुद्ध हुई, कोई प्रलाप करने लगी, कोई खिसिया गई, कोई व्याकुल हुई, कोई पसीने-पसीने हो गई, किसी की आँखों में आँसू छलछला आये। कोई बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ी। कोई श्याम का नाम ले-लेकर प्रलाप करने लगी और किसी ने कोमल कलेजे को थाम लिया। गोपियों के ये चित्र बनते हैं जो मन को बरबस झकझोर देते हैं।

इसी प्रसंग में गोपियों की खीज का एक चित्र देखिए

बैठी हैं न ऊधौ ! आपु यहाँ के बता कौ हम,
कूबरी कहै देति एक कान्ह की कमेरी हैं।

—उद्धव-शतक, छंद ४९

---

१. उद्धव शतक, छन्द २४

इसमें प्रेम की अनन्य मूर्ति गोपियों की खीझ और रीझ का भावपूर्ण चित्र सम्मुख आ जाता है।

अतिशयोक्ति की ऊहात्मक प्रणाली का सहारा लेकर विरह-निवेदन की प्रथा संस्कृत कवियों से लेकर हिन्दी के रीतिकाल तक चली आई। बिहारी तो इसमें सिद्धहस्त थे। बिहारी की वियोगिनी के समीप शीत ऋतु में भी विरले हिम्मत वाले ही जाते थे। यदि कोई अपनी जान पर खेलकर जाता भी था तो गीला कपड़ा ओढ़कर क्योंकि सर्वदा भय बना रहता था कि कहीं वियोगिनी की आह से शरीर जल न जाय—बिहारी की विरहिणी का चित्र देखिये

मांड़ै है आले बसन जाड़ै हू की रात।
साहस कै कै स्नेह बस सखी सबै ढिंग जात॥

इसी से मिलता-जुलता चित्र 'रत्नाकर' की गोपियों का है। गोपियाँ कृष्ण को पत्र लिखना चाहती हैं किन्तु पत्र लिखें तो कैसे

मुखि जाति स्याही लेखिनी कै नैकु डंक लागें।
अंक लागें कागद बररि बरि जात है॥

—उद्धव शतक छन्द १०

लेखनी में स्याही लगते ही स्याही सूख जाती है और कागज पर लिखने से कागज ही जल जाता है। इस प्रकार के अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण में मस्तिष्क का व्यायाम और कल्पना की बेसिर-पैर की उड़ान भले ही दिखाई दे हृदय को स्पर्श करने की शक्ति नहीं होती।

कृष्ण कल प्रातःकाल मथुरा जा रहे हैं। इस अप्रिय समाचार को सुनकर राधा अपनी सखी से कह रही हैं कि

पुप सम घटिकायें बार की बीतती थीं।
सखि! दिवस हमारे बीत कैसे सकेंगे॥

—प्रियप्रवास चतुर्थ सर्ग पृ० ४

उपर्युक्त पंक्तियों में राधा के प्रेम की एक झलक मात्र मिलती है। प्रियप्रवास के छठे सर्ग में हरिऔधजी ने राधा के विरह का बड़ा ही करुणाजनक चित्रण किया है। राधा वायु को दूती बनाकर कृष्ण के पास भेजती हैं और आदेश देती हैं कि यदि कोई कुम्हलाया हुआ पुष्प घर में पड़ा हो तो उसे प्रिय के चरणों पर डाल कर यह विनय करना कि इसी कुम्हलाये पुष्प के सदृश एक बाला तुम्हारे कमलवत चरणों को चूमना चाहती है।[1] यदि इस क्रिया से कृष्ण को मेरी याद न आये तो कुछ विकसित कमल-दल को उनके सामने ही विताड़ित होकर थोड़ा-थोड़ा जल में डुबोकर यह प्रकट कर देना कि इसी प्रकार एक अंभोज-नेत्रा अपनी आँखों को विरह-विधुरा वारि में बोरती है।[2] यदि इस चित्र से भी न विचलित हों तो पृथ्वी पर पड़ी हुई सूखती लता को कृष्ण के पैरों के समीप गिरा कर यह आभास दे देना

१ प्रियप्रवास षष्ठ सर्ग पृ० ७
२ „ „ „ ७१

कि इसी प्रकार तुम्हारी प्रीति से वञ्चित होकर राधा नित्यप्रति सूखती जा रही है।[1] यदि इतना सब न कर सको तो—

> धू के प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आ जा।
> जी जाऊँगी हृदयतल में मैं तुम्ही को लगा के॥
>
> —प्रियप्रवास षष्ठ सर्ग पृ० ७२

इन पंक्तियों में राधा के प्रेम और विरह का वास्तविक ढंग से चित्रण हुआ है। जिससे चित्र की सजीवता और तन्मयता और भी बढ़ जाती है।

इसी प्रकार साकेत में अनेक भावपूर्ण चित्र मिलते हैं। एक ओर हमें कैकेयी की ईर्ष्या और रोष का कटु चित्र मिलता है, दूसरी ओर कौशल्या की प्रसन्नता का, इसके पश्चात् राम की मनोदशा दशरथ की चिन्ता तथा उर्मिला के वियोग के अनेकानेक चित्र अपनी सम्पूर्ण गुरुता लेकर उभर आये हैं। साकेत के कुछ भावपूर्ण चित्र देखिये। विरह का एक ऊहात्मक चित्र है :

> मेरे गगन के गात्र में पड़े फफोले हाय!
> तो क्या मैं निःश्वास भी न लूँ आज निरुपाय?

उर्मिला की एक सखी कहती है कि गगन में जो तारे दिखाई पड़ रहे हैं वे तारे नहीं है, तेरी गरम साँस से आकाश के गात्र में फफोले पड़ गये हैं। इसी बात पर उर्मिला कहती है कि क्या मैं साँस लेना भी बन्द कर दूँ? ऐसी ऊहात्मक उक्तियाँ उर्दू और फारसी में बहुत मिलती हैं।[2] भ्रमरी को सम्बोधित करके उर्मिला अपनी विवशता तथा वियोगावस्था का भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है।

> बैठी है तू षट्पदी, निज सरसिज में लीन।
> सप्तपदी देकर यहाँ बैठी मैं गति हीन॥

हे भ्रमरी सप्तपदी देकर भी मैं यहाँ पतिहीन हो गई हूँ। सप्तपदी विवाह की एक प्रथा है जिसमें वर और वधू अग्नि के चारों ओर साथ में सात परिक्रमाएँ करते हैं। तात्पर्य यह कि षट्पदी तो उड़कर अपने प्रियतम से मिल सकती है किन्तु सप्तपदी देने वाली मैं यों निरुपाय होकर विरह की माला जप रही हूँ। सप्तपदी देने वाली उर्मिला के लिए 'षट्पदी' का उपमान बहुत न्यायसंगत है। स्मृति का एक चित्र तो और भी मादक हो गया है

> किसने मेरी स्मृति को बना दिया है निशीथ में मतवाला?
> नीलम के प्याले में बुदबुद देकर उफन रही वह हाला।

रात की सुहावनी छटा वियोगिनी उर्मिला को अनुपम बना रही है। इसीलिये घने नील आकाश में तारे उसे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे नीलम के प्याले में आग से भरी शराब हो। रात की शोभा के लिए हाला आकाश के लिए नीलम के प्याले तथा चमकते हुए तारों के लिए बुदबुद प्रतीक बनकर आये हैं। प्रतीकों के माध्यम से चित्र की सुघड़ता निखर आई है।

राम को वन के समीप पहुँचाकर रथ लौट आया है। राम के अभाव में रथ—

1 प्रियप्रवास षष्ठ सर्ग पृ० ७२
2. तारे तो वे नहीं मेरी आहों से रात को
फफोले पड़ गये हैं गगन आसमान में

और भरी...

भावपूर्ण चित्र दर्शनीय है।

रथ मानों एक रिक्त घन था,
जल भी न था वह गर्जन था।

—साकेत, षष्टम सर्ग पृ० १५१

उपर्युक्त पंक्तियों में रिक्त घन सूने रथ का उपमान बनकर आया है। यद्यपि इन दोनों पदार्थों में कोई रूप-सादृश्य नहीं है किन्तु साधर्म्य अवश्य है। रिक्त घन राम-विहीन रथ की शून्यता का परिचायक है। रिक्त घन जिस प्रकार पानी का दान करने के उपरांत मंथर गति से चलते हैं उसी प्रकार रथ राम को छोड़कर आ रहा था। अतः वह गतिहीन और जीवन रहित हो गया था। "वह उस सूने पथ पर अनन्त मार्ग में मंथर गति से खिसकते हुए बादलों के समान चल रहा था।" यहाँ साधर्म्य ही है। प्रभाव-साम्य भी रिक्तता के भाव में मिल जाता है।[1] प्राकृतिक उपकरणों की सहायता से चित्र का भाव और कलापक्ष दोनों निखर उठे हैं।

गोपियों की आतुरता का एक मार्मिक चित्र देखिये। उद्धव कृष्ण की पत्रिका लेकर ब्रज में आये हुए हैं, उसे देखने को गोपियों को बड़ी उत्सुकता और बेचैनी है।

उझकि-उझकि पद कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकों लिख्यो है कहा, हमकों लिख्यो है कहा,
हमकों लिख्यो है कहा, कहन सबै लगीं।

—उद्धव शतक छंद २७

पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार के योग से गोपियों की आतुरता के चित्र में प्राण-सा आ गया है। 'उझकि-उझकि पद कंजनि के पंजनि पै' कहने से व्याकुल गोपियों की बेचैनी का गत्यात्मक चित्र सम्मुख मूर्त उठता है।

गम्य रूप-विधान के अन्तर्गत व्यावसायिक, दैनंदिन तथा वैज्ञानिक चित्रों का अभाव सा इस युग में रहा है। इस कोटि के वर्णन तो यत्र-तत्र मिल जाते हैं किन्तु वे इतिवृत्तात्मक प्रणाली पर किये गये वर्णन मात्र ही हैं उनसे कोई चित्र खड़ा नहीं होता। इनकी अपेक्षा भावात्मक चित्र ढूंढ़ने पर कहीं-कहीं मिल जाते हैं।

गुणात्मक रूप विधान

विभिन्न इन्द्रियों के धर्म पर आधारित चित्र भी विरल हैं। कहीं-कहीं हरिऔध और गुप्तजी की रचनाओं में रंग और ध्वनि के वर्णन मिलते हैं। कहीं-कहीं उनसे चित्र बन जाता है और कहीं-कहीं उनका उपयोग वस्तु परिगणन की प्रणाली पर ही हुआ है।

प्रियप्रवास में हरिऔधजी ने 'गगन का कुछ लोहित हो चला' तथा 'गगन के तल की कालिमा' कहकर संध्या का चित्र दिया है। 'उज्ज्वल नीरज-सी कल कांति थी' 'सोने सी कमनीय कांति' 'सित सरसिज ऐसे गात' कहकर शरीर की सुन्दरता और रंग की ओर संकेत

---

१. डा० नगेन्द्र साकेत : एक अध्ययन, पृ० १११

किया है। इसी प्रकार गुप्तजी ने साकेत में शरीर की सुन्दरता का चित्र देने के लिए 'कनक-लतिका' कहा है, पद्मरागों से अधर तथा मोतियों से दाँत हैं।

सचेत ऊदे अरुणाभ बैंगनी
हरे मजीठी सित पीत संदली,
विचित्र-वेषी बहु अन्य वर्ण के
विहंग से थी लसिता वनस्थली।

—प्रियप्रवास नवम सर्ग पृ० १११

उपर्युक्त पंक्तियों में सचेत ऊदे, अरुणाभ बैंगनी हरे, मजीठी सित पीत तथा संदली रंगों को गिनाया भर गया है, उनका कोई चित्र सामने नहीं आता

कृष्ण को यशोदा कहती हैं कि वह 'मृदुल-कुसुम सा तुम्हें तूल-सा' तथा 'नव-किसलय सा है' (प्रियप्रवास पृ० १२२) इस कथन में स्पर्श-सुख का भान होता है। इस प्रकार 'सोंधे-बूटी अलक' (प्रियप्रवास, पृ० १२८) कहने से नासिका को गंध का आभास मिलता है। घ्राणात्मक चित्र छायावाद तथा प्रयोग काल की रचनाओं में अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। भारतेन्दु तथा द्विवेदी-युग में अन्य चित्रों की भाँति इनका भी अभाव ही रहा है।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि द्विवेदी-युग की कविताओं में सीधे-सादे आख्यानक काव्य तथा वर्णन विशेष मिलते हैं। रूप-विधान की दृष्टि से इस युग का कवित्व बहुत निर्बल है। एक बात और। इस युग में सियारामशरण गुप्त एक समर्थ कवि माने जाते हैं किन्तु इनके काव्य ग्रन्थों में रूप-विधान का पूर्णतया अभाव है। इन्होंने अपनी समस्त रचनाओं में इतिवृत्तात्मक शैली का ही अनुसरण किया है, जहाँ रूप-विधान की सृष्टि सम्भव न हो सकी।

---

१ [illegible]

अध्याय ४

छायावाद

विषय-प्रवेश और सामान्य प्रवृत्तियाँ

प्रथम महायुद्ध की विभीषिका ने भारतीय जन-मन को आतंकित कर दिया। साम्राज्यवादी शोषण-नीति से साधारण जनता अपना धैर्य खो बैठी। किन्तु, इस अधीरता में जागरण नहीं मूर्च्छना थी, आशा नहीं निराशा थी। साम्राज्यवाद के साथ-साथ पूँजीवाद का भी प्रबल झंझावात उठ खड़ा हुआ। उस अंधड़ और तूफान के अनियन्त्रित झोंकों से भारत का मध्यवर्गीय जन-समुदाय तथा किसान-मजदूर पतझड़ के सूखे पत्ते की भाँति एक चिनगारी की बाट जोह रहे थे। युद्ध समाप्त होने पर 'रौलेट एक्ट' के रूप में अंग्रेजों के दमन, अत्याचार तथा शोषण में और वृद्धि हुई। युद्ध ने मृत्यु का रूप धारण कर बहुतों को निगल लिया था; और बाद में बेकारी तथा महामारी से और भी लोग काल की क्षुधा शान्त कर रहे थे। १९१९ से १९३० के सारे राष्ट्रीय आन्दोलन असफल हो चुके थे। जनता स्वराज की आशा छोड़ती जा रही थी। मन में निराशा का निबिड़ अन्धकार छाया हुआ था। वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने भी हमारी प्राचीन मान्यताओं तथा मर्यादाओं को झकझोर दिया था। यहाँ तक कि उसने ईश्वर के अस्तित्व के आगे भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया। तात्पर्य यह कि निराशा के अनेकानेक कारण उस समय बीज रूप में विद्यमान थे जब छायावाद भ्रूणों के बल चल रहा था। जिस शिशु का निराशा में ही गर्भाधान हुआ जो अभाव के पालने पर वेदना के हाथों झुलाया गया भुखमरी और बेकारी की लोरियाँ सुनाकर जिसे सुलाने के उपक्रम किये गये वह बालक बड़ा होकर यदि निराशा के गीत गाता है तो उसमें आश्चर्य क्या ?

यह युग समष्टि का नहीं व्यष्टि का था। व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत तो हुआ किन्तु अनुकूल वातावरण और परिस्थितियों के अभाव में उसकी इच्छाएँ कुंठित हो गयीं फलतः लोगों की प्रवृत्तियों की धारा अन्तर्मुखी हो गयी। छायावाद का कवि भी उसी समाज का एक निरीह प्राणी था अतः उसकी रचनाओं में निराशा और व्यक्तिवाद का स्वर सुनाई पड़ा।

महायुद्ध के बाद की अंग्रेजी कविता भी अतिवैयक्तिकता बौद्धिकता दुरूहता सघर्ष अवसाद, निराशा आदि से भरी हुई है। वह भी १९वीं शताब्दी के कवियों के भाव और सौन्दर्य के वातावरण से कट कर अलग हो गयी है। १९वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध इंगलैण्ड में मध्यवर्गीय संस्कृति का चरमोन्नत युग रहा है। महायुद्ध के बाद उसमें विश्लेषण के चिन्ह प्रकट होने लगे। छायावाद तथा उत्तर-युद्धकालीन अंग्रेजी कविता, दोनों भिन्न रूप से, इस संक्रांति युग के स्वाभाविक विक्षोभ की अभिव्यक्तियाँ हैं।[1] तात्पर्य यह कि छायावाद युग में जो

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त, आधुनिक ... , ६

निराशा की भावना विस्तृत हुई वह अपने ही देश काल और युग का प्रभाव है अंग्रेजी कवि शेली और कीट्स टी० एस० इलियट का अन्धानुकरण नहीं है हम उसे प्रभावमात्र मान सकते हैं।

अक्सर यह सुना जाता है कि छायावादी काव्यधारा अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की लीक पर चली है, यह एक विवाद का विषय है जो मेरा मुख्य लक्ष्य नहीं है फिर भी मैं यह संकेत कर देना अनपेक्षित नहीं समझूँगा कि छायावाद ने रोमांटिक काव्यधारा से प्रेरणा पाने अवश्य की किन्तु यह कहना कि छायावाद अंग्रेजी रोमांटिक काव्यधारा का कोरा अनुवाद है, केवल एक भ्रम और आत्महीनता है। दोनों में साम्य अवश्य है। ये दोनों आन्दोलन कवि चित्त के आन्तरिक सौन्दर्य के आदर्श और बाहरी जगत् की एकदम भिन्न परिस्थिति के संघर्ष के परिणाम हैं। यही कारण है कि दोनों में देश और संस्कृति के भिन्न होने पर भी बहुत कुछ साम्य है।[1]

हमें यह जान लेना है कि रोमांटिक कविता के कौन-कौन से मुख्य उपकरण हैं जो छायावाद में वर्तमान हैं।

रोमांटिक काव्यधारा का लक्षण सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में इस प्रकार है

स्वच्छन्दतावादी कविता वह है जिसमें कल्पना की दृष्टि से उद्दीप्त अथवा निर्दिष्ट भावुकतामय जीवन की अनुभूति हो तथा जिसमें स्वयं कवि की आत्मा इस कल्पना-दृष्टि को सशक्त बनाती हुई निर्देशन करती हो।[2]

अतिशय सौन्दर्यप्रियता प्रकृतिप्रेम मानवतावाद रहस्यानुभूति तथा आत्माभिव्यक्ति आदि रोमांटिक कविता के मुख्य तत्त्व हैं। हमारे प्राचीन साहित्य में उपर्युक्त तत्त्व विद्यमान हैं, किन्तु युग और परिस्थितियों के दबाव से उनका रूप परिवर्तित हो गया उसकी मात्रा में अधिकता या न्यूनता हो गयी। जो परिवर्तित और परिवर्द्धित होकर छायावाद बना।[3]

अंग्रेजी में शेली बायरन और वर्ड्सवर्थ आदि में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के जिस रूप की अभिव्यक्ति हो वह फ्रांसीसी धारा से मिलती जुलती है। अतः यह कहना जैसे गलत होगा कि फ्रांसीसी-धारा जर्मन धारा के अनुकरण पर चली या अंग्रेजी-धारा फ्रांसीसी-धारा की अनुवर्तिनी थी उसी तरह यह कहना भी गलत होगा कि हिन्दी की छायावादी कविता पाश्चात्य (जर्मन, फ्रांसीसी और इंगलिश) धारा की नकल है। उस स्वच्छन्दतावादी धारा का जिससे छायावादी कविता प्रभावित है उत्तर पक्ष पहले अवसान हो चुका था और प्रथम महायुद्ध के बाद ही पाश्चात्य कविता स्वच्छन्दतावाद के अवशिष्ट प्रणालोन्मुखी और व्यक्ति-वादी अनास्थावादी और अकाल्पनिक तत्त्वों को ही एकांगी अभिव्यक्ति दे रही थी। छायावादी

१. रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव पृ० १४२

२. A History of English Literature, By Legouis and Cazamian P 97

३. कल्पना : पुस्तक परिचय सम्पादक, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] संख्या १ १९५५ पृ० ४

यदि सहसा उस अनुकरण पर ध्यान पड़ते तो उन पर अनुकरण-वृत्ति का आरोप सही उतरता । हमारी छायावादी कविता ने १९वीं सदी की पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी से कुछ सामान्य तत्त्व ग्रहण किये । अब हम कह सकते हैं कि हिन्दी में छायावाद का जन्म अपनी ही सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण हुआ । बीज रूप में छायावाद के सारे प्रमुख तत्त्व हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य तथा मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में वर्तमान थे पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की अनुकूल जलवायु मिलने पर वे छायावाद के रूप में प्रस्फुटित हो गये । छायावाद को इतना श्रेय अवश्य है कि वे बीज जो विभिन्न भारतीय कवियों की रचनाओं में यत्र-तत्र बिखरे हुए थे उन्हें संकलित करके उसने अभिनव रचना कौशल तथा भावभूमि का परिचय दिया ।

मानव-जीवन की यह एक अनिवार्य विशेषता है कि जब कोई स्थिति अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर रूढ़िवादी बन जाती है तब वह उसका विरोध करता है, और अपने मनोनुकूल एक अभिनव सृष्टि करता है। हिन्दी का भक्तियुग जब सारे संसार को 'सिया राम मय' जान कर लोगों को कविता के माध्यम से अध्यात्म की शिक्षा दे रहा था तब जगत संसार से विमुख हो परमात्मा की अलौकिक सत्ता की ओर उन्मुख हो रही थी । उसके विरोध में रीतिकालीन कवि शृंगारिक कविताओं को लेकर उठ खड़े हुए । फलस्वरूप लोगों का संसार से अनुराग बढ़ा अलौकिकता से लौकिकता की ओर झुकाव हुआ । किन्तु इसी रीतिकाल ने नायक-नायिकाओं की अश्लील चेष्टाओं तथा कामुक प्रवृत्तियों का नग्न चित्रण करते-करते लोगों को बेहोश कर दिया । लोगों की राष्ट्रीय भावना सामाजिक-चेतना एवं नायिका के अंग-प्रत्यंग में उद्भासित होने लगी तब हमारा बीसवीं सदी का साहित्य उसके विरोध में उठ खड़ा हुआ । फलतः द्विवेदी-युग ने नारी को परम अपावन मान कर कविता के क्षेत्र से उसे बहिष्कृत कर दिया । स्थूल चित्रण की ओर कवियों की रुचि हुई । अभिधा को ही कविता की कसौटी माना गया । इसी रीतियुगीन तथा द्विवेदीयुगीन कविता के विद्रोह में छायावाद-युग आया जिसने रीतिकालीन स्थूल नारी को छायारूप में चित्रित किया । नारी जो अब तक काम-तृप्ति का ही साधन बनी हुई थी देवि माँ सहचरि, प्राण कह कर पुकारी गयी । उसका शृंगार कृत्रिम अलंकारों से नहीं वरन् प्राकृतिक अलंकारों से हुआ । अभी तक जो प्रकृति केवल उद्दीपन विभाव का ही काम करती आ रही थी उसे विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया । प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसे सजीव कर दिया । अतः छायावाद आगे चलकर निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट हुआ

(१) द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की जगह भाव और सौन्दर्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण हुआ जो मूलतः द्विवेदी-युग की काव्यगत स्थूलता से असंतुष्ट कवि-सौन्दर्यानुभूति की सूक्ष्म कलात्मक अभिव्यक्ति की अकुलाहट का परिणाम था ।

(२) कवि के अन्तर्मन में सुप्त काम और रूप-लिप्सा की प्यास जगी जिस पर आदर्श निष्ठा का आवरण डाला गया ।

(३) तत्कालीन जीवन-मरण के प्रश्न से लगभग तटस्थ रहा । समाज-सापेक्ष और युगचैतन्य भावनाओं का सर्वथा लोप हो गया । अन्ततः कवि कल्पना-लोक में विचरण करना सीख गया ।

(४) प्रौढ़ काव्यपक्ष, परिमार्जित भाषा अभिव्यंजना और लक्षणा प्रणाली का अभिव्यक्ति में सहारा लिया गया। एक अलौकिक और अनिमेष भावलोक का उद्घाटन हुआ। ऐसी परिस्थिति में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का स्वर बंगला के माध्यम से हिन्दी में सुनाई पड़ा, जिसका प्रभाव इस पर नजर आने लगा। नजर ही आने लगा यह नहीं कहा जा सकता कि छायावाद मात्र एक उसी के प्रभाव का प्रतिफल है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में हम यही कहेंगे कि बहुधा छायावादी काव्य युग की तुलना यूरोप के उन्नीसवीं शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य-आन्दोलन से की जाती है और अक्सर प्रसाद निराला और पन्त की समता में वर्ड सवर्थ, शैली और कीट्स आदि का नाम लिया जाता है। जहाँ तक व्यक्तिगत परिस्थितियों और वस्तुजगत् की गतिविधियों का सम्बन्ध है दोनों में पर्याप्त समानता दिखाई देती है। एक हद तक इन दोनों की सामाजिक परिस्थितियों और दृष्टान्तों में समानता भी रही है। कदाचित् इसीलिए हिन्दी के इन कवियों की काव्यशैलियों में उनकी अनुभूति और कल्पना के स्वरूपों में और उनके साहित्यिक निर्माण में उक्त अंग्रेजी कवियों से एक बड़ी हद तक समानता भी मिलती है।[1]

छायावाद के कलापक्ष पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का स्पष्ट प्रभाव है जिसे पन्त, निराला और महादेवी ने स्वीकार भी किया है। नवीन छन्द-योजना (मुक्त छन्द) मानवीकरण, विशेषण विपर्यय मूर्त पर अमूर्त का और अमूर्त पर मूर्त का आरोप आदि छायावाद के कलात्मक उपकरण अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा से निकल कर छायावाद पर विशेष रूप से छा गये।

छायावाद की आत्मा

आत्माभिव्यञ्जन

छायावादी कवियों की आत्म-प्रसार की भावना ने ही वैयक्तिकता को जन्म दिया। रीतिकालीन कविता की दम घोटने वाली वायु की सड़ांध से छायावादी कवियों को मिचली सी आ रही थी, वे पिंजर-बद्ध पक्षी की भाँति उस कृत्रिम कारा को तोड़ उन्मुक्त आकाश में उड़ने के लिए कल्पना के पंख फड़फड़ा रहे थे। मध्ययुग की वैयक्तिकता तथा आत्म-निवेदन धार्मिक खोल ओढ़कर सामने आया और आधुनिक युग की वैयक्तिकता धर्म की खोल उतार कर सम्पूर्ण ऐहिकता लेकर आयी। प्राचीन काल में कवि-गण अपनी प्रणय-कहानी को सीधे सीधे न कह कर किसी माध्यम का सहारा लेते थे। जैसे रीतिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण की ओट में अपना प्रणय निवेदन किया और उसे ज्यों का त्यों पाठकों के सम्मुख रख दिया। यहाँ भी दुराव नहीं। मध्ययुग के भक्त कवियों ने केवल आत्म-निवेदन में ही इस पद्धति का सहारा लिया इसीलिए कबीर-मीरा तथा सूर-तुलसी के विनय-पदों में लोगों ने अधिक तन्मयता अनुभव की। मध्यवर्ग की सामाजिक आवश्यकता के कारण प्रेम का धरातल राजाओं और देवताओं के राजसी और स्वर्गीय धरातल से खिसक कर छायावाद-युग में मानवीय धरातल पर उतर आया। इस प्रकार भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन कवियों की "कल्पित

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १४।

मता तथा निर्वैयक्तिकता के प्रति छायावाद ने वैयक्तिकता का विद्रोह किया। यह
ोही भावना पाश्चात्य सभ्यता रीतिरिवाज और वैज्ञानिक प्रगति के अनुकूल झोंकों से
भी प्रज्वलित हो उठी। छायावादी कवियों ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता को वाणी देने के
(अनेकानेक प्रतीकों का प्रयोग किया जिसमें सब से प्रबल आवेग उनके निर्झर में है।
प्रकार निर्झर अनन्त कठोर शिलाखण्डों की छाती चीरता बीहड़ वन और ऊबड़-खाबड़
ों को सुधा-पान कराता हुआ निरन्तर आगे बढ़ा चला जाता है ठीक उसी प्रकार छाया-
ी कविता भी प्राचीन काव्यगत रूढ़ियों सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं की अनुल्लंघनीय
ाड़ों को तोड़ती हुई, साहित्य-जगत् में एक नवीन उन्मेष और नवीन यौवन लेकर आयी।
कविता-कामिनी को अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्राचीनता से करारी टक्कर
ी पड़ी 'पल्लव' की भूमिका में पन्तजी ने लिखा है—हम इस जब की जीर्ण शीर्ण
ों से भरी पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते इसकी संकीर्ण कारा में बन्दी हो
री आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक
ा है।"[1]

कला में कलाकार अपने को समाहित कर देना चाहता है। किन्तु प्राचीन काल के
 को अपना सुख-दुख, अपनी वासना भावना और आकांक्षा को व्यक्त करने के लिए
ाजिक मान्यता नहीं मिली थी इसलिए उस युग का श्रेष्ठ-कवि अपने को अपनी कविता
च्छन्न रखने का प्रयत्न करता हुआ दिखाई पड़ता है। 'तुलसी का स्वान्तःसुखाय' समाज
सुखानुभूति के लिए है। सूर की गोपियों के 'नयन निशदिन बरसते हैं', किन्तु सूर की
ी पलकों के दर्शन हमें नहीं होते। मीरा के पदों में जो वैयक्तिकता है वह निर्गुणियों की
ति का अनुसरण करती है। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रिया को सन्देश भेजता है कालिदास
भी प्रिया से कुछ भी नहीं कहते हैं।[2]

व्यक्ति-स्वातंत्र्य की यह भावना जो कवि के अवचेतन मन में युग-युग से सुषुप्तावस्था
पड़ी थी अनुकूल अवसर की बाट देख रही थी वह छायावाद में अपनी समस्त शक्ति से
 अवतीर्ण हुई। पन्त ने 'उच्छ्वास' 'आँसू' तथा 'ग्रंथि', प्रसाद ने 'आँसू' तथा निराला
'सरोज-स्मृति' तथा 'वनवेला' में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं सुखान्तों तथा प्रणय-बाधाओं
निर्भीक होकर उभारा है। निराला ने तो अपनी पुत्र परिणीता कन्या की पुण्यदेह सार्व
, प्रसाद ने 'हंस' के आत्मकथा अंक में अपनी आत्मकथा का स्पष्ट चित्र अंकित किया है।
देवी वर्मा के कथनानुसार 'आज, का साहित्यकार अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख
 है।' फिर स्वयं देवीजी की कविता में उनकी प्रत्येक साँस का इतिहास ढूँढ़ना दुर्लभ न
ा। यह दूसरी बात है कि समाज के भय से आतंकित होकर उन्होंने कहीं-कहीं अपने सहज
ुभावों पर रहस्यवाद का झीना पर्दा भी डाल दिया है।

इस प्रकार छायावादी कवि विश्व को अपनी अहं की आँखों से देखने के आदी हो गये
रिणामस्वरूप छायावाद-युग में आत्मगत कविता का बाहुल्य हुआ। सांसारिक दुख-सुख और
ह-मिलन को अपने ही दुख-सुख के माध्यम से व्यक्त किया गया।

१. पल्लव की भूमिका : श्री सुमित्रानन्दन पन्त
२. श्री रामखेलावन पांडे गीतिकाव्य पृ. १८५१

रहस्य भावना

सगुणोपासक भक्त कवि तुलसी और सूर की भाँति छायावादी कवियों ने अपने रहस्यवाद में न तो कहीं राम-कृष्ण का नाम लिया और न कबीर ऐसे निर्गुणवादियों की भाँति निराकार ब्रह्म का 'अनहदनाद' सुनाया। इसमें (छायावाद) निराकार की भावना तो थी किन्तु छायावादी ब्रह्म निराकार होते हुए भी बहुत सरस था इतना सरस कि कहीं-कहीं वह सूर अथवा मीरा के कृष्ण से भी मधुर हो गया है। भक्तिकाल में अलौकिकता की झोंक में अधिकांश कवियों ने एक ओर लौकिकता से मुख मोड़ लिया और दूसरी ओर आदर्श का घटाटोप आवरण चढ़ाकर संसार को माया मानकर मानव-जीवन तथा दृश्य-जगत् सबको एक फूँक में उड़ा दिया। इसके विपरीत छायावादी काव्य में मानव जीवन के सुख-दुख राग-विराग की जहाँ एक ओर झाँकी है वहाँ दूसरी ओर कवियों को इस तथाकथित माया-ग्रस्त जीव और जगत् से प्रेम है। प्राणीमात्र से ही नहीं छायावादी कवियों ने प्रकृति के कण-कण से प्यार किया। छायावादी कविता इस माने में पूर्णरूप से उन्मुक्त है वह संसार पर ही स्वर्ग उतारने का प्रयत्न करती है और अपनी इस क्रिया में उसे कोई आध्यात्मिक बन्धन स्वीकार नहीं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है कि "नई छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है परन्तु उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।"[1]

सन्त कवियों ने जीवन की उपेक्षा को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन समझा इसीलिए उन लोगों ने वैराग्य की घोषणा की। भक्त कवियों ने भी 'सियाराम मय सब जग जानी' कहकर मनुष्य की सत्ता प्रभु के ही नाते स्वीकार की। किन्तु छायावादी कवि विराग से नहीं राग से प्रेम करता है मुक्ति से नहीं बन्धन से उसे मोह है। कभी-कभी अन्तर्मुख और उन्मन बनना चाहता है। लेकिन ऐसा वह कर नहीं पाता। जीवन के यथार्थ की आँच दूसरे ही क्षण उसे कल्पना-नीड़ में आश्रय लेने के लिए बाध्य कर देती है। वस्तुतः वह पलायनवादी है उसका प्रेम कल्पना का प्रेम है जीवन की सक्रियता वहाँ नहीं है उसकी आकांक्षा अतृप्ति और तड़प उसके अन्तर की विवशता के ही प्रमाण हैं। जीवन में कुछ ऐसे क्षण भी आते हैं जब मानव भौतिक सुख-सुविधाओं अथवा दुःख असुविधाओं से ऊब कर पार्थिव से अपार्थिव जगत् की ओर जाना चाहता है। यद्यपि ऐसे क्षण जीवन में बहुत कम आते हैं किन्तु जब कभी आते हैं वे मन और आत्मा को झकझोर देते हैं और क्षण मात्र के लिए ही सही वे पार्थिव से अपार्थिव जगत् में पहुँचा देते हैं। फलस्वरूप जब कभी ऐसे क्षण आये हैं छायावादी कवि स्वर्ण ज्योत्स्ना के जगमगाते नक्षत्रों में यौवन के दुर्वह भार को न सहन करने वाले सुमन की मधुर सुरभि में आपस में टकराकर मधुर संगीत छेड़ने वाली तरंगों में विहग-कुल के कल-कंठ की मधुर लहरियों में तम तोम वाली तमिस्र के चमकते गवाक्षों में प्रात के हरीतिमायुक्त शाद्वल-ग्राम पर बिखरे ओस-कणों में मर्मर स्वर की ध्वनि फूँकने वाले पवन में और श्यामल घन के झिलमिल दुकूलों में अलौकिक सत्ता का संकेत और संदेश पाता है।[2]

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ० ३११

२ प्रसाद साहित्य-दर्पण छायावाद पृ० ४२

संसार की अनित्यता से भी छायावाद अधिक आतंकित है इसीलिए इस कोलाहलमय विश्व में उसे शांति नहीं मिलती वह सृष्टि का तात्पर्य अशांति मानता है और जगत् का अनवरत जीवन-संग्राम जहाँ स्वप्न में भी विराम नहीं मिलता उसे अप्रिय है इसलिए शांति की खोज वह क्षितिज के पार अपने काल्पनिक आदर्श-नीड़ में करता है।

छायावाद में वास्तिकता का भी प्रभाव छन-छन कर पड़ा है। उसकी धारणा है कि हम लोग एक ही ज्योति के अनेक दीप तथा एक ही सुषमा के अनेक मकान है, जिनमें उस सत्ता का ही आभास पाया जाता है।

निर्गुण या सगुण भक्त कवियों की रहस्य भावना उनके अन्तर्मन की विह्वल-पुकार की सहज सरल अभिव्यक्ति है जब कि छायावादी रहस्य भावना बौद्धिक रहस्यवाद है, जिसकी अध्यात्मवाद है, इसमें आत्मा की तन्मयता कम बुद्धि का विभ्रम अधिक है।

छायावाद में जिस रहस्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है वह कवि की जिज्ञासा-वृत्ति का सहज प्रतिफलन है जिसे दार्शनिकता ने अपना संबल देकर और समृद्ध कर दिया है। कवि एक सामान्य प्राणी ही है जिसकी आँखों में प्रकृति अपनी नाना-रूपात्मक अभिव्यक्ति से विस्मय और कुतूहल की भावना उत्पन्न करती रहती है। यही विस्मय और कुतूहल की भावना अभिव्यक्त होकर एक ओर जहाँ छायावादी कविता में चमत्कार और रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की मूल प्रेरणा रही है वहाँ अभिव्यक्ति के अनूठे रूप और अन्य अनेक अभिनव एवं सर्वथा मौलिक सौन्दर्य गव भाव-सृष्टियों के बल पर छायावाद के काव्य-वैभव और कलात्मकता को बढ़ाने में भी समर्थ हुई है। कारण यह रहस्य कवि के अन्तर-वृत्त और बाह्य परिवेश दोनों में विराजमान है। इसकी गहराई में पैठने के लिए वह आदि से ही प्रयत्नशील रहा है। उसकी आँखों में चमत्कार उत्पन्न करने वाली प्रकृति की जो नाना-रूपात्मक शक्तियाँ उसके सामने पड़ती रही हैं उनकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के अतिरिक्त वह उस अमरत्व और असीम शक्ति को भी जानने-समझने का प्रयास करता है जो उनकी संचालिका है।

वेद-मंत्र 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' उसकी इसी जिज्ञासावृत्ति का परिचायक है। उपनिषदों में परमात्मा के निर्विशेष रूप की जो विभिन्न व्याख्याएँ मिलती हैं, वे अपनी विविधता और विस्तार में कम रहस्यात्मक नहीं है। बाद में यह रहस्याभिव्यक्ति थोड़ी-बहुत सभी सगुण और निर्गुण कवियों की वाणी में मिलती है। भारतीय काव्य-साहित्य में ही नहीं विश्व के अन्य अनेक काव्य-साहित्यों में भी यह रहस्य-भावना व्यक्त हुई है। महादेवी वर्मा ने लिखा है हमारी अन्तःशक्ति भी एक रहस्य से पूर्ण है और बाह्य जगत् का विकास क्रम भी अतः जीवन में ऐसे अनेक क्षण आते रहे हैं जिनमें हम इस रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इस रहस्य का आभास या अनुभूति मनुष्य के लिए स्वाभाविक रही है—अन्यथा हम सभी देशों के समृद्ध काव्य-साहित्य में किसी-न-किसी रूप में इस रहस्य भावना का परिचय नहीं पाते।[1]

छायावाद में अभिव्यक्त रहस्य भावना का रंग और रूप कुछ और ही है। छायावादी कवि के सम्मुख रहस्य भावना का एक बहुत ही लम्बा सूत्र प्रस्तुत था जो वैदिक-काव्य से

१. महादेवी वर्मा आधुनिक कवि भूमिका पृ० १६

लेकर उसके सक्रान्ति-युग तक की सीमा-रेखाएँ छूता था। इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी सजग अध्ययन और सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवेक्षण को लेकर चला था। उसने प्रकृति व विभिन्न उपकरणों में एक ओर जहाँ मानवीय छायाओं की झाँकी पायी वहाँ दूसरी ओर उसके कण प्रतिकण में उसे विराटत्व के दर्शन भी हुए। यहीं से उसमें रहस्य की सृष्टि प्रारंभ हुई। उस रहस्य पर और भी गाढ़ा रंग चढ़ा जब उसने ब्रह्म और जीव के विभिन्न सम्बन्धों में उसे बाँधने का प्रयास किया।

उनकी यह रहस्य-भावना पृथक्-पृथक् विभिन्न प्रभावों को लेकर अनेक रूपों में प्रकट हुई है। प्रभाव की दृष्टि से पन्त पर पाश्चात्य पूँजीवादी प्राकृतिक दर्शन और भारतीय सर्ववाद का, प्रसाद पर शैवागम के आनन्दवाद और सूफीमत के प्रतिबिम्बवाद का, निराला पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी रामतीर्थ के भक्ति-मूलक अद्वैतवाद और रवीन्द्र के विश्व-मानवतावाद का, महादेवी पर बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद, सूफीमत के त्याग-तपस्या मूलक प्रेम-दर्शन और उपनिषदों के सर्ववाद का प्रभाव स्पष्ट है।[1] रामकुमार वर्मा पर भी ब्रह्म और जीव के सामान्य सम्बन्धों का ही रंग छाया हुआ है जिसकी मार्मिक आत्माभिव्यक्ति और काल्पनिक छाया-छवियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंकन ब्रह्म और जीव के अशरीरी प्रेम-सम्बन्धों और व्यापारों को शरीरी रूप से मांसल रूप देने में समर्थ हुआ है। रूप योजना की दृष्टि से महादेवी और रामकुमार वर्मा ने तो मिलन के कम विरह के ही अधिक चित्र प्रस्तुत किये हैं, मिलन का तो पन्त ने कहीं-कहीं आभास मात्र दिया है। उस अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा मात्र प्रकट की है, प्रसाद में भी अधिकतर वही जिज्ञासा प्रकट हुई है। निराला ने उसके विराट-रूपों को अपनी विराट कल्पना में बाँधा है। 'उस पार' की जिज्ञासा की अभिव्यक्ति सब में सामान्य रूप से मिलती है।

विश्लेषण की दृष्टि से देखा जाए तो छायावाद में रहस्याभिव्यक्ति और रहस्यात्मक छाया-सृष्टि के प्रमुखत: दो ही रूप हैं। एक शैलीगत वैलक्षण्य और दूसरा वस्तुगत विशेषता पर आधारित है, एक सर्वथा मौलिक अभिव्यक्ति की अनिवार्यता (जो कवि की सौन्दर्य-दृष्टि की उपज रही है) उत्पन्न करता है, जो दूसरा विराट की कल्पना और अनुभूति से उद्भूत है। शैलीगत वैलक्षण्य पर आधारित रहस्य-सृष्टियाँ

वे कहते हैं उनको मैं अपनी पुतली में देखूँ
यह कौन बता जायेगा किसमें पुतली को देखूँ ?

—महादेवी

प्रश्न यहाँ रहस्य की सृष्टि करता है जब कि प्रियतम के प्रभाव की अभिव्यक्ति बहुत ही सुन्दर और मार्मिक है। इतनी सीधी-सी बात को इतने हृदयग्राही ढंग से कहना महादेवी की अपनी विशेषता है।

विस्तृत से फिर आओगे जब लेकर यह अपना धन
करुणामय तब समझोगे इन प्राणों का मंहगापन।

—महादेवी

जब जीव को ब्रह्म अपने में ले लेगा जीव की सत्ता नहीं रह पायगी तब परमात्मा को इस मार्ग का महत्त्व समझ में आयेगा। महादेवी कहना यह नहीं चाहती हैं कि जीव की स्थिति

---

१. विशेष के लिए देखिये—रामरतन सिंह छायावाद-युग पृ० १४१

में ही ब्रह्म की सत्ता का भान होता है। ब्रह्म ब्रह्म रहे इसके लिए जीव का अपनी पृथक सत्ता में बना रहना अनिवार्य है। जब जीव नहीं रहेगा तब ब्रह्म को कौन जानेगा। इन पंक्तियों में पौर्वापर्य वैलक्षण्य से रहस्य की सृष्टि स्पष्ट है।

बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार।

—पन्त

आँसू और दुःख कोई नहीं चाहता। पर जब कवि आँसू के बिना जीवन को भार कहता है तो उसकी विलक्षणता हमारे अन्दर विस्मयपूर्ण रहस्य की सृष्टि कर देती है। जबकि बात बिलकुल स्पष्ट है। जीवन की महत्ता आँसू (करुणा) का अर्थ समझे बिना समझ में नहीं आ सकती पृ का मीठापन मिर्च को काटने के बाद अधिक समझ में आता है। पर विस्मय पर रहस्य केवल कथन की नवीनता से होता है।

ऐसे ही जीवन-बन्धन को ही मुक्ति कह कर वह रहस्य की सृष्टि करता है जब कि साधारणतया हमें जीवन से छुट्टी पाकर मुक्ति पाने की बात ही सोचनी पड़ती है।

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यही मानव शोभन।
अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन-बंधन।—पन्त

कवि के अपने दुःख की भावनाओं की झलक जब हम ऊषा की पलकों में और सन्ध्या की अलकों में पाते हैं तो इस अभिव्यक्ति-व्यापार के उत्साहने पर भी हमें कुछ विस्मय होता है। उस पर कवि का यह प्रश्न रहस्य के रंग को और गाढ़ा कर देता है

क्यों छलक रहा दुख मेरा ऊषा की मृदु पलकों में
क्यों उलझ रहा दुख मेरा सन्ध्या की घन अलकों में? —प्रसाद

ऐसे ही प्रेम के उच्छ्वासों की संकीर्णता की सीमा में बंध जाने पर कवि की सहजस्वाभाविक व्यथाभिव्यक्ति कुछ अजीब प्रभाव छोड़ती है

प्रलय की महिमा का मधु मोद नवल सुषमा का सरल विनोद
विश्व-गरिमा का जो था सार हुआ वह लघिमा का व्यापार।—प्रसाद

इसी तरह जब रामकुमार वर्मा नभ के जीवन में मेघमंडल से भाग्य-अंक लिखते हैं तो पाठक के सामने एक विस्मयपूर्ण नयी बात प्रस्तुत हो जाती है

मेघों का यह मंडल अपार
जिसमें पड़ कर तम एक बार ही कर उठता चीत्कार!
ये काले-काले भाग्य अंक नभ के जीवन में लिखे हाय! —रामकुमार

वस्तुगत विशेषत्व यानी विराट प्रिय की झाँकी पर भावान्वित रहस्यसृष्टियाँ

सुनाई किसने पल में आन कान में मधुमय मोहक तान?
तरी को ले जाओ मँझधार डूब कर हो जाओगे पार।
विसर्जन ही है कर्णधार, वहीं पहुँचा देगा, उस पार!

—महादेवी

छायावादी कवि ने प्रकृति के कण प्रतिकण में अपने प्रिय के दर्शन किये हैं। उसके प्रत्येक व्यापार में उसके संकेत और संदेश पाये हैं। प्रिय के प्रति उसके अन्दर बैठी हुई आस्था और श्रद्धा प्रकृति के प्रति उसे आस्थावान् बना देती है। उसने प्रकृति से घुलकर प्रेम किया है, उसकी रूप-माधुरी को पूर्णरूपेण अपनी कल्पना की आँखों में भरा है उसकी प्रत्येक गतिविधि की मधुर छाप उसके हृदय पर पड़ी है और वह भाव-विभोर होकर उस पर मुग्ध गया है। ब्रह्म के प्रति उसकी सहज जिज्ञासा ने प्रकृति के कण-कण को छान डालने के लिए उसे प्रेरित किया है और अपनी इस लम्बी खोज के क्रम में उसने जहाँ जहाँ रुककर आहें भरी हैं अथवा कहीं कोई संकेत पाकर आशा से पुलक उठा है वहाँ-वहाँ एक अभिनव कल्पना सृष्टि बन गई है जो उसी जैसी संवेदना उत्पन्न कर हमको उसी की जैसी स्थिति में छोड़ देती है।

कल्पना

छायावाद में कल्पना की सुकुमार तूलिका से मादक सौन्दर्य प्रतिमा का सृजन किया। इन सतरंगी कल्पनाओं के द्वारा छोटे-बड़े रसमय और भावपूर्ण चित्र चित्रित करने में छायावाद बड़ा धनी सिद्ध हुआ। कहीं-कहीं चित्रों को उरेहते समय दार्शनिकता का हल्का रंग आने या समझाने पड़ जाने पर उन चित्रों से उपदेश की गंध आने लगती है वहाँ रसोद्बोधन की क्रिया में व्याघात भी पहुँचता है किन्तु ऐसे चित्र बहुत विरल हैं। रीतिकालीन कविता अनुभूति शून्य होने पर ही चमत्कारिक अधिक हो गई है किन्तु छायावादी कविता का प्राण आत्मानुभूति है जो कल्पना का सम्बल पाकर और भी मर्मस्पर्शिनी तथा रसमय बन गयी है।

गांधीजी ने स्वतन्त्रता की जो शंख-ध्वनि की उससे हमें पूर्णरूपेण राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनता तो नहीं मिली हाँ मानसिक स्वतन्त्रता अवश्य मिली। इस मानसिक स्वतंत्रता ने छायावादी कवियों को एक नवीन दृष्टिकोण और नवीन चेतना दी और इसी झोंक में भावुकता और कविता का अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया। भावुकता की कठिन कसमसाहट ने कवियों को जिज्ञासु बना दिया है। वह इन्द्रधनुष को देखकर नादान शिशु की भाँति मचल पड़ता है 'कहाँ-कहाँ हे बाल-विहंगिनि। पाया तूने यह गाना' के स्वर को कंठ में भर कर 'विहग कुमारि' का पीछा करता है। इसी स्वतन्त्र जिज्ञासावृत्ति के सहारे छायावादी कवियों ने प्रकृति के अनजानक रूपों का रहस्योद्घाटन किया। जिज्ञासा कल्पना की जननी है भावावेग में कल्पना बड़ी बलवती हो उठती है। कल्पना की आधार शिला हमारी अपनी स्मृतियाँ और पूर्व संचित अनुभव हैं। कल्पना वस्तु के नीरस तथ्यों को सरस और अग्राह्य को ग्राह्य बना देती है। कोरी भाव विहीन कविता हृदय को स्पर्श नहीं कर सकती। इसीलिए सम्भवतः छायावादी कवियों ने कल्पना और भाव दोनों का समन्वय-सा कर दिया है। मध्ययुगीन कविताओं में कल्पना का इतना विशाल आयाम नहीं था। उस काल के कविता में कल्पना का प्रयोग कुछ अलंकारों को संग्रह करने में तथा अलंकृता को सेना जुगत में किया है। किन्तु छायावादी कवियों की दृष्टि मध्ययुगीन कविता की सामान्य दृष्टि नहीं थी। उनके पास सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि है जो अपने भावावेश में काफी

मुखर हो जाती है। छायावादी कवि की दृष्टि किसी वस्तु पर जाते ही उसके मन में उससे मिलते-जुलते चित्रों का तांता बंध जाता है[1] और चूंकि इन कवियों के हृदय में भावावेग बड़ा प्रबल होता है, अतः उनके अप्रस्तुत रूप विधानों का चित्र उतना ही अद्भुत और असाधारण होता है। इस तरह छायावाद-युग में कल्पना और कविता दोनों एक हो गयीं। छायावादी कवियों की कल्पना में संवेदना और मानवीय अनुभूतियाँ अधिक हैं।

सीता के जिस रूप-सौन्दर्य की कल्पना तुलसीदास ने की है वह इतना अलौकिक हो गया है कि वह इन्द्रियानुभूति की सीमारेखा को पार कर जाता है जिसे हम विस्मय-विमुग्ध हो, सुन भर सकते हैं। इसी प्रकार की कल्पना कविवर पन्त की 'छाया' में भी है जिसमें भाव का अभाव और चमत्कार-प्रभाव अधिक है। 'तरुवर की छायानुवाद' कहने से छाया का धुंधला रूप प्रस्तुत हो जाता है किन्तु उपमा, भावुकता अविदित भावाकुल भाषा कटी-छटी नव कविता, पश्चात्ताप की परछाई, तथा मदिरा की मादकता आदि कहने से कोई रूप नहीं खड़ा होता। इन अप्रस्तुतों में रूपसाम्य धर्मसाम्य और प्रभावसाम्य तीनों का अभाव है। यद्यपि ऐसी कल्पना भावोद्रेक में बाधक ही हो सकती है साधक नहीं किन्तु छायावादी कवियों की कल्पना की यह स्वच्छन्द उड़ान हमें विस्मय-विमुग्ध अवश्य कर देती है।

'जहाँ कवि कविता में मार्मिकता की ओर संकेत भर करता है भावों का सम्यक् चित्र नहीं प्रस्तुत करता वहाँ पाठकों को उसकी पूर्ति बिम्बात्मक कल्पना द्वारा करनी पड़ती है। छायावाद ने भावों का नग्न चित्रण न करके उनका संकेत मात्र कर दिया। भावों की यह सांकेतिकता कविता को बहुत प्रभावशाली बना देती है।'[2] सन्ध्याकाश का एक चित्र देखिये

पुलकों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में सन्ध्या दीप
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण पराग।—महादेवी वर्मा

सुहागिनी सन्ध्या रवि-पथ को पुलकों से लीप कर मुक्तातारा का प्रथम दीप पश्चिम में जलाती है। उसके अधरों पर मदिर मुस्कान खेल रही है तथा आँखों से स्वर्णिम पराग झर रहा है। कवि ने सन्ध्या का मानवीकरण करके उसके स्वर्णिम सौन्दर्य का मोहक चित्र प्रस्तुत किया है। इस कल्पना में न तो वास्तविकता की उपेक्षा है न भावों की दुरूहता बल्कि कल्पना के कमनीय हाथों ने सन्ध्या-सुन्दरी के चित्र में प्राण प्रतिष्ठा कर दी है।

पन्तजी ने अपने पल्लव को कल्पना के विहग बाल कहकर सम्बोधन किया है, निरालाजी कविता को कल्पना के कानन की रानी मानते हैं और प्रसादजी ने कल्पना को 'विशद व्योम समान' ही कह डाला है।

'मध्ययुगीन कवियों की उपमाएँ उपमान की सीमा से आगे बढ़कर किसी दूसरी दुनिया की झाँकी नहीं दिखाती थीं।'[3] उनके अप्रस्तुत का क्षेत्र प्रस्तुत की ही सीमा से घिरा

१. नामवरसिंह छायावाद पृ ७७
२. प्रताप साहित्यालंकार छायावाद, पृ० १००
३. नामवरसिंह, छायावाद, पृ ७४

रहता था। उनकी कल्पना परम्परागत लीक पर चल किसी नये भाव की सृष्टि करने में असमर्थ थी वे केवल व्याख्या करके आगे चल देते थे। किन्तु छायावादी कवियों की कल्पना और उनके सादृश्यमूलक अलंकारों में उनका निज का व्यक्तित्व स्वयं जिह्वा से बोलता है, अतः इनके उपमान उपमान की सीमित दीवार को लाँघकर एक नवीन दुनिया की सृष्टि करते हैं।

प्रकृति-प्रेम

प्रकृति प्रेम भावों का उत्तर निम्नलिखित पंक्तियों में मिल जाता है।[1] रामनरेश त्रिपाठी का पथिक कहता है

पुष्प वर्षित सज्जन से विषयी कल्मष मग्न निवासी
न्यायी से वंचक, दाता से कृपण विरोध विलासी
जहाँ धनी से क्रयी-विक्रयी वेश्या सुखी सती से
निर्जन वन है परम सुखद इस न्याय रहित जगती से।

औद्योगीकरण से लोग गाँवों से शहरों की ओर अधिक खिंचने लगे। अपने छोटे से परिवार को लेकर सम्मिलित परिवार की हद से लोग बाहर सोचने लगे। इसी वैयक्तिक स्वच्छन्दता और स्वाधीनता की भावना ने कवियों को प्रकृति की ओर मोड़ दिया। इस सामाजिक यथार्थता और वैयक्तिक स्वाधीनता के धरातल पर देश-प्रेम की ओर भी कवियों की दृष्टि गयी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिन्तामणि में लिखा है यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य पशु-पक्षी लता-गुल्म पेड़-पत्ते वन-पर्वत नदी निर्झर सबसे प्रेम होगा सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा। सबकी सुध करके विदेश में आँसू बहायेगा।[2]

प्राचीन भारतीय साहित्य में मानव की ही महत्ता का उद्घोष सुनाई पड़ता है, मानवेतर पदार्थों को जैसे प्रकृति-जगत् को अविद्या तथा माया की संज्ञा देकर दुत्कारा गया। प्रकृति का मानव निरपेक्ष स्वच्छन्द, प्रकृति विषयक रति पर आधारित संश्लिष्ट तथा रसात्मक वर्णन हमें ऋग्वेद में मिलता है। इन कवियों ने प्रकृति को रहस्यमयी मानकर उसके माध्यम से परम ब्रह्म का दर्शन किया। वाल्मीकि तथा कालिदास जैसे रससिद्ध कवियों ने प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन रूप में वर्णन किया। उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य में जब कविता के कोमल प्राण राजदरबारों और अन्तःपुरों की कारा में ही सिसक रहे थे उस समय प्रकृति का सारा अनुराग सिकुड़कर नारी के अंग प्रत्यंग में समा गया अतः प्रकृति का उपयोग उद्दीपन रूप में ही किया गया। हिन्दी के आदि युग में प्रकृति-चित्रण प्रायः नहीं के बराबर हुआ है। भक्ति युग में कृष्णभक्त कवियों तथा सूफी कवियों ने इसका प्रयोग संयोग-वियोग को उद्दीप्त करने तथा प्रेमातिरेक की अभिव्यक्ति के लिए किया है। निर्गुण सन्त कवियों ने जैसे कबीर तथा रामभक्ति शाखा के कवियों (जैसे तुलसीदास) आदि ने उपदेश के माध्यम से प्रकृति-चित्रण किया है

---

१. [illegible]
२. चिन्तामणि भाग १ पृ १ ४

माली आवत देखकर कलियाँ करी पुकार ।
फूले फूले चुन लिये कालि हमारी बार ॥ —कबीर

अथवा

फूले कास सकल महि छाई । जनु बर्षा ऋतु प्रकट बुढ़ाई ।
बुंद अघात सहै गिरि कैसे । खल के बचन संत सह जैसे ।
—तुलसी

कालीन कवियों ने भी प्रकृति-चित्रण किया है किन्तु वे या तो छहों ऋतुओं का नाम ा देते थे अथवा उसका उपयोग अप्रस्तुत विधान के रूप में तथा उद्दीपन के रूप में ही ा थे । किन्तु छायावादी कवियों ने प्रकृति के कण-कण को आत्मविभोर होकर देखा और ने मायातिरेक में युग-युग से आकर्षण का केन्द्र बनी हुई नारी को भी भुला दिया । वह की मृदु छाया छोड़कर नारी के 'बाल जाल' में अपने लोचनों को उलझाना नहीं ता । छायावादी कवियों ने प्रकृति में अप्रतिम सौन्दर्य देखा बाँसुरी से भी मधुर ध्वनि रंगबिरंगी छटाओं को देखा । उनकी परिवेक्षण शक्ति अद्भुत है इसीलिए तो वे कलियों चटखना और तितली का थिरकना भी देख सकते हैं ।

रोमान्टिक कवियों ने प्रकृति चित्रण में विराटता कुतूहलता रहस्यमयता तथा उसकी रता का ही चित्रण किया था किन्तु छायावादी कवियों ने प्रकृति के मृदु और मोहक प को भी स्पर्श किया । ऐसा करने में इन कवियों ने प्रकृति की विराटता में सूक्ष्मता और लता का समावेश किया उसकी कुतूहलता में अतृप्ति की भावना जागृत की और रहस्य ता में सान्निध्य और गोचरता का भाव भर दिया । कवियों ने सारे मानवीय गुणों की परिस्थितियों से आक्रान्त होकर मानव-मन में ही सुषुप्तावस्था में पड़े थे प्रकृति के बीच ही खोजने का यत्न किया ।

प्रकृति-निरूपण की निम्नलिखित कोटियाँ की जा सकती हैं

(१) प्रस्तुत या आलम्बन विभाव के रूप में ।
(२) उद्दीपन विभाव के रूप में ।
(३) अलंकार रूप में ।
(४) रहस्यभावना की अभिव्यक्ति के लिए ।
(५) उपदेश के लिए ।
(६) मानवीकरण प्रतीक तथा वातावरण की सृष्टि के लिए ।

छायावाद में आलम्बन रूप का चित्रण दो रूपों में हुआ है । एक ओर कवि ने प्रकृति तटस्थ होकर उसके स्थूल सौन्दर्य की प्रतिमा गढ़ी है और दूसरी ओर अपनी अन्तर्वृत्तियों प्रकृति के साथ तदाकार कर दिया है इसीलिए प्रकृति भी मानवीय सुख-दुख से परिचालित ती देखी जाती है ।

क्यों छलक रहा दुख मेरा
ऊषा की मृदु पलकों में ?
क्यों उलझ रहा सुख मेरा
सन्ध्या की घन अलकों में ?—प्रसाद

इस प्रकार कवि का दुकूल एक ओर 'ऊषा' की मृदु पलकों पर छलक रहा है और दूसरी ओर 'सन्ध्या' की अलकों में उलझ रहा है।

छायावादी कवियों के आलम्बन-गत प्रकृति चित्रण की परिधि अत्यधिक विस्तृत है। रूप-चित्रण करते समय कवियों ने वन-पवन, नदी-समुद्र, गिरि-निर्झर, लता-तरु, पत्र-पुष्प, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र, तारागण, उषा-सन्ध्या, इन्द्रधनुष, बादल इत्यादि का सूक्ष्म परिवीक्षण किया है, अस्तु कवियों ने प्रकृति के इन विभिन्न रूपों से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इस प्रत्यक्षानुभूति के कारण इनके वर्णनों में सजीवता है, प्राणों की थिरकन है, एक उल्लास और उन्माद है। छायावादी कवियों की अपनी यह मौलिकता कही जा सकती है। इस अद्भुत परिवेक्षणात्मक शक्ति का आश्रय लेकर ही कवियों ने प्रकृति की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गतिविधियों का चित्रण किया है। इसीलिए इन कवियों की दृष्टि से सरसों, कुकुरौंधा, अलसी, तीसी तथा मटर के फूल भी न बच सके। मचलते हुए काँस और उन्मुक्त वायु में उड़ते हुए सूखे पत्ते भी भावोद्रेक में सहायक हुए हैं। पन्त जहाँ एक ओर 'अप्सरा' के अशरीरी सौन्दर्य पर रीझते देखे जा सकते हैं वहीं दूसरी ओर वे आम, गोभी, बैंगन, मूली, पालक, लौकी, टमाटर, मिर्च, गेहूँ की बाल को देख कर भी मुग्ध दृष्टिगोचर होते हैं।

छायावादी कवियों की दृष्टि में हरी-हरी घास पर ओस-कणों का उषा की अरुणिम स्वर्णिम रश्मियों का, अमराइयों से छन छन कर आती हुई चन्दा की चाँदनी का और रतनारे नयनों से बंकिम कटाक्ष करती हुई नायिका की मदिर मुस्कान का एक ही मूल्य है। यह प्रकृति के नाना रूपों और व्यापारों से मनुष्य के तदनुकूल व्यापारों में साम्य स्थापित करता है।

छायावादी कवि नीला, पीला तथा गुलाबी रंगों का उल्लेख मात्र ही नहीं करते बल्कि उन रंगों के योग से एक सजीव रूप भी खड़ा कर देते हैं। इस दृश्य-चित्रण की कला में रस भावना तथा भाव-गाम्भीर्य का भी सम्मिश्रण रहता है। सारांश यह कि कवियों ने रंगों की विविधता तथा सूक्ष्मता दोनों पर दृष्टिपात किया है।

पन्तजी को धूमधूँआरा, मैला, सिन्दूरी, धानी, गुलाबी, सुनहला, रुपहला, रंग, धतूरी, केसरी, कपास, मूँगिया, भूरा, स्वर्णाभ, बासन्ती, पारद, धूमिल, मिरचई, आसमानी, अंगूरी, किसमिसी आदि रंग प्रिय हैं।[1]

प्रसाद को इन्द्रनील, हिम-धवल, चितकबरा, अरुण, गुलाबी, मरकत तथा स्वर्णिम रंग भाते हैं।

सफल काव्य में चित्रात्मकता तथा संगीत का समानुपातिक योग रहता है। शब्द एक ओर अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं और दूसरी ओर नाद के माध्यम से उसका मूर्त रूप भी चित्रित कर देते हैं। 'मानव विकास के आदि क्रम में अभिव्यक्ति नादात्मक रही। छायावादी कविता में शब्दों से ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न की है जिससे कि नादगर्भित अनुभूति भी होती है। भ्रमरावलियों का मधुर गुंजन, झींगुरों की झनकार, मेघों का गंभीर गर्जन, पक्षियों का कलरव इत्यादि ध्वनियाँ छायावादी कविता में प्राण प्रतिष्ठा कर देती हैं।

हैं चहक रही चिड़ियाँ टी-वी-टी टुट्-टुट्।—पन्त

---

१. रामेश्वरलाल खंडेलवाल : आधुनिक कविता में प्रकृति चित्रण, पृ. १४, १०२

कभी-कभी कवि भावातिरेक में भावों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रतीति कराने के निमित्त बाह्य कर्णगत ध्वनियों की भी अवतारणा करता है। चिड़ियों की चहक को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए पन्तजी ने टी-वी-टी टुट्-टुट् का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार इस युग के कवियों ने प्रकृति चित्रण करते समय गंध तथा स्पर्श के प्रति भी काफी जागरूकता दिखायी है। गंध और स्पर्श के संश्लिष्ट वर्णन से भी कविता की प्रेषणीयता तीव्र हो उठती है।

जब सिरीष के सुमन-गंध की मान-भरी मधु ऋतु रातें।

—कामायनी प्रसाद

यहाँ मधु ऋतु की रात सिरीष की गंध से और भी उन्मत्तकारी हो उठी है।

रहस्य भावना

अनन्त नीलाकाश यहाँ से झाँकते हुए असंख्य तारे, तारों के बीच मुस्काता हुआ चाँद, आसमानी अवगुंठन को हटाकर झाँकती हुई नववधू-सी ऊषा पर्वतों के ललाट से निकल कर अनेकों नदियों झरनों का इठला इठला कर चलना मयूर का श्यामल घटाओं को देखकर आत्म विभोर हो नृत्य करना पपीहे की व्याकुल पुकार, कोयल की सुरीली तान कलियों का मुस्काना और मुस्काकर झड़ जाना आदि-आदि प्रकृति के अनेकानेक उपादानों को देख छायावादी कवियों का उस परोक्ष सत्ता की ओर खिंच जाना स्वाभाविक था। उसका यह खिंचाव कहीं-कहीं जिज्ञासा से उत्पन्न हुआ है कहीं उसकी अपनी रागात्मक अनुभूतियों के माध्यम से। आकर्षण का निमित्त कुछ भी रहा हो—इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि छायावादी कवि का भावुक और उन्मत्त हृदय एकाएक प्रकृति-जगत् को देखकर उसके सृष्टा की ओर उन्मुख होता है।

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौ उत्तरा हिता। केनेदं मूर्ध्वं तिर्यक चान्तरिक्षं व्यचोहितम्।[1] तात्पर्य यह कि इस पृथ्वी की सृष्टि किसने की ? किसने ऊपर द्युलोक और स्वर्ग की रचना की ? यह अन्तरिक्ष मध्य का तिरछा और अनन्त आकाश किसने बनाया ? इसी जिज्ञासा की भावना ने छायावादी कवियों को भी जिज्ञासु बना दिया। इसीलिए 'कामायनी' का मनु उस दिव्य शक्ति की महत्ता का उद्घोष करता हुआ आत्मविस्मृत होकर कह उठता है

हे अनन्त रमणीय, कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता

कैसे हो क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता।[2]

प्रतिबिम्ब प्रतीक, संकेत तथा मानवीकरण के रूप में भी प्रकृति का उपयोग छायावाद में प्रचुर मात्रा में मिलता है। (इसका विश्लेषण छायावाद के कलापक्ष में किया जायगा)

उद्दीपन विभाव

छायावादी कवियों ने जड़ प्रकृति के चेतनस्वरूप को व्यक्त करते समय उससे पूर्ण

---

१. अथर्व० १

२. कामायनी आशा-सर्ग

सामंजस्य स्थापित कर लिया है। अस्तु प्रकृति कभी तो कवि के दुख से दुखी है और कभी सुख से विहँसती दीख पड़ती है और कभी कवि के व्यक्तिगत दुख-सुख की भावना से निर्लिप्त हो अपने सुख से स्वयं ही प्रसन्न दीखती है इसके विपरीत कभी-कभी कवि तो प्रसन्न दीखता है किन्तु वहाँ भी उसका साथ न देकर खिन्नमना ही रहती है। प्रकृति का यह उद्दीपन विभाव है।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा की प्रकृति कवि की पीड़ा का साथ नहीं देती। कवि दुखी है किन्तु प्रकृति निर्लिप्त वीतराग।

मेरे दुख में प्रकृति न देती क्षण भर मेरा साथ
उठा पुष्प में रह जाता है मेरा भिक्षुक हाथ। —रूपराशि

इससे भी निष्ठुर रघुवीरशरण मित्र की प्रकृति है जो कवि के दुख में दुखी होने की कौन कहे उसके दुख में वह विहँसती है

मुझे देख कोयल हँसती है, हँसती हैं बरसातें,
मेरी हँसी उड़ाया करती रजत चाँदनी रातें।

छायावादी कवि की भावनाएँ दुःखातिरेक में कभी-कभी इतनी उदात्त हो जाती हैं कि वह अपने दुख को व्यक्तिगत दुख समझ कर सह लेना चाहता है किन्तु हँसती हुई प्रकृति को वह रुलाना नहीं चाहता इसीलिए तो ग्रन्थि में पन्तजी कहते हैं

शैवालिनि! जाओ, मिलो तुम सिन्धु से

यद्यपि ऐसा करने में कवि को काफी आत्म नियमन करना पड़ा है। वह प्रकृति के सुख से अपने दुख की समता करके देखता है कि प्रकृति का कण-कण तो मिलन के सुख से तृप्त है किन्तु कवि का भावुक मन अतृप्त है। फिर भी अपने ही से कवि समझौता करता हुआ आत्मतोष देता है।

मानव के विवर्ण मुख पर प्रसन्नता की झलक देखकर प्रकृति का विवर्ण मुख भी विहँसने लगता है।

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में शरद विकास नये सिर से।

—कामायनी प्रसाद

प्रेम और शृंगार

छायावाद में प्रेम के दो धरातल हैं एक लौकिक दूसरा अलौकिक। लौकिक के अन्तर्गत इस दृश्य-जगत् की सारी वस्तुएँ आ जाती हैं जिनमें मानव का मन अटक सकता है। इसलिए छायावाद-युग में प्रेम की परिधि अत्यन्त विस्तृत हो गई जिसकी सीमा में विशेषतः नारी शिशु, प्रकृति तथा देश आते हैं। अलौकिक प्रेम का वर्णन करते समय कवियों ने प्रकृति का माध्यम बनाकर परोक्ष सत्ता का दिग्दर्शन कराया है (जिसका वर्णन 'रहस्य भावना' के अन्तर्गत हो चुका है)। इस स्थल पर मैं अपने को लौकिक प्रेम के पक्ष के विश्लेषण तक ही सीमित रखूँगा।

प्रेम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूप हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही चले आ

रहे हैं किन्तु भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन प्रेम की पृष्ठभूमि या तो ईश्वर विषयक रति भावना थी अथवा सामाजिक। किन्तु छायावाद में रतिभाव का आश्रय स्वयं कवियों ने लिया। इस व्यक्तिवादी विचारधारा के आवेश में कवियों ने व्यक्तिगत प्रणय निवेदन तथा रीझ-खीज की अभिव्यक्ति अधिक की। लौकिक प्रेम का गीत गाते-गाते इन कवियों ने अलौकिक प्रेम की भी चर्चा की है। किन्तु इनके अलौकिक प्रेम का बीज लौकिक धरातल पर ही उगा है। रीतिकालीन कवियों का शरीरी प्रेम जब छायावाद में अशरीरी और सूक्ष्म बन गया तब कवियों की दृष्टि शारीरिक सौन्दर्य से हटकर आन्तरिक विभुता पर जा टिकी स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता पर उलझ गई। इसीलिए कविवर पन्त नारी को 'देवि सहचरि, माँ, प्राण' सब कुछ एक ही साँस में कह गये। छायावादी प्रेम का यही आदर्श है। यही लौकिक प्रेम जब वासना के कलुषित पंक से निकल कर प्रेम की सुरसरि में एक डुबकी मार लेता है तभी यह अशरीरी प्रेम अलौकिक हो जाता है, आदर्श बन जाता है।

रीतिकालीन कविता में प्रेम के नाम पर जब विपरीत रति का चित्रण होने लगा तो द्विवेदीयुगीन कविता उसके विद्रोह में उठ खड़ी हुई। परिणामस्वरूप द्विवेदीजी ने नारी को कविता-क्षेत्र में अपावन और अछूत समझकर परित्याग कर दिया। नारी के कविता के क्षेत्र से पलायन करते ही लौकिक प्रेम की शृंगारिक भावना अपने आप ही विलुप्त हो गयी।

रीतिकालीन कवियों के वासनात्मक प्रेम तथा द्विवेदीयुगीन कवियों के शृंगारविहीन प्रेम का उदात्तीकरण छायावाद में हुआ। रीतिकाल में प्रेम का विराट स्वरूप चुम्बन आलिंगन प्रायःक्रीड़ा सुरता मिस्सी अभिसारिका और दूती तक ही सीमित हो गया। उस युग का नायक 'रात्रि में केलि कर के जब नहीं अघाता' था तो 'दिन' में ही 'घात लगाने का विधान सोचा करता था। यह कोठरी का प्रेम यदि बहुत दौड़-धूप करता था तो कछार, कुञ्ज और अरहर के खेत तक पहुँच जाता था। इसके ठीक विरुद्ध द्विवेदी-युग में रति-भावना का गला घोंटकर प्रेम को आजीवन कालापानी की सजा सुना दी। इसी से छायावाद युग का प्रेम अनंग की भाँति निराकार होकर व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त-सा रहता था और अव्यक्त होकर भी व्यक्त बना रहता था। एक शब्द में छायावादी प्रेम के लिए हम उर्दू का यह शेर प्रयुक्त कर सकते हैं

साफ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं

वह बदली के चाँद की भाँति लुकाछिपी करके ही रिझाता रहा पकड़ से बाहर ही रहा।

छायावादी कवियों ने रीतिकालीन प्रेम को महिमा के ऐसे ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठापित कर दिया जहाँ पहुँच कर नारी प्रथम बार प्रेयसी सखि सजनि आदि सम्बोधनों से भूषित की गयी। इसीलिए नारी के *स्पर्श में प्राणों की पुलक मिलती है अंग में पावन* गंगास्नान का-सा लाभ होता है, और उसकी वाणी में त्रिवेणी की लहरों का गान सुनाई पड़ता है। इस प्रकार प्रेम का चित्रण करते-करते कवि अनंग के साकार होने की अभिलाषा करता है किन्तु 'मानस-तरंग' में सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में उसके उदय की कामना करता है। निराला ने प्रेम को 'अमृत' मान कर उसकी स्वच्छंद प्रकृति का परिचय दिया है, तो प्रसाद ने अपने 'काम' को अतिशय पवित्र मान कर उससे जीवन का संदेश लिया है।

छायावादी कवियों की प्रणयानुभूति में अनुभावों के चित्रण का अभाव और भावों की

तीव्रता का तीखा दंशन है। इस युग ने मजनू की सृष्टि तो की किन्तु वे मजनू मुँह से नहीं हृदय से आह करते हैं। रीतिकालीन प्रेम का बाह्य प्रदर्शन इस युग में नहीं मिलता।

'छायावाद' में प्रेम की अतृप्त प्यास है किन्तु उस प्यास में एक पवित्रता और निश्छलता है उसमें इन्द्रिय जनित सुख का कलेश भी नहीं है। उसका निर्माण ही उत्सर्ग के धरातल पर हुआ है अतः प्रेम के आदान प्रदान वाले व्यापार से उस भिन्न है। यह आत्मसमर्पण की भावना कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीत-नाटिका 'मायार खेला' में मिलती है। शांता कहती है—यदि तुम्हें सुख नहीं मिलता है तो सुख की खोज में जाओ मैं तुम्हें अपने हृदय में ही प्राप्त कर लेती हूँ। मुझे किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं।

तुमि सुख यदि न पाओ
जाओ सुखेर संधाने जाओ
आमि तोमारे पेयेछि हृदय माझे,
आर किछु नहि चाइ गो।

पावनता और त्याग की इसी रज्जु से छायावाद का प्रेम बँधा है, जहाँ पहुँच कर लौकिक प्रेम भी अलौकिक-सा प्रतीत होने लगता है क्योंकि छायावाद-युग में प्रेम का माध्यम न तो रीतिकालीन दूतियाँ थीं और न अभिसार करने वाली उन्मत्त नायिकाएं।

छायावाद आधुनिक युग में सौन्दर्य भावना के पुनरुत्थान (एस्थेटिक रिवाइवल) का प्रथम चरण माना जा सकता है। इस सौन्दर्य का निरूपण इन कवियों ने प्रेम के माध्यम से किया है। छायावाद के प्रथम कवि जयशंकर प्रसाद ने 'कानन-कुसुम' से 'कामायनी' तक प्रेम सौन्दर्य और करुणा का ही गीत गाया है। 'आँसू' तो उनके असफल प्रेम का शोक गीत ही माना जाता है। पन्त में प्रेम की यह छटपटाहट 'वीणा' से 'स्वर्णधूलि' तक व्याप्त है। 'ग्रन्थि' कवि के असफल प्रेम की प्रतीक मानी जा सकती है। निराला में यद्यपि नारी-चित्रण का अपेक्षाकृत अभाव है किन्तु जहाँ कहीं कवि ने नारी को स्पर्श किया है वह अपनी सम्पूर्ण स्निग्धता और कोमलता को लेकर उपस्थित हुई है और कहीं-कहीं वह वात्सल्य और माँ के रूप में भी सम्मुख आयी है।

निराशा की भावना

समस्त छायावादी कविताओं में वेदना की एक करुण रागिनी बजती हुई सुनी जाती है। अधिकांश कवियों की वीणा के तार टूटे हुए हैं और उनके मेघ सावन घन की तरह रिमझिम बरसते रहते हैं। यह युग हमारी उद्दाम वासनाओं का कुंठित युग है जहाँ एक ओर हमारी पलकों से आँसू बहते रहते हैं दूसरी ओर मुस्कान की उज्ज्वल चाँदनी छिटकी हुई है। एक ओर जहाँ निराशा के अनेकानेक नाग अपने फन फैलाये हमें निगलने के लिए सिर धुन रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर प्रेम आशा की स्वर्णिम किरणों के पंख पर बैठ कर हमें जीने का मंत्र सिखाता फिरता है। फिर भी छायावाद के आँसू का वजन उसकी मुस्कान से ज्यादा है। इसके कतिपय ठोस आधार हैं।

छायावादी भौतिकता के ठोस आधार को छोड़ स्वप्नों की मोहक दुनिया में विचरने लगे। जीवन की सारी असफलताओं और कुंठाओं से भयभीत हो स्वप्नों में मन बहलाने लगे।

जीवन के सत्य में प्रियतम को न बाँध पाने पर कवि उन्हें सपनों में बाँधता है।

तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर प्यास बुझा लेती उस छोटे क्षण अपने में

लौकिक प्रेम की असफल प्रणय-कहानी से भी कवि विचलित होकर निराशा के गीत गाने लगा है। वह 'रो-रो सिसक सिसक कर' अपनी कहानी कहता है किन्तु निष्ठुर प्रेयसी 'सुमन नोचती हुई' 'जानी अनजानी' करती जाती है। इसीलिए कवि एकान्त-प्रेमी बनने की सोचता है, उसे तो न यह संसार प्यारा है न इसके निष्ठुर व्यवहार। उनकी यह एकान्तप्रियता उनकी स्वत्व की अस्त्वर्त्तियों का परिणाम है।

संसार की अनित्यता से भी इनकी निराशा का जन्म माना जा सकता है। इस नश्वर संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है प्रेम विरह मिलन सुख दुख सब अस्थायी हैं इसलिए कवि कभी-कभी दार्शनिक के मूड में रो पड़ता है

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द्र
नहीं जिसका अवसान कहीं जीवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन ! —महादेवी वर्मा

तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक विषमताओं में भी कवियों का ध्यान आकृष्ट किया किन्तु कल्पनाजीवी कवि-समाज इन विषमताओं को सुलझा न सका इसलिए एक अवाक सिपाही की भाँति ऐसे रो-रो कर ही मन को समझाता रहा है। वह जानकर भी कि समाज का एक वर्ग रंगरेलियाँ करता रहता है उसका जीवन उल्लास हर्ष और प्रेम से परिपूर्ण है किन्तु छायावादी कवि उस जीवन की आकांक्षा नहीं करता वह उसे असार और क्षणिक समझने लगता है।[1] परिणाम-स्वरूप छायावादी कवि अतिशय अहंवादी बन समाज से नाता तोड़ प्रकृति को गीली निगाहों से देखता है और प्रकृति भी उसे रोती हुई दिखायी देती है

जब पतझर का नीरव रसाल
पहने हिम जल की अश्रु माल —महादेवी वर्मा

नारी-चित्रण

छायावादी कवि रूप से अरूप स्थूल से सूक्ष्म समष्टि से व्यष्टि पर अधिक अनुरक्त हुआ इसलिए छायावाद में चित्रित नारी सम्पूर्ण रूप में (एकाध स्थलों को छोड़कर) अशरीरी और सूक्ष्म बन गयी है और कहीं-कहीं तो उसका रूप सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम की ओर इस सीमा तक बढ़ा है कि वह अनुभूति मात्र ही रह गई है। यथा

वह खड़ी दृगों के सम्मुख
सब रूप रेख, रंग ओझल
अनुभूति-मात्र-सी उर में
आभास शान्त, शुचि उज्ज्वल !

१ शिवदानसिंह चौहान प्रगतिवाद पृ ४०

और कहीं-कहीं यह अनुभूति की सीमा को भी पार कर असीम और अगोचर ब्रह्म के समकक्ष हो उठी है। यथा

कल्पना-मात्र मृदु देह लता
पा ऊर्ध्व ब्रह्म, माया विनता
है स्पष्ट स्पर्श का नहीं पता।

वासना के गन्दे नाले में लोटती हुई रीतिकालीन नारी तथा द्विवेदी-साम्राज्य से बहिष्कृत नारी जो अब तक आँखों में सावन भादों लिए जी रही थी वही छायावादी कवियों के हृदय की साम्राज्ञी बनी। यद्यपि छायावाद में नारी-साम्राज्य की प्रतिष्ठा तो की किन्तु वह चिर परिचित माँ-बहन के रूप में हमारे सम्मुख नहीं आती यहाँ तक कि वह भौतिक कम और अलौकिक अधिक लगती है।

छायावाद में नारी-सौन्दर्य का अंकन दो रूपों में हुआ है—रूप-सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य। रूप-सौन्दर्य में नख शिख आदि शरीरी अंगों का चित्रण मिलता है तथा भाव-सौन्दर्य में लज्जा मोह प्रेम आदि भावात्मक वृत्तियों का।[1]

रूप-चित्रण तथा नखशिख वर्णन में भी स्थूलता का दर्शन एकाध स्थलों पर भले ही हो जाय नहीं तो सर्वत्र सूक्ष्मता का ही ध्यान रखा गया है। 'नील परिधान' के आभ्यन्तर से झाँकने वाला नारी का अधखुला अंग उसे 'बिजली' के फूल-सा ही लगता है।

छायावादी युग के कल्पनालु, अगम्भीर कल्पना प्रवण व्यक्तिवादी कवि कभी भी खुलकर नारी-चित्रण का साहस नहीं कर सके उन्होंने सर्वत्र प्रकृति का सहारा लिया है और उसके सहारे अपनी कल्पना-परी का चित्र खींचा है। प्रमी प्रमिका के मधुर मिलन का जो चित्र निराला ने जूही की कली में खींचा है उसकी पृष्ठभूमि रीतिकालीन है किन्तु अन्तर यही है कि निराला की नायिका प्रकृति की ओट में पुष्प-पर्यक पर अपनी लाज रखती है।

यद्यपि नारी को देवि माँ सहचरि, प्राण—सब कुछ कहा गया है किन्तु छायावादी कवियों की रुझान नारी के प्रेयसी रूप में ही अधिक रही है और वह प्रेयसी भी कवि के लिए सर्वत्र भविष्य का स्वप्न ही बनकर रह गयी है पत्नी का दर्जा उसे कभी नहीं मिला। सुकुमार छायावादी कविता ने सौन्दर्यमयी ललना का रूप सँवारा है उनका ध्यान असुन्दर नारी की ओर गया ही नहीं। इसीलिए इस युग में नारी युवती बनकर ही आयी उसके मुख पर न वार्द्धक्य की छाप है न मातृत्व की। सम्पूर्ण छायावाद-युग में 'कामायनी' में एक स्थल पर श्रद्धा का चित्रण माँ के रूप में किया गया है। वहाँ भी कवि की सौन्दर्य-दृष्टि पैनी हो गई है। 'श्रद्धा' का गर्भावस्था का चित्र देखिये

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नई लजीली थी,
कंपित लतिका-सी लिये देह।

---

[1] उपाध्याय डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा कलाकार और अर्न्तद्वन्द्व : छायावाद में नारी का चित्र, पृ० ५०। सेमिनार—हापुड़कालेज।

ानि सौन्दर्य के स्थूल चित्रों के अतिरिक्त गत्यात्मक सौन्दर्य को भी अपनी कविता में प्रति ष्ठित करता है। किन्तु चित्रकार गति को एक चंचल झाँकी दिखाकर ही बैठ जाता है। चित्र एक अद्भुत क्षण की एक अनुपम काल की ही अनुभूति प्रदान करने में समर्थ है, उसमें कविता ी विस्तृति और भावों के मर्म तक पहुँचने की क्षमता का अभाव है। काव्यगत चित्र मन े माध्यम से आँखों के सम्मुख रूप संघटित करता है।[1] यद्यपि कविता का यह साधन है ाध्य नहीं फिर भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

महादेवी वसन्त रजनी का चित्र प्रस्तुत कर रही हैं उसकी वेणी में संख्यातीत तारा ण चमक रहे हैं उसका शीश-फूल चन्द्रमा का है उसके सुकुमार कर में रश्मियों की सुन्दर ूड़ियाँ हैं और रेशमी वस्त्र के समान सफेद बादलों का अवगुंठन डाले वसन्त रजनी पुल- ती आ रही है।

इसी प्रकार पन्त और निराला ने भी सन्ध्या का मानवीकरण करके उसका सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। मानवीकरण की यह प्रवृत्ति छायावाद की प्रमुख विशेषता है। छाया ादी कविता की चित्रमयता के पीछे छायावाद की सामाजिक चेतना का सैद्धान्तिक आधार है और यह आधार है वैयक्तिकता। चित्र विशेष का होता है वह विशेष चाहे वस्तु हो अथवा यक्ति। सामान्य का चित्र नहीं हो सकता। सामान्य सूक्ष्म चीज है इसलिए वह चित्र रचना े मूल सिद्धान्त के विरुद्ध है चित्र का आधार तो विशेष होता है परन्तु उसका प्रभाव सामान्य होता है।[2]

मुसकाता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं।

—महादेवी

यहाँ आकाश मानव के समान मुसकराता हुआ चित्रित किया गया है। वास्तव में आकाश के तारे चमकते हैं, आकाश नहीं मुसकराता। किन्तु लाक्षणिकता के बल पर आकाश ा मानवीकरण कर दिया गया है जो काफ़ी सजीव है।

पलंकार

रीतिकाल में अलंकारों के बोझ से दबी कविता-कामिनी चमत्कार और वैभव की वस्तु बन गयी उसकी सहज सुकुमारता तथा भाव-प्रवणता अलंकारों के झुरमुट में फँस कर बिखर-सी गयी। यह प्रवृत्ति आगे चल कर यहाँ तक पहुँच गयी कि अलंकार के चौखटे में कविता को फिट किया जाने लगा जिससे कविता कविता न बन कर अलंकारों का प्रदर्शन मात्र रह गयी। इधर आधुनिक युग में द्विवेदीजी की छत्रछाया में जो कविताएँ लिखी गयी वे रीतिकालीन शृंगारिक कविताओं के विरोध में रखी जा सकती हैं। अतः यह युग अलंकार विहीन शुद्ध आर्यसमाजी टाइप की कविताओं का रहा है। छायावाद का विरोध पूर्ववर्ती दोनों युगों से रहा है। अतः दोनों युगों के अतिवादी छोरों से अपना आँचल बचा कर छाया

---

१. प्रताप साहित्यालंकार : छायावाद, पृ० १४१-४४

२. नामवरसिंह : छायावाद पृ० ६९

नारी कविता-कामिनी राजमार्ग पर आ गयी हुई। इस आधुनिक नारी को एक ओर अतिशय अलंकारों के बोझ से यदि घृणा है तो दूसरी ओर शारीरिक सौन्दर्य प्रसाधन में योग देने वाले अनिवार्य अलंकारों से मोह भी है। अतः छायावाद में भावों का उत्कर्ष देने के लिए कल्पना को रंगीन बनाने के लिए तथा कविता को प्रसाद करने के लिए अलंकारों का प्रयोग हुआ। अलंकार बाहर से लाये नहीं गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कविता के सहोदर हैं जो साथ ही साथ पैदा हुए हैं।

अधिकांश अलंकार सादृश्य-मूलक होते हैं —शब्द-सादृश्य धर्म-सादृश्य रूप-सादृश्य और प्रभाव-सादृश्य। धर्म-सादृश्य तथा रूप-सादृश्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अंग तथा अंग-प्रत्यंग समान हों। उनमें थोड़ा-सा भी साम्य स्थापित हो जाय तो भी पर्याप्त है। रूप-साम्य और धर्म-साम्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य का महत्त्व अधिक है। छायावाद में उपमा रूपक उत्प्रेक्षा समासोक्ति विरोध एकावली प्रतिवस्तूपमा आदि अलंकारों का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है किन्तु कहीं भी ऐसा नहीं प्रतीत होता कि ये अलंकार चमत्कार और प्रदर्शन के निमित्त सिद्ध किये गये हों। वे स्वयमेव प्रतीत होते हैं। छायावाद में कुछ अप्रस्तुत तो प्राचीन परम्परा पर ही चले हैं और कुछ में नवीनता आयी है। धूप चन्द्र मदन इन्द्रधनुष उषा प्रभात सुमन बिजली मछली लहर ज्योत्स्ना हिमजल आँसू, अमरबेल शिरीष मुक्ता कंचन सुरभि समीर आदि प्रचलित अप्रस्तुत हैं।

कल्पना, मादकता मूर्च्छना स्मृति विस्मृति कसक पीड़ा आह कराह चाह आकांक्षा लालसा लज्जा, अभिलाषा व्यथा आदि नवीन अप्रस्तुत हैं। प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने के फलस्वरूप छायावादी कवियों को नित नवीन उपमानों को बटोरने में सहायता मिली है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि 'छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रख कर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प रहने पर भी आभ्यन्तर प्रभाव-साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में प्रतीकवत् होते हैं—जैसे सुख आनन्द प्रफुल्लता व यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उसके द्योतक उषा, प्रभात मधुकाल प्रिया के स्थान पर मुकुल प्रेमी के स्थान पर मधुप श्वेत के स्थान पर कुन्द रजत; माधुर्य के स्थान पर मधु विषाद या अवसाद के स्थान पर अन्धकार, सन्ध्या की छाया पतझड़ मानसिक आकुलता के स्थान पर झंझा तूफान इत्यादि।'[1]

मूर्त और अमूर्त की योजना

सुकुमारता माधुर्य तथा सौन्दर्य की रक्षा तथा भावोत्कर्ष के निमित्त छायावादी कवियों ने मूर्त पदार्थों की उपमा के लिए अमूर्त पदार्थों एवं भावों का चयन किया और अमूर्त का साधारणीकरण करने के लिए मूर्त पदार्थों की आयोजना की और कहीं-कहीं इन कवियों ने मूर्त में मूर्त की और अमूर्त में अमूर्त की उपमा दी है। यह छायावाद की एक बड़ी विशेषता है।

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६७१

निराशा की विवशता मूर्त है जिसके लिए पूजा दीपशिखा क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा तथा छूटी सत्ता आदि अमूर्त उपमान प्रयुक्त किये गये हैं। दीपशिखा में तिल-तिल जल कर दूसरों को प्रकाश देने की कल्पना है। पूजा में अपार नम्रता छिपी है। ताण्डव की स्मृति रेखा में विकरालता का भाव समाया है तथा 'छूटी सत्ता' में अनन्त करुणा बेबसी और असहायता की ध्वनि समाई है।

मेमनों से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर। —पन्त

मेमना मूर्त है उसके लिए मेघों के बाल अमूर्त की कल्पना की गई है।

विशेषण-विपर्यय

छायावाद में विशेषण-विपर्यय अलंकार की भी बहुलता देखी जाती है, इसे अंग्रेजी में Transferred Epithet कहते हैं। ये विशेषण स्वतन्त्र रूप में भी होते हैं और शुद्ध विशेषण के रूप में भी।

अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना।
—प्रसाद (आँसू)

कल्पना में है कसकती वेदना
अश्रु में जीता सिसकता गान है। —पन्त (आँसू)
अहह यह मेरा गीला गान। —पन्त
तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा।
—निराला (परिमल)

सुप्त व्यथा भीगी पलकें कसकती वेदना सिसकता गान गीला गान, बाट जोहती आशा आदि विशेषण-विपर्यय के उदाहरण हैं। आँखें निरन्तर अश्रुप्रवाह से गीली होती हैं गान गीला नहीं होता। किन्तु गान में करुणा की भावना भरने के लिए विशेषण को उपयुक्त विशेष्य से हटाकर गीला-गान कर दिया। गीला का तात्पर्य किसी दुखित व्यक्ति की दुखपूर्ण वाणी से है। इसी प्रकार सुरीला हास तुतला भय मूर्च्छित आतप तुमुल तम मादक कर, जीवित छाया मूक अनुभव आदि विशेषण-विपर्यय के उदाहरण हैं। विशेषण-विपर्यय में व्यक्ति की किसी विशेष अवस्था का तादात्म्य उसकी प्रवृत्तियों से करा दिया जाता है। यदि प्रवृत्तियाँ एक दूसरे की विरोधी हों तो प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। कहीं-कहीं छायावादी उपमाएँ भाव-साम्य पर ही आधारित हैं, जहाँ कल्पना से बड़ी दूर की कौड़ी छाननी पड़ती है। जैसे नयनों के बाल (आँसू) नयनों के नादान शिशु (आँसू) नश्वरता के लघु बुद्बुद (नक्षत्र) बालक की पुलकित श्वास (वीचि) कल्पना का शिशु (गान)।

भाव-व्यंजना

यद्यपि ध्वनियों का रूप नहीं होता किन्तु उनका हमारे रागात्मक हृदय से अभिन्न सम्बन्ध है और सहृदय तथा भावुक कवियों पर ध्वनियों का अमिट प्रभाव पड़ता है।

छायावादी कवि ध्वनियों के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुए हैं। कुछ ध्वनियाँ कठोर और कुछ कोमल होती हैं। छायावादी कवियों ने परुषा, कोमला और उपनागरिका वृत्तियों का आश्रय लेकर विभिन्न ध्वनियों के माध्यम से जो शब्द चित्र खींचे हैं वे नादसौंदर्य में काफी सहायक हुए हैं और ध्वनियों के अनुकूल ही रस की भी उत्पत्ति हुई है।

बादल राग की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये, ध्वनियों के माध्यम से आँधी और पानी को मूर्तिमान कर दिया है।

झूम झूम मृदु गरज गरज घन घोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
घर मरु तरु मर्मर, सागर में
सरित तड़ित-गति-चकित पवन में
मन में विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में रव घोर कठोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

पहली दो पंक्तियों में बादल के गरजन-तरजन की ध्वनि है, उसके बाद की दो पंक्तियों में पानी बरसने की ध्वनि है, बाद की पंक्ति में बूँदों का टप् टप् गिरना और उसके आगे वाली पंक्ति में बादल के बरसने की ध्वनि सुनाई पड़ती है। 'झर-झर-झर निर्झर-गिरि-सर' के उच्चारण की ध्वनि जोर से पानी बरसने की ध्वनि से मिलती-जुलती है। पन्त की परिवर्तन नामक कविता में जब हम 'शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर' पढ़ते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वास्तव में सर्प फुफकार रहा है।

भाषा की चित्रात्मकता

छायावादी कवियों का शब्दों पर अद्भुत अधिकार है। पन्त ने पल्लव की भूमिका में शब्दों की मर्यादा का उल्लेख करते हुए लिखा है 'भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः संगीत भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं, जैसे भ्रू से क्रोध की वक्रता, भृकुटि से कटाक्ष की चंचलता, भौंहों से स्वाभाविक प्रसन्नता और ऋजुता का भाव हृदय में उदय होता है। ऐसे ही हिलोर में उठान, लहर में सलिल के वक्षःस्थल की कोमल कम्पन, तरंग में लहरों के समूह का, ऊर्मि में मधुर मुखरित हिलोरों का, हिल्लोल-कल्लोल से ऊँची-ऊँची बाँहें उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरंगों का आभास मिलता है।

निःसन्देह छायावादी कवि शब्द चयन में अत्यन्त सावधान रहे हैं। उनका प्रत्येक शब्द अर्थवान् है।

एक क्षण विस्मय में भाई फिर मधुर मुसकान आयी ?

—डा० रामकुमार वर्मा

विस्मय में उन आँखों का चिर मधुर उन्मीलित हो जाना है जिनमें प्रेम ... शृंगार सदा कल्पित रूप छिपा है। महादेवी वर्मा की 'घुमड़ घुमड़ कर, सिहर-सिहर

तन भाव नयन आते क्यों भर भर ? में क्रियाओं की आवृत्ति की गयी है जो गीली पलकों का करुण बिम्ब उपस्थित करती है।

प्रतीक

छायावाद में शब्दों की अभिधा व्यंजना और लक्षणा शक्तियों में अभिधा की अवहेलना तथा लक्षणा और व्यंजना की प्रतिष्ठा पाई जाती है। अस्तु अभिव्यक्ति सीधी-सादी न होकर प्रतीकात्मक हो गयी। अन्तर्मन के सुसुप्त भाव प्रतीकों के सहारे जगाकर उन्हें मूर्त स्वरूप प्रदान किया गया है। प्रतीकों का सम्बन्ध देश-काल और संस्कृतियों से है, अत प्रत्येक देश के या एक ही देश के प्रतीक विभिन्न युगों मे परिवर्तित होते जाते हैं। छायावाद ने कुछ परम्परागत प्रतीकों को भी लिया और कुछ नवीन प्रतीकों की अवतारणा युग विशेष की प्रचलित मान्यताओं और सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के सहारे की है। जहाँ-जहाँ ये प्रतीक लक्षणा का संबल लेकर चले हैं वहाँ काफ़ी दुरूहता आ जाती है किन्तु कविता की मार्मिकता में वृद्धि हो जाती है।

उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस। —पन्त

हृदय की प्रसन्नता 'उषा का आवास' बन कर आयी है कोमल स्निग्ध वाणी के लिए 'मुकुल का मृदुल विकास' प्रयुक्त हुआ है सरल और उज्ज्वल स्वभाव के लिए 'चाँदनी का भास' का प्रयोग हुआ है, और भोलेपन के लिए 'बच्चों के साँस' की अवतारणा की गयी। ये प्रतीक लक्षणा के सहारे चलते हैं।

छायावादी कवियों ने अपनी अनुभूतियों के अनुरूप रूप-विधान का निर्माण करते समय 'रूप' की संगति और सार्थकता के साथ-साथ उसके अतिरिक्त संकेत की ओर भी ध्यान दिया। इसीलिए छायावादी रूप-योजना में एक ओर जहाँ सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों के व्यंग्य चित्र मिलते हैं वहाँ दूसरी ओर प्रतीक-योजना भी काफ़ी मिलती है।[1] अप्रस्तुतों की आधार शिला भावना ही है। प्राचीन कवियों ने रूप-साम्य और धर्म-साम्य पर अधिक बल दिया है किन्तु छायावाद में प्रभाव-साम्य की अधिकता देखी जाती है। यथा—नायिका और सिंह की कमर में रूप-साम्य है, किन्तु सिंह की कमर में नायिका की पतली कमर के प्रभाव का अभाव है। एक में रति को उद्दीप्त करने की क्षमता है तो दूसरे में भय की। इसी प्रभाव-साम्य की योजना करते समय अप्रस्तुतों का उपयोग प्रतीक रूप में हुआ है।[2] जैसे विषाद के लिए पतझड़ मधु, अँधेरी रात सन्ध्या धूल' आनन्द के लिए मधुमास हास प्रभात' यौवन के लिए वसन्त' जीवन के लिए सरिता' श्वास के लिए मलय प्राणों के लिए हंस' सुख के लिए फूल प्रयुक्त हुए हैं। इन अप्रस्तुतों में प्रस्तुतों के समान ही गुण पाये जाते हैं इसीलिए छायावादी अप्रस्तुतों में नाप-तौल की प्रवृत्ति नहीं है।

१ नामवरसिंह छायावाद पृ ८८
२. मनाप साहित्यभंडार छायावाद, पृ १११

छायावाद की गेयता और उसका सौन्दर्य

छायावादी भाषा में व्यक्ति के आभ्यन्तरिक भावों की तीव्रतम अभिव्यंजना संगीत के माध्यम से जिसमें होती है वह गीत-काव्य है। 'सुख-दुख की भावावेशमय अवस्था-विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। और आगे महादेवीजी कहती हैं कि गीत के कवि को आर्त क्रन्दन के पीछे छिपे हुए दुखातिरेक को दीर्घ निश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल होगा।'[1] वस्तुतः छायावादी गीतों में भावावेश की प्रधानता सर्वत्र देखी जाती है। अधिकांश कवियों ने चरपदी भाषा में अपने आभ्यन्तरिक भावों की तीव्रतम अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से अपने गीतों में की है। इनमें सुख और दुख दोनों सम्बन्धियाँ सामने दिखाई देते हैं और छायावादी कवियों के निश्वास जहाँ संयम से बँध गये हैं वहाँ सचमुच पाठकों को भी बाँधने में वे समर्थ हुए हैं।

कवियों ने कोमलकान्त पदावली और नादयुक्त वर्णों के संयोग से कविता की गेयता बढ़ा दी है।

सौन्दर्य तो इन गीतों के अक्षर अक्षर में समाया है। पन्त ने पल्लव की भूमिका में लिखा है कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिएँ, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें जो झंकार में चित्र चित्र में झंकार हों जिनका भाव-संगीत विद्युत्धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके। समस्त छायावादी कवियों में ये तत्त्व विशेष रूप से मिलते हैं। छायावाद का कलापक्ष उतना ही सबल है जितना भावपक्ष। उसका कलापक्ष सौन्दर्य से परिपूर्ण है। कवियों ने गीतों के आन्तरिक सौन्दर्य पर अधिक जोर दिया है। रीतिकालीन बाह्य शृंगारिक भावना की ओर इनकी दृष्टि कम गयी है।

> दृष्टोऽपि शैलः समुहुर्मुरारेरपूर्ववत् विस्मयमाततान
> क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।
>
> —शिशुपाल वध

सुन्दर क्या है? रैवतक पर्वत सुन्दर है क्योंकि यद्यपि भगवान् ने उसे अनेक बार देखा है फिर भी इस बार उन्हें उसने ऐसा आनन्द दिया जैसा पहले कभी नहीं दिया था। तब सौन्दर्य की परिभाषा क्या हुई, जो रूप क्षण-क्षण नवीनता प्राप्त करे, वही सौन्दर्य का रूप है।

इसी प्रकार छायावादी कविता ने नित नवीन सौन्दर्य का उद्घाटन करने में प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ा छन्द के बन्धनों को काटा। भावावेग में मानो कवि का हृदय ही निर्झर की भाँति फूट पड़ा हो और कविता भाषा की छन्दों के किनारों को भी अपने धक्कों पर तोड़ता हुआ कल-कल छल-छल करता हुआ निरन्तर प्रवाहमान होता जाता है।

---

[1] महादेवी वर्मा : यामा की भूमिका, पृ० ४

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

प्रसाद, पन्त निराला महादेवी वर्मा तथा रामकुमार वर्मा पाँचों छायावाद-युग के पाँच स्तम्भ हैं। पाँचों एक ही युग के कलाकार रहे हैं; पर उनकी भाव भूमि कल्पना-दृष्टि तथा वस्तुचयन में काफ़ी अन्तर रहा है। यद्यपि इन कवियों में छायावाद के ही पोषक तत्त्व अधिक मिलेंगे फिर भी अपनी समसामयिक परिस्थितियों के प्रति ये सर्वथा उदासीन नहीं रहे। कविवर पन्त और निराला ने छायावाद-युग के प्रति पूर्ण आस्था रखते हुए भी प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद के प्रति भी अपनी रुचि दिखाई। फिर भी वर्गीकरण की सुविधा के लिए हमने इन कवियों को छायावाद-युग में ही लेना समीचीन समझा।

कवि की वैयक्तिक रुचि और तत्कालीन परिस्थितियों का यदि कुछ भी प्रभाव उसकी कृतियों पर माना जाय तो हम कह सकते हैं कि कविवर पन्त के विभिन्न प्रेरणा-सूत्रों में प्रकृति का विशेष हाथ रहा है। कूर्माचल की सौन्दर्यमयी गोद में जन्म लेने वाला शिशु सुमित्रानन्दन पन्त, जननी से प्रसव के केवल छः घंटे बाद ही वियुक्त हो जाने पर माँ के अभाव में प्रकृति *की ही गोद में भुलनों के बल चला होगा। उसके अंचल में खिले विविध रंगबिरंगे फूलों और* पखुड़ियों से आँख मिचौनी की होगी। बालक पन्त का मन प्रकृति के कण-कण से इतना घुलमिल गया कि किशोर कवि पन्त मधुप कुमारी से मीठे गान की याचना करने लगा। बाँसों के झुरमुट में चिड़ियों की टी-वी-टी टुट-टुट की ध्वनि पर ही मस्त हो गया। सन्ध्या के मोहक नारी-रूप को देख आश्चर्यचकित हो कवि उसी से पूछता है कि 'कौन तुम रूपसि कौन ?'

इस प्रकार प्रकृति का पन्त पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। इसीलिए कवि पन्त कभी तो उसके कुसुमित यौवन का चटकीला वर्णन करते हैं उसकी मृदु मुस्कान पर रीझते और पुलकित होते हैं और कभी अपनी भावना की आँखों से उसे रोती और कलपती देखते तथा उससे संवेदना प्रकट करते हुए देखे जाते हैं। कहीं-कहीं कवि प्रकृति का मानवी करण करके उसमें प्रणयशीलता मृदुता भावुकता अनुराग का भाव भर देता है अस्तु *प्रकृति साधारण मानव की भाँति हँसती या रोती प्रतीत होती है। पन्तजी ने प्रकृति में एक* ओर माँ का असीम प्रेम जो उन्हें नहीं मिला उसकी ममता और दुलार को ढूँढ़ा है दूसरी ओर प्रेयसी के सामीप्य की गुदगुदाहट भी इन्हें प्रकृति के साहचर्य में मिली है। यही प्रकृति का तादात्म्य उनकी काव्यधारा को आगे चल कर दर्शन की पगडंडी पर मोड़ देता है। स्वभावतः प्रकृति के हास विकास से क्रीड़ा करने वाले कवि की कविता के रूप-विधान विशेषतः प्राकृतिक हैं। प्रकृति-सम्बन्धी यह रूप-विधान कहीं-कहीं तो शुद्ध प्राकृतिक धरातल पर ही खड़ा है और कहीं-कहीं प्रकृति के माध्यम से सांस्कृतिक और मानवी हो गया है।

सहज कोमल स्वभाव वाले कवि पन्त को सौन्दर्य ने अधिक आकर्षित किया है—वह सौन्दर्य चाहे प्राकृतिक हो या मानवी। मानवी सौन्दर्य के अन्तर्गत वय सन्धि की उम्र वाला भावुक कवि नारी रूप को अपलक निहारता रहा है। नारी कवि के लिए भोग भी वस्तु कभी न रही हो किन्तु उसकी छवि का चित्रांकन किसी न किसी बहाने कवि ने अपनी अधिकांश रचनाओं में किया है। 'पल्लव' 'गुंजन' और 'ग्रंथि' में प्रायः कवि नारी के बाह्य

सौन्दर्य का ही चयन कर सका है। नारी के प्रति अपार ममता ने कवि को अतिशय कोमल और लज्जालु बना दिया है। इसीलिए सम्भवतः कवि की दृष्टि जगत् के कोमलतम उपादानों की ओर अधिक लगी है और तदनुकूल रूप विधान भी इनकी कल्पना जगत की नारी की छवि उतारने के लिए पीछे-पीछे दौड़ते हैं। इसीलिए इनके रूप विधान मांसल कम हुए हैं अशरीरी सूक्ष्म तथा कोमल वपु वाले अधिक हैं। और कहीं-कहीं एक प्रस्तुत के लिए बीसों अप्रस्तुतों की सेना खड़ी करने में पन्तजी बेजोड़ हैं।

कवि ने बँगला के रवीन्द्र तथा अंग्रेजी के शैली कीट्स तथा बायरन का प्रभाव अपनी रचनाओं पर स्वीकार किया है। परिणामस्वरूप अंग्रेजी कविता की बहुतेरी पंक्तियाँ जाने या अनजाने पन्त की रचनाओं में अनूदित-सी होकर आ गयी हैं। वैसे भी अंग्रेजी की पदावलियों का हू-ब-हू अनुवाद भी इनमें पाया जाता है।

पन्तजी की रचनाओं को तीन युगों में बाँटा जा सकता है। प्रथम युग 'वीणा' से 'युगान्त' तक है जो अपनी परिधि में 'वीणा' 'ग्रन्थि' 'पल्लव' 'गुंजन' 'ज्योत्स्ना' तथा 'युगान्त' को बाँध लेता है। दूसरे युग में कवि की 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' को ले सकते हैं। तीसरे युग की प्रतिनिधि रचनाओं में 'स्वर्णधूलि' 'स्वर्णकिरण' 'उत्तरा' 'रजतशिखर' 'अतिमा' तथा 'लोकायतन' को ले सकते हैं।

'वीणा' में कवि की १९१८ से १९२० तक की प्रारम्भिक रचनाएँ संगृहीत हैं। इसे हम कवि की वयःसन्धि की रचना कह सकते हैं। 'वीणा' के बाद पन्त की उम्र बढ़ी अनुभव बढ़ा अध्ययन बढ़ा। रवीन्द्र की गीतांजलि और कालिदास के अप्रस्तुत विधानों तथा रंग बिरंगी उपमाओं से कवि ने प्रेरणा ग्रहण की। 'ग्रन्थि' में प्रेम रति आशा-निराशा मिलन वियोग आदि शृंगार के उभयपक्षों का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। 'वीणा' का कवि 'ग्रन्थि' तक आते-आते पूर्ण युवक बन जाता है। उसका कंठ फूट उठता है। प्रेम का एक सरस स्पर्श कवि की कोमल कल्पना के तार को छू भर देता है और कवि भावप्रधान, कल्पनाप्रधान तथा विशुद्ध शृंगार के अनेकानेक मरम गीतों से युवक पाठकों का मन भर देता है। 'पल्लव' तक आते आते कवि के सुन्दर शब्द चयन अद्भुत शब्द शक्ति (व्यंजना तथा लक्षणा) और निर्भीक प्रयोग के पुष्ट प्रमाण मिलने लगते हैं। 'गुंजन' में (जिसमें १९२६ से ३१ तक की रचनाएँ संगृहीत हैं) कवि थोड़ा थोड़ा चिन्तनशील नजर आने लगता है। वह अपने व्यक्तिगत सुख के परे जग के दुःख-सुख की ओर भी ध्यान लगाता है। फिर भी विशेषता ऐसे गीतों की है जिसमें कवि ने अपनी कल्पना जगत् की प्रेयसी का चित्रांकन किया है। 'गुंजन' की यह चिन्तनधारा 'ज्योत्स्ना' और 'युगान्त' तक चली जाती है। जीवन और जगत् के कटु अनुभवों ने कवि की दृष्टि को आत्मचिन्तन से विश्व-दर्शन की ओर मोड़ दिया। इसमें कवि की सुन्दरतम कल्पनाएँ निखार का वरण कर लेती हैं। 'युगान्त' तक पहुँचते-पहुँचते कवि गांधीवाद के प्रभाव को थोड़ा मान लेता है। अतः 'युगवाणी' में पन्त युग प्रगतिवादी नजर आने लगते हैं। यहाँ इनकी भावुकता को बौद्धिकता ने बौना कर दिया है। इसीलिए भाषा रूक्ष और दर्शनी हो गयी है। 'ग्राम्या' में युग कवि की भावना और मार्क्स है और इसी आवेग में पन्तजी ने गाँवों में बसने वाले नर-नारी तथा दुखीजनों का सजीव चित्र खींचा है।

कवि की रचनाओं का तीसरा युग अध्यात्मवादी दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ा है। इस युग की अधिकांश कृतियों पर महर्षि अरविन्द के दर्शन का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। यहाँ वे कवि की अपेक्षा दार्शनिक अधिक प्रतीत होते हैं और अपने इस अन्तश्चेतनावादी नव मानववाद का विश्लेषण करने के लिए उन्हें प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ा है। इन रचनाओं में मांसल सौन्दर्य की सहज कमनीयता कम और बौद्धिक व्यायाम अधिक है।

निष्कर्ष यह कि वैभव एवं वैचित्र्य-पूर्ण प्रकृति के असीम तरंगित अंचल में राशि राशि बिखरे हुए छाया रहस्यों का उत्सुक अन्वेषण रूप-छायाओं के प्रति उर्मिल आकर्षण एवं मांसल मोह तथा उनका आनुभूतिक स्पर्श पन्त की काव्य चेतना के वे प्राण बिन्दु हैं जहाँ से काव्य-जगत् में अपनी मधुरिम आभा विकीर्ण करने के लिए सहस्रों रूप-तारिकाएँ ज्योति ग्रहण करती हैं और भाव-गंगा फूटकर सबको अपनी छवि-धारा में खींच लेती है।

व्यावहारिक पक्ष

सांस्कृतिक

(१) दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर
वह छवि की छुईमुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर
जग के अस्फुट स्वप्नों का
वह हार गूँथती प्रतिपल
चिर सजल-सजल करुणा से
उसके ओसों का अंचल। —गुंजन पृष्ठ ८९

(२) अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप
जड़ित पद नमित-पलक-दृग-पात
पास जब आ न सकोगी प्राण!
मधुरता में सी मरी अजान
लाज की छुई मुई-सी म्लान
प्रिये प्राणों की प्राण!

—भावी पत्नी के प्रति गुंजन पृ ४१

प्रथम उद्धरण में चाँदनी को दुलहिन का रूप दिया गया है। दुलहिन भारतीय संस्कृति का प्रतीक है और जिस दुलहिन का चित्रांकन हुआ है वह संसार के किसी भी कोने में न मिलेगी यह भारत की निजी विशेषता है। संसार की दुख और दीनता की सेज पर मानव-जीवन की अस्वस्थ दुलहिन बैठी हुई है। मानव-जीवन रूपी स्त्री की प्रतीक चाँदनी अस्वस्थ होने के कारण जाग रही है, उसे बेचैनी के कारण नींद नहीं आ रही है और वह ओस के व्याज आँसू बरसा रही है। भारतीय दुलहिन लज्जा की साकार प्रतिमा होती है।

इसका कोमल और अतुलनीय रूप लेकर अवतरित हुई है कि यदि कोई-सा उसे कोई स्पर्श कर दे तो छुई-मुई लता की भाँति अपने आप में ही लज्जावनत होकर सिमट जाय। उसमें वाचालता नहीं मौन-मधुर झिझक-पूर्ण आत्मसमर्पण होता है। यह तो इसका भाव चित्र हुआ। अब इसका कलापक्ष देखिये। कवि ने चाँदनी का मानवीकरण किया है। इन पंक्तियों में प्रभाव-साम्य की समता उल्लेखनीय है। इसमें प्रत्यक्षतः चाँदनी और दुलहिन में कोई सादृश्य नहीं है। फिर भी रात की सेज पर सिमटकर चाँदनी का लेटना सिकुड़ती नई दुलहिन का रूप सम्मुख प्रस्तुत कर देती है।

दूसरे चित्र में कवि अपनी भावी पत्नी को दुलहिन के रूप में याद करता है। दुलहिन का यह उस समय का चित्र है जब सद्य-परिणीता पत्नी और पति का प्रथम मिलन होता है 'विकम्पित मृदु उर "सर्वांकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप जड़ित पद नमित पलक-दृग-पात —" में छिपी हुई लज्जामुखी मुग्धा दुलहिन का स्पष्ट चित्र सजीव हो उठता है जैसे मुग्धा नायिका यौवनावस्था के चरम शिखर पर पहुँच कर 'पुलकित-गात' वाली बनकर मध्या नायिका की सीमा में पहुँच गई हो जो यौवन की सब कामनाओं से सराबोर हो पति-मिलन के लिए 'पुलकित-गात' वाली बन अधिक समुत्सुक और उल्लसित दिखाई पड़ रही हो। किन्तु इसमें मुग्धा नायिका का चित्र अधिक स्पष्ट हुआ है जो मध्या के उभार को जड़ित-पद नमित-पलक-दृग-पात और लाज की छुईमुई-सी बनकर मध्या को दबा देती है और मुग्धा का वह स्वरूप सामने खड़ा कर देती है जब प्रथम मिलन के अवसर पर नायिका नायक की सेज के समीप ही गठरी-सी अपने आप में सिकुड़ी हुई नायक के स्पर्शमात्र से छुई-मुई-सी बनी पड़ी है। इसका कलापक्ष भावोत्कर्ष में पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। 'छुईमुई' लज्जालु नारी का उपमान बनकर आयी है इसमें स्वरूप-बोधन तथा सौन्दर्य-बोधन के साथ धर्म-साम्य भी है। छुईमुई स्पर्शमात्र से जिस प्रकार सिकुड़ जाती है उसी प्रकार प्रथम मिलन के अवसर पर नायक के कर का स्पर्श पाते ही नायिका जमीन में गड़-सी जाती है। और व्रीड़ा संचारी भाव के योग से चित्र और भी पुलापुला उभर आता है।

(१) वह नर की छाया नारी।
चिर अंकित नयन पद विजड़ित
वह चकित भीत हिरनी-सी
निज चरण चाप से शंकित
मानव की चिर सहधर्मिणी
युग-युग से युत अवगुंठित
स्थापित करके कोने में
वह दीप शिखा-सी कंपित!
करती वह जीवन यापन
युग-युग से वधू-सी चालित
बंदिनी काम कारा की
आदर्श नीति परिचालित

—नर की छाया गुञ्जन पृ० ६०

इन पंक्तियों में भारतीय संस्कृति में पली उस नारी का चित्र खींचा गया है जो पति की सहचरी और सहधर्मिणी का पद कभी न प्राप्त कर सकी वह सदैव अनुचरी ही बनी रह गयी। सहचरी का दर्जा न मिलने पर वह पति के साथ बाहर नहीं जा सकती बाहरी कामों में वह पति का हाथ नहीं बँटा सकती। अतः युग-युग से मुख पर अवगुंठन डाल कर एक कोने में प्रतिमा-सी स्थापित कर दी जाती है। युवावस्था की तो बात ही क्या है वृद्ध होने पर भी वह 'अनुचरी' नमित नयन पद विजड़ित भीत हिरनी-सी लज्जालु होने के कारण चुपके चुपके मंथर गति से 'निज चरण चाप से भी शंकित' चलती फिरती है। अपार दुख और वेदना के वातावरण में भी फेफड़ों को व्यायाम देती हुई कभी उफ़ नहीं करती। उसकी आँखें यदि घूँघट के ऊपर से झाँकी जा सकें तो उनमें सदैव एक याचना और निरीहता मिलेगी। ऐसी परिस्थिति में भी वह पति और घर के पुरुष वर्ग से इस प्रकार डरती है जैसे शिकारी से हिरनी। फिर भी 'दीपशिखा' के सदृश अपने अहम् इच्छाओं और कामनाओं को जला कर घर का कोना-कोना आलोकित करती है। सबको सुख का प्रकाश समान रूप से वितरित करती है। (दीपक भारतीय संस्कृति का बहुत प्राचीन चिन्ह है।) घर के कोने में आजीवन बंदिनी का जीवन व्यतीत करती हुई नारी पालतू पशु बन गई है; इस प्रकार वह आहार, निद्रा भय और मैथुन चारों प्रवृत्तियों की बहुलता के कारण पशु की ही कोटि में आती है। विवेक और बुद्धि के उपयोग का अवसर उसे नहीं दिया जाता है। यह है भारतीय नारी का मौलिक चित्र !

हिरनी अपने साथ नमित नयन पद विजड़ित चकित तथा भीत विशेषण लेकर नारी का उपमान बन कर आयी है। इससे नारी की गतिहीनता और उसके ऊपर बने प्रतिबन्धों का चित्र साफ-साफ उभर आने लगता है। दीपशिखा का उपमान पाने पर नारी दीपक के सदृश प्रकाश करती और तिल-तिल जलती मिटती हुई वर्तिका बन कर सामने आ जाती है। 'पशु-सी पालित' में भारतीय परम्परा और रूढ़ि का बन्धन स्पष्ट हो जाता है।

(४) अभी तो मुकुट बंधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ,
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले थी चुम्बन-शून्य कपोल;
हाय ! रुक गया यहीं संसार
बना सिन्दूर अंगार
वात-हत-लतिका वह सुकुमार,
पड़ी है छिन्नाधार !

—परिवर्तन पल्लव पृ १२४

इन पंक्तियों में परिवर्तन की अनिवार्यता पर बल देते हुए कवि ने सद्य परिणीता एक विधवा का चित्र दिया है। विभिन्न वर्णित रूप-विधानों का समन्वय करने से स्त्री के सुहाग और वैधव्य दोनों का चित्र काफ़ी चटकीला हो गया है। हिन्दू संस्कृति में विवाह के समय वर को मौर और वधू को छोटा मुकुट पहनाया जाता है। हल्दी के हाथ का तात्पर्य है हाथ पीले करना अर्थात् विवाह करना। तत्पश्चात् स्त्री की माँग में पुरुष सिन्दूर डालता

है। विवाह की यह छोटी-सी विधि है। माथ पर बँधा मुकुट हल्दी से रँगे हाथ और वस्त्र तथा माथ से समबोल कदुन पर विवाह के निमित्त मंडप-खंभे से बाँधी जाती हुई एक दुलहिन का चित्र सम्मुख आ जाता है। सुकुमार लता रूपी दुलहिन प्रभंजन के झोंके से आधारहीन होकर धराशायी हो गयी है और लाल चमकता हुआ सिन्दूर अंगार-सा दाहक बन गया है। इससे एक विधवा का चित्र बन जाता है। रूप-विधान की रचना-प्रक्रिया में कभी-कभी एक शब्द या एक वाक्य ही रूप खड़ा कर देता है।[1] मुकुट का माथ पर बँधना हल्दी के हाथ तथा सिन्दूर अंगार ऐसे ही वाक्य हैं। 'हुए कल ही हल्दी के हाथ' में 'कल' शब्द यह द्योतित करता है कि कुछ दिन पहले ही नायिका के मधुमय जीवन का प्रारम्भ हुआ था उसके जीवन में आशा और उल्लास हिलकोरें ले रहे थे। यह शब्द विधवा के विषाद में तीव्रता ला देता है कि अभी हाल में ही उसका विवाह हुआ था।

(५) लहरे उर पर कोमल कुन्तल
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर,
लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर,
शशि की रेशमी-विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल-लहर।

—गुंजन (नौका-विहार) पृ० १०१

इसमें गंगा का मानवीकरण करके नारी-रूप में चित्रण हुआ है। इतना प्राणवान् और यथार्थ चित्र शायद रेखाचित्र से भी सम्भव नहीं। कुछ ऐसी सूक्ष्मतर बातें होती हैं जो रेखाओं में सरलता से बाँधी नहीं जा सकतीं। किन्तु इस चित्र में उपमा सटीक बैठती है। वर्तुल-लहर और साड़ी की सिकुड़न को ऐसी उपयुक्त उपमा द्वारा संजोया गया है कि लहर वास्तव में वैसे ही प्रतीत होती है। यहाँ गंगा अपना रूप खोकर सम्पूर्णतया नारी रूप में चित्रित नहीं हुई है प्रत्युत् दोनों का श्लिष्ट वर्णन यथार्थ और उत्प्रेक्षा के साथ बड़ा ही मार्मिक हुआ है। शशि के मधुरतम तारों से बीनी वर्तुल लहर का अंचल गंगा के गोरे अंगों पर काफ़ी सुन्दर लगता है। साड़ी और अंचल भारतीय संस्कृति के अपने उपकरण हैं।

(६) तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा-स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान! —पल्लव पृ० २७

(७) घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन-चक्र!
काम-सा रखवाला शनि आज
हो गया है हा! मणि-सा वक्र!! —पल्लव पृ० १४

---

१. दे० रामदहिन मिश्र : काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० ४९

(८)　　वह पवित्रता सी अभिषेकित
　　　सद्यः स्फुट शोभा में आवृत
　　　आई मत्स्योदय मंदिर में
　　　नव प्रकाश का करते विस्तृत ।

—स्वर्ण किरण पृ ५१

(९)　मर्म मधुर लज्जा में लिपटी ओ अमर किरण !
　　सजल किसलयों का धर आनन पर अवगुंठन
　　स्वर्ग चेतना बनी लाज मदिरा की मोहन !

—स्वर्ण किरण पृ० ५१

(१०)　　वयस भार से झुका धनुष सा
　　　पृष्ठ बंध रेखांकित आनन
　　　दृष्टि क्षुधा मिटा भी अक्षय
　　　शिथिल हुई अब, मंद स्मृति श्रवण

—स्वर्ण किरण पृ० १४५

(११)　　बदली छंटने पर लगती प्रिय
　　　ऋतुमती धरित्री सद्यस्नात ।

—ग्राम्या पृ० १८

(१२)　मुझको प्रसन्न मन देख धूप सकुचा—कुम्हला
　　बोली 'अब विदा ! मुझे जाना !—वह देखो
　　किरणें अस्ताचल पर कंचन पालकी लिये
　　मुझको ठहरी हैं क्षितिज रेख का सेतु बांध !'

—अणिमा पृ० १२७

(१३)　　मेंहदी की लाली-सी वह कैशोर भावना
　　　जिसने निज यौवन उन्मुख प्रच्छन्न राग से
　　　था अधाम रंग दिया कपोलों की क्रीड़ा को ?

—रजत शिखर, पृ० १५

छठे उद्धरण में वर्णन मात्र से नायिका के स्पर्श संग और वाणी के गोचर रूप दृष्टिगत नहीं होते फिर भी भाषा की लाक्षणिकता ने नारी का एक संश्लिष्ट रूप चित्रित कर दिया है। नायिका के स्पर्श में जीवनी शक्ति (मृतक में भी प्राण फूंकने वाली शक्ति) उसका संग वही शीतलता पवित्रता तथा शांति देता है जैसे गंगा का स्नान। उसकी वाणी में वह मधुरता तथा करुण-पावन ध्वनि है जो त्रिवेणी की लहरों से अनुभूत और श्रुतिगोचर होती है। इसमें त्रिवेणी और गंगास्नान सांस्कृतिक उपकरण हैं।

सातवें उद्धरण में सुदर्शन चक्र, ढाक और असि सांस्कृतिक उपकरण हैं। वियुक्त प्रेमी के नेत्रों के समक्ष प्रेयसी का रूप सुदर्शन चक्र की तरह घूम रहा है। जो शशि संयोगावस्था में ढाक की भांति मुस्काई होकर हमारे सब दुख-दर्द को ढाक के समान अपने ऊपर झेल लेता था वही पूर्णमासी का चन्द्र वियोग में द्वितीया का चन्द्र बनकर तलवार की भांति घातक बन

गया है। यद्यपि विरह को उद्दीप्त करने वाले उपकरण प्राचीन हैं फिर भी कथन में नवीनता होने से यह नवीन प्रतीत होता है। इन पंक्तियों पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव परिलक्षित होता है। सुदर्शन चक्र कहने से वृत्ताकार घूमते हुए सुदर्शन चक्र का रूप खड़ा हो जाता है।

आठवें उदाहरण में भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम प्रतीक है। जिस प्रकार सुन्दर सुरुचिपूर्ण पवित्र नारी प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत्त हो पूजा के हेतु मंदिर में आती है ठीक उसी प्रकार पूजा के सारे उपकरण लेकर उषा-नारी बतासों पर स्वर्णकमल (सूर्य) पर ज्वलित रश्मियों को अंजलि में भर कर अरुणोदय रूपी मंदिर में आई है। यह व्यापक रूप विधान पूजा के निमित्त मंदिर में जाती हुई नारी का चित्र बहुत स्पष्ट कर देता है।

नवें उदाहरण में उषा की किरणों को नवेली नारी के रूप में चित्रित किया गया है। प्रातःकालीन सूर्य की किरणें जलद के पर्दे में मुस्कती छिपती शशि-छाया के सदृश मंथर गति से पृथ्वी पर उतरती हैं। प्रेमी से मिलनातुर नारी का मुख व्रीड़ा से रक्तिम हो उठता है उसी प्रकार किरणमुख उषा है जिसका मुख लाज से रक्तिम हो उठा है। नारी जैसे थोड़ा-सा घूँघट उठाकर हंस गति से गिन-गिन कर पैर रखती चलती है और किसी के देख लेने पर झट अपना मुँह घूँघट में छिपा लेती है—उसी प्रकार किरण निमलयों का अवगुंठन डाल कर धीरे-धीरे भू पर उतर रही है मानो लाज रूपी मदिरा के सेवन करने से यह डगमगा कर चल रही हो (प्रातःकालीन सूर्य की किरणें हलकी मृदुल और तिरछी होती हैं) यहाँ रूपक के सहारे व्यापक रूप-विधान काफी स्पष्ट हो जाता है।

दसवें उदाहरण में 'धनुष' का उपमान बना कर एक वृद्ध का शब्दचित्र खींचा गया है। धनुष एक सांस्कृतिक उपकरण है। उम्र के भार से वृद्ध का शरीर धनुष की भाँति झुक गया है। मुख पर वार्धक्य-सूचक अनगिनत झुर्रियाँ पड़ी हैं उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे महत्त्व देने के लिए बहुत सी रेखायें मुँह पर खींच दी गयी हों। और बुढ़ापे के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयी हैं। अकेला धनुष शब्द वृद्ध की पूरी तस्वीर खींच देता है।

भारतीय संस्कृति में रजस्वला होने के तीन दिन पश्चात् स्त्रियाँ स्नान करती हैं। ग्यारहवें उदाहरण में गाँव की धरती की उपमा ऋतुमती स्त्री से दी गयी है। उपमा बड़ी सटीक और भावव्यंजक बन पड़ी है। रजस्वला होने के बाद स्त्री जब स्नान करती है—उस समय उसकी छवि और निखर उठती है। उसी प्रकार बदली छट जाने पर गाँव की धरती धुली धुली साफ नजर आती है जैसे मैली फटी साड़ी उतार कर नवीन धुली हुई साड़ी पहन ली हो। बरसात से धुली हुई धरती सद्यःस्नात ऋतुमती स्त्री की भाँति काफी सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होती है।

बारहवें उदाहरण में भारत के अनेक वाहनों में पालकी एक विशिष्ट वाहन है। भारत में पालकी का उपयोग विशेषतः स्त्रियों के लिए होता है। घूँघट और पर्दे में रहने वाली स्त्रियाँ घर से दूर यदि कहीं जाती हैं तो वे पर्दे वाली पालकी में ही बैठ कर जाती हैं। सूर्यास्त का समय है। अस्ताचलगामी सूर्य क्षितिज पर स्वर्णिम आभा बिखेर कर विदा ले रहा है। सूर्य के अस्त होने पर न धूप ही दिखाई पड़ती है और न किरणें ही। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने अपनी सूक्ष्म कल्पना द्वारा सन्ध्याकालीन छिपती हुई धूप का सुन्दर

परिवार की नारी का रूप दिया है। क्षितिज पर फैली हुई सुनहली आभा को पालकी बन है जिसके ढोने का काम किरणें करेंगी। इस प्रकार डूबते हुए सूर्य और उसके मुँह पर प सुनहली आभा को देख पालकी में बैठी चार पुरुषों द्वारा ढोई जाती हुई किसी लजीली न का चित्र स्पष्ट उतर आता है। आँखों के समक्ष चित्र तो पालकी और ढोने वाले का ब है और मन में चित्र बनता है पालकी में बैठी हुई नारी का। धूप इतनी लजीली बहू है उसकी पालकी को ढोने के लिए पुरुष नहीं बल्कि किरणा के रूप में स्त्रियाँ हैं। यहाँ क्षिति पर फैली हुई अस्तकालीन सूर्य की स्वर्णिम आभा और पालकी में रूप-साम्य है।

तेरहवें उद्धरण में मेंहदी भारतीय शृंगार का एक प्रमुख प्रसाधन है। सुहागि स्त्रियाँ अपने हाथ और पैर को मेंहदी से रँगती हैं जिससे उनकी शोभा और निखर उठती यहाँ कैशोर भावना को मेंहदी की लाली के सदृश बताया गया है। मेंहदी का लाल पक्का नहीं होता दो-एक रोज में धोते-धोते छूट जाता है, उसी प्रकार किशोरावस्था का प्र भी अस्थिर और क्षणिक होता है जिसमें नासमझी और उन्माद अधिक होता है, वह सं और गम्भीर कम होता है। इस उद्धरण में युवती-युवक की कैशोर-भावना को मेंहदी लाली बता कर उसकी क्षणभंगुरता का संकेत किया है। इसमें उपमान मूर्त तथा उपमे अमूर्त है। मेंहदी की लाली का रूप भले ही गाढ़ा हो जाय किन्तु कैशोर-भावना का गोचर नहीं होता। वह केवल अनुभूति का विषय है। उपमान धर्म-साम्य पर आधारित जो किशोर भावना की विशेषता को अधिक स्पष्ट कर देता है। इस रूप विधान में भा प्रवणता अधिक उर्वरता तथा सादृश्य कम है।

प्राकृतिक

(१—क) मेखलाकार पर्वत अपार अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा था बार बार, नीचे, जल में निज महाकार।
(१—ख) जिसके चरणों में पला ताल, दर्पण सा फैला है विशाल।
(१—ग) गिरिवर के उर से उठ उठ कर उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष अटल कुछ चिन्तापर।

(१—क) साधारण कवि पर्वत के आकार प्रकार का वर्णन करके यहाँ पर विकसि सुमनों की सूची मात्र दे देगा किन्तु पन्त ने पर्वत का संश्लिष्ट चित्र दिया है। मेखलाका पर्वत सहस्रसुमन की आँखों से जल में अपना रूप देख रहा है। 'आँखें फाड़ कर देखन मुहावरा प्रयुक्त होने पर विशालकाय पर्वत का जिस पर अनेक पुष्प विकसित हैं दृश्य सम्मु खिंच जाता है। इसमें पर्वत का मानवीकरण किया गया है।

(१—ख) ताल दर्पण के सदृश स्वच्छ और निर्मल है। दर्पण की भाँति जल में भ प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। यहाँ रूप-साम्य का आधार लेकर चित्र को स्पष्ट किय गया है।

(१—ग) पर्वत के हृदय पर उगे हुए वृक्ष ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे ये वृक्ष गिरिव की विभिन्न आकांक्षाएँ हैं जो मूर्तिमान हो गयी हैं। उन तरुवरों की उच्चाकांक्षाओं-से उठने और अपलक नभ की ओर देखने की क्रिया व तरुवर का रूप मानव-व्यापारों से साम

रखता हुआ काफी निखर आया है। किन्तु विशुद्ध प्रकृति के ये चित्र 'उच्छ्वास' कविता में ऊपर से थोपे-से गये प्रतीत होते हैं। इन चित्रों से उच्छ्वास का न तो कोई सम्बन्ध है और न इनसे भावों में तीव्रता ही आती है। आगे चल कर कवि ने बादल को विरह-सन्देशों-सा बताया है। यह कवि की मौलिक कल्पना नहीं है इसमें कालिदास के मेघदूत की छाया है

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्वार्धलम्बी
त्वद्विस्यन्द स्फटिक विशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः
आपातरम्य प्रथम विरले मेघमालिल्य बाहुम्
सम्बीता परिणत मय प्रेक्षणीयम् ।

(२-क) शिखर पर विचर मरुत रखवाल वेणु में भरता था जब स्वर
मेमनों-से मेघों के बाल कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।

—पल्लव पृ० २१

यहाँ पर मेघ को मृग का उपमान देकर चित्र को सजीव बनाया गया है। शिखरों पर विचरण करने वाला मरुत ही रखवाला है जो मेमनों के सदृश मेघों के बाल को चरा रहा है। तात्पर्य यह कि मन्द पवन के झोंके में छोटे-छोटे बादल के टुकड़े इधर उधर बिखर जाते हैं। इसी भाव को कवि ने रूपक के सहारे अधिक तीव्र बना दिया है।

पन्त का 'बादल'[1] एक नाटकीय पात्र की भाँति स्वयं अपना परिचय देता हुआ बहुरूपिया बन कर सामने आता है। कभी वह मृग के समान चौकड़ी भरता है, और कभी मतंगज अथवा तापस बन जाता है। आग बन कर दूसरे क्षण में वही बादल सरगम के सिपाही की भाँति बन्दर बन कर मतिंग की शाख पर बैठ कर मुँह बनाता है। फिर परियों के बच्चों की भाँति इन्दु के सुकुमार कर पकड़ कर शुचि ज्योत्स्ना में मधुर विचरण करता है। अलौकिक मेघ हिरण की भाँति शीघ्रगामी होते हैं। वही मेघ काला और भारी होने से मतंगज की भाँति झूमता नजर आता है और कभी-कभी मकर बन्ध का टुकड़ा एक ही स्थान पर गरुड़ की भाँति चमकता हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार कवि ने अपनी अद्भुत कल्पनाशक्ति से मेघ को मृग मतंगज स्थाणु कीश गृद्ध तथा पपीहा का रूपक बना कर उसके विभिन्न रूप-रंग तथा क्रियाकलाप का सुन्दर चित्र खींचा है। यहाँ रूप-साम्य तथा व्यापार-साम्य दोनों हैं। इसका चमत्कार भावना से सबल है।

(२-ख) हम सागर के धवल हास हैं जल के धूम, गगन की धूल
अनिल फेन उषा के पल्लव वारि-वसन वसुधा के मूल

—पल्लव पृ० १८

प्रस्तुत पंक्तियों में अप्रस्तुत भावनाओं का स्वरूप विशेषण के समान विषय की विशदता तीव्र करने के ही निमित्त हुआ है। विशेषण प्रत्यक्ष विषय के गुण धर्म पर प्रकाश डालते हैं किन्तु ये रूपक की भाँति आरोपित किए गये हैं। उपयुक्त अप्रस्तुत योजनाएँ बादल के लिए प्रयुक्त हुई हैं। सागर के जल से ही बादलों का निर्माण होता है और बादल का रंग श्वेत होता है और जल का भी। इस प्रकार बादल को सागर का धवल हास कहने

---

१ प० पृ० ६८

ो बादल की विशेषता प्रकट होती है। भाप के रूप में बादल को जल का धूम और गगन ों धूल की भाँति उड़ने के कारण उसे गगन की धूल कहा गया है। बादल की निर्माण प्रक्रिया में हवा का हाथ है इसलिए उसे अनिल का फेन कहा गया है। प्रातःकालीन सूर्य की स्वर्णिम किरणों की छाया से बादल का रंग लाल हो उठता है अतः उसे ऊषा का पल्लव कहना अनुचित नहीं प्रतीत होता। पानी से ही बादल का निर्माण होता है और विस्तार होने पर टँगे हुए कपड़े के समान प्रतीत होता है, अतः उसे वारि का वसन कहना बहुत सबल प्रतीत होता है। इसी प्रकार समस्त 'बादल' शीर्षक कविता में नवनिर्माण-स्वरूप शब्दों का प्रयोग हुआ है जो विविध रूपों में बादल के लिए प्रयुक्त हुए हैं। सखिल मस्म मारुत के फूल तिम के तम पावक के धूम व्योम के केलि गगन के गाम अपलक तारों की तन्द्रा ज्योत्स्ना के हिम, शशि के धाम इत्यादि शब्दों का प्रयोग बादल की विशेषता प्रकट करने के लिए हुआ है।

(२–क) अभी गिरा रवि ताम्र-कलश सा

(२–ख) घूरे बलदों से धूमिल नभ, विहग छदों-से बिखरे—
धेनुत्वचा-से सिहर रहे, जल में रोओं-से छितरे।

—युगवाणी (गंगा की सांझ) पृष्ठ ११

गंगा के किनारे खड़ा-खड़ा कवि अस्ताचलगामी सूर्य को देख कर कल्पना करता है कि जैसे ताम्र-कलश पानी भरने के लिए जल में डुबाया जाता है उसी प्रकार ताँबे के घड़े के समान कालिमा लिये सूर्य जैसे गिर पड़ा हो। यहाँ 'गिरा' क्रिया से अस्त होते हुए सूर्य का बिम्ब और भी स्पष्ट हो जाता है।

(२–ख) इसमें दूसरे (ख) की भाँति बादलों के लिए नये-नये उपमान जुटाये गये हैं। विहग-छदों से धेनु-त्वचा-से तथा रोओं-से बादल के रूप तथा व्यापार से साम्य जोड़ा गया है। इस प्रकार मूर्त से मूर्त का उपमान मिला कर कवि ने बादल को बहुत सजीव कर दिया है।

(३–क) जो चित्र शलभ-सी पंख खोल
उड़ने को अब कुसुमित घाटी—

—युगपथ पृ० १८

कवि अल्मोड़े का पर्वतीय दृश्य देख आत्मविभोर हो उठता है। मधुऋतु में रंगबिरंगे फूलों से सजी हुई घाटी को देख कर कुसुमित घाटी का उसने उड़ते हुए पक्षी की भाँति वर्णन किया है।। चित्रित शलभ को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह अब उड़ेगा उसी प्रकार कुसुमित घाटी भी चित्र-शलभ की भाँति उड़ने-उड़ने को हो रही थी। चित्रित शलभ उपमान से कुसुमित घाटी का चित्र बड़ा ही सजीव हो उठा है।

(३–ख) पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

—युगपथ पृ० ८४

प्रस्तुत पंक्तियों में दो अप्रस्तुत योजनाएँ हैं—पत्रों के आनत अधरों पर निखिल वन का मर्मर उसी प्रकार निःशब्द हो गया है जैसे वीणा के तारों में स्वर सो गया हो। वीणा के तार की झनझनाहट जिस प्रकार उसी में समा-सी जाती है उसी प्रकार वन का सारा

कोलाहल पत्तों के आगत मर्मरों पर आ गया है। तात्पर्य यह कि पशु-पक्षी तो मौन हैं ही पेड़ के पत्ते जो हवा के झोंके से दिन में हिल-हिल कर मर्मर ध्वनि उत्पन्न करते थे वे भी हवा के अभाव में नीरव हैं। दूसरा अप्रस्तुत धूलिहीन गोपथ के लिए धूसर भुजंग लाया गया है। सन्ध्या बीत जाने पर गोपथ उसी प्रकार, शांत स्पन्द और निश्चल है जैसे धूसरित सर्प। शेष पंक्तियों में प्रस्तुत के सहारे ही रात के नीरव वातावरण का चित्र खींचा गया है जब झींगुर के धीमे स्वर के अतिरिक्त उस श्मशान की-सी नीरवता को तोड़ने वाला अन्य कोई स्वर सुनाई नहीं पड़ रहा है। समूची पंक्तियाँ रात के वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं।

(३—ग) गंगा के चल जल में निर्मल कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गई नील ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर

—गुंजन (एक तारा) पृ० ८४

प्रकृति का वातावरण नीरव और निस्पन्द है गंगा के चल जल में किरणों की स्वर्णिम आभा तिरोहित हो गयी है। अन्धकार गाढ़ा हो जाने पर सुनहली किरणें नीली दीखने लगती हैं। भय की व्याकुलता और शीत की ठिठुरन से अधर नील-वर्ण हो जाते हैं। इस तथ्य की व्यंजना कवि ने प्रकृति के माध्यम से बड़े ही मार्मिक ढंग से की है। कवि ने प्रकृति में मानव-आकृति मानव-क्रिया तथा मानव-भावनाओं का बड़ा सफल आरोपण किया है। अतिशय शीतलता से अरुण अधरों की लालिमा नीलिमा में परिवर्तित हो जाती है। दोनों में वस्तुगत व्यापार-साम्य है। उपमेय और उपमान के व्यापार का यह औचित्य कविता के कलापक्ष को उतना ही तीव्र बनाता है जितना कि भावपक्ष को।

(४—क) सिमटा पंख साँझ की लाली, जा बैठी अब तरु शिखरों पर
ताम्रपर्ण पीपल-से शतमुख झरते स्वर्णिम निर्झर
ज्योति स्तम्भ-सा धँस सरिता में सूर्य क्षितिज पर होता ओझल
बृहद् जिह्म विश्लथ केंचुल-सा, लगता चितकबरा गंगा-जल।

—ग्राम्या पृ० ११

प्रस्तुत पंक्तियों में अलग अलग चार चित्र हैं। पहली पंक्ति में साँझ की लाली का मानवीकरण करके उसे पक्षी का रूप दे दिया गया है। सूर्यास्त होते समय साँझ की लाली तरु-शिखरों पर ही दिखाई देती है उसी की कवि कल्पना करता है जैसे कोई पक्षी पंख समेट कर तरु-शिखरों पर जा बैठा हो। दूसरी पंक्ति में निर्झर का चित्र है जिसका जल डूबते हुए सूर्य की लालिमा से ताम्रवर्ण-सा प्रतीत हो रहा है। तीसरी पंक्ति में क्षितिज के पार डूबता सूर्य ज्योतिस्तम्भ-सा प्रतीत होता है। चौथी पंक्ति में गंगा के जल का चित्र है जो अनेक प्रतिबिम्बों के पड़ने के कारण केंचुल-सा चितकबरा मालूम होता है।

(४—ख) एक छवि-कण अवतर शिशु-सा, पलक पर
था पड़ा सुकुमारता-सा, प्यार-सा,
चाह-सा, शुचि-सा लघुता-सा, स्वप्न-सा।

—ग्रन्थि पृ० १९

पन्त ने कभी-कभी भावावेश में एक उपमेय की अभिव्यंजना के लिए उपमानों की झड़ी-सी लगा दी है। प्रस्तुत की पूर्णाभिव्यक्ति जब एक अप्रस्तुत द्वारा नहीं होती तब समान धर्मी अनेक उपमान स्वतः कवि के हृदय से निर्झर की भाँति फूट पड़ते हैं। प्रिय की मधुर स्मृति में आत्मविभोर प्रेमिका की पलक पर पड़ कर एक अश्रुबिन्दु कभी अमन्द सिन्धु बन जाता है कभी अनेक अमूर्त भाव मूर्त रूप धारण करके उसकी अभिव्यक्ति करने को व्याकुल हो उठते हैं। जैसे प्रस्तुत पंक्तियों में एक अश्रुकण को अमन्द सिन्धु-सा सुकुमारता-सा गान-सा चाह सा, सुधि-सा सगुन-सा स्वप्न-सा उपमानों से चित्रित किया गया है। यद्यपि इन उपमानों से अश्रुकण का रूप सम्मुख नहीं आता फिर भी समूची पंक्तियाँ पाठक पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाती हैं। प्रकृति के प्रति कोमल और भावुक चित्रण में कविवर पन्त की तूलिका बेजोड़ है।

कविवर पन्त को रजत और कनक से विशेष ममता है, कहीं अवसर मिला नहीं कि रजत और कनक विशेषण बन कर अपने विशेष्य की विशेषता बताने के लिए आ पहुँचते हैं। देखिये

(३—क) उदयाचल पर कनक-चक्र-सा रश्मिस्फुरित रवि उठ कर

× × ×

सन्ध्या के नत मस्तक पर रक्तोज्वल मणि-सा विराजित।
बिम्ब छत्र-सा रजत व्योम किरणों से विरचित ऊपर—

—अतिमा पृ० १४१

उदयाचल पर उगते हुए सूर्य का स्वरूप कनक चक्र-सा प्रतीत होता है। कनक-चक्र उपमान सुनहली किरणों से मंडित सूर्यमंडल के लिए बहुत ही उपयुक्त है वही सूर्य अस्त होते समय सन्ध्या-सुन्दरी के मस्तक पर रक्तोज्वल मणि-सा प्रदीप्त हो उठता है। सूर्य के उदय और अस्त का दृश्य इन पंक्तियों में सजीव हो उठा है।

(४—ख) राजहंस-सा तिरता शशि मुक्ताभ नीलिमा जल में।
सीपी के पंखों को छहरा रत्न छटा जल-थल में॥

—अतिमा पृ० ११८

तारों से गूँथे नील गगन में शशि राजहंस-सा प्रतीत होता है। जैसे राजहंस पानी में तैरता हुआ मोती चुगता है उसी प्रकार यह शशि-रूपी राजहंस सीपी के सदृश स्वच्छ पंखों को बिखरा कर नीले नभ-रूपी जल में तारा-रूपी मोतियों को चुनने के लिए तैर रहा हो। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत में सूर्य को राजहंस बनाया है।

सखि! नील नभस्सर में उतरा यह हंस अहा! तरता तरता।

मानवीकरण

(१—क) नारी रूप चित्रण

मखोड़ा-बाल-लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुक कर
सरकती है सत्वर —पल्लव पृ० २०

प्रभाव-साम्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि वस्तु के प्रत्येक कार्य या गुण का पूर्णतः साम्य हो। सादृश्य और साधर्म्य के संकेत मात्र से भी भाव की वृद्धि हो तो पूरा आरोप अनावश्यक है। यदि सादृश्य और साधर्म्य प्रभावोत्पादक नहीं तो वह उपमान निर्जीव है। अप्रस्तुत-योजना में प्रभाव की क्षमता उपेक्षणीय नहीं है। उपर्युक्त पंक्तियों में सादृश्य का अभाव होने पर भी नाम मात्र के प्रभाव संकेत पर रूप-विधान की योजना की गयी है।[1] छायावाद युग की यह एक विशिष्टता है। इसमें बाल-लहर का मानवीकरण करके नवोढ़ा बना दिया गया है। नवोढ़ा पति के समीप जाती तो है पर अप्रत्याशित भय तथा स्त्रियोचित लज्जा के कारण वहाँ से जल्दी ही भाग आती है। लज्जा और भय से सरकना या संकुचित होना ही साम्य का आधार है। बाल-लहर नवोढ़ा-सी रुक कर सरकती है। वास्तव में नवोढ़ा और बाल-लहर का कुछ भी रूप-सादृश्य नहीं है। रुककर सरकने की क्रिया में किंचित् साधर्म्य है। नवोढ़ा रूपक के रूप में है और लहर पर उसका अध्यवसान किया गया है। वस्तुतः यहाँ लुप्तोपमा है फिर भी सरकती हुई लहरों का चित्र सुन्दर है।

(१—ख)

देख बँकीला भ्रू-सुरचाप—
शैल की सुधि यों बारम्बार—
हिला हरियाली का सुदुकूल
झुला झरनों का झलमल हार,
जलद-पट से दिखला मुख चन्द्र,
पलक पल-पल चपला के मार।

—पल्लव पृ० २१

उपर्युक्त पंक्तियों में स्मृति-रूप-विधान के सहारे प्रेयसी का रूप-चित्रण किया गया है। पर्वत की समस्त विभूतियों का सांग रूपक में अवस्थान किया गया है। प्रेयसी का सौन्दर्य निरूपण करते-करते पावस ऋतु का पर्वत सजीव हो उठा है। आकाश के इन्द्रधनुष को देखकर प्रेयसी की बंकिम भौंहें याद आती हैं। पर्वत पर बिखरी हुई राशि राशि हरियाली उसके दुकूल का स्मरण दिलाती है। पर्वत के हृदय पर लहराते हुए झरने प्रेयसी के कंठ में पड़े हुए हार की याद ताजी करते हैं। बादल के बीच से झाँकते हुए चन्द्र को देख कर उसका मुख सामने आ जाता है। विद्युत का चमकना और छिपना प्रणयी के तीक्ष्ण कटाक्ष का रूप सम्मुख खड़ा कर देता है। यह पर्वतीय दृश्य एक सामान्य सजी हुई नारी की तस्वीर खींच देता है।

पन्त ने 'वीचि-विलास' में लहर को नारी का रूप देकर उसे अनेकों अप्रस्तुतों से लाद दिया है। मृदु मोम-सी सरल-कल्पना-सी यौवन की स्मिति-सी, वारि-केलि सी छुईमुई-सी, स्वर्ग-स्वप्न-सी, इच्छाओं-सी मुग्धा की-सी मृदु मुसकान दिव्य मूर्ति-सी वह लहर है और वह वारि की किशोर परी नील-कुसुम चारों ओर नचाती हुई किरणों का हिंडोला बना कर झूलती है। और अन्त में कवि ने लहर को उस पवन का प्रतीक बना दिया है जो अनन्त रसात्मक तथा आनन्दमय है। इसीलिए उसे अकूल की उत्सुक हास अजान की पुलकित

---

१ देखिए — रामदहिन मिश्र काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० ६४

प्रवास महानन्द की मधुर उमंग तथा चिर-शाश्वत का अस्थिर लास बना दिया है। वीचि विलास का कलापक्ष भावपक्ष से अधिक सबल है। सारी अप्रस्तुत-योजना में मूर्त से अमूर्त और अमूर्त से मूर्त का रूप-विधान प्रस्तुत किया है।[1]

इसी प्रकार 'छाया' कविता में छाया का मानवीकरण करके उसके लिए अप्रस्तुतों की एक छोटी-मोटी सेना ही खड़ी कर दी है। म्लान-मना और परिहृत-वसना छाया-रूपी नारी मान-हृता-विच्छिन्न-लता-सी रति-श्रान्ता व्रज-वनिता-सी लगती है। वह भाग्य की मारी आश्रय-रहिता है इसीलिए पद-दलित और मुक्त कुन्तला तथा धूलि-धूसरित-सी भी प्रतीत होती है। परित्यक्ता नारी विजन-विपिन में पीले पत्तों की शय्या पर विरक्ति-सी मूर्च्छा-सी दुख-विधुरा-सी पड़ी है। यहाँ तक अप्रस्तुतों की योजना प्रस्तुत के आधार पर ही हुई है। इसलिए दुखिया नारी का चित्र इन अप्रस्तुतों के सहारे सजीव हो उठा है और साथ ही साथ काव्य की मार्मिकता पर भी आँच नहीं आई है। आगे चल कर कवि ने प्रस्तुत की अवहेलना करके ऐसे अप्रस्तुतों की योजना की है जिससे कविता इन्द्रजालिक-सी चमत्कारिक ही प्रतीत होती है उसका भावपक्ष निर्बल हो गया है। ऐसे अमूर्त उपमानों से छाया का कोई रूप नहीं बन पाता। तात्पर्य यह कि इन उपमानों से 'छाया' का रूप साम्य धर्म-साम्य तथा प्रभाव-साम्य कुछ भी नहीं है। छाया जब कवियों की गूढ़ कल्पना-सी अज्ञाता के विस्मय-सी ऋषियों के गम्भीर हृदय-सी बच्चों के तुतले भय-सी भू-पलकों पर स्वप्न-जाल-सी चंचल जल-सी मौन अश्रुओं के अंचल-सी गहन गर्त में समतल-सी तरुवर की छायानुवाद-सी उपमा-सी भावुकता-सी भावाकुल भाषा-सी कटी-छँटी नव कविता-सी पश्चात्ताप की परछाईं-सी दुर्बलता-सी अंगड़ाई-सी बन जाती है तब उसके आकार प्रकार और रूप रंग का कुछ भी पता नहीं चलता। भावोद्दीपन की शक्ति का अभाव और कृत्रिमता का बाहुल्य कविता के सारे प्रभाव को नष्ट कर देता है।[2] छाया को जब कवि कौन-सी लम्बी मान कर उसे 'विटपी की व्याकुल प्रेयसी' तथा पथ की भिखारिणी कहता है उस समय उसका एक छोटा-सा चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

(१—घ) कहो तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
सुनहला फैला केश-कलाप,
मधुर मंथर, मृदु मौन !
× × ×
मूँद अधरों में मधुपालाप
पलक में निमिष पदों में चाप
भाव संकुल बंकिम भ्रू-चाप
मौन केवल तुम मौन !
× × ×

१ देखिये : पल्लव वीचि-विलास पृ ९२ से ९४
२ देखिये पल्लव (छाया) पृ ६७ से ६९
३ देखिये पल्लव (छाया) पृ० ७० और ७१

पीन शिथिल चंपक द्युतिगात,
नयन मुकुलित नत मुख जलजात,
देह छवि-छाया में दिन-रात
कहाँ रहती, तुम कौन ?
अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल, मधुर नूपुर-ध्वनि खग कुल रोल,
सीप-से जलदों के पर खोल उड़ रही नभ में मौन !
लाज के अरुण सुकपोल, मदिर अधरों की सुरा अमोल,
बने पावस-घन स्वर्ण-हिंदोल
कहो, एकाकिनि कौन ?
मधुर-मंथर तुम मौन !

—गुंजन (सन्ध्या) पृ० ५४-५५

उपर्युक्त पंक्तियों में सन्ध्या का मानवीकृत नारी-रूप बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। कवि की कल्पना से सन्ध्या नारी के रूप में सजीव हो उठी है। सन्ध्या-सुन्दरी अधरों में मधुपालाप बन्द किये हुए, स्वर्णिम-केश-राशि फैलाए मन्थर गति से व्योम से उतर रही है। यह सन्ध्या-सुन्दरी का रूपात्मक चित्र है। तत्पश्चात् उसके अंग प्रत्यंग का चित्र विभिन्न भावगत रंगों के साथ से चमकीला बनाया गया है। उसकी भौंहें बंकिम तथा लाजा के बोझ से झुकी हुई हैं। व्योम से उतरने की विशेष मुद्रा में उसकी गरदन तिरछी-सी लगती है। शरीर में चम्पे की गोराई है। मादकता के भार से उसके अधखुले नयन तथा लाज के बोझ से नतमुख नारी के चित्र को काफ़ी सजीव कर देते हैं। उसके सुनहले अंचल हवा के झोंके से फहरा रहे हैं पैरों में पहने हुए नूपुरों में खग-कुल की मधुर-मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। लाज से कोमल कपोल रक्ताभ हो उठे हैं और लाल-लाल अधरों में अनमोल सुरा का वास प्रतीत होता है। इस कल्पित नारी में संध्या के सभी गुण समन्वित किये गये हैं। किन्तु सुनहले केशों में अभारतीयता की झलक मिलती है।

इसी प्रकार निराला और महादेवी वर्मा ने भी सन्ध्या-सुन्दरी का चित्र खींचा है

दिवसावसान का समय, मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर
किन्तु ज़रा गम्भीर,—नहीं उसमें है हास-विलास।

—निराला परिमल

निराला की सन्ध्या-सुन्दरी पन्त की सुन्दरी से अधिक सजीव और प्राणवान् प्रतीत होती है। उपर्युक्त पंक्तियों में पन्त की भाँति निराला ने भी सन्ध्या-सुन्दरी को आसमान से नीचे उतारा है। सूर्य अपनी अन्तिम सुनहली किरणों से जगत् को देख छिप गया तत्पश्चात् सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी भू पर अवतरित हुई। अम्बर से उतरती हुई नारी को कवि ने दो रूपों में चित्रित किया है। इस चित्र के दो पहलू हैं—रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य। रूप सौन्दर्य में नख-शिख आदि नारी के अंगों का चित्रण किया है तथा भाव-सौन्दर्य में उसकी

कोमलता और हृदयगत गम्भीरता का चित्रण है। सन्ध्या-सुन्दरी का तिमिरांचल वायु के प्रकम्पित झोंके से पन्त की सुन्दरी की भाँति चंचल हो फहराता नहीं, स्थिर है। उसके अधरों में मुस्कान नहीं गम्भीरता छिपी पड़ी है। हाँ एक हीरे से प्रकाशमान तारा उसकी घुँघराली अलकों में जड़ा हुआ अपने हृदय राज्य की रानी का अभिषेक करता हुआ दिखाई पड़ता है। आगे चल कर यह सुन्दरी सजीव होकर सारे जगत् को परिवेष्ठित कर लेती है। सन्ध्या-सुन्दरी अलसता की लता के सदृश नीरवता की सखी के कंधे पर बाँहें डाल छाया के समान अम्बर पथ से धीरे धीरे भू पर उतर रही है। 'छाँह-सी' शब्द ने चित्र को और भी सवाक बना दिया है उसके हाथों में न तो वीणा है न पैरों में नूपुर। समस्त दिशाओं में नीरवता और चुप-चुप का गाढ़ा रंग पोता हुआ है। सम्पूर्ण कविता में उदास और मलिन-मुख वातावरण का भाव पूर्ण चित्र विद्यमान है। सुमी शकुन्तला सिंह के शब्दों में 'निराला जी ने सन्ध्या-सुन्दरी का एक भावाभिभूत छाया-चित्र (Silhouette) खींचा है, जिसमें रंग की एकता होने के कारण तन्मयता आ गयी है। किन्तु पन्त की सन्ध्या-सुन्दरी हाव भाव और विविध अनुभावों न प्रदर्शन के कारण एक चंचल नायिका के रूप में सामने आती है।

पन्त की सन्ध्या-सुन्दरी से मिलती-जुलती तस्वीर महादेवी की वसन्त रजनी की भी है। इसमें

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी

मादक वसन्त की सुरा-सी उन्मत्त वसन्त रजनी अपने शृंगार के सम्पूर्ण साधनों से सुसज्जित होकर ही क्षितिज पर उतर सकती है। वसन्त रजनी की वेणी झलमिलाते तारा से गूँथी होने पर जगमग-जगमग कर रही है। चन्द्रमा ही उसका शीशफूल (सिर पर का एक गहना) है, उसके नरम-नरम हाथों में रश्मियों की सुघड़ चूड़ियाँ मँढ़ी हैं और श्वेत बादलों का हलका घूँघट खिंच हुए है। प्रस्तुत पंक्तियों में विविध आभूषणों से सजी-सजाई एक रूपवती स्त्री का चित्र झाँक-झाँक उठता है।

(१-घ) तुम मुग्धा-सी अति भाव-प्रवण
उकसे थे अँबियों-से उरोज

—युगपथ पृ० ४०

इन पंक्तियों में भाव प्रवण मुग्धा के उरोज का एक बहुविध प्रस्तुत किया गया है। उनके उरोज अँबिया-से उकस थ। यद्यपि उरोज न लिए अँबियों का उपमान प्राचीन है फिर भी पंत ने 'उकसे' क्रिया जोड़ कर उसके विकास का पथ प्रशस्त कर दिया है। इसी प्रकार आप्लावित नयन के लिए वीणा में पन्त ने 'वारि-विनिर्मित वारिद-दल' कह कर अश्रु बरसाते हुए नेत्रों का एक अंक चित्र प्रस्तुत किया है।[१] और सुन्दरी की काली वेणी के लिए वासु नागिनी उपमान उपयुक्त ही चुना है। वासु नागिनी नागिन होती है। नागिन के डसने से जिस प्रकार मानव तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ देता है उसी प्रकार उसकी वेणी के सौन्दर्य के पीछे कितने ही मनुष्य प्राण खो सकते हैं। वासु नागिनी वेणी गुण-साम्य है। इस छोटे से चित्र में नायिका की

१ पन्त : वीणा-ग्रंथि, पृ २४

वेणी काली नागिन की तरह लहरा उठती है।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में बिना अप्रस्तुत के ही प्रस्तुत का चित्र खींचा गया है। बाला के लिए शशि-कला उपमान बन कर आया है। आगे की पंक्तियों में बाला के अनुभावों से (जिसे वह दृष्टि से व्यक्त कर रही थी) उसकी भयपूर्ण दुखी एवं चिन्तित मुद्रा की झलक दी गयी है। जिसका प्रेमी नदी में डूबने के कारण मूर्च्छितप्राय हो गया है।

(१—च) बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती, भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में
अचल रेखांकित कभी थी कर रही प्रमुखता मुखछवि के काव्य में।

—वीणा-ग्रंथि, पृ० ६७

इन पंक्तियों में नायिका के शशि-मुख पर बिखरी हुई काली-काली अलकों का गत्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। काली अलकों के लिए बाल-रजनी का उपमान भावोत्कर्ष में काफी सहायक है। अलक के डोलने की क्रिया को 'रेखांकित' की उत्प्रेक्षा नायिका के मुख की सुघरता को और मोहक कर देती है। 'रेखांकित' अंग्रेजी के (Underlined) शब्द का अनुवाद-सा प्रतीत होता है। किन्तु कवि ने बड़ी कलात्मकता से उसका प्रयोग किया है। यहाँ बाल-रजनी का तात्पर्य है रात-सी काली। रात की वृद्धि के साथ-साथ ही कालिमा के बढ़ने की गति का आभास होता है। यही गति दोनों के डोलने का सादृश्य प्रस्तुत करती है। लक्षणा से बाल-रजनी का तात्पर्य है चपल कालिमा।

(१—छ) फूल-सी मार्जार-बाला सामने
निरत थी निज बाल-क्रीड़ा में कभी
उछलती थी पर दुबक कर ताकती
घूमती थी साथ फिर-फिर पूछ के
मन्द मुसकाती, चपल-भ्रू-वीचि में!

—वीणा-ग्रंथि, पृ० ७२

उपर्युक्त पंक्तियों में बाल-क्रीड़ा में निमग्न मार्जार-बाला का सुन्दर रेखाचित्र खींचा गया है। स्थिर चित्र से गत्यात्मक चित्र अधिक प्रभावोत्पादक तथा जीवन्त प्रतीत होते हैं। इन पंक्तियों में मार्जार-बाला के क्रिया-कलापों की सुन्दर झाँकी दी गयी है। मार्जार-बाला का उछलना, दुबकना, ताकना, घूमना इत्यादि का सजीव चित्र उपस्थित हो गया है।

इसी प्रकार 'निराला' के भी गत्यात्मक चित्र काफ़ी आकर्षक बन पड़े हैं।

"चुम्बन चकित चतुर्दिक चंचल, हेरफेर मुख कर बहु सुख छल
कभी हास फिर त्रास साँस-बल उर सरिता उमगी।

—निराला

इसमें चुम्बन से चकित होना, चपलता से चतुर्दिक देखना, मुख फेरना, कभी हँसना, कभी डरना आदि के चित्र सिनेमा के गतिवान् चित्र प्रतीत होते हैं।

---

१. उस निरीहा का क्या जिसकी बाहु-भगिनी वेणी में
पत्थर रखता हाय! प्रवासी छले हृदों की आँखों में!

—वीणा-ग्रन्थि पृ० ११

कोमलता और हृदयगत गम्भीरता का चित्रण है। सन्ध्या-सुन्दरी का तिमिरांचल वायु के प्रकम्पित झोंके से पन्त की सुन्दरी की भाँति चंचल हो फहराता नहीं, स्थिर है। उसके अधरों में मुस्कान नहीं गम्भीरता छिपी पड़ी है। हाँ एक हीरे से प्रकाशमान तारा उसकी घुँघराली अलका में जड़ा हुआ अपने हृदय राज्य की रानी का अभिषेक करता हुआ दिखाई पड़ता है। आगे चल कर वह सुन्दरी सजीव होकर सारे जगत् को परिवेष्ठित कर लेती है। सन्ध्या-सुन्दरी अलसता की लता के सदृश नीरवता की सखी के कंधे पर बाँहें डाल छाया के समान अम्बर पथ से धीरे धीरे भू पर उतर रही है। 'छाँह-सी' शब्द ने चित्र को और भी सवाक बना दिया है उसके हाथों में न तो वीणा है न पैरों में नूपुर। समस्त दिशाओं में नीरवता और चुप-चुप का गाढ़ा रंग पोता हुआ है। सम्पूर्ण कविता में उदास और मलिन-मुख वातावरण का भाव पूर्ण चित्र विद्यमान है। मुन्नी सकुन्तल सिंह के शब्दों में 'निराला' ने सन्ध्या-सुन्दरी का एक भावाभिभूत छाया-चित्र (Silhouette) खींचा है, जिसमें रंग की एकता होने के कारण तन्मयता आ गयी है। किन्तु पन्त की सन्ध्या-सुन्दरी हाव भाव और विविध अनुभावों के प्रदर्शन के कारण एक चंचल नायिका के रूप में सामने आती है।

पन्त की सन्ध्या-सुन्दरी से मिलती-जुलती तस्वीर महादेवी की वसन्त रजनी की भी है। देखिए

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी

मादक वसन्त की सुरा-सी उन्मत्त वसन्त रजनी अपना शृंगार के सम्पूर्ण साधनों से सुसज्जित होकर ही क्षितिज पर उतर सकती है। वसन्त रजनी की वेणी अनमिनत तारों से गुँथी होने पर जगमग-जगमग कर रही है। चन्द्रमा ही उसका शीशफूल (सिर पर का एक गहना) है, उसके नरम-नरम हाथों में रश्मियों की सुघड़ चूड़ियाँ मौजूद हैं और श्वेत बादलों का हल्का घूँघट किये हुए है। प्रस्तुत पंक्तियों में विविध आभूषणों से सजी-सजाई एक रूपवती स्त्री का चित्र झाँक-झाँक उठता है।

(१-ख) तुम मुग्धा-सी अति भाव-प्रवण
उकसे थे अँबियों-से उरोज

—युगपथ पृ० ४०

इन पंक्तियों में भाव प्रवण मुग्धा के उरोज का एक खंडचित्र प्रस्तुत किया गया है। उसके उरोज अँबियों-से उकसे थे। यद्यपि उरोज के लिए अँबियों का उपमान प्राचीन है फिर भी पंत ने 'उकसे' क्रिया जोड़ कर उसके विकास का पथ प्रशस्त कर दिया है। इसी प्रकार *आर्द्र नयन के लिए वीणा में पन्त ने 'वारि-विनिर्मित वारिद-दल' कह कर अश्रु बरसाते हुए* नेत्रों का एक खंड चित्र प्रस्तुत किया है।[१] और सुन्दरी की काली वेणी के लिए वायु भक्षिणी उपमान उपयुक्त ही चुना है। वायु भक्षिणी नागिन होती है। नागिन के डसने से जिस प्रकार मानव तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ देता है उसी प्रकार उसकी वेणी के सौन्दर्य के पीछे कितने ही मनुष्य प्राण खो सकते हैं। वायु भक्षिणी वेणी गुण-साम्य है। इस छोटे से चित्र में नायिका की

१ पन्त : वीणा-ग्रंथि पृ० २४

बैसी काली नागिन की तरह लहरा उठती है।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में बिना अप्रस्तुत के ही प्रस्तुत का चित्र खींचा गया है। बाला के लिए शशि-कला उपमान बन कर आया है। आगे की पंक्तियों में बाला के अनुभावों व (जिसे वह दृष्टि से व्यक्त कर रही थी) उसकी अभूतपूर्व खुशी एवं विस्मित मुद्रा की झलक दी गयी है। जिसका प्रेमी नदी में डूबने के कारण मूर्च्छितप्राय हो गया है।

(१-ख) बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

—वीणा-ग्रंथि, पृ० ६७

इन पंक्तियों में नायिका के शशि-मुख पर बिखरी हुई काली-काली अलकों का गत्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। काली अलकों के लिए बाल-रजनी का उपमान भावोत्कर्ष में काफी सहायक है। अलक के सामने की क्रिया का 'रेखांकित' की उत्प्रेक्षा नायिका के मुख की सुन्दरता को और मोहक कर देती है। 'रेखांकित' अंग्रेजी के (Underlined) शब्द का अनुवाद-सा प्रतीत होता है। किन्तु कवि ने बड़ी कलात्मकता से उसका प्रयोग किया है। यहाँ बाल-रजनी का तात्पर्य है रात-सी काली। रात की वृद्धि के साथ-साथ ही कालिमा के बढ़ने की गति का आभास होता है। यही गति दोनों के डोलने का सादृश्य प्रस्तुत करती है। तथा बाल रजनी का तात्पर्य है चपल कालिमा।

(१-ग) तूल-सी मार्जार-बाला सामने
निरत थी निज बाल-क्रीड़ा में कभी
उछलती थी पर झुका कर ताकती
घूमती थी साथ फिर-फिर पूँछ के
मन्द मुस्काती, चपल-भ्रू-वीचि में।

—वीणा-ग्रंथि, पृ० ७२

उपर्युक्त पंक्तियों में बाल-क्रीड़ा में निमग्न मार्जार-बाला का सुन्दर रेखाचित्र खींचा गया है। स्थिर चित्र से गत्यात्मक चित्र अधिक प्रभावोत्पादक तथा जीवन्त प्रतीत होते हैं। इन पंक्तियों में मार्जार-बाला के क्रिया-कलापों की सुन्दर झाँकी दी गयी है। मार्जार-बाला का उछलना, झुकना, ताकना घूमना इत्यादि का सजीव चित्र उपस्थित हो गया है।

इसी प्रकार 'निराला' के भी गत्यात्मक चित्र काफी आकर्षक बन पड़े हैं।

"चुम्बन चकित चतुर्दिक चंचल, हेरफेर मुख कर बहु सुख छल
कभी हास फिर त्रास साँस-बल उर सरिता उमगी।"

—निराला

इसमें चुम्बन से चकित होना चंचलता से चतुर्दिक देखना मुख फेरना कभी हँसना कभी डरना आदि के चित्र सिनेमा के गतिवान् चित्र प्रतीत होते हैं।

---

१. उस निर्दोषा का क्या। जिसकी मधु-मक्खियों वेणी में
पाकर वास हाय! मचली हुई झूमों की श्रेणी में!

—वीणा-ग्रंथि पृ० २९

(१—ख) कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को!

—ग्रंथि पृ० १४

इसमें कवि ने ज्ञात-यौवना नारी का रूप-चित्रण किया है कुछ दिन पहले जो बाला अज्ञात-यौवना थी उसकी आँखों में शिशुता का तारल्य था; वही बाला अब चल-चितवन के कटाक्ष से प्रेमी के हृदय को गुदगुदाने लगी है। पन्त ने इसी भाव को लाक्षणिकता द्वारा खंजन की चोट और भ्रमर की विह्वलता द्वारा व्यंजित किया है। कमल मुख का और खंजन नेत्र का रूढ़िवादी उपमान है। उपमान प्राचीन होते हुए भी चित्र नवीन-सा लगता है। प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा कमल पर बैठे हुए खंजन की चंचलता का चित्र उपस्थित करके आँखों की चंचलता की अभिव्यंजना की गयी है। इसमें भावों की तद्गुरूप प्रतीति के निमित्त व्यंग्य रूपक अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है।

(१—ग) मन्द चल कर एक अचानक अधखुले
चपल पलकों से हृदय प्राणेश का
गुदगुदाना हो नहीं जिसने कभी
सफलता का मर्म उसने क्या किया?

—ग्रंथि

इसमें प्रणय-विदग्धा किसी ज्ञात-यौवना नारी के अनुभावों और क्रिया-कलापों का बिम्ब उपस्थित किया गया है। मंद चल कर एक अचानक, अधखुले चपल पलका में तीन अलग-अलग चित्र हैं। पहले में मंथर गति से किसी की प्रतीक्षा में पग उठते हैं दूसरे में प्रतीक्षाकुल नायिका के ठिठकने का चित्र है, तीसरे में कामातुर प्रेम-विभोर नयनों का चित्र है।

मानवीकरण द्वारा 'ग्रंथि' में आँसुओं का चित्र अच्छा उतर सका है। आँसू को कोहरे-सी अलक-सी कहने तथा उसे वृष्टि का अनमोल मोती, नयन के माखन शिशु बताने से आँसू का एक नन्हा-सा भावपूर्ण चित्र उपस्थित हो उठता है।

कविवर पन्त की नव अषाढ़ की घटा-सी सुन्दर, अति श्यामवरण वाली 'ग्रामयुवती' जिसके पैर यौवन भार से बोझिल हैं इठलाती, बलखाती पट सरकाती मट खिसकाती और विद्यापति की नायिका की भाँति उरोजों के युग घट देख शरमाती और खिलखिल हँसती है बड़ा मांसल चित्रण है। ग्रामयुवती के चित्रण में कवि में 'रीतिकालीन' कवियों का मोह व्याप पड़ा है। यही ग्रामयुवती जब पनघट पर जाती है उस समय का दृश्य विशेष कामोद्दीपक है। देखिये

(१—ट) औंचाती उबहुनी वह बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिचते संग युग रस-भरे कलश
जल छलकाती रस बरसाती
बल खाती वह घर को जाती— —ग्राम्या पृ० १७-१८

इन पंक्तियों में लय की गति तथा कुशल चित्रकार की तूलिका का वैभव सिमट कर एक हो गया है जिसमें माधुर्य और नृत्यमयता की छवि का आभास मिलता है। उसके बाद की पंक्तियों में ग्रामयुवती के प्राकृतिक जीवन का चित्रण मिलता है जब वह गुड़हल, कुई, कनेर, पाटल आदि पुष्पों से अपना शृंगार करके गायों के संग विहार करती है। सम्पूर्ण कविता में काव्यात्मकता कम और कलात्मकता अधिक है।

आँखों में भरी हुई विवशता, निराशा, दुख-दैन्य तथा उत्पीड़न का भाव प्रकट करने के लिए उन्हें अन्धकार की गुहा-सरीखी बताया है जिसमें भीषण सूनापन और 'मरघट का तम' सदैव निवास करता है।[1] गुहा कहने से आँखों की गहराई और ज्योति-हीनता का स्वरूप हमारे सामने खड़ा हो जाता है। साथ ही साथ उन आँखों से भयंकरता की भी उद्भावना होती है।

पन्त ने एक ओर जहाँ नारी को अकेली सुन्दरता कल्याणि और 'तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगास्नान' कह के उसके प्रति अपनी पुनीत भावना प्रकट की है वहाँ आधुनिक नारी के प्रति कवि के मन में घोर असन्तोष और घृणा के भाव भरे हैं। देखिये

लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित
तितली-सी तुम फूल-फूल पर मँडराती मधु हित !
मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्मसमर्पण,
तुम्हें सुहाता रंग-प्रणय धन पद मद, आत्मप्रदर्शन !
तुम सब कुछ हो फूल, लहर, विहगी, मार्जारी
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।

—ग्राम्या पृ० ८१

आधुनिक नारी के लिए लहर, तितली, विहगी तथा मार्जारी आदि विशेषण उसकी आधुनिकता की सजीव प्रतिमा गढ़ देते हैं। इन अप्रस्तुतों के गुण-साम्य पर आधुनिक नारी पूरी खरी उतरती है। आधुनिक नारी में वे सब गुण विद्यमान हैं जो लहर, तितली, विहगी और मार्जारी में हैं।

गुंजन में कवि ने चाँदनी[2] को रुग्ण जीवन-बाला का उपमान देकर उसे सजीव बना दिया है। वह रुग्ण जीवन-बाला 'जग के दुख-दैन्य-शयन पर' जाग रही है। उसका शरीर निर्बल और पीला हो गया है उसकी देह-लता कुम्हला गयी है। वह निरावरण है इसीलिए लाज में सिमटी पड़ी है। उसका तन, रंग और यौवन सब म्लान पड़ गया है इसीलिए वह चिर-मूक उज्ज्वल और नत चितवन है। यहाँ चाँदनी एक सजीव दुखी कन्या की भाँति प्रतीत होने लगती है। रूपक अलंकार ने चित्र खड़ा करने तथा भावों को मूर्तता प्रदान करने में सहायता की है।

'भावी पत्नी के प्रति' कविता में कवि ने अपनी प्रणयिनी का भावचित्र प्रस्तुत किया है। इसमें रूप और प्रणय के बड़े सुन्दर और सजीव चित्र दिये गये हैं। कवि ने अपनी भावी

---

१ ग्राम्या पृ० ९४

२. गुंजन चाँदनी, पृ० ७४

पत्नी का रूप-चित्रण करने के लिए प्राकृतिक उपमानों की झड़ी लगा दी है। पहले वह कवि को —

नवल-कलिकाओं की-सी बाण
बाल-रति-सी अनुपम-असमान—

प्रतीत होती है। 'नवल कलिकाओं' और 'बाल-रति-सी' कहने पर नारी का वह रूप सामने आता है जो अभी पूर्ण युवती नहीं हुई है किन्तु कलिका और बाल रति के सदृश वह क्षण-क्षण यौवन की दहली पर कदम रख रही है। इसी प्रकार 'दूज की कला सदृश नवजात' कहने पर भी शिशुता के उपवन से यौवन के मधुमास की बाट जोहती हुई नारी का चित्र प्रस्तुत हो जाता है। 'दूज की कला' कहने से उसकी निष्कलंक मुख-छवि तथा उसके शनैं शनैं विकास की सूचना मिलती है। प्रस्तुत पंक्तियों में नारी के गत्यात्मक सौन्दर्य का अंकन हुआ है। उपर्युक्त पंक्तियों में 'नवल-कलिकाओं' एकजातीय नहीं है और वचन की भी असमानता है अतः व्याकरण की दृष्टि से यह प्रयोग दूषित है। आगे चल कर कवि उसके अंग प्रत्यंग को प्राकृतिक उपकरणों से सजाता है।

अरुण अधरों का पल्लव प्रात
मोतियों-सा हिलता हिम-हास। —गुंजन पृ० ४१

पहली पंक्ति में रूपक और दूसरी में उपमा अलंकार है। पहले तो कवि प्रात के लिए 'अरुण पल्लव' का उपमान चुनता है पुनः वह कहता है कि नारी के अधर-पल्लव प्रात से अरुण हैं। दूसरी पंक्ति में 'हास' के लिए दो-दो उपमान लाये गये हैं—हिम और मोतियों सा हास। इस प्रकार उपमान एक दूसरे से गुँथे हुए हैं। किन्तु इन मिश्रित उपमानों द्वारा नारी के लाल-लाल अधर तथा उसकी स्निग्ध श्वेत हँसी का स्वरूप खड़ा हो जाता है। मानवजी के शब्दों में कवि सदैव से नायिकाओं के शरीर को प्रकृति के रम्य और आकर्षक उपकरणों द्वारा सजाते आये हैं। जायसी की पद्मावती की माँग घन में दामिनी-सी चमकती थी तुलसी की मृग-शावक नयनी सीता जनक के उपवन में जिस ओर दृष्टि डालती वहाँ श्वेत कमलों की वर्षा होने लगती बिहारी की नायिका के झीने पट के घूँघट में चंचल नयन इस प्रकार चमकते हैं मानो सुर-सरिता के जल में दो मीन उछलते हों। विद्यापति की राधा के मुख का निर्माण चन्द्रमा के सार को लेकर हुआ है। नारी के रूप-वर्णन का यह ढंग अभी तक पुराना नहीं पड़ा। अब भी निरालाजी की सूर्पणखा के कपोल कुसुम-दल-तुल्य हँसी बिजली-सी कपोत-सा कंठ वल्ली-सी बाहु सरोज-से कर दिखाई देते हैं। अब भी मैथिलीशरणजी की उर्मिला के घन पटल-से केश और विद्रुत-से वदन की झाँकी मिल जाती है। बच्चन की नारी के सभुवे मक्खनवत की मेंहदी से लाल उन पर ऊषा की किरणों की महावर और मक्खन-से उन चरणों के नख मिलेंगे। उपाध्यायजी की राधा का आनन अब भी राकेन्दु-सा और दृग मृग-से हैं। प्रसादजी भी नारी के शरीर का रंग तैयार करने के लिए बिजली को चाँदनी में घोलते हैं।[1] इसी प्रकार पन्तजी ने भी नारी का शृंगार किया है। 'भावी पत्नी' में उन्होंने नारी के अधखुले अंगों को मधुमास और लहर-से कोमल कहा है। सम्पूर्ण कविता में नारी की शोभा का एक मनोमुग्धकारी भावचित्र प्रस्तुत किया गया है जो कवि की सूक्ष्म

१. देखिए विश्वम्भर मानव सुमित्रानन्दन पन्त पृ ६४

परिवेशप्रधानात्मक शक्ति तथा अद्भुत कल्पनाशील हृदय का परिचय देती है ।

जायसी की पद्मावती के नेत्रों को देख कर कमलों की सृष्टि हुई, उसके शरीर की निर्मलता से जल ने निर्मलता ग्रहण की उसकी हँसी की उज्ज्वलता से ही हंसों की उत्पत्ति हुई तथा दाँतों की चमक में सृष्टि में नग और हीरों ने अपनी चमक ग्रहण की ।[1] उसी प्रकार पन्त की सौन्दर्यमयी नारी की छवि प्रकृति के अंग अंग में समा गयी है । उस मनोहर रूप को देख विधुक अनार तथा कचनार लालसा की लौ से लाल हो उठे हैं । उसके कपोलों की मदिरा पीकर गुलाब के पुष्प लाल हो गये नासिका को देखकर शुक विनत हो गया स्तनाकृति का देख कुन्द कलियों में आभा आ गयी चंचल चरणों को चूम कर अशोक के वृक्ष में लाल-लाल कोंपलें फूट पड़ीं चम्पे के पुष्प ने शरीर से सुगन्ध चुरायी मुख की बास पीकर भ्रमर उन्मत्त हो गये हैं शरीर की कोमलता उसके कलीलेपन को देखकर लवणता भी वैसा ही बनना चाहती है । उस नवेली की मुस्कान माली के बकुम और अंगुलियाँ मदन के बाण के समान मोहक हो गयी हैं ।[2] सम्पूर्ण 'चाँदनी' कविता का मानवीकरण करके उसे खिन्नमना नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । उन्मन-उन्मन बैठी हुई नारी का चित्र देखिये

नीले नभ के शतदल पर, वह बैठी शारद-हासिनि
मृदु करतल पर शशि-मुख धर, नीरव अनिमिष एकाकिनि !

—गुंजन पृ० ८७

चाँदनी के लिए नवनिर्माण-स्वरूप शब्द शारद-हासिनि प्रयुक्त हुआ है । नीले नभ के कमल पर मृदु करतल पर शशि-मुख धर के नीरव अनिमिष अकेली चाँदनी बैठी है । इस चित्र से हथेली पर मुख टिका कर उदासमना नारी का स्वरूप सामने आ जाता है । किरणों को हथेली बनाने में सूक्ष्म रूपक का चयन हुआ है । यद्यपि चाँदनी का चित्र प्रफुल्लवदना नारी के रूप में होना चाहिए था किन्तु कवि के अन्तर में छिपे हुए विषाद और घुटन ने उसे इसी रूप में देखा है । आगे की पंक्तियों में कवि उसकी मुद्रा का चित्र प्रस्तुत करता है । कवि ने एक बार उसकी मन्द-चितवन को निहार कर जग-जय का मन छू लेने की बात कही है । इसकी कुछ-कुछ प्रतीति मन में इस आधार पर हो सकती है कि दुखी नारी के प्रति सबकी सहज सहानुभूति हो जाती है । किन्तु आगे चल कर जब वही दुखी नारी चल-चितवन से जग-जीवन को स्वप्न लखती है तब पाठक चकित हो जाता है । इसके अमूर्त भाव को मूर्त-रूप दिया है ।

छवि-अंकन में समस्त उपकरणों का प्रयोग नारी की समन्वित रूप-सृष्टि में सहायक सिद्ध हुआ है । तत्पश्चात् मार्ई हुई नारी का छवि-अंकन किया है । देखिये

---

[1] नयन जो देखा कमल भा निर्मल नीर शरीर
हँसत जो देखा हँस भा दसन जोति नग हीर ।

—जायसी पद्मावत

[2] ग्रंथि, पृ० १६ से १८

वह सोई सरित-पुलिन पर, साँसों में स्तब्ध समीरण
केवल लघु-लघु लहरों में, मिलता मृदु-मृदु उर स्पन्दन।—गुंजन पृ० ८८

सरिता के पुलिन पर बिखरी हुई चाँदनी सोई हुई नारी-सी प्रतीत हो रही है। वायु मंडल शान्त और स्तब्ध है। उससे ऐसा आभास होता है जैसे नारी गाढ़ी नींद में सो रही है। सरिता में छोटी-छोटी लहरें उठ रही हैं वही मानो नारी का स्पन्दन करता हुआ वक्षस्थल है जो साँस लेने से उठता गिरता है। आगे चल कर कवि उस सोती हुई नारी के लिए प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से एक विराट् रूपक बाँधता है। देखिये

वह स्वप्निल शयन-मुकुल-सी, हैं मुँदे दिवस के द्युति-दल
उर में सोया जग का अलि, नीरव जीवन-गुंजन कल।

—गुंजन पृ० ८९

भौंरे विकसित पद्म-पुष्प पर बैठ कर रस लेते हुए गुंजार करते हैं और पुष्प रस की मादकता से इतने बेसुध हो जाते हैं कि उन्हें यह ध्यान ही नहीं रहता कि अब रात हो रही है जबकि कमल का फूल बन्द हो जायगा। फलस्वरूप वह रात में उसी फूल में बंदी हो जाता है और उसका गुनगुनाना भी बन्द हो जाता है। इसमें बेसुध सोते हुए जग तथा रात के नीरव *वातावरण का चित्र प्रस्तुत करते हुए सोती हुई नारी पर उसका आरोप किया है।* चाँदनी की नारी सो रही है उसका शयन मुकुल के सदृश है जिसकी पंखुड़ियाँ हैं दिन। दिन रूपी पंखुड़ी के बन्द होने पर रात हो जाती है जिसमें गुनगुनाता हुआ संसार-रूपी अलि सो जाता है। तात्पर्य यह कि चाँदनी सोई हुई है और साथ में जग का कोलाहल भी सो रहा है। इस विराट् कल्पना से सोती हुई नारी का चित्र तो बनता ही है साथ ही जग के नीरव वातावरण की भी व्यंजना हो जाती है।

इसी प्रकार 'अप्सरा' में स्वर्गंगा में जल विहार करती हुई अप्सरा का चित्र काफ़ी निखरा हुआ प्रतीत होता है। आकाश में चमकने वाली चंचल विद्युत ही जैसे उस अप्सरा के कटाक्ष हों जो सुर-सभा को विचलित कर रही है। सप्तरंगी इन्द्रधनुष ही जैसे उसका झीना आवरण हो। नीला नभ ही उसकी वेणी है जिसमें इन्दु और कुन्द-रूपी पुष्प गुँथे हैं। इस भाँति जल-विहार करती हुई अप्सरा इन्दु बिम्ब के पास-पास रजतमराल को पकड़ने की चेष्टा करती है और गंगा के जल में तैरने की क्रिया से उड़ने वाले शुभ्र फेन-कण ही आकाश में उडु-गण बन जाते हैं। रूपक अलंकार से भाव बिल्कुल स्पष्ट हो गये हैं।

तड़ित-चकित चितवन से चंचल
कर सुर-सभा अपार !
मग्न देह में सत रंग सुर धनु
छाया-पट सुकुमार
खोंस नील-नभ की वेणी में
इन्दु कुन्द-द्युति स्फार।
× × ×
स्वर्गंगा में जल विहार जब
करती बालु-मुणाल ! —गुंजन पृ० ९४

इसी प्रकार 'रूप तारा तुम पूर्ण प्रकाम' में प्रणयिनी की मंजुल सुकुमारता, तथा कमनीयता का सजीव चित्रण हुआ है। एक उदाहरण देखिये

तारिका-सी तुम दिव्याकार चंद्रिका की झंकार।
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार, अप्सरी-सी लघु-भार
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार, प्रणय-हंसिनि सुकुमार ?
हृदय-सर में करने अभिसार, रजत-रति स्वर्ण-विहार!'[1]

चन्द्रिका-सी झंकार में सूक्ष्म-गुम्फन की सफल अभिव्यक्ति हुई है। चंद्रिका की तारिकाएँ अत्यधिक लघु और कोमल होती हैं और उनमें बजता हुआ तड़ित संगीत भी काफ़ी मादक और कर्ण-प्रिय होता है। इसी तरह 'अप्सरी-सी लघु भार' में कामिनी की देह की मृदुल कमनीयता तथा अपार्थिवता का संकेत है। 'प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार' में प्रेयसी की चपलता, सुकुमारता तथा उसकी हंसगामिता-सी देह-यष्टि सजीव हो उठी है।

'नौका विहार' गुंजन की सबसे समर्थ कविता है जिसमें अनेकानेक आकर्षक चित्र बिखरे पड़े हैं। देखिये

सैकत-शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रांत क्लान्त, निश्चल।
तापस-बाला गंगा निर्मल शशि-मुख से दीपित मृदु करतल
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल मृदुल लहर।

—गुंजन पृ० १०१

ऊपर की पंक्तियों में प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से गंगा को नारी-रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति के मनोरम दृश्य बाह्य-जगत् में कवि के मन को झकझोर चुके थे, और जिनका बिम्ब उसके अन्तःकरण पर अंकित हुआ था वह कल्पना की विधायकता के संयोग से वास्तविक रूप में चित्रित हो सका है। प्रथम दो पंक्तियों में ग्रीष्म ऋतु की तन्वंगी गंगा को एक तन्वंगी सुन्दरी मान लिया है। उस तन्वंगी के लेटने का दृश्य कवि बड़ी सशक्त और सजीव भाषा में व्यक्त करता है।

दूध के समान श्वेत बालू के पर्यंक पर श्रांत क्लान्त निश्चल गंगा तापस-बाला के सदृश लेटी हुई है। लहरों के ऊपर प्रतिबिम्बित शशि ही तापस-बाला गंगा का शशि-मुख है जिसे वह लहर की हथेली पर रखे हुए है। उसके हृदय पर उसकी केश राशि बिखरी हुई है। (यहाँ गंगा के सेवार की ओर कवि का संकेत है)। उस तापस-बाला के गोरे अंगों पर तारों से जगमगाता हुआ गगन बिम्बित हो रहा था; वही मानो उसका नीला वस्त्र है। चन्द्रकिरणों से देदीप्यमान जो सुन्दर लहरें उठती हैं वही मानो इस लहराती हुई नीली साड़ी की सलवटें हैं। इन पंक्तियों में सांग रूपक के द्वारा एक ओर भावों की मार्मिक व्यंजना हुई है और दूसरी

१. गुंजन पृ ६१

प्रयत्न विशेषतः उरोजों और जंघाओं तक ही विशेष सीमित रही है।[1]

स्वर्णिम श्वासों से स्पन्दित स्वर्ण चम्पकों से प्रीति कलश उरोज और उन पर शुभ्र मेघों की उठती-गिरती आभा उरोजों की गदराहट और मांसलता को मूर्तिमान कर देती है; उदर में रजत-फुहार की सी सुषमा तथा मार्दव और ज्योति भँवर-सी सलोनी नाभि नाभिक सर से स्पर्श-कोमल नयन-रंजन सुचिक्कण जघन जिन पर सुनहले वाष्प के घन छटके हों। इस प्रकार नारी के अंगप्रत्यंग के लिए अनेकानेक रूढ़ उपमाएँ संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी के मध्ययुग के साहित्य में मिलती हैं। किन्तु इन उपमानों का प्रयोग और तदनुकूल वातावरण निर्माण कर देना पन्तजी की अपनी विशेषता है। उपमान रूढ़ होते हुए भी उनका अभिनवीकरण किया गया है। अगली पंक्तियों में कवि नारी के अंगप्रत्यंग के लिए प्रकृति से पुनः रूढ़ तथा नवनिर्माण-स्वरूप उपमानों को चुनता है। देखिये कामना को मूर्त रूप देकर उसे स्त्री बनाया है और उसी कामना की मृदुल लतिकाओं के सदृश उसकी बाँहें हैं। रक्त के सदृश लाल सुरा के समान उसकी हथेलियाँ हैं। दीपशिखा के समान लम्बी-पतली उँगलियाँ और उन पर जड़े हुए नख हीरे के समान ज्योतित हैं और उसकी केशराशि तो भौंरों की गुंजारों से स्पन्द और तरंगित है, बाल काले तो इतने हैं जैसे साक्षात् तम उसी प्रकार हंस के समान रमणी की ग्रीवा भी है।[2] इन विविध चित्रों के संकलित करने में नारी की सुन्दर भाव-छवि सामने आते ही आ जाय उसका जीवित रूप स्पष्ट नहीं होता।

'मन स्वर्ण' में भी उरोजों और जघनों का पुष्कल चित्रण हुआ है जो कवि का अनात्मक मोह-सा लगता है। एक चित्र देखिये

स्वर्णिम निर्झर-सी रति-सुख की जंघाओं पर पेशल
छिपती जीवन की ज्वाला निज दीपन करती शीतल।

यहाँ जंघाओं की उपमा स्वर्णिम निर्झर से की गयी है जो काफी असंगत और कुरूप है क्योंकि निर्झर एक दूसरे प्रकार की कल्पना मन में जागृत करता है। हाँ 'रति-सुख की' विशेषण को सार्थक करने के लिए चाहे इसका प्रयोग कर लें। 'रति-सुख के पेशल' विशेषण तो पहले से ही बीभत्स था उस पर जीवन की ज्वाला ने निज दीपन का लेप चढ़ाकर और भी कुत्सित बना दिया है। पन्त का यह देह-मोह यहाँ बहुत निम्नस्तर पर पहुँच गया है यह बात बहुत खटकने वाली है।[3] इसी प्रकार ऊषा (उपशीर्षक मनःस्वर्ण) में भी उन्होंने अपने रहस्यवादी आत्मसुख को अधरों और जंघाओं में विहार करवाकर उसका फोटो लिया है। देखिये

आई आभा—
फिर अधखुले उरोजों पर चलते थे उडुगण,
रसभाव के भ्रमक से ज्योतित भू-रजकण।

—स्वर्णकिरण, पृ० ५८

---

१ स्वर्णकिरण (स्वर्णनिर्झर) पृ० ११-१२
२ स्वर्णकिरण पृ० ११
३ देखिये [illegible] पन्त का काव्य और युग पृ० ११५

यहाँ किसी अंग का चित्र न देकर उरोज को फिर अधखुली मुद्रा में रखकर उन पर वासना के बुद्बुद उड़ाये गये हैं। प्रकृति के माध्यम से नारी के अंगों के ऐसे चित्र सौम्य की परिधि में नहीं लिये जा सकते।

वसुधा के उरोज शिखरों से सस्यांचल का खिसकना तथा सरिता की आँखों से रेशम सा जल का सरकना आदि वर्णन रति-पथ पर विभ्रम भागती हुई नारी का नग्नचित्र ही प्रस्तुत करते हैं।[1]

वसुधा के उरोज शिखरों से खिसका घन सस्यांचल
सरिता की आँखों से सरका लहरा रेशम-सा जल।

सेवा-रूप में साकार उषा नारी का यह सवाक् चित्र दर्शनीय है

(क) सेवा उतरी ज्यों गंगा जल, कलुष तुषित लहरों से चंचल
तन पर पीतराग सन्ध्यांचल नत मुख पर श्रमकण मुक्ताफल

(ख) कुमकुमों के ज्योति-मंडल से घिरा मुख शांत
तारिकाओं की सरणि-सा स्वप्न स्मित उर प्रान्त
इन्दु विनिन्दित शरद् घन-सा वास्य का तन कांत
सजल करुणा की लड़ी ज्यों हृदय घूम विभ्रांत !
सजल नील मृदुल नयनों का द्रवित नीहार
मधु फेनों से स्फुटित स्पंदित उरोज उभार,
आर्द्र सौरभ श्वास स्मिति हिम-धवल हरसिंगार,
स्खलित होते कोष भू से पुन चरण झंकार।

—स्वर्णकिरण, पृ० ६०

गंगाजल-सी पवित्र सेवा-रूपी उषा नारी तन पर पीतराग का सन्ध्यांचल ओढ़े हुए सचमुच एक तपस्विनी-सी लगती है। उद्धरण (ख) में उर प्रान्त के लिए 'तारिकाओं की सरणि' का उपमान बहुत सजीव बन पड़ा है और स्वप्न-स्मित विशेषण ने उसकी सजीवता में वृद्धि-सी भर दी है। 'तारिकाओं की सरणि' तन की गोराई पवित्रता तथा कोमलता का संकेत करती है। इन्दु-विनिन्दित शरद् घन और वास्य विशेषण बनकर अपने विशेष्य को और ज्योतित कर देते हैं। चन्द्रिका-चर्चित शरद घन के सदृश गोरा और आकर्षक उस नारी का तन था। नयनों के लिए सजल नील तथा आँसू के लिए द्रवित नीहार अपने विषय्य को विभ्रम् कर देते हैं। इस अनुपमेय सौन्दर्य की चरण-झंकार से ही भू से कोषों का स्खलन होता है। मधु-फेनों से स्फुरित स्पन्दित उरोजों का उभार यद्यपि इस चित्र की सात्विकता को समाप्त कर देता है किन्तु पन्तजी की कविता के कलात्मक या ह्रासोन्मुख इतिहास लिखने वाले आलोचक इसे देखकर शायद अपना मत बदल दें। कविता की पंक्ति-पंक्ति में शब्द-शब्द में रंगबिरंगे भावपूर्ण चित्र भरे पड़े हैं यहाँ उन सब चित्रों का दिखाना सहज सम्भव नहीं है।

'अतिमा' में सोनजुही की बेल आँगन के बाड़े पर चढ़कर, दारु-स्तंभ के गले में हाथ डाले हुए कँगूरे पर हथेली टेके नवेली बन मुस्करा रही है। फूलों के गुच्छों से उसके उरोजों

---

१. स्वर्णकिरण पृ० ५१

की गोलाई उभरी हुई है। उस नवेली के शैशव-काल का भी चित्र कम अनूठा नहीं है। सौरभ के पलनों पर झूलती थी। एक टाँग पर उचक कर खड़ी होना छुपा पिछली पर पैर रखना तथा धूप-छाँह का चपल खिसकाना—इन सब मानवीय व्यापारों में लम्बी झालरदार गरारा पहनकर स्वर्णिम कलियों का आभूषण धारण किये हुए; बूंदेदार धूप ओढ़े तारों की छाँह-सी साँवली कोमलता एवं सौन्दर्य के गुरुतर भार को सँभालने में असमर्थ डगमगाकर चलनेवाली तन्वंगी सोनजुही रूपसी एक नारी बनकर ही आँखों में झूल उठती है।[1]

इसी प्रकार 'सुरभि' शीर्षक कविता में पन्तजी ने धूप का मानवीकरण करके उस रूप रंग तथा मानवी-व्यापारों का संकेत करते हुए एक सुन्दरी युवती का चित्र दिया है मरीचिमा-मिस्त्रियों में बसने वाली रुपहले वर्णों के सदृश अवर्ण तथा सरोरुह के समान स्तनवाली ऊषा की स्वप्निल पलकों पर चरती है और हेमहंस के पंखों पर उड़ती है। उसके अंगों की गोराई चंपे की-सी है। तुहिन वाष्प के धूप-छाँह-रूपी वल्कल वसन पहनती है। सुकुमार इतनी है कि हरी दूब के पाँवड़े बिछाकर चलती है।[2]

अतिशय भावुक एवं कल्पना-प्रिय पन्तजी की समस्त पुस्तकों की छानबीन करने पर मेरा यह अनुभव निश्चय में बदल जाता है कि सम्पूर्ण कृतियों का चालीस प्रतिशत भाग प्रकृति के माध्यम से नारी-रूप-चित्रण से भरा है।

पुरुष-रूप

'बदली का प्रभात' कविता में पन्तजी ने प्रभात का संक्षिप्त-सा चित्र प्रस्तुत किया है। देखिये

धूमिल सजल प्रभात वलित सुम्म नवस्नात।
अलस उनींदा-सा जग, कोमलाभ दृग-सुभग। —युगवाणी, पृ० ८१

प्रभात पर हल्की-झीनी बदली की चादर छाई हुई है; उसके बरस चुकने पर प्रभात स्नानागार से निकलते हुए पुरुष-सा प्रतीत होता है। इस कवित-रूप चित्रण में बदली की चादर के रंध्रों से झाँकते हुए पुरुष-प्रभात के रूप की झाँकी मात्र ही मिलती है।

निम्नलिखित पंक्तियों में वृक्षों के मानवीकरण के माध्यम से पुरुष का चित्रण देखिये

हिला-हिला चिर मुकुल-अधर
कहते कुछ तरु-दल मर्-मर्, —वीणा पृ० २९

हवा के मन्द-मन्द झोंके से हिलते हुए वृक्ष इस प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे कोई पुरुष धीरे-धीरे कुछ कह रहा हो। पेड़ों के पत्ते ही पेड़ के अधर हैं। उनके प्रकम्पन से मर्-मर् की जो ध्वनि निकलती है वही मानो अधर द्वार से निकले हुए कुछ शब्द हों। रूपक की योजना से चित्र काफ़ी स्पष्ट हो गया है।

मृत्यु-पथ के पथिक एक बूढ़े का रेखा-चित्र बिना लक्षणा-व्यंजना तथा अप्रस्तुत योजना के कितना सजीव हो उठा है, देखिये

१ आंतिमा सोनजुही पृ १२१
२ वही सौरभ, पृ १२१

खड़ा द्वार पर, लाठी टेके, वह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी, हिलते हड्डी के ढाँचे पर!
उभरी ढीली नसें जाल-सी, सूखी ठठरी से हैं लिपटीं,

—ग्राम्या पृ० २९

पन्तजी ने सूक्ष्म परिवेक्षण करके चलने में असमर्थ बुड्ढे के अशक्त हिलते-डुलते नर कंकाल पर चिमटी हुई सूखी चमड़ी तथा सूखी ठठरी में लिपटी हुई जाल-सी उभरी हुई ढीली नसों का दृश्य प्रस्तुत करके बुड्ढे की प्रतिमा को सजीव कर दिया है। यह चित्र अपने आप में इतना सुन्दर है कि उसे किसी अप्रस्तुत-योजना के टेक की अपेक्षा नहीं। उसके आगे कवि प्रकृति के माध्यम से बुड्ढे का चित्र खींचता है।

पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों, सूनी अमर बेल हो चिपटी।

—ग्राम्या पृ० २९

कवि का अभिप्राय बुड्ढे का एक प्राणवान् चित्र खींचना है उसके निमित्त वह अप्रस्तुतों की योजना करता है। जाल-सी उभरी ढीली नसों के लिए अमर बेल को तथा सूखी ठठरी के लिए ठूँठे तरु को उपमान चुना गया है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि बुड्ढे की सूखी ठठरी पर उभरी हुई ढीली ढीली नसें ऐसी प्रतीत हो रही हैं, जैसे पत्ते-विहीन ठूँठ तरु से अमरबेलि लिपटी हुई हो। रूप-साम्य और गुण-साम्य पर आधारित रूप-विधान के आधार पर चित्र बहुत स्पष्ट हो गया है तथा भाव-गाम्भीर्य भी बढ़ गया है। इसी प्रकार अगली पंक्तियों में भी प्रस्तुत के द्वारा ही बुड्ढे का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

लम्बी-चौड़ी काठी वाले युवक का शरीर जिसमें कभी बिजली-सी चपलता दौड़ती थी, अब खंडहर हो गया है, अब वृद्ध होने से उसकी छाती की हड्डी बैठ गई है, रीढ़ की हड्डी झुकी हुई है, पेट चिपक गया है, कंधों पर गड्ढे नजर आते हैं और पैर में बेवाई फटी हुई है। किसी सजीव वृद्ध का चित्र इस शब्द चित्र से मिलाकर देखने पर कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

कुछ ऐसे भी पुरुष-चित्र हैं, जो विशेषणों के बल पर खड़े किये गये हैं। इन चित्रों में एक ही व्यक्ति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा गया है, फलस्वरूप एक चित्र बनकर पूरा उभर नहीं पाता कि दूसरा उस पर छा जाता है। 'अनंग' कविता के चित्र इसी कोटि के हैं—अनंग को विश्व-अभिनय के नायक अखिल सृष्टि के सूत्रधार, त्रिभुवन के मनोविकार, सौन्दर्य-सिन्धु की वीचियों के शृंगार आदि सब एक ही साँस में कह जाता है। अभिनेता का चित्र सामने आते-आते वहाँ सूत्रधार का चित्र दिखाई पड़ने लगता है सूत्रधार को नजर भर देख नहीं पाते कि वह त्रिभुवन के मनोविकार के रूप में अमूर्त बनकर अदृश्य हो जाता है।[1] इसी प्रकार 'मधुप' कविता में मधुप को अज्ञात देश के नाविक, जगती के हृत्कम्पन अवरुद्ध भावों के धावक आदि रूपों में चित्रित किया गया है।[2]

सुकुमार भावों के उपासक पन्तजी का शिशु प्रेम भी दर्शनीय है। इनके बालिका-

---

१. पल्लव अनंग, पृ० ३७

२. वही, मधुप पृ० ८३-८४

उपमान शिशुओं पर ही आधारित है । यहाँ शिशु का एकाध चित्र प्रस्तुत कर देना ही अभीष्ट है । देखिये

(क) *मेरे साँसों के पिंजर-द्वार !*
कौन हो तुम अकलंक अकाम्य

—पल्लव 'शिशु' पृष्ठ ७४

(ख) कामना से मा की सुकुमार
स्नेह में चिर साकार
लहर से लघु नादान
विमल हिम-जल से एक प्रभात

—पल्लव पृष्ठ ७५

उपर्युक्त उद्धरणों में शिशु के लिए मेरे साँसों के पिंजर-द्वार, कामना से मा की सुकुमार लहर-से लघु-नादान तथा विमल हिम-जल से एक प्रभात—विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं । प्रत्येक विशेषण शिशु का एक भावचित्र प्रस्तुत करता है ।

गुड्डे की भाँति वर्णनात्मक शैली के माध्यम से गाँव के दीन-हीन विकलांग बच्चों का चित्र सजीव हो उठा है । ग्राम-निवासी इन शिशुओं और बच्चों का चित्र अत्यन्त स्वाभाविक लगता है । उन बच्चों का तन मिट्टी से भी मटमैला है, उनके वस्त्र अधफटे और जीर्ण हैं खंडित कुंठित टेढ़े-मेढ़े दुबले-पतले विकलांग शरीर वाले जिनकी टाँगें टहनी-सी पतली और पेट बड़ा है—वे जिन्दगी के बोझ को कोमल शरीर पर लादे हुए वन के तृण-तरुओं के समान अपने आप उगते बढ़ते और झड़ कर गिर पड़ते हैं । इस चित्रण में गाँव की आर्थिक विषमता झाँकती है ।[1]

पशु-पक्षी, कीट-पतंगों पर आधारित रूप-विधान

पन्तजी ने प्रकृति की गतिविधि का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण किया है । पन्त के लिए कभी पेड़-पौधे तथा लताएँ झुकती झूमती तथा नाचती हैं, कभी वे शान्त और निश्चल प्रतीत होती हैं कभी लहरें मौन संकेतों द्वारा अपने समीप बुलाती हैं कभी सागर मूक गर्जन करके मन में भय उत्पन्न कर देता है । बादल कभी मृग से चौकड़ी भरते हैं कभी कछुए के समान मंथर-मंथर रेंगते हैं । इन्द्र-धनुष की पालकी पर चढ़कर बादल कभी चल दे जाता है और कभी संध्या की गोद में मुँह छिपाकर बच्चों-सा सो जाता है । प्रकृति के विशाल रंगमंच पर दृष्टि दौड़ाते समय कवि-दृष्टि कीट-पतंगों और पशु-पक्षियों पर भी गयी है ।

'परिवर्तन'[2] कविता में वासुकि नाग को परिवर्तन का उपमान बनाकर नाग के क्रिया-कलापों का रूप प्रस्तुत करते हुए कवि ने जगत् में होने वाले परिवर्तनों की ओर संकेत किया है । 'शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर' सुनते ही एक भयंकर सर्प की सजीव मूर्ति आँखों के सम्मुख फुफकार उठती है । उस सर्प का गरल दन्त है मृत्यु और कंचुक

१. ग्राम्या, गाँव के लड़के, पृ. २७
२. पल्लव, पृ. ११

अन्धकार है, सारा संसार ही विवर है जिसमें वह कुंडली मारकर बैठा है। 'अखिल विश्व ही विवर, वक्र कुंडल दिङ्मंडल' में समस्त विश्व मानो समा गया है। शब्दों में इतनी विभ्रम और प्रवाह है कि भाव उनके पीछे-पीछे स्वयमेव आ जाते हैं। इस कविता में सृजन और विनाश दोनों का ही चित्र अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जो सहस्र-फण शेषनाग के रूपक से अत्यन्त स्पष्ट हो गया है।

लहलहाता है, फैला मणि-जाल
जगत को डसता है तम काल !

—पल्लव पृ० २०

इन पंक्तियों में कवि ने रूपक अलंकार द्वारा निविड़ अन्धकार की भयंकरता सर्प के माध्यम से की है। कवि कल्पना करता है कि तमरूपी काल चन्द्रमा रूपी मणि को विकीर्ण कर संसार के प्रकाश को डसता हुआ अन्धकार फैला रहा है। चिनगी के समान तारे और भाग के पौधे के समान चन्द्र बहुत से सर्प की मणि का छायाचित्र सामने आ जाता है। वियोगावस्था के दुख की व्यंजना करने के निमित्त कवि ने चाँद और सितारों को भाग का स्फुलिंग मानकर सर्प की मणि बना दिया है।

इसी प्रकार गुंजन के पृ० १०१ में 'चाँदी के साँपों-सी रलमल नाचतीं रश्मियाँ जल में चल रेखाओं-सी खिंच तरल-सरल'—पंक्तियों में नौका-विहार करते समय गंगा जल में चन्द्रमा की किरणों का नृत्य करता हुआ प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे बहुत से चाँदी के साँप जल में नाच रहे हों। कवि ने उपमा अलंकार द्वारा सरिता का भव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। किन्तु इस सर्प में गरल और फूत्कार नहीं है, यह तो नेत्रों को सुखद और शीतल लगता है।

मरती रहती बाह्य चेतना
आत्मा फिर फिर धरती नूतन,
छोड़ जीर्ण केंचुल, नव सर्पित
होता प्राण मनुज का जीवन !

—स्वर्णकिरण, पृ० ११९

उपर्युक्त पंक्तियों में बाह्य चेतना को केंचुल और आत्मा को सर्प माना गया है। जिस प्रकार सर्प केंचुल बदलकर नये रूप में सामने आता है उसी प्रकार बाह्य चेतना ही मरती है, आत्मा फिर सजग और नवीन बनी रहती है। इस कविता में प्रभाव-साम्य द्वारा आत्मा की चिर वास्तविकता की व्यंजना की गयी है। और साथ ही साथ केंचुल छोड़ते हुए सर्पवर का एक संश्लिष्ट प्रस्तुत किया गया है।

अमिट लालसा तृष्णाओं की नव केंचुलियाँ
रेंगा करतीं पावन मन्दिर लघु फन फैलाये ! —रजत-शिखर, पृ० ६

उपर्युक्त उद्धरण में लालसा और तृष्णा का मूर्तीकरण करते हुए उसे प्राणवान सर्प बना दिया है। मानव-मन की लालसा और तृष्णायें जहरीले साँप की तरह फन फैलाये रेंगा करती हैं। 'फन फैलाकर रेंगने वाले सर्पों की नव केंचुलियाँ' कहने से मनुष्य की कभी न मिटने वाली तृष्णा और लालसा का स्वरूप और गुण सामने आ जाता है। नव केंचुलियाँ

उपमान लालसा और तृष्णा के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

फिर फिर प्राणों की अभिलाषा कनक भुजग-सी
लिपट, बाँध देती उत्सुक बढ़ते चरणों को !

—रजत शिखर, पृ० १

इस उद्धरण में भी इसी प्रकार अभिलाषा को कनक भुजग-सी कहा गया है। कनक भुजग का व्यापार 'लिपट बाँध देती' कहने से बिल्कुल स्पष्ट हो गया है और इसी तरह कनक भुजग का चित्र गतिवान भी हो उठा है।

शत सहस्र फन खोल पुन: निद्रित निष्चेतन
मनोराग की वंशी के स्वर संकेतों पर
नाच उठेगा'

—रजत शिखर पृ० २१

यहाँ निद्रित निश्चेतन का मानवीकरण करके उसे सहस्र फण वाला शेषनाग बना दिया गया है जो मनोराग रूपी वंशी के स्वर को सुनकर नाच उठेगा। यहाँ बीणा की मधुर ध्वनि को सुनकर मुग्ध मन से नृत्य करते हुए सर्प का चित्र सजीव हो गया है।

उपर्युक्त तीनों उद्धरणों में मानव मन की विभिन्न वृत्तियों को सर्प का आवरण डाल कर स्पष्ट किया गया है। यहाँ भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों में उचित सामंजस्य हुआ है।

इस तरह से कवि पन्त का साँपों से भी अटूट प्रेम है जिसका प्रदर्शन वे यथावसर करने से नहीं चूकते। कवि कभी फूत्कार करते हुए साँप का चित्र देता है और कभी उसे इतना मोहक रूप देता है कि वे भुजग कंधों पर लटकते रहने पर भी भयानक नहीं लगते।[1]

प्रकृति के सतरंगी आँचल का मजाने के निमित्त पन्तजी ने पशुओं और पक्षियों को भी उपमान रूप में लिया है। निम्नलिखित उद्धरणों में हाथी का रूप कितना सजीव हो उठता है देखिए

द्विरद-दन्तों से उठ सुन्दर
सुखद कर-सीकर-से बढ़कर
× ×
बदल यों विविध वेश जलधर
बनाते थे गिरि को गजवर !

—पल्लव पृ० १२

बादलों का रूप-रंग परिवर्तित होता कभी तो हाथी के दाँतों की तरह दिखाई पड़ता है और कभी हाथी की तरह। इन पंक्तियों में पानी विहीन बादल आकाश में उड़ते हुए ऐसे

---

१ भुजगों सी कंधों पर लटकीं
रज की रश्मि रज्जु बल खातीं

—अतिमा पृ० ११

२. पल्लव पृ० ६१-६४

प्रतीत होते हैं जैसे मृग चौकड़ी भर रहे हों तत्पश्चात् पानी से भरे हुए काले-काले बादल मतवाले हाथी के सदृश दिखाई पड़ते हैं, फिर पानी से रहित श्वेत बादल धवल की तरह नभ में विचरण करते हैं। फिर कहीं हवा के झोंके से तितर-बितर होते हुए बादल बन्दर के सदृश अनिल रूपी डाल पर लिपट जाते हैं। अन्तिम दो पंक्तियों में वे ही बादल बहुद्-गृद्ध के समान उड़ते हुए नजर आते हैं। कवि ने एक प्रस्तुत का अनेकों अप्रस्तुतों से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। कल्पना तो शक्तिशाली है किन्तु एक चित्र पूरी तरह बन ही नहीं पाता कि दूसरा चित्र उस पर अपने गहरे रंगों के साथ उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार विभिन्न पशु-पक्षियों के रूपकों की सहायता से बादल का शब्दचित्र ही प्रस्तुत किया जा सका है। यहाँ कलापक्ष भावपक्ष से अधिक शक्तिशाली है।

स्वर्णधूलि में 'काल-अश्व' शीर्षक कविता में कविवर पन्त ने काल को अश्व मानकर एक रूपक खड़ा किया है। इस काल-अश्व के माध्यम से कवि ने जीवन और जगत् की एक दार्शनिक व्याख्या की है। यह कालरूपी अश्व अति वेग से दिशा-पृष्ठ पर दौड़ रहा है। सप्त रश्मियों से सुशोभित यह अश्व अविश्रान्त गति से विश्व का रथ खींच रहा है। इन पंक्तियों में रथ में जुते हुए दौड़ते हुए एक अश्व की धुँधली झाँकी मिलती है—तात्त्विक ऊहापोह में अश्व का सम्पूर्ण रूप दृष्टिगोचर नहीं होता।

काला अश्व यह, सप्त रश्मि का रूप चिर अजर,
दिशा पृष्ठ पर धावमान, अति क्षिप्र वेग धर!

× × ×

महा अश्व यह, खींच रहा अश्रान्त विश्व रथ!

—स्वर्णधूलि पृ० ११७

इसी भाँति आकाश में परिभ्रमण करते हुए शशि के निमित्त राजहंस उपमान बन कर आया है। इसमें 'राजहंस' और 'शशि' एक दूसरे के पूरक बनकर कलात्मक चित्र चित्रित करने में एक दूसरे की सहायता करते हैं।

राज-हंस-सा तिरता शशि मुक्ताभ नीलिमा जल में
सीपी के पंखों की सुन्दर रत्न छटा जल-थल में!

—प्रतिमा पृ० ११८

नीला आकाश एक अनन्त सरोवर है उसमें छिटके हुए तारागण मोती के सदृश प्रतीत हो रहे हैं। मोतियों को चुगने के निमित्त जैसे शशि राजहंस या सीपी के सदृश अपने पंखों को फैलाकर तैर रहा हो। प्रस्तुत पद्य-खंड में मोतियों के निमित्त पानी पर तैरते हुए राजहंस का चित्र उभर आया है। दोनों का समुचित प्रभाव करने से समूचा चित्र काफी कल्पनीय हो गया है। शशि मोती और राजहंस का रंग श्वेत होता है। नील जल तथा नील आकाश में रंग-साम्य है। जिसने शशि को आकाश मंडल में विचरते हुए देखा होगा अथवा राजहंस को मानसरोवर नील में मुक्ता चुगने के लिए तैरते हुए देखा होगा उसके लिए ये चित्र सहज सुगम और स्वाभाविक प्रतीत होंगे।

देखा चींटी को
भूरे बालों की-सी कतरन। —युगवाणी पृ० २२

भूरे बालों की-सी कतरन चींटी का विशेषण है। इस विशेषण से चींटी का रूप सामने आ जाता है। यह उपमान रूप-साम्य पर आधारित है। मूर्त की अमूर्त से तुलना करने पर भी मूर्त की सजीवता नष्ट नहीं हुई।

पौराणिक रूप विधान

छायावादी कवियों में यद्यपि पन्त का प्रकृति प्रेम अद्वितीय है फिर भी कवि की दृष्टि भारतीय संस्कृति पुराण और इतिहास के पन्नों पर भी पड़ी है। यहाँ उनके पौराणिक रूप विधान के कुछ नमूने देखिये

घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन चक्र।

—पल्लव पृ० १४

उपर्युक्त उद्धरण की दूसरी पंक्ति में सुदर्शन चक्र एक पौराणिक उपकरण है। वियोगावस्था में प्रेयसी का रूप सुदर्शन चक्र की भाँति नैनों के समक्ष घूमता है। सुदर्शन चक्र कल्पित चित्र प्रस्तुत करते हुए, मम्य-रूप-विधान उपमा अलंकार पर आश्रित होकर भाव और कलापक्ष दोनों में योग देता है।

निम्नांकित पंक्तियों में राजा बलि और वामनावतार के प्राचीन पौराणिक आख्यान की ओर संकेत किया गया है। देखिये

एक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन-पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल
—धुएँ का विश्व विशाल।

—पल्लव पृ० १९

जिस प्रकार विष्णु के अवतार वामन ने राजा बलि से तीन पग भूमि की याचना की और तीन पग में तीनों लोक नापकर बलि को पातालपुरी भेज दिया उसी प्रकार घने अन्धकार के कुहासा-रूपी वामन ने राजा रवि-बलि को पातालपुरी में भेज दिया। व्यंजना है सूर्यास्त होने और अन्धकार बढ़ने की। इसमें रवि के लिए राजा बलि और तमिस्र के लिए वामन-पग उपमान चुन गये हैं। दोनों उपमान पौराणिक हैं। सूर्य का अस्ताचल की ओर द्रुत गति से बढ़ना और उस पर अन्धकार का छा जाना राजा बलि और वामनावतार के कार्य व्यापार का एक भावपूर्ण कलात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। पन्तजी की यह मौलिक कल्पना है। सूर्यास्त का ऐसा रूप-चित्रण हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। उपमा अलंकार द्वारा यह छवि और भी निखर उठी है।

पन्तजी ने अपनी 'नक्षत्र' कविता में नक्षत्र के लिए 'गन्धर्व-साम-ध्वनि' और 'सजग दिगम्बर के चिर-ताण्डव' दो पौराणिक उपमान चुने हैं किन्तु ऊहात्मक कल्पना करने की झोंक में कवि ने इन उपकरणों के माध्यम से नक्षत्र का कोई स्पष्ट रूप नहीं खड़ा किया है। इसमें न तो प्रभाव-साम्य है न गुण-साम्य और न ही रूप-साम्य। इसे चमत्कार-साम्य भले ही कह लें। इसका कलापक्ष भावपक्ष को दबा देता है। देखिये :

ए गम्भीर गन्धर्व-साम-ध्वनि
श्याम-वेणु के नीरव-गान !
सकल दिगम्बर के चिर-ताण्डव
मुक्त-शिव के क्रीडागार !

स्वर्गलोक के गन्धर्व गण सामवेद के मन्त्रों का सस्वर पाठ करते थे उसी ध्वनि के समान गम्भीर हैं अथवा शिव के ताण्डव-नृत्य के समान हैं। ये दोनों पौराणिक उपकरण गगन का चित्र खींचने में पूर्णतया असमर्थ हैं।

सकल रोमों से हाथ पसार
लूटता इधर लोभ गृह-द्वार,
उधर वामन-डग स्वेच्छाचार
नापता जगती का विस्तार। —पल्लव पृ० १२५

वामनावतार की अवतारणा पहले ही की जा चुकी है। मानव-मन का स्वेच्छाचार वामन के डग की भाँति समस्त संसार के विस्तार को नाप लेना चाहता है—यह वक्तव्य उपर्युक्त उद्धरण में है। व्यंजना है कि मनुष्य का स्वेच्छाचार विश्व के कोने-कोने में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता है। इन पंक्तियों में वामन-डग स्वेच्छाचार का विशेषण बन कर स्वेच्छाचार का मानवीकरण उपस्थित करता है। अन्तिम पंक्ति में नापता क्रिया 'स्वेच्छाचार' के गत्यात्मक रूप और वामन डग के कार्य-व्यापार का चित्रण करती है। रूपक अलंकार द्वारा चित्र की कलात्मकता और भी मुखरित हो गई है।

'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पन्तजी ने परिवर्तन के लिए 'वासुकि सहस्र-फन' जैसे पौराणिक उपमान की अवतारणा की है। रूपक के माध्यम से सर्पराज की उपमा से परिवर्तन का रूप साकार हो उठा है। [विशेष विश्लेषण के लिए देखिये कीट-पतंगे और पशु-पक्षी पर आधारित रूप विधान]

(क) है अछेह सन्देह, नहीं है इसका कुछ संस्कार !
× × ×
खींच लो इसको, कहीं क्या छोर है?
द्रौपदी का यह दुरन्त-दुकूल है !

—पल्लव पृ० १२

उपर्युक्त उद्धरण महाभारतकालीन है और इसमें अछेह संदेह को द्रौपदी का दुरन्त दुकूल कह कर उसकी अनन्तता की ओर संकेत किया है। साथ ही साथ कौरव-पाण्डव की भरी सभा में दुःशासन द्वारा नग्न की जाती हुई द्रौपदी तथा उसके बढ़ते हुए वस्त्र का एक कथाचित्र नेत्रों के सम्मुख खींच उठता है। द्रौपदी का दुरन्त दुकूल संदेह का विशेषण बन कर आया है। यह छोटा-सा विशेषण विशेष्य का पूर्ण विश्लेषण कर देता है। इस तथ्य रूप विधान से भाव की मार्मिकता भी बढ़ जाती है।

(ख) चमकती है बादलों से ज्वाल
बन गया नीलम-व्योम प्रवाल

आज सोने का सन्ध्याकाश
जल रहा जतुगृह-सा विकराल

—पल्लव पृ० १९

*यह भी महाभारतकालीन घटना की ओर संकेत करने वाला उद्धरण है। यहाँ वियोगा*वस्था का चित्रण करने के लिए प्रकृति को वियोगी की आँखों से देखा गया है। यह रूप विधान परम्परा से चला आ रहा है। जायसी की नागमती तथा सूर की गोपियों को भी प्रकृति की सुषमा फूटी आँख भी नहीं भाई। 'बिन गोपाल बैरन भई कुंजें तब वे लता लगत अति शीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजें।'—कहकर सूर ने गोपियों का विरह निवेदित किया है। उसी प्रकार पन्त के वियोगी हृदय को अम्बर ज्वाल-सा धधकता नजर आता है नील व्योम प्रवाल-सा लाल-लाल दिखाई पड़ता है और सूर्यास्त के समय क्षितिज में छिटकी लाली जलते हुए लाक्षागृह की भाँति दृष्टिगोचर हो रही है। मेरा तात्पर्य यहाँ केवल जतुगृह से है। यह महाभारतकाल की घटना है जब पाण्डवों को लाक्षागृह में निवास करते हुए देखकर कौरवों ने उसमें आग लगवा दी थी। सूर्यास्त की बेला में पश्चिम दिशा का क्षितिज वियोगी को यदि जतुगृह-सा जलता नजर आता है तो इसमें असंभाव्य कुछ भी नहीं है। कविगण सदा से प्रकृति को अपने मन की आँख से अनुकूल रूप में देखने के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

(ग) कौन, कौन तुम परिहृत-वसना,
× × ×
रति-श्रान्ता व्रज-वनिता-सी ?

—पल्लव पृ० ६७

यहाँ कवि ने 'छाया' के माध्यम से रति-श्रान्ता, व्रज-वनिता की एक पुतली आकृति खींच दी है। शिथिल-शिथिल देमन उदास तरु के नीचे विकसना बैठी हुई छाया के लिए 'रति-श्रान्ता व्रज-वनिता' उपमान पर्याप्त ओजस्वी और सुन्दर बन गया है।

(घ) साम्राज्यवाद था कंस-बन्दिनी
मानवता पशुबलाक्रान्त
शृंखला दासता, प्रहरी बहु
निर्मम शासन पद शक्ति-भ्रांत
कारागृह में दे दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त-कान्त
जन-शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत पद प्रणत, शान्त।

—युगपथ, पृ० ६१

इस उद्धरण में भी महाभारतकालीन घटना और चरित्र-विधान को लिया गया है। प्रथम ६ पंक्तियों में साम्राज्यवादी कंस के कारागृह में बंदिनी देवकी और वसुदेव का चित्र संकेत रूप में है और अन्तिम दो पंक्तियों में बढ़ती हुई यमुना के उस स्वरूप का चित्रण हुआ है जब भादों के महीने में बढ़ी हुई यमुना को श्रीकृष्ण ने अपने चरण-स्पर्श मात्र से शांत कर दिया था।

यहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अन्तर्गत प्रताड़ित पराधीन भारत का रूपक बाँधा गया है। जिस प्रकार नृशंस कंस ने देवकी को बंदीगृह में डालकर चतुर पहरेदारों को उसकी देखरेख करने के लिए नियुक्त किया था उसी प्रकार कंस के समान ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने देवकी रूपी मानवता को बंदीगृह में डाल रखा था और शृंखला तथा दासता रूपी प्रहरी उसकी देखभाल करते थे। किन्तु जिस प्रकार से बंदीगृह में ही कृष्ण एक दिव्यात्मा का जन्म हुआ जिन्होंने कंस की निरंकुशता का अन्त करके जन जन का स्वत्व कर लिया उसी प्रकार गांधी जैसे युग-पुरुष का आत्मिक-विकास बंदीगृह के मलिन प्रकोष्ठ में हुआ और उन्होंने अपने अदम्य साहस और बल से भारतमाता को साम्राज्यवाद के बंदीगृह से मुक्त करने का प्राण पण से प्रयत्न किया। जनता का शोषण यमुना नदी की भाँति बढ़ता चला जा रहा था। किन्तु गांधीरूपी कृष्ण ने उसे अपने चरणों के स्पर्श से शान्त कर दिया। इन पंक्तियों में रूपक अलंकार के सहारे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शोषण नीति तथा उसकी निरंकुशता का चित्र खींचा गया है। यह पहला चित्र है, दूसरा चित्र गांधीजी का जेल जाने का है और तीसरे चित्र में गांधीजी के सत्प्रयत्नों से शोषण की मात्रा के घट जाने की बात है। इस प्रकार पौराणिक उपमानों के चयन से ये तीनों चित्र अत्यन्त भव्य और कलात्मक रूप पा सके हैं। इस कविता का भाव और कलापक्ष दोनों प्रबल हैं। रूपक तथा रूपक में प्रतीकों का भी आश्रय लिया गया है। प्रतीकों का संकेत निम्नलिखित है

साम्राज्यवाद	कंस
शृंखला दासता	बंदिनी देवकी
दिव्यजन्म	गांधी और कृष्ण
जन-शोषण	बढ़ती यमुना

यह चित्र सामयिक है जिसे पौराणिक उपकरणों से सजाया गया है। सम्पूर्ण चित्र गुण-साम्य पर आधारित है।

(घ) फिर हुई अहिल्या मनोभूमि
चेतना, शिला सी जड़ निश्चल
फिर मानवीय बन कर विचरे
तू शाप मुक्त हो भू पर चल !
× × ×
जो कभी विमाता पुनः कुमति,
वनवासी सत्य यहीं अब छल
फिर भौतिक मद का कंचन मृग
मोहित करता जन मन दुर्बल !

—युगपथ पृष्ठ १२८

उपरोक्त उद्धरण 'आवाहन' शीर्षक से उद्धृत किया गया है। सम्पूर्ण 'आवाहन' की पंक्तियों में प्रतीकात्मक उपमानों के द्वारा सामयिक पृष्ठभूमि पर पौराणिक चित्रण हुआ है। कवि राम का आवाहन करता है। सम्पूर्ण जग धर्म-ग्लानि से पीड़ित है चारों ओर अन्ध वासना और उच्छृंखलता का साम्राज्य फैला हुआ है। मनुष्य की चेतना अहिल्या के सदृश

जड़ हो गयी है उसे चरणों का स्पर्श देकर मानवीय रूप देने के निमित्त भगवान पुनः इस पृथ्वी पर अवतरित हों। युग का चाप जीर्ण हो चुका है पृथ्वी वीर-विहीन बन चुकी है। अतः अहल्यारूपी चेतना का वरण करके विश्व का संकट हरो। आज की कुमति ही कैकेयी बन गयी है। परिणामस्वरूप सत्य को वनवास दिया जा रहा है सौरगृह का सेवासन प्रपंचियों द्वारा हो रहा है। भौतिक मद का कंचन-मृग सीता की भांति जन-मन के दुर्बल मन को मोहित कर रहा है। लक्ष्मणरेखा की भांति विनाश की रेखा आज चारों ओर खींच दी गयी है किन्तु रावण के सदृश आततायी मानव साधु वेश धारण कर हँसते-हँसते मानव-मन की पंचवटी से सीतारूपी लोक-चेतना का हरण करता है। मनुष्य की श्रद्धा जटायु के समान पंख विहीन हो चुकी है उसे मुक्ति दो। निर्ममता के बालि का संहार करके शरणागत सुग्रीव के समान मानव का कल्याण करो। असंख्य विक्षुब्ध तरंगों से उद्वेलित जीवन-वारिधि पार करना आज कठिन-सा प्रतीत हो रहा है अतः चेतना का सेतु बाँध कर सत्य की सेना को उस पार करो। आज मन के विश्वास को लक्ष्मण जैसी शक्ति लग गयी है, उसे हनुमान की भांति संजीवनी बूटी देकर पुनः जीवनदान दो। सारे विश्व को अणुबम मेघनाद की तरह अपनी प्रलयंकर गर्जना से आतंकित कर रहा है। अतः हे राम कुम्भकर्ण की नींद में सोये हुए युग को पुनः जागृत कर आश्वस्त करो। दशग्रीव की भांति घृणा अपना सिर उठाकर अट्टहास करती है अतः उसे परास्त करके जन-जन को एकता के सूत्र में बाँध दो। वैदेही के समान विरहिणी चेतना को आज अपने राम से मिलने दो।

इन पंक्तियों में रामायण की कथा का संक्षेप में चित्रांकन हुआ है। समूचे रामायण की मुख्य मुख्य घटनाओं का चित्र चित्रपट के चित्र की भांति दृष्टिगोचर होता है।

बड़े कलात्मक ढंग से रामयुग का छायाचित्र इन पंक्तियों में उभर आया है। इस प्रकार सांग रूपक और प्रतीकों के माध्यम से बिम्ब की कलात्मकता के साथ-साथ उसकी भाव प्रवणता भी बढ़ जाती है। सम्पूर्ण 'आवाहन' कविता राम के जीवन को सजीव कर देती है।

सामयिक रूप-विधान

राजनीतिक रूप-विधान—पन्तजी की कविताओं में राजनीतिक रूप-विधानों का अभाव सा है। एकाध जो हैं भी वे ऐतिहासिक और सामयिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। देखिये

(क) रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में लोभन
पूँजीवाद गिरा भी है होने को आज समापन।

—युगवाणी पृ० ४०

यहाँ साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का एक शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है। पूँजीवादी गिरा साम्राज्यवाद का रजत स्वप्न नयनों में लेकर अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रही है। रूपक के माध्यम से साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के समाप्त होने की व्यंजना की गयी है।

(ख) विश्व क्षितिज में घिरे पराभव के हैं मेघ भयंकर
नवयुग का सूचक है निश्चय यह ताण्डव प्रलयंकर।

—युगवाणी, पृ० ४०

उक्त उद्धरण में प्रकृति के चित्रपट पर वर्तमान राजनीति के परिणामस्वरूप उठे हुए

पराभव के आदर्शों का चित्र खींचा गया है। वर्तमान राजनीतिक उथल-पुथल और संघर्ष के पश्चात् नवयुग का प्रभात शांति का संदेश लेकर पृथ्वी पर अवतरित होगा। क्षितिज में प्रलयंकर मेघों के घिरने का चित्र भयंकर युद्ध का स्पष्ट चित्र सामने प्रस्तुत कर देता है। कल्पना के आधार पर राजनीतिक परिस्थितियों से प्रादुर्भूत भीषण युद्ध और तत्पश्चात् शांति की स्थापना का छायाचित्र कवि ने कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। इसी प्रकार साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग के मधुर पदार्पण[1] की बात कहकर कवि साम्यवादी देश के सुख-वैभव और समानता की तस्वीर खींच देता है

पूँजीवाद उठा हिंसा का धूमकेतु ध्वज
लिये लोक संहार और जन मृत्यु मुष्टि में विकट
फिर ललकार खड़ा धरती की हरित शांति को
जन समुद्र के पार की नव फूली लहरों पर
दुर्दमनीय से शासन करते ! हाय दुराशा !!

प्रस्तुत पंक्तियों में राजनीतिक स्वार्थों के कारण युद्ध की विभीषिकाओं तथा प्रलयंकारी विनाश का चित्रांकन हुआ है। आज विश्व में पूँजीवादी राष्ट्र अपने व्यस्त स्वार्थों के वशीभूत हो अणुबम का प्रयोग करके विश्व की शांति को ललकार रहे हैं। परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्र वृहद् जन-साम्य योजना भूल अपनी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहा है और अणुबम दानव के सदृश विश्व का संहार करने के लिए अवसर की बाट जोह रहा है। इस कविता का चित्र प्रभाव-साम्य पर खड़ा किया गया है। युद्ध के चित्र से अधिक उसके प्रभाव का चित्र मानस-पटल पर अंकित करना ही यहाँ कवि का अभीष्ट है।

मार्मिक रूप विधान

(क) जहाँ दैन्य जर्जर असंख्य जन पशु-जघन्य क्षण करते यापन
कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन

—ग्राम्या पृ० १३

इन पंक्तियों में ग्राम की आर्थिक दशा का नग्न चित्रण किया गया है। गाँवों के मनुज शिशु अभाव के कारण इतने दीनहीन और दुर्बल हैं कि जब वे चलते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कीड़े रेंग रहे हैं। 'रेंगना' क्रिया से पौष्टिक भोजन के अभाव में दुर्बलकाय शिशु का चित्र खिंच जाता है और साथ ही ग्राम का भी चित्र सामने आ जाता है जहाँ उदर भूखे हैं, तन नग्न है और असंख्य जन तन और मन से जर्जरित हो पशुवत् जीवन व्यतीत करते हैं। जहाँ यौवन असमय में ही वृद्धावस्था की गोद में झुक पड़ता है।

इसी प्रकार गाँव की शोचनीय आर्थिक परिस्थितियों का एक दूसरा चित्र देखिये

घर घर के बिखरे पन्नों में नग्न क्षुधार्त कहानी
जन मन के दयनीय भाव कर सकती प्रकट न वाणी।

—ग्राम्या पृ० १४

---

१. युगवाणी, पृ ४६

गाँवों के घर फटी-पुरानी किताब के पन्ना की तरह बिखर गये हैं और प्रत्येक पन्ने पर मर्मस्पर्शी कहानी लिखी गयी है। फटी-पुरानी किताब के बिखरे पन्ना से गाँव के टूटे फूटे घरों का दृश्य सजीव हो उठता है जिसमें रहने वाले भूखे-प्यासे सो जाने के अभ्यासी हो गये हैं। गाँव का यह यथार्थ चित्रण गाँव की दीनता की कहानी कह देता है।

उसी प्रसंग में गाँवों के आर्थिक वातावरण का यथार्थ चित्रण प्रकृति को तदनुकूल बना कर किया गया है। गाँवों में वैभवविलसित जीवन की चहल-पहल नहीं है। ऐसी परिस्थिति में प्राकृतिक उपकरण दारिद्र्यपूर्ण प्रतीत हो रहे हैं। वहाँ वायु म्लान सौरभ का बोझ धीरे धीरे ढो रही है। प्रभात नीरव और अकेला आता है। सन्ध्या का मुख सूखी रमणी-सा उदास है। गाँवों म विद्युत् दीप नहीं जलते। वहाँ अँधियारे का साम्राज्य छाया हुआ है। वहाँ के मानव अन्न-वस्त्र से पीड़ित मूर्ख और असभ्य हैं, ऐसी दशा म उसे नरकलोक कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके घर क्या है मानो झाड़-फूस के विवर हैं, जिनमे कीड़ो के समान नारी-नर रेंगते है।[1] इस प्रकार इन पंक्तियों मे भारत के दरिद्र गाँवों का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है।

पन्त की ग्रामयुवती का जिसका कि हम नारी-रूप-चित्रण में विश्लेषण कर चुके हैं यहाँ आर्थिक स्वरूप विचारणीय है

रे दो दिन का
उसका यौवन!
सपना छिन का
रहता न स्मरण
दुःखों से पिस,
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन!
ढह जाता असमय यौवन धन!

—ग्राम्या पृ० १९

उपर्युक्त पंक्तियों में अप्रस्तुत रूप-विधान की योजना नहीं की गयी किन्तु प्रस्तुत ही इतनी चित्रात्मकता लिये हुए है कि दुख में पिसती हुई ग्रामयुवती का चित्र वह सजीव कर देता है। ऐसा देखा जाता है कि गाँवों में निर्धन परिवार की युवतियाँ जो यौवन के प्रथम उभार में आषाढ़ की नव घटा का वेग लेकर चलती हैं दो एक वर्ष में ही नियमित रूप से रूखा-सूखा भोजन भी न पाने पर वे ऐसी प्रतीत होने लगती हैं, जैसे वे कभी जवान हुई ही नहीं थीं। इस प्रकार घोर दरिद्रता के बीच उनका यौवन अधिक से अधिक दो वर्ष तक जीवित रहता है पुनः माँ-बेटी में विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता।

ग्राम्या में 'वे आँखें' शीर्षक कविता में रूप-विधान के अभाव में भी गाँव की आर्थिक दशा का इतना करुण और दयनीय चित्र खिंच गया है कि जिसे देखते ही आँखें बरबस भीग जाती हैं। गाँव के किसान का चित्र है

१. ग्राम्या पृ० १६

(क) बिका दिया घर द्वार, महाजन ने न ब्याज की कौड़ी छोड़ी
रह रह आँखों में चुभती वह कुर्क हुई बरधों की जोड़ी।

महाजन से कुछ रुपये ब्याज पर लेकर उसे चुकाने में असमर्थ किसान का यह चित्र है, जिसका घर महाजन ने बिकवा दिया। यहाँ तक तो उसकी दीनता सीमा के भीतर थी, किन्तु जब उसी रुपये में बैलों की जोड़ी भी कुर्क हो गयी तब वह बिना मरे ही मर गया। उसकी दरिद्रता सहने की सीमा को भी पार कर गयी। यहाँ गरीब किसान की दयनीय मूर्ति तथा भूख-प्यास से तड़पते हुए उसके दिगम्बर बच्चों की तस्वीर नेत्रों में झूल उठती है।
और

(ख) बिना दवा दर्पन के घरनी स्वर्ग चली आँखें आतीं भर।
देख रेख के बिना दुधमुँही बिटिया दो दिन बाद गई मर।

—ग्राम्या पृष्ठ २५

किसान की पत्नी दवा-दारू के अभाव में स्वर्ग सिधार गयी और माँ के अभाव में दुधमुँही बच्ची (जिसे गाय या भैंस का दूध उपलब्ध नहीं था) भी उसी पथ की पथिक बनी। यहाँ किसान की दयनीय आर्थिक विषमता की ओर स्पष्ट संकेत है। कवि को गाँव के लड़के धनाभाव में टेढ़े-मेढ़े विकलांग पशु-तुल्य प्रतीत होते हैं और कवि का हृदय यह सोच कर कि इन कीड़ों का भी मनुज बीज है, दया से पिघल जाता है।

'युगवाणी' का 'कृषक' भी आर्थिक चक्की में पिसा हुआ एक निरीह प्राणी है जिसके पास स्वल्प पैतृक सम्पत्ति तो है किन्तु उसका तन और मन ऋणग्रस्त होने से जर्जरित हो गया है। वह विश्व भर के दैन्य और दुर्भाग्य का बोझ अपने स्वेद-सिंचित कंधों पर उठाये मौन ले रहा है।'[1]

पन्तजी ने 'रजत शिखर' में भी भारत की ग्रामीण जनता और उसकी वेषभूषा तथा सामाजिक आचार-विचार का नग्न चित्रण किया है, 'इन चित्रों का एकमात्र आधार आर्थिक वैषम्य है। इन ग्रामीणों के घर झाड़-फूस से निर्मित हैं जो नग्न घरौंदे के सदृश लगते हैं और इन घरों में घुप घुप न दैन्य और अविद्या का गहन अन्धकार छाया हुआ है। इनमें निवास करने वाले मनुष्य नंगे भूखे रुग्ण और अस्थिचर्मावशिष्ट बने जीवन का भार रेंग-रेंग कर ढो रहे हैं।'[2] इन चित्रों का पर्याप्त बोध उन्हीं को हो सकता है जो या तो ग्राम निवासी हैं अथवा गाँवों का परिभ्रमण किये हुए हैं। बड़े-बड़े नगरों की ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं में रहने वालों को ये चित्र भले ही अस्वाभाविक और असत्य प्रतीत हों किन्तु इनकी सत्यता और यथार्थता को चुनौती नहीं दी जा सकती। यह चित्र यद्यपि अप्रस्तुत-विधान के चित्र-फलक पर नहीं बना है फिर भी इनमें काफी आकर्षण और मन को बिलमाने की शक्ति निहित है।

सामाजिक रूप-विधान

मनुष्य-जीवन की निम्नतम आवश्यकताएं भी गाँवों में उपलब्ध नहीं यदि हैं तो उनका क्षेत्र कुछ जमीदारों और महाजनों की ड्योढ़ी तक ही सीमित है। यहाँ अशिक्षा दरिद्रता और

१. ग्राम्या पृ० ५२
२. रजत शिखर पृ० ११४

रूढ़िवादिता बिना मूल्य मिलती है। गाँव के ऐसे वातावरण में विधवा युवती का कोई ठौर ठिकाना नहीं। पति-गृह में वह पति-घातिन कह कर पुकारी जाती है और पितृ-गृह में ननद और भौजाइयों का कोप भाजन बनती है। परिणाम-स्वरूप अधिकांश विधवाएँ उदरपूर्ति के निमित्त देशी गुंडों के हाथों बिकती हुई शहर के कोठे पर शरण पाती है और बची हुई आत्महत्या कर लेने के सिवाय कोई उपाय ढूँढ़ नहीं पाती अथवा दुख के मारे कुएँ में डूब कर प्राण त्याग देने पर उसके श्वसुर को कोतवाल पकड़ कर तरह-तरह की यातनाएँ देकर कुछ न कुछ धन प्राप्त कर ही लेता है। निम्नलिखित पंक्तियों में यही चित्र है

घर में विधवा रही पतोहू
लछमी थी यद्यपि पतिघातिन
पकड़ मँगाया कोतवाल ने
डूब कुएँ में मरी एक दिन।

—ग्राम्या पृ० २५

यह हमारे हिन्दू-समाज का एक यथार्थ चित्र है। दूसरे चित्र में पतोहू के मरने के पश्चात् का दृश्य उपस्थित किया गया है जो हमारे समाज की रूढ़िवादिता पर बड़ा तीखा व्यंग करता है।

खैर पैर की जूती जोरू,
न सही एक दूसरी आती
पर जवान लड़के की सुध कर
साँप लोटते फटती छाती।

—ग्राम्या पृ० २५

हमारे हिन्दू-समाज में विशेषतः गाँवों में स्त्रियाँ पैर की जूती समझी जाती हैं उनके मरने का तनिक भी दुख नहीं होता बशर्ते पुत्र जीवित रहे। एक पत्नी के मरने पर दूसरी आ जाती है दूसरी के बाद तीसरी। अतः माता पिता लड़के की मृत्यु पर तो रोते-चिल्लाते हैं किन्तु बहू की मृत्यु पर विशेष आन्तरिक आँसू नहीं बहाते।

'ग्रामवधू' में कवि ने हमारे सामाजिक रीति-रिवाज का एक सुन्दर चित्र दिया है। ग्रामवधू शादी के बाद प्रथम बार पति-गृह में जा रही है—इसीलिए वधू माँ की गोदी में सिर रख कर रोती है इसी प्रकार ताई मौसी बुआ तथा सखियों के गले लग कर ऊँचे कंठ से रोती है विदा करती हुई लड़की को माँ शिक्षा देती है कि घर को सँभाल कर रखना। मौसी कहती है कि बेटी लौटती बार गोदी भरी हो सखियाँ कहती हैं हमें भूल मत जाना। इन पंक्तियों में विदा होती हुई लड़की तथा पुरजन-परिजन का अनुपम चित्र खींचा गया है किन्तु इसी प्रसंग में आगे की पंक्तियों में जो चित्र दिया है वह बड़ा ही कृत्रिम और अस्वाभाविक लगता है। जब कवि कहता है कि

नहीं आँसुओं से आँचल तर
जन-विछोह से हृदय न कातर
रोती वह रोने का अवसर
जाती ग्रामवधू पति के घर।

तब ऐसा लगता है कि कवि ने इसके पहले जो कुछ कारुणिक प्रसंगों का संकलन उपस्थित किया है वह अवास्तविक है। यदि उसके आँसुओं को थोड़ी देर के लिए हम मिथ्या ही मान लें तो भी रसाभास हो जाता है। क्योंकि आगे वह पति से कहती है कि 'रोना-गाना यहाँ चलन भर' है। ससुराल में आकर माता-पिता तथा बन्धु-बान्धवों से बिछुड़ती हुई लड़की का रोना 'चलन भर' नहीं बल्कि वास्तविक है और बिना पूर्व परिचय के पति से बातचीत करना अस्वाभाविक तथा गाँव की मर्यादा के विरुद्ध है।

मकर संक्रान्ति उत्तर भारत में एक महान धार्मिक पर्व माना जाता है। इस दिन लड़के-बच्चे बूढ़ जवान गोरी गोरी दादा नानी चाचा-ताई ससुर-बहू नातन-नातिन सब गंगास्नान का पुन लेने जाते हैं। उस समय का यथार्थ चित्रण पन्तजी ने 'नहान' शीर्षक कविता में किया है। यह चित्र धार्मिक आचार-विचार और सामाजिक रहन-सहन तथा वेश भूषा पर अवलम्बित है। इस चित्र में ग्राम की नारियों का चित्र विशद तन्मयता से खींचा गया है किन्तु उनका चित्र काम लाल हरे नीले बैंगनी गुलाबी पीले रंग वाले वस्त्रों तथा विभिन्न आभूषणों से जैसे सिर पर बंदा शीशफूल कानों में झुमक बिरिया गलचुमनी कर्णफूल माथ पर टीके नाक में नथिया फुल्लिया बेसर बुलाक झुलनी लटकन गले में हँसली कण्ठा; उर में हुमेल बाँहों में बाजू बाजूबंद आदि-आदि से दब जाता है। फिर भी 'बहु भाँति शोभना से विभित' शरीर पर इन आभूषणों का धारण करना हमारी वेशभूषा और शिष्टजन तथा कलाप्रियता का यथार्थ चित्र इन पंक्तियों में साकार हो उठा है।[1]

गाँव के बनिये का साधारणतया एक चित्र देखिए

वह अनाज के ढेर-सदृश ही दिन भर गद्दी पर बैठा रहता है काली कौड़ी की स्पृहा में बात-बात पर झूठ बोलता है। यद्यपि वह महाजन है पक्का मकान बनवा रहा है और धन-संचय भी कर रहा है फिर भी जाड़े में घास पुआल में नहीं फटी कथरी ओढ़कर सर्दी से ठिठुर कर दिन काटता है। यह उसका जीवन है जो संचय को भोग से अधिक महत्त्व देता है। गाँवों में ऐसे-ऐसे कृपण बनिये हैं जिन्हें यदि ब्याज का पैसा न मिले तो भूखपन से प्राण के लिए नमक भी खरीदना असम्भव हो जाता है। अपनी जान भी देना उन्हें स्वीकार है, पर गाँठ से पैसा निकालना उनकी मृत्यु है।[2]

हमारी सामाजिक मान्यताओं पर आधारित नारी का एक चित्र है समाज के संकुचित में उसका पद दासी का नहीं गुलाम का है। तात्पर्य यह कि उसका स्वतन्त्र अस्तित्व समाज में नहीं है, वह पूर्णतया नर पर ही अवलम्बित है। मुक्त-हृदय से न वह स्नेह कर सकती है न प्रणय। पर-पुरुष पर दृष्टि डालने अथवा स्पर्श करने मात्र से ही वह कलंकित मान ली जाती है।[3] गाँव का पुरुष प्रिया के अधरों पर स्वच्छ हास्य, चितवन पर चुम्बन अंकित करते समय अस्वाभाविक रूढ़ियों और मर्यादाओं से इतना सशंकित रहता है कि वह मन में गर्वित जन से शंकित छुपके कुपथ कायर की भाँति अपनी प्रिया से प्रेम करता है।[4] यह है

१ ग्राम्या 'नहान' पृ ६६
२ ग्राम्या पृ० ६६
३ ग्राम्या, पृ ८२
४ ग्राम्या पृ ८१

हमारे समाज के पिछड़े वर्गों का चित्र जो अधिकांश में ग्रामनिवासी हैं। इसी प्रकार युगवाणी में संकलित 'धनपति' शीर्षक कविता में धनी व्यक्ति का रेखाचित्र बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है। धनवान लोग जग के जोंक हैं जो गरीबों का रक्त चूस-चूस कर मोटे होते हैं (जो श्रम से जीविकोपार्जन नहीं करते तथा नैतिकता से पूर्ण अपरिचित रहते हैं) वे बहुमन्य मूढ़ और व्यभिचारी हैं। नारी उनके लिए योनिमात्र बनकर कंदुक की तरह उनकी शय्या पर लुण्ठी रहती है। वे स्वभाव से दर्पी हठी निरंकुश निर्मम तथा कलुषित हैं।[1] यद्यपि यह धनी व्यक्तियों का सीधा-सादा वर्णन मात्र है इसमें किसी अप्रस्तुत विधान का आयोजन नहीं किया गया है फिर भी प्रत्येक विशेषण धनी व्यक्ति का चित्र खींचने में समर्थ है। सामाजिक रूप-विधानों के कतिपय उदाहरण 'ग्राम्या' में अवश्य मिल जाते हैं। किन्तु कवि की अन्य रचनाओं में इसका अभाव-सा है।

व्यावसायिक रूप-विधान

व्यावसायिक रूप-विधान के अन्तर्गत हमने इ'विशेष कल-कारखाना, विद्यालय तथा अस्पताल लिये हैं किन्तु और भी छोटे-मोटे बहुत से व्यवसाय हैं जिनका नामोल्लेख इस वर्गीकरण के भीतर नहीं हुआ। वस्तुतः विविध व्यवसायों के भीतर वे आ ही जाते हैं। मछुए के व्यवसाय और क्रियाकलाप का एक चित्र द्रष्टव्य है।[2]

अनिल सदृश मछुआ नीलगगन रूपी जलाशय में अपने बाल डाल कर मीनों के सदृश छोटे-छोटे बादल-दलों को फँसा लेता है। तेज हवा के झोंकों से बादलों का तितर बितर होना और हवा की गोद में जलद-दलों का समा जाना मछुए का जाल फेंक कर मछली पकड़ने का दृश्य उपस्थित कर देता है। यह कल्पना की उड़ान है जिसमें कलात्मकता है मछुए के व्यवसाय का चित्र भी है किन्तु इसका भावपक्ष निर्बल है।

निम्नलिखित पंक्तियों में इसी प्रकार एक 'चोर' की तसवीर खींची गयी है।

> जिस प्रकार तब अन्धकारमय
> हौले भी हो गई मही!
> तस्करिणी-सी तन्द्रा सबकी
> सुधि को चुपके छीन रही। —वीणा ग्रंथि पृ० ५८

यहाँ अन्धकारपूर्ण रजनी में जिस प्रकार चोर चोरी करता है उसी प्रकार अन्धकार पूर्ण रात्रि में तस्करिणी के सदृश तन्द्रा सब ग्रामों की सुधि चुरा रही थी। इन पंक्तियों में रात हो जाने पर सबके सो जाने की व्यंजना की गयी है किन्तु तन्द्रा का मानवीकरण करके चोर के व्यवसाय से गुण-साम्य स्थापित किया गया है। फलस्वरूप उपमा अलंकार द्वारा चोरी के व्यवसाय की छवि विशेष स्पष्ट हो जाती है।

कृषि-क्षेत्र पर आधारित रूप-विधान

ग्राम्या में ही विशेषतः व्यावसायिक रूप-विधान के दर्शन होते हैं। 'ग्रामश्री' कविता

१ युगवाणी पृ ४२
२. पल्लव पृ ८९

में ऐसे अनेक यथार्थ और स्वाभाविक चित्र मिलते हैं।

खेतों में दूर तक फैली हरियाली मखमल-सी मृदुल और आकर्षक लगती है। तिनकों के हरे-भरे तन में ऐसा प्रतीत होता है जैसे रक्त झलक रहा हो।[1] निम्नलिखित पंक्तियों में जौ, गेहूँ की बाली, अरहर सन, सरसों तथा तीसी की छवि दर्शनीय है।

रोमांचित-सी लगती वसुधा आई जौ, गेहूँ में बाली,
अरहर सनई की सोने की, किंकणियाँ हैं शोभाशाली
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध फूली सरसों पीली-पीली
लो हरित धरा से झाँक रही नीलम की कलि, तीसी नीली।

—ग्राम्या, पृ० १५

गेहूँ और जौ में लगी हुई बालें ऐसी प्रतीत हो रही हैं जैसे वसुधा को रोमांच हो आया हो। अरहर और सनई की फलियाँ पकने पर किंकणियों की भाँति वायु के प्रकम्पन से मधुर ध्वनि करती हैं। इसी प्रकार पीली-पीली सरसों से आच्छादित धरित्री के आँचल को छू कर तैलाक्त गन्ध आ रही है और तीसी के नीले-नीले पुष्प नीलम की भाँति चमक रहे हैं।

कवि अगली पंक्तियों में और भी सुन्दर चित्र देता है

रंग रंग के फूलों में रिलमिल, हँस रही सखियाँ मटर खड़ी
मखमली पेटियों-सी लटकीं, छीमियाँ छिपाये बीज लड़ी।

मटर में कई रंग के पुष्प लगते हैं। कवि उन रंगबिरंगे फूलों को देखकर कल्पना करता है कि मानो उन पुष्पों के मिस मटर हँस रही हो और उसमें लगी हुई कोमल-कोमल 'छीमियाँ' मखमली पेटियों के सदृश लग रही हैं। इसी प्रकार 'मखमली' टमाटर हुए लाल मिर्चों की बड़ी हरी 'थैली' कहने से लाल-लाल टमाटर और हरे-हरे मिर्चों का रूप आँखों में झूल जाता है। आगे चल कर कवि ने ईखों के खेतों पर सफेद काँसों की झड़ी फहराने का चित्र चित्रित किया है। इस भाँति सम्पूर्ण कविता में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के उचित सम्मिश्रण से कवि ने बड़े यथार्थ चित्र खींच दिये हैं। इन चित्रों में भावोद्दीपन की गहराई नहीं है हाँ चित्रों में स्वाभाविकता और यथार्थता है जैसे विभिन्न खेतों में जाकर जौ, मटर, गेहूँ तीसी सरसों टमाटर और ईख इत्यादि के अलग-अलग 'फोटो' ले लिये गये हों। इसी प्रकार का एक शब्दचित्र 'वीणा ग्रंथि' में मिलता है। जहाँ कवि ने पके धान की डाली में लगी हुई बालों को जो हवा के झोंके से मृदु-मधुर स्वर में काँप उठते हैं देखकर कल्पना की है कि मानो ये घूँघरू हों जो रह-रह कर बज उठते हैं।[2]

'ग्राम्या' में 'कवि-किसान' का चित्र बहुत ही भावात्मक और कलात्मक बन पड़ा है।[3]

इन पंक्तियों में कवि ने किसान-जीवन और उसके कर्तव्यों का रेखाचित्र दिया है। किसान के खेत जोतने उसमें खाद डालने खेत में हरे-हरे अंकुर के निकलने खेत को निराने और सींचने तक ही नहीं फसल को काटने तथा अनाज को भंडार में भरने के समय तक

१. ग्राम्या फैली खेतों में दूर तलक मखमल की कोमल हरियाली पृ० १२
२. वीणा ग्रंथि पृ० २१
३. ग्राम्या पृ० १०२

समूचा बिम्ब इन पंक्तियों में समाया हुआ है। कवि का अभिप्रेत यद्यपि कवि है किन्तु किसान का रूपक बाँध कर कवि-कर्मों की ओर संकेत किया गया है। कवि-कर्म का चित्र किसान के काम से इतना साम्य रखता है कि पूरा का पूरा रूपक कवि को ठीक-ठीक ढँक लेता है। इस रूपक से कवि और किसान के कर्त्तव्यों के दो अलग-अलग बिम्ब बनते हैं।

युगवाणी के 'रूपक'[1] का चित्र देखिये वह कितना अपरिवर्तनशील और रूढ़िवादी है। उसकी मूल सम्पत्ति है उसका वत प्रहार, धूप हँसिया और हल। उसकी दयनीय स्थिति से तो करुणा की आँखों में भी करुणा के कण उभर आते हैं। वह युग-युग से निश्चल अपने ही श्रमबल से जीवित विश्व प्रगति से अनभिज्ञ है। वह अशिक्षित संकीर्ण पर-पीड़ित शोषित कुण्ठित दलित और क्षुधार्दित है। युग-युग का भारवाह आकटि नतमस्तक बच मूक अक्षुत हठी ममत्व की मूर्ति तथा रूढ़ियों का चिर रक्षक है। इन नाना रूप और गुण धारी विशेषणों से भारत का किसान इन पंक्तियों में सजीव हो उठता है। एक-एक विशेषण किसान का मूर्त रूप देने में समर्थ है। बिम्ब स्वाभाविक और यथार्थ है।

श्रमजीवी और उसके व्यवसाय से सम्बन्धित रूप विधान

'युगवाणी' का श्रमजीवी'[2] रूपक से ही मिलता-जुलता है। श्रमजीवी यद्यपि धनिकों का निर्माता है किन्तु स्वयं वह मूढ़ अशिक्षित विश्व-उपेक्षित गन्दे गात और वसन धारण किये हुए, भूख-प्यास से पीड़ित भद्दी आकृति वाला है। सम्पदा और अधिकारों के मोह से विरत कार्य-कुशल अपनी श्रमपटुता से जीवित वह वर्षा शीतातप और क्षुधा-तृषा में सदा गर्वित रहता है क्योंकि वह दृढ़-चरित्र कष्ट-सहिष्णु, धीर और निर्भय चित्त वाला है। भारत के श्रमजीवी का यह सीधा-सादा वर्णन ही उसका चित्र खींचने में समर्थ है। इन पंक्तियों में जो-जो विशेषण श्रमजीवी के लिए प्रयुक्त हुए हैं सब में श्रमजीवी को मूर्तिमान करने की क्षमता है।

> ये नाप रहे निज घर का मग
> कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग
> भारी है जीवन, भारी पग !
>
> —गुंजन पृ २७

उपर्युक्त पंक्तियों में श्रमक्लान्त श्रमजीवी का चित्र है जो डगमग डग भरता घर का मग नाप रहा है। डगमग डग' और 'भारी पग' अत्यधिक परिश्रम से जर्जरित तन वाले मजदूर का चित्र मुखरित हो उठता है। इस कविता में ये दोनों शब्द ही मजदूर का सम्पूर्ण चित्र खींच देते हैं।

इसी प्रकार 'पंथि' की ग्राम-युवती'[3] मजदूरनी भी है उसका भी चित्र द्रष्टव्य है। उसके तन पर तो सुषमाशाली यौवन अँगड़ाई ले रहा है किन्तु मुख पर अत्यधिक परिश्रम के कारण श्रमकण' (स्वेदबिन्दु) रवि की लाली में चमक रहे हैं और वह सिर पर स्वर्ण-सस्य डाली रखे चली जा रही है। मजदूरनी का दूसरा चित्र देखिये

१ युगवाणी पृ ४२
२ युगवाणी, पृ ४९
३ ग्राम्या पृ २६

सर से आँचल खिसका है धूल भरा जूड़ा—
अधखुला वक्ष, ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा ! —ग्राम्या पृ० ८५

सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि काम करते समय मजदूरनी के सिर का आँचल खिसक जाता है और सिर पर कूड़ा-कर्कट ढोते-ढोते उसका जूड़ा भी धूलिधूसरित हो जाता है और काम की धुन में यदि उसका वक्ष अधखुला है तो इस ढकने की न तो उसे सुधि रहती है और न हाथ ही खाली रहते हैं कि उनका उपयोग स्वतन्त्रतापूर्वक करके वक्षस्थल ढँक सके। दोनों हाथ सिर का बोझ सँभाले रहते हैं। यह काम करती हुई मजदूरनी का चित्र है जिसमें किसी लक्षणा व्यंजना और अप्रस्तुत-योजना का आधार नहीं लिया गया। फिर भी चित्र साफ और सीधा है। कोई बनावट नहीं। ऐसी किसी स्त्री को हम सहज ही मजदूरनी की संज्ञा दे सकते हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में कारखाने में काम करते हुए मजदूर के कर्तव्य और व्यवसाय का चित्रांकन हुआ है

काती अन्धकार तम-मन का
नव प्रकाश के रजत-स्वर्ण से
बुनो तरुण पट नव जीवन का ! —युगवाणी पृ० १०४

कविता का कलापक्ष रूपक के सहारे अधिक आकर्षक बन गया है। मानवरूपी मजदूर को कवि की सीख है कि युग-युग के अँधेरे को रुई के समान धुन कर तन मन के अन्धकार को कात कर चाँदी और सोने के सूत से नवजीवनरूपी तरुण पट बुनो। उस नग्न पट से नग्नमानवता के तन को ढक दो। इसी प्रकार आगे की पंक्तियों में भी कपड़े का रूपक बाँध कर चित्र खड़ा किया गया है कि जन-जन के कुत्सित नग्न रूप को सुन्दर सांस्कृतिक वसन से ढक दो। कविता के सहारे इन पंक्तियों में देश की बर्बरता अन्यता असभ्यता और अमानुषिकता दूर करने की बात कही गयी है और उसी बात को स्पष्ट करने के लिए रुई के धुनने सूत कातने और वस्त्र बुनने तथा वस्त्र से नग्न शरीर को ढकने का चित्र दिया गया है। चित्र तो सुन्दर है किन्तु बौद्धिकता के बोझ से कविता के सहज-सुकुमार भाव दब से गये हैं।

इसी प्रकार 'ग्राम्या' में जीवन में सुख-दुख तथा जीवन-मरण के चित्र कपड़े के ताने-बाने के माध्यम से खींचे गये हैं।[१]

भावात्मक रूप विधान

पन्तजी में असीम सौन्दर्यानुभूति और विराट कल्पना-शक्ति के दर्शन जगह-जगह पर होते हैं। इन दोनों के सहारे ही अनेकानेक भावात्मक चित्रों की अवतारणा की गयी है। ये चित्र विरह-मिलन सुख-दुख, आशा निराशा लज्जा-कम्पन, वेदना आदि मानवीय व्यापारों पर आधारित हैं।

निम्नांकित पंक्तियों में लज्जामिश्रित सौन्दर्य का कितना कलात्मक और भावपूर्ण चित्रण हुआ है। देखिये

---

१. ग्राम्या पृ० ९५

देख रति ने मोतियों की लूट यह
मुग्ध गालों पर सुमुखि के लाज से
लाल-सी थी त्वरित लगवा, बन्द कर
अधर विद्रुम-द्वार अपने कोष के। —वीणा ग्रंथि पृ० ७

कवि की प्रणयिनी सरस स्वर में 'नाथ' कह कर लज्जावनत हो गयी। इस संकोचशील मुद्रा में गालों पर मोतियों जैसी उज्ज्वल आभा फूट पड़ी। रति से यह अनधिकार चेष्टा न देखी गयी। उसने समझा इस प्रकार तो मेरा सारा खजाना ही लुट जायगा। अतः लाज से उसके अधर-सम्पुट न खुले और सुरक्षा के निमित्त उसके मुँह पर लज्जारूपी लाल मुहर लगवा दी जिससे कि कहीं फिर लुट न जाय। गोपनीय वस्तु की सुरक्षा के लिए पात्र को बन्द करके उस लाख से बन्द किया जाता है। इन पंक्तियों में एक रूप यह खड़ा हो जाता है कि कोई अपनी गोपनीय वस्तु या बात को खुल जाने के भय से लिफाफे में या सन्दूक में बन्द करके लाख की लाल मुहर लगा देता है तब उसे उसकी गोपनीयता का निश्चय हो जाता है। दूसरा चित्र यह भी हो सकता है कि कोई धनी व्यक्ति अपने खजाने की रक्षा के निमित्त घर के भीतर संदूक में उसे बन्द कर ताला लगा देता है। यह तो हुआ उसका भावपक्ष।

कला की दृष्टि से यहाँ व्यस्त-रूपक कहा जा सकता है पर यथार्थतः वस्तुध्वनि ही है। व्याख्या सम्मत उपमा की ध्वनि भी हो सकती है।'[1]

इसी के अनुरूप 'लज्जा' का दूसरा चित्र देखिये।

लाज की मादक-सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब से
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित-गढ़ों से, सीप-से। —वीणा ग्रंथि पृ० १८

जब युवती के गुलाबी गालों पर स्मिति की चन्द्रिका फैल जाती है तब गालों में गढ़े-से हो जाते हैं। उन सीप के गढ़ों में लालिमा समा नहीं पाती अतः छलक पड़ती है। जैसे किसी पात्र में पानी न समा सकने पर इधर उधर छलक पड़ता है। छलकती क्रिया से कवि गुलाबी गाल और उज्ज्वल लज्जा को साकार कर देता है। गुलाबी गालों पर स्मिति की चाँदनी छिटकने पर सौन्दर्य की बाढ़ का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। इस चित्र में कार्य-कारण का अद्भुत संयोग है। (चाँदनी से समुद्र में ज्वार आते हैं।) लालिमा के लिए लाज की मादक सुरा का उपमान चुना गया है। अनिवार्यतः लाज से गाल लाल हो उठते हैं और यदि लाज में सुरा की मादकता और लालिमा मिली हो तो उस सौन्दर्य का कहना ही क्या है? छलकना क्रिया की भाँति चूमना सिसकना रोना गाना बहना घुलना नाचना हरा होना पीला पड़ना आदि क्रियाएँ हैं जिनके लाक्षणिक अर्थ वर्ण्य वस्तु या भाव का सजीव रूपांकन कर देते हैं। कुछ ऐसी लाक्षणिक क्रियाएँ हैं जिनसे कोई मूर्त रूप खड़ा नहीं होता। जैसे बनाने का अर्थ रचना करना होता है पर किसी को मूर्ख प्रमाणित करने के लिए बनाना का प्रयोग करते हैं।

१. डॉ० रामदहिन मिश्र काव्य में अप्रस्तुत योजना पृष्ठ ५२

नश्वरता

अह ! सुरा का बुलबुला यौवन चपल
चन्द्रिका के अधर पर अटका हुआ।
हृदय को किस शून्यता के छोर तक
अलस-सा है सहज ले जाता उड़ा !

कवि का अभिप्राय यह है कि यौवन क्षणिक है फिर भी मादकता उल्लास और शोभा से आच्छादित है। यौवन के लिए दो अप्रस्तुत योजनाएँ हैं। किन्तु बाधक धर्म का अभाव है। बुलबुला क्षणिक और नाशवान है। इससे यौवन की अस्थिरता का भान होता है। बुलबुला सुरा से निर्मित है अतः उसमें नशीलापन है। चन्द्रिका के अधर पर है अर्थात् सौन्दर्य पर ही अवलम्बित है। जब तक मुख पर ओज है लावण्य है तभी तक यौवन है। यदि इसे सीधे-सादे ढंग से यह कहा जाय कि यौवन सुरा के बुलबुल-सा क्षणिक और चन्द्रिका-सा सुन्दर है तो वह रस नहीं प्राप्त होगा जो कवि के कथन में है।

'परिवर्तन' कविता में नश्वरता का चित्र विभिन्न उपकरणों के माध्यम से चित्रित किया गया है। शरीर में यौवन का उभार कल हड्डियों का हिलता डुलता कंकाल बन जाता है और युवावस्था के सर्प-से काले और चिकने केश कांस की भाँति श्वेत हो जाते हैं। आज बचपन का कोमल किसलय जैसा शरीर है कल वही वृद्धावस्था में पतझड़ के पत्ते की भाँति पीला पड़ जाता है।[1]

अगली पंक्तियों में देखिए

शिशिर-सा झर नयनों का नीर,
झुलस देता गालों के फूल !
प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर,
अधर जाते अधरों को भूल !

—पल्लव पृ० ११७

इस पद्य-खण्ड में नीर का उपमान शिशिर है। दोनों जल जाति के हैं। दोनों का साधर्म्य झरना क्रिया भी है। द्रव्य और लिंग-साम्य होने से काव्य-सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। यहाँ गालों का फूल कह कर गाल की सुकुमारता और कमनीयता की ओर संकेत किया गया है। वही पुष्प शिशिर के सदृश अश्रुजल से झुलस जाता है। अधर प्रणय का चुम्बन छोड़ अधरों को भूल जाते हैं। इस तथ्य-कथन में भी नश्वरता का आभास मिलता है।

अप्रस्तुत-योजना के अनेक भेद होते हैं। वे भेद जाति गुण द्रव्य क्रिया शक्ति और स्वभाव पर आधारित हैं। यहाँ शिशिर और नीर में द्रव्य-साम्य है इसलिए यहाँ उपमानोपमेय भाव है।

इसी भाँति स्वर्णधूलि में यौवन को स्वप्न और इन्द्रधनुष का सुन्दर बादल कह कर उसकी नश्वरता का बड़ा चित्र प्रस्तुत किया है।[2] स्वर्णकिरण में रूपक अलंकार के द्वारा

१ पल्लव पृ० ११७
२ स्वर्णधूलि, पृ० ११

जीवन की नश्वरता का बड़ा महत्वपूर्ण चित्र खींचा है। कवि का कथन है कि जीवन के दांत पीले पड़ कर गिर रहे हैं। जगरूपी वृक्ष की शाख पर्णविहीन होने पर ककाल मात्र देह मालूम होती है।

मधुमास की कुसुमित लतिका आज मूक ठिठ है। और स्वप्नचित्र के सदृश आयु के वर्ष नभ पर धूमयोनि के समान उड़ रहे हैं।[1]

इसी प्रकार के कुछ और भावात्मक खंडचित्र देखिये

आशा

'इन्द्रधनुष-सा आशा का सेतु'[2] आशा को इन्द्रधनुष-सा कहने पर सतरंगी नश्वर आशा का रूप और गुण दोनों का चित्र सामने आ जाता है। 'शरद् के बिखरे सुनहले जलद सी बदलती थी रूप आशा निरन्तर'[3] आशा मोहक और सुनहली होती है उसका रंग नहीं गुण सुनहला होता है। आशा को बिखरे सुनहले जलद-सी कहने पर मृगनाशा का रूप चित्रित हो उठा है।

अभिलाषा इच्छा स्पृहा

'वह स्पृहा जो ऊर्मि-सी' स्पृहा को ऊर्मि-सी कहने पर ऊर्मि के सदृश लघु-लघु मात स्पृहा का भावचित्र मूर्तिमान हो उठता है जिसका अस्तित्व क्षणिक है। 'कल तप्त लालसा के मुख पर'[4] मानव-मन की लालसा सदैव प्रज्ज्वलित रहती है अत लालसा के विशेषण 'तप्त' से उनके गुण का एक प्रभावोत्पादक खंडचित्र प्रस्तुत हो जाता है। अभिलाषा को कनक भुजग-सी'[5] बता कर अभिलाषा के गुण का रूप उभार दिया है। भुजग जैसे बढ़ते हुए चरणों में लिपट कर उसे बाँध देता है, इसी प्रकार अभिलाषा प्राणों को बाँध देती है।

प्रेम, विरह मिलन प्रश्रु तथा वेदना

मत्त गज से पुरुष को जिसने नहीं
बाँध डाला दृष्टि के हूस-सूत्र से

—वीणा ग्रंथि पृ० ७८

इन पंक्तियों में प्रम की अमोघ शक्ति और उसके प्रभावोत्पादक आकर्षण का आभास मिलता है। नारी अपने प्रेम दृष्टि के इस सूत्र से मत्त-गज-से पुरुष को भी बाँध कर अपना बना लेती है।

सिसकते हैं समुद्र-से मन उमड़ते हैं नभ-से लोचन —पल्लव पृ० २९

---

१ स्वर्णकिरण पृ १२६ और १३२
२. पल्लव पृ ११
३ वीणा ग्रंथि पृ ८१
४ वीणा ग्रंथि पृ ८१
५ ज्योत्स्ना पृ ७१
६ रजत शिखर पृ १

भावुक कवि पन्त ने इन पंक्तियों में प्राकृतिक और मानवीय उपकरणों के माध्यम से प्रेम और विरह का छायाचित्र दिया है। यह चित्र अपनी विराटता में अवनि और अम्बर तक फैला हुआ है। विश्व के दैनिक क्रियाकलाप तथा अनुभूति-प्रेरित यह प्रभावचित्र मन-मर्म के बहुत समीप पहुँच जाता है।

समुद्र में उठती हुई लहरों से जो ध्वनि निकलती है वही मानो उसकी सिसकी है। इसी भाँति विरही का मन समुद्र की भाँति सिसकी भरता है उसके नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़ता है मानो नभ पर बादल उमड़ रहे हों। अस्तु सम्पूर्ण विश्व की वाणी क्रन्दन है और विश्व काम्य अश्रु-कण ! कवि अपने मन को संतोष देने के लिए कल्पना करता है कि गगन में छिटके असंख्य तारे मानो उसके क्षत-विक्षत हृदयों के घाव हैं और टिमटिमाती हुई तारा बत्तियाँ जैसे किसी की अनवरत प्रतीक्षा में जल रही हैं। उसी प्रकार चन्द्र की चितवन में भी चाह है और अनिल भी वियोग में ठंडी साँस भरता है। प्रकृति के इन लाक्षणिक उपमानों से प्रेम और विरह का भावपूर्ण चित्र मूर्तिमान हो जाता है। अमूर्त और मूर्त की मैत्री से चित्र असाधारण रूप से कलात्मक बन गया है।

गिरा हो जाती है सनयन नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन स्वयं मन करता बात श्रवण !

—पल्लव पृ० ११

प्रेम का यह अनूठा चित्र हिन्दी काव्य साहित्य में अद्वितीय है। महात्मा तुलसीदास ने भी ऐसा ही एक चित्र प्रस्तुत किया है।

स्याम गौर किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

इस चित्र की वास्तविकता सच्चे प्रेमी प्रेमिका ही समझ सकते हैं जब अत्यधिक प्रेमावेश में इन्द्रियाँ अपना अपना गुण त्याग कर दूसरी इन्द्रिया का कार्य सम्पादन करने लगती हैं। उस दशा में प्रेमी प्रेमिका की गिरा सनयन हो जाती है, नयन नीरव भाषण करने लगते हैं मन स्वयं श्रवण के समीप पहुँच बात सुनने लग जाते हैं। अनुभूति की तीव्रता से चित्र प्राणवान हो गया है। इसी से मिलता-जुलता प्रेम का दूसरा चित्र देखिये

देह में पुलक उरों में भार, भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण
अधर में अमृत, हृदय में प्यार, गिरा में लाज प्रणय में मान।

—गुंजन पृ० ६०

× × ×

शून्य-जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह ! अहह, कराहते इस शब्द का
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से
निठुर-विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

—वीणा ग्रंथि, पृ० ८८

इन पंक्तियों में विरह मूर्तिमान हो उठा है। यहाँ पुस्तक और लिपि के माध्यम से विरह की तसवीर खींची गयी है। 'अहह कराहते' शब्द से विरह की वेदनामयी तड़पती हुई ध्वनि चित्रित हो उठी है।

जीवन की नश्वरता का बड़ा महत्वपूर्ण चित्र खींचा है। कवि का कथन है कि जीवन के दा[illegible] पीले पड़ कर गिर रहे हैं। पतझड़ी वृक्ष की शाख पर्णविहीन होने पर कंकाल मात्र से[illegible] मालूम होती है।

मधुमास की कुसुमित लतिका आज मुकुलित है। और स्वप्नचित्र के सदृश आ[illegible] के नव मन पर धूमयानि के समान उड़ रहे हैं।[1]

इसी प्रकार के कुछ और भावात्मक खंडचित्र देखिये

आशा

'इन्द्रधनुष-सा आशा का सेतु' आशा को इन्द्रधनुष सा कहने पर सतरंगी नव[illegible] आशा का रूप और गुण दोनों का चित्र सामने आ जाता है। 'शरद् के बिखरे सुनहले बादल सी बदलती थी रूप आशा निरन्तर'[1] आशा मोहक और सुनहली होती है उसका रंग नहीं गुण सुनहला होता है। आशा को बिखरे सुनहले जलद-सी कहने पर भग्नाशा का रूप चित्रित हो उठा है।

अभिलाषा, इच्छा स्पृहा

'वह स्पृहा जो ऊर्मि सी'[3] स्पृहा को ऊर्मि-सी कहने पर ऊर्मि के सदृश मधु-मधु गात[illegible] स्पृहा का भावचित्र मूर्तिमान हो उठता है जिसका अस्तित्व क्षणिक है। 'कम तप्त लालसा के मुख पर'[4] मानव-मन की लालसा सदैव प्रज्वलित रहती है अतः लालसा के विशेषण 'तप्त' से उनके गुण का एक प्रभावोत्पादक खंडचित्र प्रस्तुत हो जाता है। 'अभिलाषा को कनक भुजंग-सी'[5] बता कर अभिलाषा के गुण का रूप उभार दिया है। भुजंग जैसे बढ़ते हुए चरणों में लिपट कर उसे बाँध देता है, इसी प्रकार अभिलाषा प्राणों को बाँध देती है।

प्रेम, विरह, मिलन अश्रु तथा वेदना

मत्त गज से पुरुष को जिसने नहीं
बाँध डाला दृष्टि के कुश-गुण से

—वीणा ग्रन्थि पृ० ७८

इन पंक्तियों में प्रेम की अमोघ शक्ति और उसके प्रभावोत्पादक आकर्षण का आभास मिलता है। नारी अपने प्रेम दृष्टि के कच्चे सूत से मत्त-गज-से पुरुष को भी बाँध कर अपना बना लेती है।

बिलखते हैं समुद्र-से मन, चमकते हैं नभ-से लोचन —पल्लव पृ० २१

१ स्वर्णकिरण पृ १९६ और १९९
२. पल्लव पृ १६
३ वीणा ग्रंथि पृ ८२
४ वीणा ग्रंथि पृ ८२
५ ग्रन्था पृ ७२
६ रजत शिखर पृ २

भावुक कवि पन्त ने इन पंक्तियों में प्राकृतिक और मानवीय उपकरणों के माध्यम से म और विरह का छायाचित्र दिया है। यह चित्र अपनी विराटता में अवनि और अम्बर क फैला हुआ है। विश्व के दैनिक क्रियाकलाप तथा अनुभूति रंजित यह प्रभावचित्र न-मन के बहुत समीप पहुँच जाता है।

समुद्र में उठती हुई लहरों से जो ध्वनि निकलती है वही मानो उसकी सिसकी है। ी भाँति विरही का मन समुद्र की भाँति सिसकी भरता है उसके नेत्रों में अश्रु उमड़ हा है मानो नभ पर बादल उमड़ रहे हों। अस्तु समूचे विश्व की वाणी क्रन्दन है और विश्व ाम्य अश्रु-कण! कवि अपने मन को सान्त्वना देने के लिए कल्पना करता है कि गगन में टके असंख्य तारे मानो उसके क्षत-विक्षत हृदयों के घाव हैं और टिमटिमाती हुई तारा श्मियाँ जैसे किसी की अनवरत प्रतीक्षा में जल रही हैं। इसी प्रकार चन्द्र की चितवन में ी चाह है और अनिल भी वियोग में ठंडी साँस भरता है। प्रकृति के इन काल्पनिक उप रणों से प्रेम और विरह का भावपूर्ण चित्र मूर्तिमान हो जाता है। अमूर्त और मूर्त की मैत्री े चित्र असाधारण रूप से कलात्मक बन गया है।

गिरा हो जाती है सनयन नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन स्वयं मन करता बात श्रवण!

—पल्लव पृ० ११

प्रेम का यह अनूठा चित्र हिन्दी काव्य साहित्य में अद्वितीय है। महात्मा तुलसीदास े भी ऐसा ही एक चित्र प्रस्तुत किया है।

श्याम गौर किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

इस चित्र की वास्तविकता सच्चे प्रेमी-प्रेमिका ही समझ सकते हैं, जब भावातिरेक अवस्था में इन्द्रियाँ अपना अपना गुण त्याग कर दूसरी इन्द्रियों का काम सम्पादन करने लगती हैं। उस दशा में प्रेमी प्रेमिका की गिरा सनयन हो जाती है, नयन नीरव भाषण करने लगते हैं मन स्वयं श्रवण के समीप पहुँच बात सुनने लग जाते हैं। अनुभूति की तीव्रता से चित्र प्राणवान हो गया है। इसी से मिलता-जुलता प्रेम का दूसरा चित्र देखिये

देह में पुलक, उरों में भार, भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण
अधर में अमृत, हृदय में प्यार गिरा में लाज प्रणय में मान।

—गुंजन, पृ० ६०

× × ×

शून्य-जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह ! अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से
निठुर विधि ने आँसुओं से है लिखा ॥

—ग्रन्थि पृ० ८८

इन पंक्तियों में विरह मूर्तिमान हो उठा है। यहाँ पुस्तक और लिपि के माध्यम से विरह की तसवीर खींची गयी है। 'अहह कराहते' शब्द से विरह की वेदनामयी तड़पती हुई ध्वनि चित्रित हो उठी है।

इसी प्रकार विशेषण विपर्यय द्वारा वेदना का चित्र प्रस्तुत किया है। "वेदना के सुरीले हाथ" कहने से दुखी और सिसकते हुए मनुष्य के हैं जो उसी की मूर्ति सामने आते हैं। इसी प्रकार गीला सुख भिक्षुक-गान आदि विशेषण विपर्यय के उदाहरण हैं।

ओस-कण से सजल मेरे अश्रु हैं
पलक-दल में दूब के बिखरे पड़े !
पवन पीले-पात में मेरा विरह
है खिलाता हसित सुरभि फूल-सा !

—वीणा ग्रन्थि, पृ० ९०

दूब के सदृश पलक-दल में ओस-कण के समान मेरे अश्रु बिखर पड़े हैं। ओस और अश्रुकण में रूप-साम्य है। पलक-दल की गोद में चुपचाप पड़े हुए बिन्दुओं के सदृश अश्रु कण डबडबाई हुई आँखों का चित्र साकार कर देते हैं।

मिलन का एक उन्मादपूर्ण चित्र देखिए :

मिलें अधरों से अधर समान,
नयन से नयन गात से गात
पुलक से पुलक प्राण से प्राण
भुजों से भुज, कटि से कटि शात !

—गुंजन, पृ० ६१

यह रति चित्रण रीतिकालीन परम्परा की सीमाओं को छू लेता है। इसी तरह का चित्र 'तुमने अधरों पर धरे अधर मैंने कोमल वपु धरा गोद' पंक्तियों में भी पाया जाता है। किन्तु ऐसे चित्र पन्त की कविताओं में बहुत विरल हैं।

महिमा और शांति का एक शब्द में कितना भावपूर्ण चित्र बन सका है। देखिए 'महिमा के विशद-जलधि" और हिम फुहार-सी नाम सुनहली शांति" कहने से महिमा का विस्तार अनन्त सागर-सा मूर्तिमान हो जाता है शांति के 'हिमफुहार' के सदृश कहने से शांति की शीतलता तथा स्निग्धता का मूर्त रूप गोचर हो उठता है।

गुणात्मक रूप-विधान (स्पर्श रंग गंध स्वाद तथा श्रवण) मानव-मन की सरस तरल अनुभूतियाँ त्वचा के माध्यम से रंगबिरंगे चित्र निर्माण करने की क्षमता रखती हैं। रतिविलास के क्षेत्र में स्पर्श चित्रों की बहुलता देखी जाती है। एस कुछ चित्र देखिये

'रेशमी घूँघट बादल का" हिम परिमल की रेशमी वायु' में 'रेशमी' शब्द मृदुता कमनीयता और चिकनाहट का सामंजस्य लिये हुए है। रेशमी घूँघट या रेशमी वायु कहने से घूँघट और वायु के मृदुल स्पर्श का बोध हो जाता है। जो अभी स्वप्न की स्वर्ण किरण

१ वीणा ग्रन्थि पृ ६
२ गुंजन प २८
३ रजत शिखर पृ ६६
४ पल्लव पृ ९२
५. युगपथ पृ० १८

भू जग-जीवन का अन्धकार''[1] में प्रभात की कोमल स्वर्ण किरण के स्पर्श की अनुभूति हृदय को गुदगुदा देती है। स्वर्णकिरण में पन्तजी को प्रभात का चाँद 'दुग्ध फेन-सा मृदु कोमल''[2] प्रतीत होता है। दुग्ध फेन का स्पर्श-सुख जिसे मिला होगा वह चाँद के स्पर्श का सहज ही अनुमान लगा सकता है। इसी पुस्तक में एक स्थल पर कवि ने 'गैरिक शृंगों से उरोज''[3] कह कर उरोजों की कठोरता का स्पर्श चित्र खींच दिया है।

(क) मारुत ने जिसकी अलकों में चंचल चुम्बन उलझाया
—वीणा ग्रन्थि पृ० ९

(ख) एक जल-कण जलद-शिशु-सा पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन सा स्वप्न-सा।
—वीणा ग्रन्थि पृ० ७५

(ग) एक लघु नादान आँसू मोम-सा

उदाहरण (क) में मारुति ने अलकों में चुम्बन उलझाया है। चुम्बन का स्पर्श यों ही बहुत मृदुल और मादक होता है फिर मारुत ने जब अलकों का चुम्बन लिया होगा, वह कितना सुखद और शीतल रहा होगा। यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण (ख) में जल-कण के लिए आये वर्जन कोमल उपमान प्रयुक्त हुए हैं। उनमें जलद शिशु की कोमलता का स्पर्श हम बाह्य रूप से भी कर सकते हैं किन्तु सुकुमारता, गान चाह सुधि सगुन स्वप्न आदि ऐसे मधुर अमूर्त उपमान हैं जिनके स्पर्श का अनुमान भर किया जा सकता है। बाह्य इन्द्रियों से उनकी सुकुमारता का आभास पाना कठिन है।

उदाहरण (ग) में आँसू को मोम के सदृश बताकर उसकी कोमलता का स्पर्श कराया गया है।

'ग्राम्या' में 'ग्रामश्री' के अन्तर्गत खेतों में फैली हरियाली को मखमल की कोमल हरियाली कहा है इसी प्रकार टमाटर को भी मखमली बताया है और मटर की छीमियों को मखमली पेटियों का उपमान चुना है।[4] मखमल का स्निग्ध स्पर्श करने वाला भावुक मन मख मली छीमियों और मखमली टमाटर का स्पर्श-सुख अनुभव कर सकता है।

रंग

पन्तजी को धूम धुँआरा मेचका सिन्दूरी धानी गुलाबी सुनहला चुनहला, इन्द्र धनुषी केसरी श्याम मूँगिया भूरा स्वर्णाभ, बसन्ती चम्पई, सुगिया अरुण चितकबरा, नीला, पीला, मरकत, कपूरी श्याम आदि रंग बहुत प्रिय हैं।[5] इन्हीं विभिन्न रंगों से अपनी कविता के भावमय चित्रों को चतुर चितेरे की भाँति रँगा है। कुछ चित्र देखिये :

१. युगपथ पृ० १८
२ स्वर्ण किरण, पृ० १८
३ स्वर्ण किरण पृ० ९१
४ ग्राम्या पृ० ३२ से ३७
५ 'कल्पना' अप्रैल १९५१, अमरीश मिश्र का लेख।

(क) गहरे, धुँधले, धुले साँवले,
मेघों से मेरे भरे नयन।
× × ×
मेरा पावस ऋतु-सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन !

—पल्लव पृ० १८

(ख) अभी गिरा रवि, ताम्र कलश-सा, गंगा के उस पार
क्लान्त पान्थ जिह्वा विलोल, जल में रक्ताभ प्रसार
भूरे जलदों से धूमिल नभ, विहग-छन्दों से बिखरे
धेनुत्वचा-से सिहर रहे, जल में रोमों से छितरे।

—युगवाणी पृ० ११

(ग) ईंगुर के पर्णों में हिलमिलती नृत्य कर रहा स्वर्ण सकाल।

—युगवाणी पृ० ८१

(घ) पतझड़ के कृश पीले तन पर, पल्लवित तरुण लावण्य-लोक।

—युगपथ पृ० १८

(ङ) संध्या के सोने के नभ पर, तुम उज्ज्वल हीरक सदृश जड़े।

—युगपथ, पृ० ४५

(च) तिमिर श्याम सा केश जाल घन
(छ) जलता तरु के तम में पलाश, यौवन की इच्छा से लोहित।

—उत्तरा पृ० ६५

(ज) नील रेशमी तम का कोमल
खोल लोल कच भार

—गुंजन पृ० १७

(झ) स्वर्ण सनहुली अलकों में उलझी रविकिरणें उज्ज्वल
नील इन्द्रधनुषी छाया का स्वप्ननीड़ रच चंचल

—अतिमा पृ० ११९

उपर्युक्त चित्रों में प्रयुक्त रंगों की सार्थकता पर हमें विचार करना है। प्रभाव-साम्य के लिए दो वस्तुओं के बाह्य रूप-गुण पर ध्यान न देकर अप्रस्तुत के व्यापार से प्रस्तुत की क्रियानुरूपता का निर्वाह किया जाता है। उदाहरण (क) में प्रस्तुत जीवन मन और नयन के लिए क्रमशः पावस ऋतु, मानसरोवर, और मेघमाला के अप्रस्तुत चित्रों का विधान करके अप्रस्तुत के प्रभाव को ही प्रस्तुत के साथ बिठाया गया है। जीवन और पावस में मन और मानसरोवर में तथा नयन और मेघमाला में रूपरंग की कोई समानता नहीं हो सकती। अब आर्द्रता तरंगिता तथा सजलता क्रमशः तीनों अप्रस्तुत गुणों का समान प्रभाव है और इसी आधार पर उनका विधान किया गया है। प्रभाव-साम्य वाला अप्रस्तुत-विधान व्यंजना-प्रधान रहता है अर्थात् भाव की तीव्रता के लिए अप्रस्तुत के वाच्यार्थ को ही नहीं ग्रहण करके उसके

व्यंग्यार्थ से काम लिया गया है।[1] फिर भी गहरे धूँधले धुले साँवले मेघ के समान सघन बहने से अश्रु रोते हुए उदास नेत्रों का चित्र जो अब भी आँसू से डबडबाये हैं खड़ा हो जाता है।

उद्धरण (ग) में भी प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को भिन्न-भिन्न रंगों में चित्रित किया गया है। अस्त होता हुआ सूर्य 'ताम्रपर्ण'-सा लाल दिखाई पड़ता है और उसकी लालिमा रक्त की भाँति जल में घुली हुई है। 'भूरे जलद' और धूमिल नभ में रंगों की उचित व्यवस्था की गई है और जल-विहीन आकाश में मंडराते हुए बादल के रंग की समता धेनु-त्वचा से करके कवि अपनी सूक्ष्म परिवीक्षण शक्ति का परिचय देता है।

उद्धरण (घ) में कोमल किसलयों का रंग ईंगुर की भाँति लाल बता कर किसलयों में रंग भरने की योजना सफल हुई है।

उद्धरण (ङ) में पतझड़ और वसन्त से प्रादुर्भूत रंगों की छटा देखिये। पतझड़ के पत्ते पीले होकर गिर पड़ते हैं और पेड़ों की नंगी डालें ही अवशेष रहती हैं। इसीलिए पतझड़ के शरीर को दुबला-पतला और पीला बताया गया है। उद्धरण (च) में शुक्र तारे की छवि दर्शनीय है। सन्ध्या के समय आकाश सुनहले रंग का हो जाता है उस सोने के नभ पर उज्ज्वल हीरे के सदृश चमकता हुआ शुक्रतारा सोने में जड़ा हीरक खंड दिखाई देता है।

उद्धरण (छ) में केशजाल की कालिमा को व्यंजित करने के लिए उसे 'तिमिर जाल' कहा गया है। अँधेरे जैसा काला रंग संसार में दुर्लभ है। रमणी के बाल अँधेरे के समान काले हैं कहने से उमड़ते काले बालों की लहराती छटा आँखों में झूल जाती है। इसी प्रकार उद्धरण (ज) में 'अप्सरा' की अलकावलियों को नील रेशमी और तम तीन विशेषणों से सुसज्जित किया है। नीलतम से बालों की कालिमा का बोध होता है और रेशमी में उसकी स्निग्धता कोमलता तथा चमकीलापन छिपा हुआ है।

उद्धरण (झ) में लाल-लाल पलाश-पुष्प को आग के अँगारे-सा लाल बता कर पलाश की लालिमा का बोध कराया गया है।

उद्धरण (ट) 'कूर्माचल के प्रति' शीर्षक कविता से उद्धृत किया है। इसमें सप्तरंगों का यथार्थ अनुकूल चित्रों को रँगने में किया गया है। हिमाच्छादित पर्वत शिखर पर सूर्य की किरणें पड़ने पर उसका रंग स्फटिक सा श्वेत हो जाता है और उस पर्वत की घाटी में नील बैंगनी कपिश पीत तथा हरिताभ वर्ण के प्राकृतिक दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। आकाश में उड़ते हुए रोमिल घन ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे रुपहली अलकों में सूर्य अपनी उज्ज्वल किरणें उलझा रहा हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्तजी वस्तुओं का पूर्ण या अंशचित्र देकर ही नहीं रह जाते उन चित्रों को विविध अनुरूप रंगों से रंग कर उसे और बोधगम्य तथा आकर्षक बना देते हैं।

पन्तजी का मोह रुपहले सुनहले रंगों से अत्यधिक रहा है। अतः इन दो रंगों का प्रयोग अनेकों बार किया है।

१ साहित्य भावना की रूपभूमि [illegible] पृ० ८४

उदाहरणस्वरूप

स्वर्ण स्वप्न-सी कर अभिसार	पल्लव पृ० १२
रुचिर रुपहले-पंख पसार	पृ० ११
स्वर्णसुख कनकछाया	पृ० ४८
स्वर्ण-अवदात	पृ० ४९
रुपहली कलियों से कुछ लाल	गुंजन पृ० ४६
स्वर्णसकाश	युगवाणी पृ० ८१
चाँदी सा फैला है प्रकाश	युगपथ पृ० ५२
स्निग्ध धूप का स्वर्णातप आशीर्वाद सा	स्वर्णकिरण पृ० ९६
सोने का चाँद	स्वर्णकिरण पृ० ९४
चाँद सीप के पर फैलाये	पृ० ९८
तप्त कनक द्युतिदेह	पृ० ९१
धूप स्वर्णों की साँझ सुनहली	उत्तरा पृ० १९
बन जाता संगीत सुनहली झंकारों का	रजत शिखर पृ० २७
स्वर्णिम धूपों की रजत पंखियाँ	पृ० ४९
स्वर्णद्वीप मेरी स्मृति है	,, पृ० ५९
लहरों की रुपहली पायलें बजती छम छम	पृ० ७१
रुपहली धूलों में लय	,, पृ० १४१
साँझ प्रात के कांचन तोरण	अतिमा पृ० ११९
स्वर्णिम शिखरों पर मंडराती	पृ० १४०
स्वर्णिम नवल प्रवालों का रंग	पृ० १४०
उदयाचल पर कनक चक्र सा	,, पृ० १४१
हिम के कंचन प्रात	,, पृ० १४२

श्रवण गंध स्वाद—

'श्रवण गंध तथा स्वाद' कविता के आस्वादन में पंच ज्ञानेन्द्रियाँ भी सहायक होती हैं। पपीहों की पीन पुकार, झींगुरों की झंकार, कोकिल की पुकार, भौंरों का गुंजार, लहरों का लचीला गान, तथा मेघ का गंभीर गर्जन आदि ध्वनियाँ हमारे संवेदनशील हृदय को स्पर्श करके अपना एक प्रभाव छोड़ जाती हैं। कुशल कवि पन्त ने ध्वन्यात्मक शब्दों का सफल प्रयोग करके भावों को रसमय बना दिया है। नाद-व्यंजना से निर्मित कुछ चित्रों से यह बात पूर्ण स्पष्ट हो जाती है।

पपीहों की वह पीन पुकार, निर्झरों की भारी झर झर
झींगुरों की झीनी झनकार, घनों की गुरु-गंभीर-घहर
बिन्दुओं की छनती-छनकार, दादुरों के वे दुहरे स्वर;

—पल्लव, पृ० २१

इस उद्धरण में नाद-व्यंजना के माध्यम से कवि ने पावस ऋतु को सजीव कर दिया है। पपीहों की पीउ पुकार, निर्झरों की झर्-झर्, झींगुरों की झनकार, घनों की गुरु-गम्भीर घहर, दादुरों के दुहरे स्वर से पावस ऋतु का वातावरण मुखरित हो उठा है।

यह कैसा जीवन का गान, अलि! कोमल कल् मल् टल मल !
अरी शैल-बाले नादान ! यह अविरल कल कल छल् छल् !

—पल्लव पृ० ८६

निर्झरी के प्रवाहित होने का स्वर शब्दों में गुम्फित करके कवि ने निर्झर की छवि कानों के माध्यम से हृदय तक पहुँचाई है। कल मल टल मल तथा कल कल छल छल् शब्द निर्झरी के प्रवाह का चित्र बहुत स्पष्ट कर देते हैं।

और तड़ित से अग्नि आवरण
उमड़ घुमड़ घिर घन घुम है
बरस रहे नव जीवन के कण।
घूम घूम हर निर्झर अंबर
झूल झूम झंझा झोंकों पर —

—युगवाणी पृ० ७९

गुरु-गम्भीर गर्जन करते हुए 'कृष्ण घन' को चित्रित करने का प्रयास उपर्युक्त पद्यांश में हुआ है। उमड़ घुमड़ तथा घमघुम कर बादलों के अम्बर में छा जाने की क्रिया से बादलों की उन्मत्त जवानी और उनकी गतिशीलता का परिचय मिलता है। 'झूल-झूल झंझा झोंकों में प्रबल प्रभंजन के झूले पर झूलते हुए काले-काले बादलों का दृश्य सम्मुख खिंच जाता है।

बाँसों का झुरमुट
सन्ध्या का झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी-वी-टी-टुट् टुट् !

—युगपथ पृ० ४०

यहाँ सन्ध्या के वातावरण को चिड़ियों की टी-वी-टी-टुट टुट ध्वनियों से चित्रित किया गया है। चित्र बहुत स्वाभाविक है। सन्ध्या के समय जब बहुत-सी चिड़ियाँ बाँसों के झुरमुट में एक ही साथ चहकने लगती हैं तो उन सबके सम्मिलित स्वर ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

मृदु मन्द मन्द, मन्थर मन्थर लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर !

—गुंजन पृ० १०२

उपर्युक्त उद्धरण में शब्दगत और नाद गाम्भीर्य अपने रूप-भाव को इस प्रकार अपने आप व्यक्त कर रहे हैं जैसे तरणी के तैरने की ध्वनि बिलकुल समीप से आ रही हो।

लो, छन छन छन छन
छन छन छन छन
नाच गुजरिया हरती मन !
ठुमक गुजरिया हरती मन !

उड़ रहा ढोल धाधिन धातिन,
औ' हुड़क घुमड़ता ढिम ढिम ढिम
मंजीर खनकते खिन खिन खिन,
× × ×
फहराता लहँगा लहर लहर
उड़ रही ओढ़नी फर फर फर !

—ग्राम्या पृ० ११ १२

कविवर पन्त ने इस पद्य में स्वरों के माध्यम से 'नृत्य-चित्रण' किया है। आठ बार 'छन' शब्द का प्रयोग गुजरिया के पैरों में बँधे हुए घुँघरू की ध्वनि मुखरित करता है। ठुमक में गुजरिया के गति की ध्वनि है। धाधिन धातिन में ढोलक का स्वर, ढिम ढिम ढिम में हुड़क की ध्वनि और खिन खिन खिन में मंजीर की मधुर ध्वनि समाहित है। नृत्य के वेग में गुजरिया के लहँगे में सलवटें पड़ जाती हैं और उसकी ओढ़नी के उड़ने में फर फर की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के
छम छम छम गिरती बूँदें तरुओं से छन के।
चम चम बिजली चमक रही रे उर में घन के,
× × ×
आँधी हर हर करती, दल मर्मर, तरु चर चर
× × ×
दादुर टर टर करते, झिल्ली बजती झन झन,
म्याउँ म्याउँ रे मोर, पीउ पीउ चातक के गण !

—स्वर्णधूलि पृ० ४१

यहाँ सावन की झड़ी का चित्रण हुआ है। झम झम झम झम शब्दों से घनघोर वृष्टि करते हुए बादलों का दृश्य सामने आता है। छम छम छम में नृत्य करती हुई बून्दों के गिरने का स्वरूप सामने आता है। भयंकर आँधी के झोंके से पेड़ों में जो गर्जन होता है उससे चर चर की आवाज आती है। टर टर कहने से दादुर तथा पीउ पीउ कहने से चातक का स्वरूप सम्मुख आ जाता है। हाँ 'म्याउँ म्याउँ' कहने से मोर का नहीं बिल्ली का चित्र सामने आता है, जो सर्वथा अस्वाभाविक है।

इस प्रकार पन्तजी ने नाद-व्यंजना से भी भाव-व्यंजना की है जो वातावरण तथा वस्तुओं का यथातथ्य चित्र खींचने में सर्वथा समर्थ हुए हैं।

किसी भी दृश्य को प्राणवान करने के लिए गन्ध की योजना बड़ी सहायक होती है। गन्ध के वर्णन से चित्र का पूरा-पूरा अनुभव हो जाता है। यद्यपि स्पर्श गन्ध स्वाद आदि की संवेदनाओं से प्रकृति-प्रेम का पर्याप्त सम्बन्ध है किन्तु सौन्दर्य-वृद्धि में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। सौंदर्यप्रेमी कवि पन्त ने सम्भवतः इसीलिए स्वाद और गन्ध पर विशेष बल नहीं दिया। एकाध खंडचित्र देकर ही पन्तजी सन्तुष्ट हो गये हैं। देखिये :

(१) यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध —युगपथ पृ० ५१

(२) तुम्हारी भी मुख बास तरंग, आज बौरे भौंरे सहकार।

—गुंजन पृ० ५३

उदाहरण (१) में यौवन की मांसलता में कवि को स्पर्श गन्ध मिलती है। और उदाहरण (२) में ध्वनि है कि नारी के सुगन्धित मुख-बास से आम्रमंजरियों ने बास ग्रहण की है। तात्पर्य यह कि नारी के मुख की गन्ध आम के बौरों की गन्ध से मिलती जुलती है। इसी प्रकार 'नव सुरभित कर' में 'कर' की गन्ध का अभिप्राय है।

(१) तुमने मन के मधु की मिठास —गुंजन पृ० ५१

(२) मिला-पिला जिसको नयनों की
दूनी प्यास बढ़ाई है। —वीणा ग्रंथि पृ० ५

(३) कपोलों की मदिरा पी, प्राण!
आज पाटल गुलाब के लाल। —गुंजन पृ० ५६

उदाहरण (१) में मधु की मिठास का स्वाद चित्रित है। उदाहरण (२) में कवि मदिरा की मादकता से नयनों की प्यास बढ़ाने का वर्णन है। और इसी प्रकार उदाहरण (३) में कपोलों की मदिरा पीकर गुलाब के फूल लाल हो गये हैं। 'मधु' की मिठास का जिक्र करके कवि ने किसी के मन की सुन्दरता को देखा है, जिसका उर मीठा होता है, इसीलिए वह फूल-फूल का रस लेती है। शराबी का शराब पीने से तृप्ति नहीं होती ज्यों ज्यों वह पीता है प्यास बढ़ती ही जाती है। इसी प्रकार आँखें जब किसी मादक सौन्दर्य का पान कर लेती हैं तो उसे बार-बार देखना चाहती हैं। एक घूँट दो घूँट में उनकी प्यास नहीं बुझती। उदाहरण तीन में कपोलों की सुन्दरता को व्यक्त करने के लिए मदिरा का प्रयोग हुआ है। कपोल इतने सुन्दर, स्वच्छ और लाल हैं जैसे मदिरा—उसका ही पान करके मानो गुलाब ने अपनी लालिमा ग्रहण की है।



जयशंकर प्रसाद

हिन्दी काव्य-साहित्य में छायावाद-युग के प्रवर्तक स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ने कविता कामिनी को द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक बंदीगृह से उन्मुक्त कर कल्पना अनुभूति प्रणय तथा प्रकृति की मादक अमराइयों की सघन छाया में साँस लेने को छोड़ दिया। वहाँ पहुँच कर उसने प्रकृति के कण-कण से सौन्दर्य निचोड़ अपने यौवन का शृंगार किया कल्पना की शलाका से इन्दीवर नयनों में काजल लगाया। लता-कुंज तथा वन-उपवन में कोमल किस लय तथा मधुमय कलियों से अठखेली की। चन्द्रिका चर्चित सर, सरिता तथा समुद्र की लहरों पर झूला डाल कभी प्रिय की रानी बन उसने परिरम्भ कुम्भ की मदिरा का छक कर पान किया परिणामस्वरूप कुछ दिन तक तो उसकी यह दशा थी

मिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदम्ब-सा था भरा गद्‌गद बोल।

तत्पश्चात्

संध्या की मिलन प्रतीक्षा कह चलती कुछ मनमानी
ऊषा की रक्त निराशा कर देती अन्त कहानी।

की दशा में पहुँच गई। इस प्रकार विरह की घड़ियाँ आ गईं। यौवन के रंगीन सपने बिखर गये। जो प्रणयशीला कभी मादक थी मोहमयी थी वही अब हृदय हिला देती है। प्रेमोन्माद की भाव दशा में उसका बाह्य सौन्दर्य जितना ही निखरता गया उसी मात्रा में अन्तर का भावसौन्दर्य भी आकर्षक होता गया।

कवि की सर्वप्रथम रचना 'चित्राधार' है। यहाँ कवि कभी जिज्ञासा की झलक में प्रकृति की रमणीयता को नयनों में अतृप्त प्यास भर कर निहारता है, कभी अपनी भावा भिव्यक्ति पर दार्शनिकता का लेप लगाकर परमात्मा की ओर उन्मुख होता है और कभी उसका प्रकृति और ईश्वर विषयक प्रेम मानवीय धरातल पर उतर आता है। इस पुस्तक में कवि की सौन्दर्य भावना पूर्णरूपेण प्रस्फुटित नहीं हो सकी है। सौन्दर्य का दर्शन उसे प्रकृति की शीतल छाया और नारी के अंचल में ही होता है। 'प्रेम पथिक' तक पहुँचते-पहुँचते कवि की दृष्टि में उत्तरोत्तर विकास और जिज्ञासा वृत्ति में क्रमिक ह्रास के दर्शन होते हैं। चित्रा धार में कवि प्रकृति से ही अधिक उलझा रहा जबकि 'प्रेम पथिक' में मनुष्य ही उसकी कल्पना और अनुभूति का आधार बना। 'कानन कुसुम' में तीन प्रकार की कविताएँ मिलती हैं प्राकृतिक पौराणिक तथा प्रार्थनात्मक। प्राकृतिक सौन्दर्य में कवि को परोक्ष सत्ता के अस्तित्व की झाँकी मिलती है। कानन-कुसुम कवि के उत्तरोत्तर मानसिक विकास के सोपान

के रूप में लिया जा सकता है। यहाँ आते-आते कवि एक अतृप्त जिज्ञासु का अपना रूप खो देता है, वह सचराचर में विराट सत्ता का संकेत करता है। प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त प्रसादजी ने प्रभात मर्म कथा हृदय वेदना सौन्दर्य विरह, रमणी हृदय आदि को नवीन वर्ण्य विषय बनाया है। इसमें कवि की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि तथा मानसिक स्थिति का परिचय मिलता है जो आगे चलकर 'आँसू' और 'कामायनी' में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। 'करुणालय' में कवि ने एक आदर्श की स्थापना की है। पौराणिक घटना की पृष्ठ-भूमि पर करुणा का प्रतिपादन ही कवि का अभीष्ट है। प्रेम मदिरा से उन्मत्त होकर पवन का मधुर गति से चलना जल की लहरों का नाव को झुलाना आदि चित्रणों से स्पष्ट पता चलता है कि कवि की दृष्टि मानव और प्रकृति के सामंजस्य पर लगी हुई है। मानव और प्रकृति के इस घनिष्ठ सम्बन्ध की सूचना कवि स्कन्दगुप्त में देवसेना के द्वारा देता है। देवसेना कहती है 'प्रत्येक परमाणु के मिलन में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। पक्षियों को देखो उनकी चहचह, कलकल, छलछल में काकली में रागिनी है। इस प्रकार पर्ये वृक्ष को यह प्रेम-तरु बना देती है।'[1] 'महाराणा का महत्व' एक ऐतिहासिक काव्य है। अतुकान्त छन्दों में कवि ने महाराणा प्रताप के माध्यम से अपना राष्ट्रप्रेम प्रदर्शित किया है। प्राकृतिक चित्रण में कवि ने परम्परा का ही निर्वाह किया है। इनके आख्यानक काव्यों में कवि के संघर्षशील व्यक्तित्व की झलक मिलती है। सन् १९१८ में 'झरना' का प्रथम संस्करण सामने आया। यह प्रथम महायुद्ध और असहयोग आन्दोलन की असफलता का युग था। युग का प्रभाव इस पुस्तक पर भी पड़ा। फलतः विषाद तथा निराशा की एक क्षीण धारा सम्पूर्ण 'झरना' में प्रवाहित होती है। यह विषाद प्रेम के क्षेत्र में विरह के रूप में तथा जीवन के क्षेत्र में निराशा के रूप में परिणत हो जाता है। झरना तक पहुँचते-पहुँचते कवि के स्वर में वेदना का संगीत सुनाई देने लगता है। झरना का कवि यौवन की देहली पर खड़ा-खड़ा जीवन के उत्थान-पतन को देखता है। यहीं से कवि आत्मरति में निमग्न होता है। वह अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पर अधिक बल देता है। बाह्य संसार पर कम। 'झरना' में कवि प्रणय-व्यापारों से प्रादुर्भूत आशा-निराशा, आँसू और विषाद के गीत गाता है। करुणा की यही धारा 'आँसू' में अपने पूर्ण वेग से प्रवाहित हुई है। अब हमें उन परिस्थितियों और बाह्य उपकरणों पर भी विहंगम दृष्टि डाल लेनी चाहिए जिन्होंने कवि के हृदय को मथकर उसमें से करुणा और वेदना को निकाला। प्रसादजी के आत्म-परिचय से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि की प्रेयसी "आलिंगन में आते आते मुसका कर भाग गई" और अपने पीछे अपनी करुण स्मृति छोड़ गई, जिसे कवि कंगाल की निधि की भाँति सर्वदा छाती से लगाये रहा। १२ वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु, १५ वर्ष की अवस्था में माता की मृत्यु और लगभग १७ वर्ष की उम्र में बड़े भाई की मृत्यु ने इन्हें पारिवारिक जीवन में एकाकी बना दिया। कोमल किशोर वय में सारे परिवार का दायित्व सिर पर पड़ने से कवि की आँखों में यदि आँसू छलछला आए तो कोई आश्चर्य नहीं। बौद्ध दर्शन के अध्ययन ने भी कवि को करुणा का अक्षय भंडार दिया।

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० २१

अकेले 'आँसू' में छायावादी कविता के प्रमुख तत्वों का समावेश हो गया है। इसमें मानवीय धरातल पर विरह-निवेदन किया गया है। एक आलोचक का कथन है कि 'आँसू' में प्रेम चर्चा के शारीरिक व्यापारों और चेष्टाओं (मधु, स्वेद चुम्बन परिरम्भण लज्जा की खींची हुई लाली इत्यादि), रंगरेलियों और अठखेलियों वेदना की कसक और टीस इत्यादि की ओर कवि की दृष्टि विशेष जमी है। इसी मधुमयी प्रवृत्ति के अनुरूप उनकी प्रकृति के अनन्त क्षेत्र भी वल्लरियों के दान, कलिकाओं की मन्द मुसकान सुमनों के मधु-पात्रों पर मँडराते अलियों के गुंजार सौरभ हर समीर की लपक-झपक पराग-मकरन्द की लूट, ऊषा के कपोलों पर लज्जा की लाली आकाश और पृथ्वी के अनुरागमय परिरम्भ रजनी के आँसू से भीगे अम्बर, चन्द्रमुख पर सरकते अवगुंठन मधुमास की मधु-वर्षा और झूमती मादकता पर अधिक दृष्टि जाती थी। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में "कवि नि संकोच भाव से इसमें विलास जीवन का वैभव दिखाता फिर उसके अभाव में आँसू बहाता और अन्त में जीवन से समझौता करता है। विलास में जो मद जो विराट आकर्षण है उसे कवि उतने ही विराट रूपकों और उपमानों से प्रकट करता है। अत इस पर रहस्यवादिता का आरोप करना उसकी पीड़ा का उपहास करना है। कवि की दृष्टि में प्रिय की महानता और कमनीयता इतनी अधिक है कि स्थूल आँखों को सहज दृष्टि बोध से बचना कठिन हो जाता है और तब आँसू की अति मानवीय भावनाओं के सुकुमार कलेवर पर रहस्यवादिता का भारी-भरकम बोझ लाद दिया जाता है। प्रसाद की व्यथा मानवीय है और प्रसाद का प्रेम भी। रूप-वर्णन से जो स्वरूप कवि उपस्थित करता है वह आँखों का जाना-पहचाना है। नख-शिख वर्णन में यद्यपि कवि ने पिछली परम्परा की ओर दृष्टि कर देखा है पर काव्य के पारखी जानते हैं कि उसमें पुरातनपन कुछ भी नहीं। अन्त में कवि का दृष्टिकोण 'शिव' की साधना हो जाता है। वह आत्मकल्याण से उठकर विश्वकल्याण की बात सोचने लगता है। यहाँ न तो वह समझौता करता है और न ऐसी मन स्थिति में समझौते की बात ही सोची जा सकती है, वह तो अपनी वेदना विश्व-वेदना म मिला देने के पश्चात् पूरी ही समाप्त कर देता है जिसे रखकर समझौते की बात उठाई जा सकती है। अत आँसू में हम या तो प्रेमी प्रेमिका के मिलन-सुख के चित्र पाते हैं अथवा हमें स्मृति वियोग आह, कराह टीस वेदना मोह ग्लानि धृति पीड़ा तथा अभाव के भावपूर्ण चित्र मिलते हैं। इन चित्रों का शृंगार या तो प्राकृतिक उपकरणों से किया है अथवा रूपक उपमा तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों के माध्यम से किया है। आँसू' के चित्र-निर्माण की क्रिया म प्रतीकों का भी प्रमुख हाथ है। 'आँसू के प्रतीकों से वस्तु का यथातथ्य चित्र खींचने में बड़ी सहायता मिलती है। इन प्रतीकों में रूप गुण प्रभाव सभी का समन्वय हो जाता है। इन प्रतीकों से केवल बाह्य स्थूल चित्रण में ही सहायता नहीं मिलती बल्कि वे अन्तर में छिपे हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का भी चित्र देने में सफल हुए हैं। इसी प्रतीक विधान के अन्तर्गत 'आँसू' का समस्त प्रकृति-चित्रण समा गया है।

'लहर' के कवि में न तो पीड़ा की उतनी उमड़-घुमड़ है और न प्राप्ति की उस सीमा तक आकुल आकांक्षा ही। वेदना हड्डियों तक उतर चुकी है अत 'आँसू' के उत्पात उसमें आत्मा के संगीत के रूप में गूंज उठे हैं। इसमें कवि आत्मचिंतक भी हो उठा है और विद्रोही

भी। अशोक की चिन्ता, शेरसिंह का आत्मसमर्पण, प्रलय की छाया, करुणा की कछार आदि कतिपय कविताओं में विद्रोह का स्वर प्रमुख है। अन्य कविताओं में संगीत कल्पना के सम्मिश्रण के साथ मानसलोक की मधुर अभिव्यक्ति भी है। 'बीती विभावरी जाग री' चित्रमयता और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी की कतिपय गिनी हुई रचनाओं में से है। 'लहर' में प्रमुखतः प्रेम, मानवीय सौन्दर्य तथा प्राकृतिक उपादानों पर आधारित चित्र मिलते हैं।

प्रसादजी की अन्तिम कृति 'कामायनी' है जो छायावाद-युग की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जा सकती है। 'कामायनी' का भाव तथा कल्पनापक्ष कवि की अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है। 'कामायनी' का प्रत्येक सर्ग मानव की वृत्तियों पर आधारित है। चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा, ईर्ष्या, स्वप्न इत्यादि विभिन्न चित्तवृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियों का बहुत ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। इस भाव-निरूपण में मूर्तिमत्ता का समावेश भाव को साकार करके उसके प्रभाव को द्विगुणित कर देता है। इस प्रकार कवि ने मनु और श्रद्धा के सहारे मनुष्य के क्रियात्मक, भावात्मक तथा बौद्धिक विकास का काव्यात्मक निरूपण किया है। भाव तथा कला का ऐसा आह्लादकारी समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। शृंगार के दोनों पक्ष संयोग, वियोग, करुण, वात्सल्य तथा शांत रस के अनेक भावपूर्ण चित्र 'कामायनी' में भरे पड़े हैं। स्वतन्त्र रूप से प्रकृति-चित्रण का 'कामायनी' में अभाव है। यहाँ प्रकृति और मानव में इतनी अभिन्नता स्थापित हो गई है कि दो होकर भी एक-से लगते हैं। प्रकृति तथा मानवीय कार्य-व्यापारों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण चित्र में प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है। प्रसादजी ने प्रकृति में चेतनता का आरोप करके उसे रसवती बनाने का सर्वत्र प्रयत्न किया है। 'कामायनी' में अनुकूल वातावरण के निर्माण के निमित्त भी प्रकृति का प्रयोग हुआ है। अतः मनु, श्रद्धा अथवा इड़ा के बदलते हुए मनोभावों के अनुसार प्रकृति भी अपना रूप बदलती जाती है। भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ प्रकृति का उपयोग अलंकारों के रूप में भी हुआ है। प्रकृति के प्रतीक, रूपक, उपमा आदि भावपूर्ण चित्र निर्माण करने में बहुत सहायक हुए हैं। एक शब्द में—प्रकृति ने 'कामायनी' को कलात्मकता तथा भावप्रवणता दी और कवि ने उसे सजीवता और रूप दिया।

प्रसादजी सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर अवतरित हुए थे। इसीलिए कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास सबमें उनकी भावुकता मुखर हो उठी है। इसलिए भावात्मक रूप-विधान इनकी सामाजिक कहानियों में भी उभर आया है और ऐतिहासिक नाटकों में भी।

उपर्युक्त निष्कर्ष से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रसादजी की रचनाओं में सांस्कृतिक, प्राकृतिक तथा भावात्मक रूप-विधान अपेक्षाकृत अधिक है। ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामयिक आदि रूप-विधान संख्या में बहुत कम हैं। जिसका स्पष्टीकरण इनकी कविताओं के व्यावहारिक पक्ष को देखने से हो जाता है।

व्यावहारिक पक्ष

सांस्कृतिक रूप-विधान :

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही—

तारा घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस गागरी। —लहर, पृ० ११

उपर्युक्त पंक्तियों म प्रातःकालीन पृष्ठभूमि पर सांस्कृतिक रूप विधान की सृष्टि की गयी है। हमारे यहाँ प्रातःकाल लगभग ब्राह्ममुहूर्त की वेला में स्त्रियाँ पनघट पर एकत्रित होती हैं और अपने अपने कलश द्वारा कुएँ से पानी खींचती हैं। वही चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है। तारा को घट अम्बर को पनघट तथा ऊषा को नारी-रूप में ग्रहण करके रूपक की योजना द्वारा कवि कल्पना करता है कि ऊषा-नागरी तारा रूपी घट अम्बर-पनघट में डुबो रही है। व्यंजना है ऊषा के उदय से तारे आकाश में लुप्त हो जाते हैं। चौथी पंक्ति में किसलय को अंचल मान लिया है जो वायु के प्रवाह में हिल रहा है। अंतिम दो पंक्तियों में लतिका नारी रूप में नवल रस गागरी भरकर ले आती हुई प्रतीत हो रही है। प्रातःकाल का यह सजीव चित्रांकन छायावाद-युग में अद्वितीय है। रूप-साम्य और व्यापार साम्य पर आधारित यह सांस्कृतिक चित्र अपने में काफी सुन्दर है। कलात्मक निखार के साथ-साथ अनुभूति का गुंफन चित्र की मार्मिकता को बहुत बढ़ा देता है।

कोमल कुसुमों की मधुर रात!
वह लाज भरी कलियाँ अनन्त,
परिमल घूँघट ढँक रहा दन्त
कँप-कँप चुप-चुप कर रही बात —लहर, पृ० २४

उपर्युक्त पंक्तियों में लाज भरी कलियों को परिमल के घूँघट से आवृत करके भारतीय संस्कृति म पली नारी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। लाज और घूँघट भारतीय नारी के दो विभिन्न आभूषण हैं।

शशि-मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।

—आँसू पृ० १५

इन पंक्तियों में एक पतिव्रता श्रद्धालु नारी का मार्मिक चित्र खींचा गया है। मेरे जीवन के अन्तिम क्षण में तुम अपने चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख पर घूँघट डाल और अंचल में संजोया हुआ दीप छिपाकर मेरी देहली पर आईं। तुम्हारे इस अप्रत्याशित आगमन से मेरे मन मे कुतूहल हुआ और इसलिए भी कुतूहल हुआ कि तुमने अपने रूप पर आवरण डाल रखा था। मैं उसे देखने को उत्सुक था किन्तु पर्दे की समर्पता बाधक बन रही थी। [इन पंक्तियों में 'सूफीवाद' देखने का कष्ट भी कुछ सज्जन करते हैं सूफी कहते हैं कि परमात्मा के रूप की व्याप्ति इतनी प्रखर होती है कि उसे भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। अतः जब वे किसी साधक पर कृपा करते हैं तो अपने मुख पर आवरण डाल कर ही उस

झलक दिखाते हैं] किंतु यह शुद्ध लौकिक शृंगार है, इस पर आध्यात्मवाद या सूफीवाद का आवरण चढ़ाना व्यर्थ है। इसकी अंतिम पंक्ति में 'तुम आए' से पुरुष का बोध हमें स्पष्ट है। पर यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि प्रसाद की रचनाओं में लिंगविपर्यय बहुत मिलता है। वे उर्दू शायरों की तरह ही 'प्रिय'—माशूक का लिंगातीत मानते हैं। इससे लाभ यह होता है कि आलम्बन की सीमा 'अपरिमित' को भी छूने लगती है और व्यापक भाव व्यंजित होने लगता है।[1] इस चित्र में घूँघट और दीपक सांस्कृतिक उपकरण हैं और इन्हीं दोनों से चित्र का निर्माण भी होता है।

(क) घूँघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती-सी आती,
विजन गगन में किसी भूल-सी
किसको स्मृति पथ में लाती ?

—कामायनी पृ० १९

(ख) पगली हाँ संभाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल। —कामायनी पृ० ४०

उद्धरण (क) में रजनी नारी-रूप में सामने आती है। कवि का कथन है कि हे रात ! यह कौन है जिसे देख तुम चाँदनी के घूँघट को उठाती मुस्काती रुक-रुक कर चल रही हो ? तुम्हारे ठिठकने से ऐसा प्रतीत होता है कि तुम इस सुनसान आकाश में भ्रमण करती हुई किसी विस्मृत बात को फिर स्मृतिपथ पर लाने के समान अपने किसी बिछुड़े हुए विस्मृत प्रेमी को याद करने का प्रयत्न कर रही हो। चूँकि उसकी कोई स्पष्ट रूपरेखा तुम्हारे मस्तिष्क में नहीं है, अतः रुक-रुक कर पहचानती हुई-सी आगे बढ़ रही हो। नारी के इन कार्य-व्यापारों से एक सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्र की सृष्टि हो गयी है। घूँघट सांस्कृतिक उपकरण है। नारी का मुस्काना तथा ठिठकना उसके विभिन्न अनुभाव हैं जिससे चित्र की सजीवता बढ़ गयी है।

उद्धरण (ख) में भी रात का ही मानवीकरण किया गया है। रात-रानी का अंचल अनन्त आकाश है जिससे तारा रूपी मणियाँ गिर-गिर कर बिखर गयी हैं। कवि ऐसी अल्हड़ नायिका का सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि अपना आँचल तो सँभाल ले। प्राकृतिक धरातल पर नारी का चित्र कलात्मकता की चरम सीमा पर पहुँच गया है।

उपर्युक्त छन्द में साम्यमूलक गौणी लक्षणा का प्रयोग हुआ है। यहाँ पगली शब्द रात के लिए अंचल आकाश के लिए और मणिराजी तारागणों के लिए प्रयुक्त हुआ है। यहाँ अप्रस्तुतों द्वारा ही प्रस्तुत की व्यंजना की गयी है।

जब कामना सिन्धु तट आई
ले सन्ध्या का तारा दीप,

---

१. डॉ० विनयमोहन शर्मा: कवि प्रसाद 'आँसू' तथा अन्य कृतियाँ पृ० ११८-११९

फाड़ सुनहली साड़ी उसकी
तू हँसती क्यों अरी प्रतीप ?
इस अनन्त काले शासन का
वह जब उच्छृंखल इतिहास
आँसू औ तम घोल लिख रही
तू सहसा करती मृदु हास।

—कामायनी पृ० १८

प्रस्तुत पंक्तियों में बँधा रूप कलात्मकता के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। इसके भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही सबल्तम रूप में प्रकट हुए हैं। जीवन के किसी विशेष क्षण का भावात्मक चरमोत्कर्ष और उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म सौन्दर्यांकन अपनी कलात्मक परिणति के निमित्त एक दूसरे के कैसे पूरक होते हैं—इस बात का यह प्रमाण है।

रूप-विधान की आवश्यकता किसी सूक्ष्म कथ्य को स्पष्ट करने और उसे मूर्त करने के निमित्त पड़ती है। साथ ही यदि सम्भव हो सके तो कोई चमत्कार उत्पन्न कर भावक-वर्ग की सौन्दर्य-वृत्ति को कलात्मक परितोष दिलाना भी उसका अभीष्ट होता है। यहाँ प्रतिपाद्य (कथ्य) बहुत साधारण है पर प्रतिपाद्य जितना ही साधारण है कलात्मक उत्कर्ष और भावोन्मेष की दृष्टि से उसका प्रतिपादन उतना ही असाधारण और निराला है। हिमालय के हरे भरे प्रदेश की चाँदनी रात में एकाकी और काम-पीड़ित मनु के अन्तर की बेचैनी का प्रकाशन ही कवि का अभीष्ट है। मात्र इसी की अभिव्यक्ति के लिए उसने रूपक बाँधने का प्रयास किया है। अभीष्ट रूप-विधान के निमित्त उसने पहले तो मनु की कामना और उसके साथ उच्छृंखलता से व्यवहार करने वाली रजनी का मानवीकरण किया है। फिर, रूपक, प्रतीक और नव-निर्माण-स्वरूप शब्दों के आधार स्वरूप प्रकृति से सिन्धु-तट तारा-दीप और सन्ध्या का आलोक आदि और मानवी-जगत् के वृत्त से कामना सुनहली साड़ी आँसू और तम आदि उपकरणों को चुना है। इनके आधार पर जिस रूप का विधान होता है वह इस प्रकार है—कोई धर्म-प्राण स्त्री यदि दीप जला कर लहरों पर तैराने के जाये और ऐसे समय यदि कोई दूसरी स्त्री उसकी सुनहली (सुहागमयी) साड़ी (सन्ध्या का प्रकाश) फाड़ दे तो यह कार्य अन्यायपूर्ण शासन का ही उच्छृंखल व्यापार कहा जायेगा। रात्रि ने मनु के हृदय की कामना को (जिसे कवि ने तारा दीप लिये जल पर दीपक तैराने वाली सुहागिन का रूप दिया है) उसी प्रकार क्षत-विक्षत कर दिया है क्योंकि वे एकाकी और अतृप्त हैं। मनु की यह कामना मानो रात्रि के इस निष्ठुर या उच्छृंखल अन्धेर का इतिहास मनु के आँसू व अन्धेरे (मन की निराशा) से तैयार की हुई स्याही (निर्ममता की अतिशयता का सूचक) से लिख रही है किन्तु प्रतीप (उल्टी मतिवाली—धार्मिक कृत्य करने वाले पर अत्याचार करनेवाली) रात्रि चाँदनी के बहाने कामना के इस इतिहास-लेखन पर कुटिल हँसी हँस कर मानो कह रही है कि अरी! जा तू मेरा कर ही क्या लेगी? रात्रि में मनु की अतृप्त कामना को पूरे वेग व स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने इतनी सफलता के साथ कामना व रजनी का मानवीकरण किया है। यह तो हुआ प्रस्तुत रूप-विधान का विश्लेषण अब जरा इसे वस्तु-पक्ष और कला-पक्ष की दृष्टि से भी परख लेना समीचीन होगा।

वस्तु-रूप में धर्मप्राणा नारी के रूप में कामना आती है। उसके तन पर सुहाग के प्रतीक स्वरूप सुनहली साड़ी है और हाथ में तारा-दीप। स्पष्ट है, ये सभी उपकरण सांस्कृतिक हैं। हमारे भारतीय संस्कृति के आदि पुरुष मनु से सम्बन्धित हैं। मनु और उनकी कामना—ये ही इस रूप-विधान की मूल भावना है। और इन्हीं की प्रतिष्ठा के लिए प्रकृति से कुछ और उपकरण ले लिये गये हैं। रजनी को भी लाया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रजनी के आ जाने से कामना और मनु के अन्तर की वर्जनों को और स्पष्ट और मांसल रूप मिल गया है।

कला-पक्ष के विश्लेषण के लिए निर्माण प्रक्रिया पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रस्तुत रूप-विधान की निर्माण-प्रक्रिया में निम्नांकित तत्त्व सहायक हुए हैं।

(क) कामना और रजनी का मानवीकरण

(ख) रूपक=तारा-दीप

(ग) प्रतीक और नव-निर्माण स्वरूप शब्दों के प्रयोग जिसमें कामना=अरुण सन्ध्या, सिन्धु=आकाश, सुनहली साड़ी=सन्ध्या की सुनहली आभा, हँसती=चाँदनी का प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। यह तो इनका प्रकृति-पक्ष है। हृदय-पक्ष में—कामना इच्छा के लिए, सिन्धु—हृदय के लिए, सन्ध्या—निराश जीवन के लिए, तारा आशा के लिए, सुनहली साड़ी सुन्दर कल्पनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है।

उपर्युक्त पंक्तियों का प्रकृति-पक्ष में साधारण अर्थ यह है

जब अरुण सन्ध्यारानी तारा-दीप को आकाश के सिन्धु में प्रवाहित करने आती तब है रजनी यह तेरा कैसा विपरीत आचरण है कि तू उस सुनहली आभा को चीरकर चाँदनी के मिस हँसने लगती है। यह कैसा वैषम्य है ? हृदय-पक्ष में इसका भाव इस प्रकार है—सन्ध्या के सदृश मुरझाये जीवन में तारा के समान जब आशा जगती है उसी समय उसकी इस मधुर कल्पना को चीरती हुई निराशा रजनी हमारी हँसी उड़ाने लगती है।

सन्ध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलाती
मुरझा कर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती !
क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से
..
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती।

—कामायनी पृ० १७५

इसमें सन्ध्या के क्षितिजरूपी ललाट पर लालिमा का जो सुन्दर बिन्दु लगा हुआ था वह अन्धकार के हाथ से पोंछ दिया गया। यहाँ अन्धकार को पुरुष और सन्ध्या को नारी में चित्रित करके सन्ध्या के सौभाग्य-चिह्न को मस्तक से मिटाने की क्रिया से विधवा नारी का रूप सजीव हो उठा है। कुंकुम भारतीय नारी के सौभाग्य का प्रतीक है। प्राकृतिक उपादानों से चित्र बड़ा ही मार्मिक हो गया है।

मनु श्रद्धा का वास्तविक रूप पहचान बिना ही कामना के चक्कर में फँस गये। मनु में कामना के उदय होने पर श्रद्धा में लज्जा का आविर्भाव होता है। लज्जा श्रद्धा को संयम, त्याग और आत्म-समर्पण की उस समय शिक्षा देती है जब नारी यौवन-विकास में पड़ी

किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गयी है। देखिये

(१) क्या कहती हो ठहरो नारी संकल्प अश्रु जल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने से सपने।

× × ×

(२) नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

× × ×

(३) आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह सन्धिपत्र लिखना होगा।

—कामायनी पृ १०६

अंजली में जल भर कर मन्त्रोच्चारण की ध्वनि के बीच भारतीय संस्कृति में दान देने का विधान है। यहाँ नारी की अभिलाषाओं के उत्सर्ग की चर्चा है। अश्रुजल का तात्पर्य यह है कि पुरुष के कारण स्त्री का जीवन यद्यपि रोते रोते ही बीतता है, फिर भी स्वभाव की अनिवार्यता से विवश होकर वह पति के लिए त्याग की मूर्ति बनी रहती है।

गुप्तजी ने इसी भाव को स्पष्ट करते हुए यशोधरा में एक स्थल पर कहा है

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

दूसरे उद्धरण में नारी की श्रद्धा की ओर संकेत किया गया है। भारतीय संस्कृति में नारियाँ देवी पद पर आसीन होने के कारण श्रद्धा की पात्र समझी गयी हैं। नारी का दूसरा नाम ही श्रद्धा है। जैसे कैलाश पर्वत के चरणों की सम भूमि में मीठे पानी के सोते बहते हैं, उसी प्रकार भारतीय नारी पुरुष पर अगाध विश्वास करती हुई प्रेम की अमृतोपम धार से जीवन-पथ को सुन्दर और सुव्यवस्थित करती है। प्रसाद की इस नारी के सामने श्रद्धा से सिर झुक जाता है।

तीसरे उद्धरण में नारी के भीगे अंचल और उसके त्याग का निरूपण किया गया है। आँसू से भीगे अंचल में नारी की विवशता दैन्य परवशता आदि भावनाएं छिपी हैं। स्मित-रेखा उसकी सहिष्णुता ममता और त्याग का प्रतीक है। जैसे हारा हुआ राजा अपना सब कुछ विजेता को समर्पित कर देता है भीतर ही भीतर उसका मन रोता रहता है, पर ऊपर से हँसते-हँसते सन्धि-पत्र पर विवश होकर हस्ताक्षर कर देता है। उसी प्रकार नारी जब एक बार किसी पुरुष के सम्मुख झुक जाती है, उस समय वह अपना सब कुछ उसे समर्पित कर देती है। वहाँ द्वैत की भावना ही मिट जाती है। नारी को इस परवशता में कितने ही कष्ट क्यों न झेलने पड़ें उसका अंचल आँसुओं से भीगा ही क्यों न रहे पर आत्मोत्सर्ग की प्रतिज्ञा अधरों पर मुसकान की रेखा लाकर ही करनी पड़ती है। भारतीय संस्कृति में पली हुई नारी का यह रूप बहुत दिनों से ऐसा ही चला आ रहा है। एक बार पत्नी बन जाने पर असंख्य विपदाओं को झेलती हुई वह पति की इच्छा पर अपना सर्वस्व बलिदान कर देती है। पति की तुलना में स्वर्ग को भी वह तुच्छ समझती है।

उपर्युक्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि प्रसादजी के सांस्कृतिक

रूप-विधान, अंचल साड़ी, घूँघट, कुंकुम दीपक आदि उपकरणों पर विशेष रूप से आधारित है।

मानवीय रूप चित्रण

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अध-खुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

—कामायनी पृ० ४६

इस छंद में श्रद्धा के अलौकिक रूप को रूप की सीमा में बाँधने का प्रयत्न किया गया है। नील परिधान में श्रद्धा का अधखुला अंग ऐसा प्रतीत होता है जैसे घन के बीच गुलाबी रंग का खिला हुआ बिजली का फूल हो। काले मेघ में बिजली कौंध उठती है, इसी आधार पर कवि ने नील परिधान के बीच अध-खुले अंग का साम्य प्रस्तुत किया है। यद्यपि लक्षणा के अनुसार इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है किन्तु यहाँ उपमा अधिक उपयुक्त मालूम होती है। बिजली के फूल का एक तो अस्तित्व नहीं होता दूसरे बिजली क्षणिक है। फूल स्थायी है। श्रद्धा का अंग बिजली-सा कांतिमान है। यहाँ का साम्य कल्पना-मूलक है, सम्भावनापरक है, साम्यपरक नहीं। नील रोमों वाले चर्म-वस्त्रों के लिए मेघ और ग्रीवा के नीचे या नाभि के आसपास के अंग के लिए बिजली का फूल आया है। श्रद्धा ने वक्ष और कटि प्रदेश को ही केवल ढका होगा। अतः उसके शेष अंगों की सुघड़ता को दीप्त करने के लिए प्रसादजी को बिजली के फूल की कल्पना करनी पड़ी। बिजली का फूल वैसे ही चमत्कारिक और भावपूर्ण उपमान है, जैसे कहा जाय उसकी बातें पन्ने के रस जैसी मीठी हैं।

प्रसाद की श्रद्धा तो कुसुम-वैभव में लता के समान दिखाई पड़ती है और उसके शरीर पर सुशोभित नील चर्म ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे चाँदनी से घनश्याम लिपटा हो।

कुसुम वैभव में लता समान
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम। —कामायनी पृ० ४६

और उसका मुख कैसा था—प्रसादजी की कारीगरी देखिये

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रवि मण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छवि धाम।
या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग फोड़कर धधक रही हो कान्त,
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत।

—कामायनी पृ० ४६, ४७

उपर्युक्त पंक्तियों में सन्ध्या के मुख का सौन्दर्यांकन करने के लिए प्राकृतिक उपादानों को चुना गया है। सन्ध्या समय पश्चिम के आकाश में घिरे घने काले बादलों को चीरता हुआ अरुणिम सूर्य जैसे झाँकता है वैसा ही उसका मुख है। श्रद्धा के गोरे मुख के लिए तरुण सूर्य तथा बालों के लिए घनश्याम का प्रयोग हुआ है। अंतिम दो पंक्तियों का विवेचन 'मानवती' ने इस प्रकार किया है। श्रद्धा की अवस्था थोड़ी है, इसीलिए उसे छोटा-सा पर्वत कहा। नील परिधान से उसका शरीर ढका है इसी से उस पर्वत को नीलम बताया। चोटी शब्द का प्रयोग उसके कंधे से ऊपर के भाग के लिए किया। श्रद्धा का यौवन काल

है। इसी से उस पर्वत को वसन्त की रात में धधकते देखा। ज्वालामुखी की कोत लपटों को उसके मुख की आभा बताया। पर श्रद्धा ने कभी कहीं प्रेम नहीं किया है यही कारण है कि उसके अंतर के ज्वालामुखी [उद्दाम भावनाओं] को अचेत या सुप्त दिखलाया है। नव निर्माण शब्दों के प्रयोग से श्रद्धा का रूप अपनी सम्पूर्ण आभा से चमक उठा है। यह बिम्ब रूप-साम्य पर आधारित है।

(क) घन में सुन्दर बिजली-सी, बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक-सी

—आँसू, पृ० १५

(ख) प्रतिमा में सजीवता सी बस गयी सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखों में।

—आँसू, पृ० १६

इन दोनों उद्धरणों में नारी की छवि का नहीं छवि के प्रभाव का बिम्ब खींचा गया है। पूरा बिम्ब प्रभाव-साम्य पर आधारित है। जिस प्रकार घन में कौंधती हुई सुन्दर बिजली बिजली में समायी हुई चमक, आँखों में काली पुतली पुतली में श्याम की झलक और मूर्ति में सजीवता सुन्दर लगती है उसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य है। विश्व का सारा सौन्दर्य मेरे मन को आन्दोलित न कर सका किन्तु तुम्हारी सुछवि हृदय पर अपनी छाप छोड़ गयी जो सबसे निराली है।

आँसू में प्रसादजी रीतिकालीन प्रणाली के अनुसार नखशिख वर्णन भी करते हैं किन्तु उपमानों के अभिनवीकरण से उस परम्परा में होते हुए भी उनके प्रयोग सर्वथा नवीन और आकर्षक प्रतीत होते हैं। देखिये

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?

—आँसू, पृ० १७

नायिका चन्द्रवदनी है उसके काले-काले केशों में बनी माँग में मोती भरे हैं, उसी का बिम्ब प्रस्तुत करते हुए कवि कल्पना करता है कि किसने चन्द्रमा रूपी मुख को काली-काली बालों रूपी जंजीरों से बाँध दिया है। नायिका की माँग में मोती देखकर कवि पुन कल्पना करता है कि सर्प (बाल) के मुख (फन) में तो मणि रहती है, परन्तु इन सर्पों के मुख में मोती क्यों भरे हैं ? चन्द्रमा मुख का और सर्प बालों का उपमान साहित्य में बहुत रूढ़ होकर अपना मौलिक सौन्दर्य नष्ट कर चुका है। किन्तु प्रसादजी ने उनका कलात्मक रूप में प्रयोग करके उन्हें काफी सजीव बना दिया है।

कामायनी में बालों का बिम्ब देखिये :

घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलम्बित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।

—कामायनी पृ० ४०

यहाँ घुँघराले श्याम बालों के लिए नील घन-शावक मुख के लिए विधु और मुख की मधुरता के लिए सुधा शब्द का प्रयोग हुआ है। कंधों तक लटकने वाले उसके घुँघराले बाल

श्रद्धा के मुख तक छा गये थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो काले सुकुमार मेघ खंड चन्द्रमा के पास अमृत-पान करने के लिए आये हों। पं० रामदहिन मिश्र का मत है कि 'कामायनी' में श्रद्धा हृदय का प्रतीक है। उसमें लज्जा, दया, अनुराग, क्षमा आदि कोमल और सुकुमार भावनाएँ भी प्रबल हैं। अतः इसी भावना के अनुरूप उसके बाल बाल-सावक से सुकुमार हैं और चन्द्रमा से अमृत पाने के लोभ से घिर रहे हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार के सहयोग से बालों की तथा मुख की छवि सजीव हो उठी है।

विभिन्न अंगों की छवि देखिये

कजली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली
मानिक-मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली।

—आँसू, पृ० १७

उपर्युक्त उद्धरण में रतनारी आँखों का चित्र खिंचा गया है। आँखों में यौवन की मादकता से जो लालिमा छा गई है, उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो नीलम की प्याली (आँख) में मानिक (लाल रंग) की मदिरा भरी है। नीलम प्याली कहने पर कजरारी और मानिक मदिरा से भरी कहने पर रतनारी आँखों का चित्र सामने आ जाता है

तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली
काला-पानी वेला-सी है अंजन-रेखा काली।

—आँसू, पृ० १८

उपर्युक्त उद्धरण में कजरारी आँखों का प्रभाव-चित्र प्रस्तुत किया गया है। नायिका के कजरारे नयन कालेपानी के सदृश हैं जहाँ एक बार जाने पर पुनः वापस नहीं आना होता।

प्रो० विनयमोहन शर्मा ने इसका विश्लेषण इस प्रकार किया है—प्रिय का रूप-दर्शन भी एक भारी अपराध है, जिसकी सजा कालेपानी से कम क्या हो सकती है? अतएव जिसने उसकी कजरारी आँखें देख लीं उसका अस्ली छुटकारा सम्भव नहीं—वह उन्हीं में बँध जाता है। रूप को अतृप्ति-जलधि उचित ही कहा गया है। जिस प्रकार समुद्र का पानी खारा होने के कारण उससे किसी की प्यास नहीं बुझती उसी प्रकार प्रिय के रूप को बारम्बार आँखों से पीकर भी उनकी प्यास नहीं बुझती। वे अतृप्त रह जाती हैं। नीलम की नाव निराली—प्रेमी दर्शक की आँखों के लिए व्यवहृत हुआ है।'[1]

अंकित कर क्षितिज-पटी को तूलिका बरौनी तेरी
कितने घायल हृदयों की बन जाती चतुर-चितेरी। —आँसू, पृ० १८

नायिका की बरौनी को चितेरी कह कर यहाँ पुकारा गया है। कजरारी आँखों के कटाक्ष से घायल होने वाले हृदयों का पुतली के पट पर वह चित्र खींचा करती है। इस चित्र में कवि की सूक्ष्म कल्पना का परिचय है।

विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे?
है हंस न, शुक यह फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे? —आँसू, पृ० १८

---

१. प्रो० विनयमोहन शर्मा कवि प्रसाद आँसू तथा अन्य कृतियाँ पृ० १४२

उपर्युक्त उद्धरण में ओठों का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। मूंगे के समान लाल ओठों की सीपी में ये मोती के समान दांत क्यों हैं? मोती तो हंस चुगते हैं, पर यहाँ हंस नहीं है। ओठों के ऊपर तो शुक की चोंच अर्थात् नासिका है। फिर इसे चुगने के लिए मोती क्यों दिये गये हैं? ये परम्परित उपमान युग-युग से प्रयोग में आते-आते काफी घिस गये हैं।

मुख-कमल समीप सजे थे दो किसलय से पुरइन के
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब उन कानों में दुख किनके?

—आँसू, पृ० १९

इस उद्धरण में कानों का बिम्ब प्रस्तुत हुआ है। कानों के लिए पुरइन के दो पत्ते उपमान बन कर आये हैं। जैसे कमल के पत्ते पर जल बिन्दु नहीं ठहरते। वैसे इन कानों में दुख का स्वर नहीं ठहरता। गुण-साम्य पर आधारित यह उपमान बासी होने पर भी अपनी उपयोगिता और प्रयोग में नवीन है।

थी किस अनंग के धनु की वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या तनु छवि-सर की नव लहरी?

इस उद्धरण में दोनों बाहुओं का रूपानुभव कराया गया है। उन्हें कामदेव के धनुष की शिथिल प्रत्यंचा कहा अथवा शरीर के रूप सरोवर में उठने वाली नई लहर कहा है। सन्देहालंकार के माध्यम से बाहुओं की सुघड़ता निखर उठी है।

चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी।

—आँसू पृ० २०

उपर्युक्त उद्धरण में नायिका के सम्पूर्ण अंग की शोभा का समन्वय करके उसके सम्मिलित प्रभाव का बिम्बांकन किया गया है। उस रमणी की शोभा बिजली से युक्त पूर्णमासी की रात की शोभा के सदृश है। वह मूर्ति इतनी कमनीय है कि यदि बिजली (जिसका रंग गोरा और उज्ज्वल होता है) पूनो की चाँदनी में स्नान कर आये उसके बाद उसमें निखार आयेगा उसी से मिलती-जुलती नायिका की छवि है। प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका का कोई स्वरूप सामने नहीं आता। उसके रूप का प्रभाव ही हृदय और मस्तिष्क को हिलाने के लिए पर्याप्त है। इस बिम्ब में सम्भावना अधिक और अस्तित्व की मात्रा कम है।

गुण-साम्य पर आधारित दो-एक बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए

जगत की विश्राम राका बालिका सी कान्त
विजयिनी-सी दीखती तुम माधुरी सी शान्त।
पददलित-सी थकी व्रज्या ज्यों सदा आक्रान्त,
शस्य श्यामल भूमि में होती समाप्त अशांत।

—कामायनी, पृ० ९३

इसमें श्रद्धा को पूनो के चन्द्र की कांतिमयी ज्योत्स्ना-बाला बताया है जो थके पथिक को विश्राम देती है। उद्धरण की अंतिम दो पंक्तियों में नारी की परवशता तथा उसकी दयनीय स्थिति का भान कराने के लिए उसे 'पददलित सी थकी व्रज्या' कहा गया है। उपमा बड़ी अनूठी है। जिस प्रकार पददलित थकी व्रज्या किसी शस्य श्यामल भूमि में आश्रय ढूंढ लेती

है उसी प्रकार युग-युग से पद-दलित नारी अन्त में किसी पुरुष के आश्रय में ही शरण पाती है।

गर्भवती नारी का सौंदर्य निम्नलिखित पंक्तियों में कितना सजीव हो उठा, देखिए

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नई लजीली थी
कम्पित लतिका-सी लिये देह!

× × ×

मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज,

× × ×

श्रम बिन्दु बना-सा झलक रहा
भावी जननी का सरस गर्व
बन कुसुम बिखरते थे भू पर
आया समीप था महा पर्व।

—कामायनी पृ० १४२ ४१

गर्भवती श्रद्धा का मुँह केतकी के कोष में स्थित मंजरी-सा पीला पड़ गया था। आँखों में आलस और स्नेह का भाव भरा था; चेहरा दुबला होने पर लतिका के समान कभी कभी यह काँप उठती थी किन्तु भावी सुख की आकांक्षा से लज्जा की लालिमा उसके मुख को कांतिमान बनाये हुए थी। निकट भविष्य में श्रद्धा माँ बनने जा रही थी अतएव दूध के बोझ से उसके भारी स्तन कुछ झुक गये थे। अंतिम पद में उसका थका हुआ किन्तु प्रफुल्लित रूप देखिए। उसके ललाट पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं। उसके लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है कि वे बूँदें मानो श्रद्धा के हृदय का अभिमान था अथवा पुष्प थे जो पृथ्वी पर गिर रहे थे। गर्भवती नारी का इतना सजीव और संयत चित्र आधुनिक हिन्दी-काव्य में दुर्लभ है।

पौराणिक रूप-विधान :

(१) क्यों व्यथित व्योम-गंगा-सी, छिटका कर दोनों छोरें
चेतना-तरंगिनी मेरी लेती है मृदुल हिलोरें!

—आँसू, पृ० ४

(२) बचपन की चल-सत दिव्य कुसुम-कुंतला
अप्सराएँ मानों वे सुगन्ध की पुतलियाँ
आ-आकर चूम रहीं अरुण अधर मेरा
जिसमें स्वयं ही मुसकान खिल पड़ती।

—लहर, पृ० ११

(३) चौंके सुन श्रद्धा ने देखा,
वह इड़ा मलिन छवि की रेखा,

अधिक बल दे रहे हैं। इसके कारण वर्गभेद की खाई चौड़ी होती जा रही है।[१] समाज की सामाजिकता नष्ट हो रही है। इस प्रकार प्रकारान्तर से प्रसादजी ने सम-सामयिक परिस्थितियों की ओर संकेत किया है। इस संकेत से चाहे किसी रूप की सृष्टि भले ही न हो किन्तु प्रभाव-साम्य और गुण साम्य पर आधारित होने पर ये बिम्ब पूर्ण सामयिक और युगीन प्रतीत होते हैं। इस चित्रण में भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की गतिविधि का आभास मिलता है। भौतिक दृष्टि से इड़ा (बुद्धि) के बल पर हम सुखी होने का ढोंग ही रच सकते हैं वास्तविक सुख तो श्रद्धा (हृदय) और बुद्धि के उचित सामंजस्य से ही प्राप्त हो सकता है। सारस्वत प्रदेश में इड़ा द्वारा स्थापित साम्यवाद श्रद्धा के अभाव में सामन्तवाद बन जाता है।

दैनंदिन रूप-विधान के अन्तर्गत हम निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं

शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल चल कर करती है काम अनिल का।

—आँसू, पृ० ९

इस पद्य में घर के चूल्हे का दृश्य उपस्थित किया गया है। हृदय की शीतल ज्वाला के लिए दृग-जल ईंधन का काम देता है और आती-जाती साँसें अनिल की भाँति उस ईंधन को सुलगाने तथा ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने में सहायता कर रही हैं। इस रूपक के सहारे कवि वियोगी की वेदना उसकी जलन तथा प्रिय के अभाव में आँखों से निरन्तर बरसने वाली अश्रुधारा का सजीव चित्र खींचकर यह व्यंजना करता है कि वियोगी फिर भी जी रहा है, किन्तु उसका जीवन घुल-घुलकर मरने के समान है।

प्राकृतिक रूप विधान

काव्य में प्रकृति दो रूपों में प्रयुक्त हुई है—प्रस्तुत रूप में तथा अप्रस्तुत रूप में। प्रस्तुत रूप में भी प्रकृति-वर्णन दो प्रकार से किया जाता है। एक में प्राकृतिक वस्तुओं का पृथक्-पृथक् उल्लेख मात्र कर दिया जाता है, जिसमें अभिधा पर ही अधिक बल दिया जाता है अतः इस शैली में अर्थ ही अभीष्ट होता है। दूसरे प्रकार के वर्णन में संश्लिष्ट योजना द्वारा किसी दृश्य या परिस्थिति का उपस्थित होता है। इस प्रकार प्रकृति का रूप कभी-कभी अलंकृत हो जाता है और कभी-कभी भावात्मक। प्रसाद में दोनों प्रकार के प्रकृति-चित्रण मिलते हैं।

प्रस्तुत या मुक्त रूप में प्रकृति-चित्रण

पूर्णिमा की रात्रि सुखमा स्वच्छ सरसाती रही।
इन्दु की किरणें सुधा की धार बरसाती रहीं।

—कानन कुसुम पृ० १७

इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति का यथातथ्य वर्णन मात्र कर दिया है। इसमें न तो भावों का उद्दीपन है न कल्पना का उभार। केवल परम्परागत परिपाटी का ही पालन किया

१ कामायनी स्वप्न सर्ग

गया है। 'कानन कुसुम' में इस प्रकार या इससे जीवित रूप में भी प्रकृति का चित्रण हुआ है। नव वसन्त, जलद-आवाहन रजनीगन्धा, सरोज मलिना जल-विहारिणी कोकिल एकांत में, निशीथ-नदी संध्या, चित्रकूट आदि शीर्षक कविताओं में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया गया है। वर्णन में यों तो परम्परा का ही पालन किया गया है किन्तु कहीं-कहीं थोड़ी सजीवता भी आ गयी है। जैसे

मधुर मलयानिल महक की मौज में मदमत्त है
लता-ललिका से लिपट कर ही महान प्रमत्त है।
× × ×
क्यारियों के कुसुम-कलियों को कभी बिखरा दिया
छद्म झोंके से कभी वो डाल को ही मिला दिया।[1]

इस भाँति शनैः-शनैः कवि परम्परा की लीक को तोड़ता हुआ आगे बढ़ कर प्रकृति से अभिन्नता स्थापित कर लेता है।

चित्रकूट शीर्षक कविता में प्रकृति का रंग कुछ-कुछ निखर आया है

उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राची में ऐसे
सुधा-कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे —कानन कुसुम पृ० ९५

इसमें कुमुदिनी-नाथ का गत्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कभी वह रत्नाकर से उठते हुए सुधा-कलश-सा प्रतीत होता है कभी मन में उठती हुई आशा के समान लगता है। यहाँ मूर्त की अमूर्त से तुलना करके चित्र की स्पष्टता तीव्र की गयी है। चित्रकूट भी चित्रस्थ होकर जैसे इस मनोरम दृश्य को देख रहा है। रूप-साम्य और गुण-साम्य पर आधारित यह चित्र प्रसादजी के प्रकृति प्रेम के उत्तरोत्तर विकास की सूचना देता है

सरसों के पीले कागज पर वसन्त की आज्ञा पाकर
गिरा दिये वृक्षों ने सारे पत्ते अपने मुसका कर
खड़े देखते राह नये कोमल किसलय की आशा में।
परिमल पूरित पवन-पुंज से, लगने की अभिलाषा में॥ —झरना पृ० १७

वसन्त ऋतु में सरसों के असंमित पुष्प खेतों में ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे पीला कागज फैला हो और उसी पीले कागज पर वसन्त ऋतु ने वृक्षों को यह आज्ञा लिखकर भेज दी कि अपने सारे पत्ते गिरा दो। व्यंजना यह है कि वसन्त ऋतु के शैशव में पतझड़ आता है, जब पेड़ के सब पत्ते पीले होकर झड़ जाते हैं। इस प्राकृतिक व्यापार की कल्पना कवि इस प्रकार करता है, मानो वे वृक्ष नये-नये किसलय की प्रतीक्षा में खड़े हैं। 'सरसों के पीले कागज' में कवि ने कलात्मक रूप-योजना की है।

नव कोमल आलोक बिखरता हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसे मधुमय पिंग पराग।

—कामायनी पृ० २४

यहाँ हिमराशि और सित सरोज में रूप-साम्य है। हिमराशि की अधिकता उपमेय

[1] कानन कुसुम, नव वसन्त पृ० १८

बोध के अन्तर्गत आयेगी इसी प्रकार स्वर्णिम प्रकाश के लिए पिंग पराग की योजना की गयी है। व्यापक प्रकाश के लिए पुष्प-रज की योजना में भी उपमेयगत अधिकता है। अनुराग के निमित्त मधु-मकरन्द का आयोजन किया गया है। अनुराग मधु जैसा मधुर और सरस है, उपमेय और उपमान दोनों के न्यूनाधिक्य को छोड़कर वे वर्ण कोमलता तथा रस तीनों में समान हैं। किन्तु दोनों के धर्म में असमानता है। प्रकाश में ही क्रीड़ा करने की क्षमता है किन्तु पराग में गतिशीलता नहीं स्थिरता है; अत उससे किसी प्रकार की क्रीड़ा की कल्पना हम नहीं कर सकते। हवा से पराग के उड़ने की क्रिया को खींचतान कर क्रीड़ा के अन्तर्गत बैठाया जा सकता है। वैसे प्रभात के कोमल रूप की छवि अपनी सजीवता में पूर्ण सक्षम है।

मानवीकरण

अन्य छायावादी कवियों की भाँति प्रसादजी ने प्रकृति के साथ इतना तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि वे प्रकृति के प्रत्येक स्पन्दन में मानव-हृदय की धड़कन सुनते हैं उसके क्रिया-कलापों तथा कार्य-व्यापारों में मानवीय अनुभूति और चेतनता पाते हैं। देखिये

(क) देखो मन्थर गति से मारुत मचल रहा है
हरी हरी उद्यान-लता में विचल रहा है
× × ×
(ख) देखो वह है कौन कुसुम कोमल डाली में
छिपे सम्पुटित बदन दिवाकर-किरणाली में
गौर अंग को हरे पल्लवों बीच छिपाती
लज्जावती मनोज्ञ लता का दृश्य दिखाती
× × ×
(ग) कुल-बाला-सी लजा रही थी जो बाहर में —कानन कुसुम पृ० १४

उद्धरण (क) में मारुत मंथर गति से पुरुष रूप में हरी-हरी उद्यान-लता में विचरण कर रहा है। उद्धरण (ख) में 'रजनी गन्धा' नारी रूप में अपने गोरे अंग को पल्लवों के बीच छिपाती है और उद्धरण (ग) में वह दिन में कुल-बाला-सी लाज से गड़ी जा रही है।

'झरना' में किरण विविध रूप धारण कर हमारे सामने आयी है।[1] प्रथम चार पंक्तियों में वह अनुराग-रंग से रँगी दिखाई पड़ती है, पाँचवीं पंक्ति में उसकी गति का चित्रांकन हुआ है वह प्रार्थना के सदृश झुकी हुई है। प्रार्थना करते समय मनुष्य झुक कर नम्र बन जाता है। अमूर्त प्रार्थना उपमान बन कर किरण को सजीव कर देती है। यह उपमान गुण-साम्य पर आधारित है। *छठी पंक्ति में उसे मधुर-मुरली-सा मौन बता कर उसकी गंभीरता* की ओर संकेत किया गया है। आठवीं पंक्ति में विश्व की वेदना-दूती के रूप में चित्रित हुई है। अंतिम चार पंक्तियों में फिर वह अमूर्त रूप से तोली गई है। कोमल गौर वर्ण के शिशु के मुख पर जिस प्रकार उसकी घुंघराली लटें बिखरी रहती हैं उसी प्रकार आकाश के

---

१. झरना पृ० १४

मुख पर तुम मुसकुरो और घूँघराली लट के समान बिखरी हो और अम्बर में उसे ऊषा नागरी के अंचल में नृत्य करता हुआ बता कर कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है। पूरा चित्र रूप-साम्य और गुण-साम्य पर अवलम्बित है।

पवन चल रहा था रुक रुक कर
खिन्न भरा अवसाद भरा। —कामायनी पृ० १६८

यहाँ मनु के मन से प्रकृति का तादात्म्य स्थापित हो गया है। जैसे मनु खिन्न और उदास थे उसी प्रकार पवन भी खिन्न-मना और उदास होकर धीरे-धीरे चल रहा था।

चाँदनी का मानवी रूप देखिये

तार हीरक हार पहन कर चन्द्रमुख
बिछलाती उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनारों से)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मंथर गति से उतर रही हो सौध से।

—महाराणा का महत्व पृ० १८ १९

आकाश-मार्ग से मंथर गति से उतरती हुई चाँदनी ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे कोई रूपवती प्रेमिका शाही महलों के ऊँचे मीनारों से नीचे उतर रही हो। चाँदनी के उत्तरोत्तर विकास में कवि मंथर गति का आभास पाता है। तारक-माल में हीरक-हार की कल्पना करता है।

ऊषा सुनहले तीर बरसती
जयलक्ष्मी-सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल में अन्तर्निहित हुई।

उपर्युक्त उद्धरण में ऊषा तीर जैसी सुनहली किरणें बरसाती हुई विजयलक्ष्मी के सदृश प्रकट हुई और उधर प्रलय का अन्धकार हार मान कर जल में विलुप्त हो गया। इस उद्धरण में युद्ध का एक चित्र समाया हुआ है। कालरात्रि और उत्साह में युद्ध हो रहा है। ऊषा ने किरणों के नुकीले तीर बरसा कर काल-रात्रि को परास्त कर दिया। यहाँ ऊषा रणचण्डी के रूप में चित्रित की गयी है।

(ख) नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार बार जाती सोने। —कामायनी पृ० २१

यह चित्र एक रमणी का है जो भलीभाँति जगने के पहले कभी अपनी सुकुमार पलकों को खोलती है और कभी उन्हें बन्द कर लेती है, फिर धीरे-धीरे खोलती है। उसी प्रकार प्रकृति की वस्तुएँ पहले धीरे-धीरे जगीं और फिर पूर्णरूपेण विकसित हो उठीं। प्रकृति पूर्णतः चैतन्य हो गयी। उधर जैसे कोई अँगड़ाई लेकर सो जाता है, उसी प्रकार समुद्र की चंचल लहरें धीरे-धीरे शांत और नीरव हो गयीं। इन पंक्तियों में एक कोमलांगी के

कलात्मक आचरण तथा अँगड़ाई लेकर फिर क्षण भर के लिए निद्रामग्न होने का मनोहर चित्र खींचा गया है। अँगड़ाई लेने में शरीर ऐंठ कर तिरछा हो जाता है, उसी से लहरों की अँगड़ाई का भावाव लहरों की चंचलता हुआ।

सिन्धु-सेज पर धरा-वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी

—कामायनी पृ० २४

उक्त उद्धरण में लक्षणा के माध्यम से एक नव विवाहिता कोमलांगी के मनोभावों और अनुभावों का चित्रण किया है जिसे रात भर प्रिय के निष्ठुर व्यवहार से जागना पड़ा है।

अनन्त जलराशि में से अभी थोड़ी निकली हुई पृथ्वी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे समुद्र की शय्या पर कोई दुलहिन सिमटी-सिकुड़ी बैठी हो। प्रलय रात्रि के कष्टों को याद करके उसने उसी प्रकार मान किया है जैसे कोई नव-विवाहिता दुलहिन पूर्व रात्रि में अपने पति के निष्ठुर (सुकुमार शरीर के निर्दयतापूर्वक झकझोरे जाने पर) व्यवहार पर मान किये बैठी हो कि कुछ भी हो जाय किन्तु अब उससे न बोलूँगी। यह दैनंदिन चित्र बहुत ही स्वाभाविक और आकर्षक बन पड़ा है। उत्प्रेक्षा अलंकार की सहायता से सुन्दरी की लज्जा और उसका स्वाभाविक मान प्राणवान हो गया है।

जब प्रकृति मानव के दुख से अत्यन्त विह्वल हो जाती है उस समय वह भी रो पड़ती है

रजनी की रोई आँखें आलोक बिन्दु टपकातीं।
तम की काली छलनाएँ उनको चुप-चुप पी जातीं।

—आँसू, पृ० ५१

असंख्य तारों से भरी हुई रात ऐसी प्रतीत हो रही है मानो प्रकाश की बूंद पृथ्वी पर टपका रही हो किन्तु उन बूंदों को काला अन्धकार चुपचाप पी जाता है। गहन अन्धकार में नक्षत्रों का प्रकाश पृथ्वी तक आते-आते नुपता हो जाता है। यहाँ रजनी और तम दोनों मानवी व्यापार में संलग्न दीख पड़ते हैं।

कहता विपञ्च से मलय पवन, प्राची की लाज भरी चितवन
है रात घूम आई मधुवन यह आलस की अँगड़ाई है।

—लहर, पृ० १७

पथ सोये हों हरियाली में हों सुमन सो रहे डाली में
हो अलस उनींदी नखत पाँत

—लहर, पृ० ३१

प्रथम उद्धरण में मलय पवन की विपञ्च से बातचीत प्राची की लाज भरी चितवन तथा रात का मधुवन में घूम आना मानवी व्यापारों का संकेत करते हैं। इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में पथ का हरियाली में तथा सुमनों का डाली में सोना और नखत पाँत का आँखों का अलस उनींदी होना मानवीय क्रियाकलाप के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इसमें मलय

पवन प्राप्त रात, पथ, सुमन तथा नक्षत्र पौध के स्कंध चित्र सजीव बन गये हैं।

(क) किस दिगन्त रेखा में इतनी संचित कर सिसकी-सी सांस
यों समीर मिस हांफ रही-सी चली आ रही किसके पास ?

—कामायनी, पृ० १९

उक्त उद्धरण में रात हाँफती हुई रमणी के रूप में चित्रित की गई है। तीव्र वेग से बहती हुई वायु के लिए कवि कल्पना करता है मानो रात रूपी रमणी तीव्रगति से दौड़ती हुई किसी से मिलने जा रही है। अतः हांफने लगी है। यहाँ रात अभिसारिका के रूप में प्रतिष्ठित की गयी है।

(ख) भुज लता पड़ी सरिताओं की शैलों के गले सनाथ हुए
जलनिधि का अंचल व्यजन बना, धरणी का, दो दो साथ हुए।

—कामायनी पृ० ७३

यहाँ नदियाँ प्रेमिका का रूप अपने में समेटे सजीव दिखलाई पड़ रही हैं। पर्वतों से प्रवाहित होने वाली नदियाँ ऐसी मालूम हो रही थीं जैसे उन्होंने लता जैसी लम्बी मृदुल तथा पतली अपनी धारारूपी भुजा को प्रियतम शैलों के गले में डाल कर उन्हें इतार्थ कर दिया है। इधर पुरुष रूप में समुद्र अपनी शीतल लहरों से प्रेमिका वसुधा धरणी पर पंखा-सा झलने लगा। यहाँ पर्वत और समुद्र पुरुष रूप में तथा सरिताएँ और धरणी नारी रूप में अपनी सम्पूर्ण छवि लेकर नयनों में झूम उठती हैं।

इस प्रकार प्रसादजी का कल्पना पर असाधारण प्रभुत्व स्थापित हो जाने के कारण प्रकृति के अंग प्रत्यंग में मानवीय व्यापारों तथा क्रियाकलापों का आरोप करने में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली है। प्रसादजी वर्डस्वर्थ की भाँति प्रकृति के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो उसका कोना-कोना झाँक आये थे अतः इनके प्रकृति-चित्रण में केवल रूपानुभव ही नहीं होता इनकी अद्भुत कल्पना-शक्ति के स्पर्श मात्र से प्रकृति हँसती बोलती इठलाती मान करती हुई, गाती-दौड़ती तथा विश्राम करती हुई भी दृष्टिगत होती है। प्रसादजी ने मानव की सम्पूर्ण चेतनता प्रकृति में उड़ेल कर उसमें भी आत्मा की प्रतिष्ठा कर दी है।

पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तुओं के माध्यम से भी इन्होंने प्रकृति के अन्तर को झाँका है। तत्सम्बन्धी कुछ चित्र देखिये

उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाये व्यालों-सी।

—कामायनी पृ० १४

उधर कुटिल काल के जाल के समान सिन्धु लहरियाँ घोर ध्वनि कर रही थीं। वे इस प्रकार आगे बढ़ रही थीं जैसे फन फैलाये सांप उगलते हुए चप आ रहे हों। लहरें मूर्त हैं। उनका उपमान है—कुटिल काल के जाल जो अमूर्त हैं। एक मूर्त उपमान है—फन फैलाये व्याल। इन पंक्तियों में दोनों उपमान बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होते हैं। जाल के डोरे जैसे लम्बे पतले तथा परस्पर गूँथे हुए होते हैं वैसी ही लहरियाँ लम्बी पतली तथा परस्पर गुँथी हुई प्रतीत हो रही हैं। और वे देवताओं को अपने जाल में फंसा कर आत्मसात कर लेना चाहती थीं इसीलिए उनके लिए 'कुटिल काल का जाल' उपमान बहुत ठीक बैठता

है। लहरें भी झाग उगलती थीं और सर्प भी झाग उगलते हैं लहरें भीगी होती हैं और सर्प भी काले होते हैं। लहरें भी प्राण ले रही थीं और सर्प भी प्राण ले सकते हैं।

इसमें लहरों को मूर्तिमान करके उनके उग्र रूप का चित्रण किया गया है। यह चित्र रूप-साम्य तथा गुण-साम्य दोनों से विभूषित होकर बहुत अलंकृत हो गया है। लहरी और व्याल में लिंग-साम्य नहीं है यही खटकने वाली बात है।

मधुकरी के रूप में रजनी का मोहक रूप देखिये

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी रजनी तू किस कोने से
आती चूम-चूम चल जाती पढ़ी हुई किस टोने से?

—कामायनी पृ० १९

प्रस्तुत पंक्तियों में रजनी को प्राणवान बनाने के लिए मधुकरी और जादूगरनी दो उपमान चुने गये हैं। यद्यपि जादूगरनी शब्द छिपा हुआ है फिर भी रजनी के कार्य-व्यापार से हम उसे जादूगरनी भी कह सकते हैं। मधुकरी जिस प्रकार किसी कोने से आकर फूल को चूमती और उसे विमुग्ध कर देती है उसी प्रकार रात भी इस विश्व को चूमकर मुग्ध कर देती है और विश्व प्रगाढ़ निद्रा में सो जाता है। कवि फिर कल्पना करता है मानो वह जादू टोना करने वाली कोई जादूगरनी है। इसमें रजनी और मधुकरी रात की ही तरह काली होती है और जैसे मधुकरी फूलों को चूमकर मुग्ध करती है वैसे ही रात विश्व को चूमकर बेसुध कर देती है।

चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं अवगुंठन आज सँवरता-सा,
जिसमें अनन्त कल्लोल भरा लहरों में मस्त विचरता-सा
अपना फेनिल फन पटक रहा मणियों का जाल लुटाता-सा
उन्निद्र दिखाई देता हो उन्मत्त हुआ कुछ गाता-सा।

—कामायनी पृ० ९८

उपर्युक्त पंक्तियों में प्राकृतिक उपकरणों द्वारा सांस्कृतिक और पौराणिक दो अलग अलग चित्र बन जाते हैं और साथ ही चाँदनी का मानवीकरण भी किया गया है। चाँदनी का यह उपर्युक्त घूँघट आकृति में शेषनाग के फन के सदृश है। जैसे फन पर चोट लगते ही सर्प के मुख से फेन गिरने लगता है और सिर से मणियाँ झड़ने लगती हैं उसी प्रकार चाँदनी के प्रकम्पन से चन्द्रमा और नक्षत्रों के रूप में फेन और मणिजाल बिखर जाता है। और जैसे शेषनाग प्रेम-विभोर हो झूमते हुए भगवान का भजन करते हैं उसी प्रकार यह चाँदनी उनींदी-सी प्रतीत हो रही है और पवन के मिस कुछ गुनगुना रही है। चाँदनी के इस घूँघट के खुलने से उसके दर्शन हो सकते हैं। चाँदनी के घूँघट और शेषनाग के फन में रूप-साम्य है। चाँदनी शेषनाग के फन के लिए, पवन लहरों के लिए, फेन और मणियाँ चाँद और तारागणों के लिए तथा वायु की ध्वनि शेषनाग के मुख से निकले भगवान के निरन्तर कीर्तन के लिए प्रयुक्त हुए हैं। शेषनाग से पौराणिक और घूँघट से सांस्कृतिक रूप-विधान की सृष्टि होती है। प्रसादजी ने प्रस्तुत चित्र के निर्माण में अपनी विराट् कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है।

नीचे जलधर दौड़ रहे थे सुन्दर सुरधनु माला पहने,
कुंजर कलभ सदृश इठलाते चमकाते चपला के गहने।

प्रवहमान थे निम्न देश में शीतल शत-शत निर्झर ऐसे
महाश्वेत गजराज गण्ड से बिखरीं मधु धाराएँ जैसे ।

—कामायनी पृ० २५८

उपर्युक्त दो पंक्तियों में जलधर को तथा अंतिम दो पंक्तियों में हिमालय को चेतनता प्रदान की गई है । जलधर के लिए कुंजर कलभ और हिमालय के लिए महाश्वेत गजराज उपमान चुने गये हैं । भाव यह है कि नील इन्द्रधनुष की सुन्दर माला तथा चपला के गहने पहने हुए बादल इधर उधर दौड़ रहे थे । व बादल ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे हाथियों के बच्चों की गर्दन में सोने के गहने चमकते हैं । जलधर के लिए हाथी का उपमान परम्परा विहित है । कालिदास ने भी मेघदूत में हाथी को जलधर का उपमान बनाया है । अन्तिम दो पंक्तियों में हिमालय को श्वेत ऐरावत के रूप में चित्रित किया गया है । हिमाच्छादित पर्वत से फूटते हुए श्वेत झरने ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे ऐरावत के मस्तक से मधुधाराएँ चू रही हों । यहाँ ऐरावत पौराणिक उपमान के अन्तर्गत लिया जा सकता है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रसादजी ने प्राणों की चेतनता प्रकृति के सारे प्राणियों में वितरित कर दी है । चाहे वे मानव हों अथवा पशु-पक्षी या कीट-पतंगे हों । उनकी कल्पना की विराट अनुभूतियों ने सबको समान स्पन्द-युक्त किया है ।

बिम्ब रूप-विधान

भावात्मक

प्रसादजी अलंकारवादी वक्रोक्तिवादी तथा रीतिवादी सम्प्रदायों को बुद्धिवादी मानते थे इसीलिए उन्होंने काव्य-जगत में रस को प्रमुखता दी और उसी को काव्य की आत्मा भी माना है । इनकी रचना में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति ही रस-सृष्टि करने में समर्थ हुई है । यह अनुभूति दो प्रकार की होती है—भावजन्य तथा चमत्कार-जन्य । प्रथम प्रकार की अनुभूति में सहृदय पाठक तद्वत् भाव-दशा को प्राप्त होता है, किन्तु दूसरे प्रकार की अनुभूति में उन भावों में मग्न हो जाता है । भावाभिव्यंजन की दृष्टि से भाषा के दो पक्ष होते हैं—सांकेतिक तथा बिम्ब-विधायक । एक में भाषा अर्थबोध कराती है और दूसरे में बिम्ब-ग्रहण । प्रसादजी ने दूसरे पक्ष का अधिक अवलम्बन किया है इसीलिए भाषा की चित्रमयता में प्रसादजी की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि रोजेटी से की जाती है । प्रसाद के भाव-चित्र वस्तु चित्र से अधिक उत्कृष्ट तथा प्रभावोत्पादक हैं । भावों को मूर्तरूप देने में कवि ने लक्षणा शक्ति का अधिक आश्रय लिया है जिससे भाव सुग्राह्य होकर हृदय से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं ।'[1]

उदाहरणस्वरूप प्रसादजी के कुछ भाव चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं

इस करुणा कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती ।

—आँसू, छंद २

१. रामलाल सिंह, कामायनी अनुशीलन पृ ८१

इन पंक्तियों में कवि अपनी वेदना को लक्षणा के माध्यम से एक मूर्तरूप दे देता है। वेदना की महत्ता को व्यक्त करना ही यहाँ कवि का अभीष्ट है। हाहाकार विशेषण जोड़ने पर जब कवि की वेदना की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हुई तो उसने 'गरजना' शब्द का उपयोग किया। गरजना कहने से हमारे मन में वेदना का एक भाव चित्र मूर्तिमान हो उठता है। विशेषण विपर्यय या लक्षणा ने वेदना को अपने तीव्रतम रूप में खड़ा कर दिया है।

बस गई एक बस्ती है स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है जैसे इस नील निलय में।

—आँसू, पृ० ५

जिस प्रकार अनन्त आकाश में अनन्त तारे बिखरे हैं उन्हें गिन सकना असम्भव है, उसी प्रकार कवि के हृदय में विद्यमान स्मृतियों की भी गणना सम्भव नहीं है। इन पंक्तियों में आकाश हृदय का तथा नक्षत्र स्मृतियों का प्रतीक बनकर आया है। हृदय को नील निलय कहने से भाव एकदम खुल जाता है। आकाश जिस प्रकार शून्य है उसी तरह हृदय भी निराशा से परिपूर्ण है निराशा अन्धकार के सदृश है जिसे नीलवर्णीय भी कह सकते हैं। कवि के हृदय में अस्यातीत स्मृतियों की भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से निखर उठी है।

प्रिय के वियोग में कवि के हृदय में हाहाकार मचा हुआ है, उस विकल वेदना का भावपूर्ण चित्रण प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से कितना सजीव हो गया है, देखिये

बुलबुले सिन्धु के फूटे नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ-मुक्त कुन्तला धरणी दिखलाई देती लूटी।

—आँसू, पृ० ६

प्रलय के समय आकाश से तारे टूट-टूटकर गिरने लगते हैं समुद्र में उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं पृथ्वी अस्त-व्यस्त और लुटी हुई प्रतीत होती है। कवि ने पृथ्वी पर नारी का आरोप करके नीलिमामय आकाश को उसके बिखरे हुए केश से समता दी है। कवि ने हृदय की विवशता और अस्त-व्यस्त मनःस्थिति का सफल चित्रण किया है। यहाँ धरणी शरीर का प्रतीक है जिसे सँभालने में वह असमर्थ है उसके केश-आकाश में उन्मुक्त रूप से बिखरे हुए हैं। उस व्यक्ति की आँखों से झरते हुए आँसू ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे हृदय-सिन्धु से बुलबुले फूटकर आँखों की राह निकल रहे हैं अथवा नक्षत्रों की माला टूटकर गिर रही है। उत्प्रेक्षा और सन्देहालंकार ने चित्र की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि की है।

अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना भीगी पलकों का लगना।

उपर्युक्त उद्धरण में विरह की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए चार पृथक-पृथक चित्रों की अवतारणा की गयी है। अभिलाषाओं का करवट बदलना सुप्त-व्यथा का जगना, सुख का सपना बन जाना तथा भीगी पलकों का लगना। मन के अमूर्त भावों का मूर्तीकरण करके चित्र में प्राण की प्रतिष्ठा की गयी है।

कवि ने इस कविता में लक्षणा के आधार पर अप्रस्तुत की योजना की है, जिससे काव्य-सौन्दर्य और उसका आन्तरिक वैभव निखर आया है। अभिलाषाओं की करवट द्वारा

कवि उस अवस्था का चित्र सम्मुख लाना चाहता है जब अभिलाषा की स्थिति सुषुप्तावस्था और जागरण के मध्य की है। इससे बेचैनी का दृश्य और भी साफ हो जाता है। बेचैनी की दशा में व्यथाओं का जागना सुख का स्वप्न बनना तथा गीली पलकों का लगना स्वाभाविक ही है।

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आँसू बन कर वह आज बरसने आयी।

—आँसू, पृ० ८

यहाँ मन की घनीभूत पीड़ा पर घन का और मस्तिष्क पर आकाश का तथा दुर्दिन पर बरसात का आरोप करके वेदना की तीव्रता का भाव व्यक्त किया गया है। वेदना की अनुभूतियाँ मन में स्मृति-सी धँसी हुई थीं और विरह की घड़ियों के आ जाने से वही जमी हुई स्मृति की टीस आँसू बन कर बरसने लगी।

जिस प्रकार अपनी अनुभूतियों भावों तथा तदनुकूल उपमानों से सजा कर बाह्य जगत में प्रदर्शित करते हैं उसी प्रकार बाह्य वस्तुओं की समता के लिए आन्तरिक भावों या मनोवेगों की ओर भी संकेत किया जाता है। यही पद्धति निम्नलिखित उद्धरण में भी अपनायी गयी है

रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी,
तुम सुमन नोचते फिरते करते जानी अनजानी। —आँसू, पृ० ११

इससे प्रेमिका के निष्ठुर व्यवहार की व्यंजना मूर्त हो उठी है—मैं रो-रो सिसक-सिसक कर अपनी करुण कहानी कहता हूँ किन्तु तुम हाथ का फूल नोचते जाते हो और जानकर भी अनजान बने हो। तुम्हारे इस व्यवहार से इस तटस्थता से आँखें भर-भर आती हैं। 'सुमन नोचते' आन्तरिक साम्य को प्रस्तुत करता है। किसी के सुन्दर मन के नोचने से या उपेक्षा करने से जैसी निष्ठुरता और हृदयहीनता का आभास मिलता है वैसी निष्ठुरता की व्यंजना तुम्हारे व्यवहार से हो रही है, जब तुम जानबूझ कर आनाकानी कर रहे हो। सुमन में श्लेष है जिसके अर्थ हैं—सुन्दर मन और फूल।

झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला।

—आँसू पृ० ११

इस उद्धरण में भावना को उच्छ्वसित करने वाले तदनुकूल प्रतीकों की योजना से मन में उठने वाले दर्द टीस तथा व्याकुलता की व्यंजना की गयी है। इसमें 'झंझा झकोर' हृदय को व्याकुल-व्याकुल कर देने वाले भावों के लिए, बिजली रह रह कर उठने वाले दर्द के लिए; नीरदमाला विषाद और उदासी के लिए; शून्य हृदय आकाश के लिए प्रतीक रूप में आए हैं। इस प्रकार इन पंक्तियों में रूपक अलंकार द्वारा वियोगी की मनःदशा का मार्मिक चित्र खींचा गया है।

जलने का सम्बल लेकर दीपक पतंग से मिलता
जलने की दीन दशा में वह फूल सदृश ही खिलता।

—आँसू, पृ० ४०

उपर्युक्त पंक्तियों में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य को सुझाया गया है। प्रेमी को यदि यह आभास हो जाय कि उसका प्रेमपात्र भी मेरी ही तरह अन्तर में एक ज्वालामुखी छिपाये बैठा है तब वह वियोग में जलने में एक प्रकार का सुख अनुभव करता है। इसी भाव की व्यंजना यहाँ दीपक और पतंग के माध्यम से की गयी है। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत में व्यंग्य व्यंजक भाव निहित है। दीपक प्रेमिका और पतंग प्रेमी का प्रतीक है।

ओ चिन्ता की पहली रेखा अरी विश्व वन की व्याली!
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कम्प-सी मतवाली!
हे अभाव की चपल बालिके री ललाट की खल लेखा!
हरी भरी-सी दौड़ धूप ओ जल-माया की चल रेखा!

—कामायनी पृ० ५

उपर्युक्त पंक्तियों में विभिन्न उपमानों की भूमिका से चिन्ता को साकार किया गया है। कवि ने चिन्ता को विश्व वन की व्याली कह कर उसकी भीषणता व्यक्त की है। उपवन में जिस प्रकार किसी जहरीली सर्पिणी के डसने की आशंका से उसका उचित उपभोग मानव नहीं कर सकता इसी प्रकार चिन्ता संसारियों को तिल-तिल जला कर मार डालती है। दूसरी पंक्ति में उसे ज्वालामुखी के भीषण स्फोट का प्रथम कम्पन कहा है। ज्वालामुखी पर्वत के मुख पर प्रथम कम्पन ही इस बात की सूचना दे देता है कि अब भयंकर विस्फोट होगा जो क्षण मात्र में प्रलयंकर दृश्य उपस्थित कर देगा उसी प्रकार चिन्ता का मस्तिष्क में प्रवेश किसी भारी विपत्ति का संकेत कर देता है। तीसरी पंक्ति में उसे अभाव की चपल बालिका' तथा 'ललाट की खल लेखा' कहा गया है, चिन्ता के लिए ये दोनों उपमान अनुभूति जन्य हैं। चिन्ता अभाव के ही कुक्ष से उत्पन्न हुई है (जहाँ अभाव है वहीं चिंता भी है) और अभाव में जीने वाला व्यक्ति दुर्भाग्य के थपेड़ों को झेलता-झेलता ही टूट जाता है। ललाट की खल-लेखा में उसके दुर्गुणों की ओर संकेत किया गया है। ललाट पर ही विधाता की भाग्य लिपि लिखी जाती है अतः उसे ललाट की दुष्ट लेखा कहना पूर्ण सार्थक है। मन में चिन्ता के उदय होते ही मस्तक पर सलवटें पड़ जाती हैं, उन्हें देख कर कोई भी व्यक्ति चिंतातुर व्यक्ति को सहज ही पहचान लेता है। चौथी पंक्ति में चिन्ता का उज्ज्वल पक्ष दिखाया गया है। चिंतातुर व्यक्ति परिश्रम करता है, जिससे उसका जीवन सुखमय और हरा-भरा हो जाता है। वायु के झोंके से जिस प्रकार जल में तरंगें उठने लगती हैं उसी प्रकार चिंता मनुष्य को काम करने की भी प्रेरणा प्रदान करती है। ये सारे उपमान विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं इन विशेषणों से चिन्ता का रूप और गुण दोनों का प्रभावात्मक चित्र बन गया है। इसी प्रकार अगली पंक्तियों में चिन्ता को ग्रह कक्षा की हलचल तरल गरल की लघु लहरी देवताओं की जरा मधुरी व्याधि की सूत्रधारिणी आदि मधुमय अभिशाप हृदय गगन की धूमकेतु तथा पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप आदि अप्रस्तुतों से सजाया है। चिन्ता अमूर्त है और उपर्युक्त उपमान भी अमूर्त हैं। कल्पना प्रधान अप्रस्तुत योजनाओं के उचित प्रयोग से चिन्ता का भावपूर्ण चित्र विशेष रूप से आकर्षक हो गया है।

चिन्ता की भाँति मृत्यु का चित्र भी काफी मुखरित हो गया है। देखिये

मृत्यु, अरी चिर निद्रे! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल,

तू अनन्त में लहर बनाती, काल-जलधि की सी हलचल।
महानृत्य का विषम सम अरी अखिल स्पन्दनों की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है, सृष्टि सदा होकर अभिशाप।
अन्धकार के अट्टहास-सी मुखरित सतत चिरन्तन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू यह सुन्दर रहस्य है नित्य।
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घन माला में
सौदामिनी सन्धि-सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।

—कामायनी पृ० ११

उपर्युक्त पंक्तियों में मृत्यु का शुभानुभव कराया गया है। मृत्यु चिरनिद्रा है, उसकी याद हिमराशि जैसी शीतल है। समुद्र में उथल-पुथल मचने से जैसे लहरें उठती हैं उसी प्रकार मृत्यु के सिन्धु से विश्व में फिर जीवन आ जाता है। यहाँ मृत्यु की गोद अगोचर है, अतः हिमानी की शीतलता गोचर है। गुण-साम्य पर आधारित यह चित्र अगोचर होते हुए भी गोचर बन जाता है। इसी भाँति तीसरी पंक्ति में उसे सृष्टि में होने वाले किसी महानृत्य की निर्दय पद-चाप और जीवन को मापने का पैमाना कहा है। पाँचवीं पंक्ति में मृत्यु को अन्धकार के अट्टहास-सी कहा है। जैसे अन्धेरे में कोई जोर से ठहाका लगाये तो हम उस व्यक्ति का आकार नहीं देख सकते हँसने की ध्वनि ही सुनायी पड़ेगी उसी प्रकार मृत्यु का रूप गोचर नहीं होता उसका अट्टहास (विनाश का कर्म) ही सामने आता है और यह सृष्टि के कण-कण में छिपी रहती है। अन्तिम दो पंक्तियों में मृत्यु की व्यापकता का भान कराया गया है। जीवन मृत्यु का अंश मात्र है जैसे नील घनमाला क्षण-मात्र के लिए बिजली की कौंध से आप्लावित होकर फिर धूम्रमय हो जाती है उसी प्रकार जीवन क्षणभंगुर है कि थोड़े समय तक ही प्रकाशित रहकर मृत्यु के मुख में समा जाता है। बिजली छिप जाती है घनमाला बनी ही रहती है उसी प्रकार जीवन मिट जाता है, किन्तु मृत्यु अमर रहती है। कृतघ्नता का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

अरी नीच कृतघ्नते पिच्छलशिला संलग्न
मलिन काई-सी करेगी, हृदय कितने भग्न

—कामायनी पृ० ८४

इसमें कृतघ्नता अमूर्त है, उसका रूप काई जैसा मूर्त उपमान पाकर उभर आया है। जिस प्रकार रपटीली शिला पर काई जम जाती है और उस पर पैर पड़ने पर फिसल जाने की संभावना रहती है, उसी प्रकार चंचल हृदय में कृतघ्नता की काई लगने पर वह अनेकों को हानि पहुँचाती है।

लज्जा

किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द।

भारतीय नारी की सम्पूर्ण लज्जा सिमट कर जैसे श्रद्धा में ही केन्द्रीभूत हो गयी है इसीलिये अपरिचित मनु से नतशिर ही प्रश्न करती है। कमल झुक कर भी अपना अपरिमेय परिमल नहीं खो देता। श्रद्धा के मुख से सौरभ बरबस ही विकीर्ण हो उठा था। आदि कवि

उपर्युक्त पंक्तियों में एक मनोवैज्ञानिक उलझन को सुलझाया गया है। प्रेमी को यदि यह आभास हो जाय कि उसका प्रेमपात्र भी मेरी ही तरह अन्तर में एक ज्वालामुखी छिपाये बैठा है तब वह वियोग में जलने में एक प्रकार का सुख अनुभव करता है। इसी भाव की व्यंजना यहाँ दीपक और पतंग के माध्यम से की गयी है। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत में व्यंग्य व्यंजक भाव निहित है। दीपक प्रेमिका और पतंग प्रेमी का प्रतीक है।

ओ चिन्ता की पहली रेखा अरी विश्व वन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कम्प-सी मतवाली।
हे अभाव की चपल बालिके री ललाट की खल लेखा।
हरी भरी-सी दौड़ धूप ओ जल-माया की चल रेखा।

—कामायनी पृ० ५

उपर्युक्त पंक्तियों में विभिन्न उपमानों की तूलिका से चिन्ता को साकार किया गया है। कवि ने चिन्ता को विश्व वन की व्याली कह कर उसकी भीषणता व्यक्त की है। उपवन में जिस प्रकार किसी जहरीली सर्पिणी के डसने की आशंका से उसका उचित उपभोग मानव नहीं कर सकता इसी प्रकार चिन्ता संसारियों को तिल-तिल जला कर मार डालती है। दूसरी पंक्ति में उसे ज्वालामुखी के भीषण स्फोट का प्रथम कम्पन कहा है। ज्वालामुखी पर्वत के मुख पर प्रथम कम्पन ही इस बात की सूचना दे देता है कि अब भयंकर विस्फोट होगा जो क्षण मात्र में प्रलयंकर दृश्य उपस्थित कर देगा' उसी प्रकार चिन्ता का मस्तिष्क में प्रवेश किसी भारी विपत्ति का संकेत कर देता है। तीसरी पंक्ति में उसे 'अभाव की चपल बालिका' तथा 'ललाट की खल लेखा' कहा गया है, चिन्ता के लिए ये दोनों उपमान अनुभूति-जन्य हैं। चिन्ता अभाव के ही कुक्ष से उत्पन्न हुई है (जहाँ अभाव है वहीं चिंता भी है) और अभाव में जीने वाला व्यक्ति दुर्भाग्य के थपेड़ों को झेलता झेलता ही टूट जाता है। ललाट की खल-लेखा में उसके भ्रू-युग्मों की ओर संकेत किया गया है। ललाट पर ही विधाता की भाग्य लिपि लिखी जाती है अतः उसे ललाट की दुष्ट लेखा कहना पूर्ण सार्थक है। मन में चिन्ता के उदय होते ही मस्तक पर सलवटें पड़ जाती हैं, उन्हें देख कर कोई भी व्यक्ति चिंतातुर व्यक्ति को सहज ही पहचान लेता है। चौथी पंक्ति में चिन्ता का उज्ज्वल पक्ष दिखाया गया है। चिंतातुर व्यक्ति परिश्रम करता है, जिससे उसका जीवन सुखमय और हरा-भरा हो जाता है। वायु के झोंके से जिस प्रकार जल में तरंगें उठने लगती हैं उसी प्रकार चिंता मनुष्य को काम करने की भी प्रेरणा प्रदान करती है। ये सारे उपमान विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं *इन विशेषणों से चिन्ता का रूप और गुण दोनों का प्रभावात्मक चित्र बन गया है।* इसी प्रकार अगली पंक्तियों में चिन्ता को ग्रह कक्षा की हलचल तरल गरल की लघु लहरी देवताओं की जरा बहरी व्याधि की सूत्रधारिणी आधि मधुमय अभिशाप हृदय गगन की धूमकेतु तथा पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप आदि अप्रस्तुतों से सजाया है। चिन्ता अमूर्त है और उपर्युक्त उपमान भी अमूर्त हैं। कल्पना प्रधान अप्रस्तुत योजनाओं के उचित प्रयोग से चिन्ता का भावपूर्ण चित्र विशेष रूप से आकर्षक हो गया है।

चिन्ता की भाँति मृत्यु का चित्र भी काफ़ी मुखरित हो गया है। देखिये

मृत्यु, अरी चिर निद्रे ! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल,

तू अनन्त में लहर बनाती, काल-जलधि की सी हलचल।
महामृत्यु का विषम सम, अरी अखिल स्पन्दनों की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है, सृष्टि सदा होकर अभिशाप।
अन्धकार के अट्टहास-सी, मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू यह सुन्दर रहस्य है नित्य।
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्याप्त नील घन माला में
सौदामिनी सन्धि-सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।

—कामायनी पृ० ११

उपर्युक्त पंक्तियों में मृत्यु का पूर्णानुभव कराया गया है। मृत्यु चिरनिद्रा है उसकी याद हिमराशि जैसी शीतल है। समुद्र में उथल-पुथल मचने से जैसे लहरें उठती हैं उसी प्रकार मृत्यु के सिन्धु से विश्व में फिर जीवन आ जाता है। यहाँ मृत्यु की गोद अगोचर है, वह हिमानी की शीतलता गोचर है। स्पर्श-साम्य पर आधारित यह चित्र अगोचर होते हुए भी गोचर बन जाता है। इसी भाँति तीसरी पंक्ति में उसे सृष्टि में होने वाले किसी महानृत्य की निर्दय पद-चाप और जीवन को मापने का पैमाना कहा है। पाँचवीं पंक्ति में मृत्यु को अन्धकार के अट्टहास-सी कहा है। जैसे अन्धेरे में कोई जोर से ठहाका लगाये तो हम उस व्यक्ति का आकार नहीं देख सकते, हँसने की ध्वनि ही सुनायी पड़ेगी, उसी प्रकार मृत्यु का रूप गोचर नहीं होता उसका अट्टहास (विनाश का कर्म) ही सामने आता है और यह सृष्टि के कण-कण में छिपी रहती है। अन्तिम दो पंक्तियों में मृत्यु की व्यापकता का भान कराया गया है। जीवन मृत्यु का अंश मात्र है, जैसे नील घनमाला क्षण-मात्र के लिए बिजली की कौंध से आप्लावित होकर फिर धूम्रमय हो जाती है उसी प्रकार जीवन क्षणभंगुर है कि थोड़े समय तक ही प्रकाशित रहकर मृत्यु के मुख में समा जाता है। बिजली छिप जाती है, घनमाला बनी ही रहती है उसी प्रकार जीवन मिट जाता है, किन्तु मृत्यु अमर रहती है।

कृतघ्नता का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

अरी नीच कृतघ्नते पिच्छल-शिला संलग्न
मलिन काई-सी करेगी, हृदय कितने भग्न

—कामायनी पृ० ८४

इसमें कृतघ्नता अमूर्त है, उसका रूप काई जैसा मूर्त उपमान पाकर उभर आया है। जिस प्रकार स्फटिक की शिला पर काई जम जाती है और उस पर पैर पड़ने पर फिसल जाने की संभावना रहती है, उसी प्रकार चंचल हृदय में कृतघ्नता की काई लगने पर वह अनेकों को हानि पहुँचाती है।

लज्जा

छिपे मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द।

भारतीय नारी की सम्पूर्ण लज्जा सिमट कर जैसे श्रद्धा में ही केन्द्रीभूत हो गयी है इसीलिये अपरिचित मनु से नतशिर ही प्रश्न करती है। कमल झुक कर भी अपना अपरिमेय परिमल नहीं जो देता। श्रद्धा के मुख से सौरभ बरबस ही विकीर्ण हो उठा था। आदि कवि

के प्रथम छन्द की प्रेरणा करुणा थी । मा निषाद प्रतिष्ठां त्वगमः शाश्वतीः समा
नैसर्गिक अभिव्यक्ति क्रौंच-वध से अनुप्राणित था । कवि का कंठ करुणा ने खोला था ।
भी निर्जन के उस तपस्वी पर द्रवीभूत हो उठी । उसकी दया ने ही एक अपरिचि
सम्मुख उसका मधुर स्वर खोल दिया । श्रद्धा के प्रथम छन्द की करुणा किसी प्रकार
कवि की आदि कविता से न्यून न थी ।[1] ऐसी श्रद्धा के मन में लज्जा का प्रवेश होत
यहाँ लज्जा का फोटो विभिन्न कोणों से खींचा गया है । लज्जा मानवी बन कर किस प्र
सामने आती है । देखिये

कोमल किसलय के अंचल में छिपी नन्हीं कली जैसे और भी आकर्षक दीख
गोधूलि के धूमिल पट में दीपक की लौ जैसे और भी प्रकाशमान दिखायी देती है,
ही लज्जा अधिक कमनीय होकर अधरों पर उँगली रखे तथा आँखों में सरसता का भाव
नीरव निशीथ में अपनी कोमल भुजाएं फैलाये आलिंगन की चाह से बढ़ी आ रही है ।[2]
के मन में प्रथम बार जब लज्जा का प्रादुर्भाव हुआ उस समय उसका मन संकल्प विकल्प
भर गया । अधरों पर उँगली रखना स्त्रियों की एक मुद्रा है जो बड़ी प्यारी लगती है । वा
की प्रेरणा से जब नारी पुरुष को आत्मसमर्पण करना चाहती है तब उसके अन्तर की स्वा
विक लज्जा उसे एक बार टोकती है और बिना बोले ओठों पर उँगली रख कर वर्जन भी कि
जाता है । उसी भावार्थ में अधरों पर उँगली धरे हुए आया है । श्रद्धा जैसे ही अपने स
को सौंपना चाहती है वैसे ही लज्जा टोकती है ।[3] लज्जा के उदय से नारी की मुख-मुद्रा वि
न जाने सुहाग कण और राग भरे किन अद्भुत पुष्पों को लेकर शुभ सिर नीचा कि
एक माला गूँथ रही हो । यहाँ सिर झुकाये माला गूँथती हुई किसी रमणी का मधुमय
साकार हो उठा है । जैसे कदम्ब माला का एक-एक पुष्प रोमांच पैदा कर देता है, उ
प्रकार लज्जा एक के बाद दूसरा भाव उत्पन्न कर देती है । जैसे फलों के बोझ से डाली
जाती है उसी प्रकार लज्जा के बोझ से मन दब जाता है ।[4] खिलखिला कर नारी हँस
चाहती है किन्तु लज्जा के भार से अट्टहास मुस्कान में बदल जाता है और भवनों में
विचित्र नशा चढ़ जाने पर यथार्थ भी सपना मालूम होता है ।[5]

(क) छूने में हिचक देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं
(ख) संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खड़ी रही
भाषा बन भौंहों की काली रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही ।

—कामायनी पृ०

---

१ डा० प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य पृ० १९८
२ कामायनी, पृ ९७ छन्द नं० १—३—४
३ विश्वम्भर मानव कामायनी की टीका पृ० २२६
४ कामायनी पृ ९७ छन्द ३
५ कामायनी पृ ९८, छन्द ३
६. कामायनी पृ ९८ छन्द ४

उद्धरण (क) में व्रीड़ा का कितना भावपूर्ण चित्रण हुआ है। नारी जब पुरुष पर आकर्षित होकर उसे आत्म-समर्पण करना चाहती है तो प्रथम बार ऐसा करने में उसे संकोच होता है। समर्पण की चाह उसे समेटनी पड़ती है, प्रिय का स्पर्श करने में हिचकती है देखने में पलकें लज्जा के भार से झुक जाती हैं। मधुर परिहास पूर्ण बातें करने को जी चाहता है पर लज्जा मुँह पर ताला लगा देती है। इस छन्द में घूमने में हिचक पलकों का झुकना मन की बातें न कहना ये सब लज्जा के लक्षण हैं। इसी मानवीय चित्तवृत्ति का कलात्मक चित्रण प्रसादजी ने उपर्युक्त पंक्तियों में किया है।

दूसरे उद्धरण में नारी के सात्विक अनुभावों के माध्यम से वासना सजीव कर दी गयी है। मनु को स्पर्श करने की इच्छा मात्र से श्रद्धा के शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाते हैं। फिर भी नारी लज्जा के कारण अपनी इच्छा को क्रियान्वित नहीं कर सकती किन्तु आँखों के बंकिम कटाक्ष से वह मनु को समझा देना चाहती है कि अधरों का मधुर प्रकम्पन ममता का मूक निमन्त्रण कोई क्या समझे कोई क्या जाने? यदि तुम इसका अर्थ समझते हो तो समझ जाओ नारी की लज्जा उसके अधिकारों और इच्छाओं पर मेंड़ बाँध देती है।

(क) मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ

मतवाली सुन्दरता पग में नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ।

(ख) लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन-सी लगती

कुंचित अलकों-सी घुँघराली मन की मरोर बन कर जगती।

(ग) चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली

मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।

—कामायनी पृ० १०१

उपर्युक्त तीनों उद्धरणों में लज्जा स्वयं अपने रूप और गुण का परिचय देती है। लज्जा कहती है कि मैं रति की प्रतिमा हूँ नारियों को मैं विनम्रता की दीक्षा देती हूँ (लज्जा का संचार हृदय में होते ही नारियाँ फलों से लदी डाली-सी झुक जाती हैं।) पैर में बँधे घुँघरू जिस प्रकार नर्तकी की गति में नियन्त्रण ला देते हैं उसी प्रकार यौवन की मादकता से उन्मत्त नारियों में लज्जा आ जाने पर उनमें संयम और अनुशासन आ जाता है।

दूसरे उद्धरण में यह संकेत किया गया है कि लज्जा के आ जाने पर नारी का बाह्य रूप कैसा हो जाता है। लज्जा से सुन्दरियों के सरल कपोल लाल हो जाते हैं, उनकी आँखें अंजन रहित होने पर भी लज्जा की अनुभूति से ऐसा प्रतीत होता है जैसे आँखें कजरारी हो गयी हैं। बल खाती हुई घुँघराली अलका के सदृश लज्जा सुन्दरियों के मन में एक मरोड़ उत्पन्न कर देती है।

तीसरे उद्धरण में लज्जा का स्वरूप और उसके क्रिया-कलाप का विश्लेषण किया गया है। सुन्दर किशोरियों के मन को नियन्त्रण में रखने का काम लज्जा का है। यदि लज्जा का आवरण रमणी के नैनों के सम्मुख से उठा लिया जाय तो सम्भवतः अधिक दिन तक अपने यौवन की अपने सौंदर्य की रक्षा करने में वे असमर्थ हो जायें। इस प्रकार लज्जा नारी के सौंदर्य के लिए कवच है। लज्जा का अनुशासन मान कर चलने वाली सुन्दरी का मन

भीतर ही भीतर यद्यपि काफ़ा सूक्ष्म रहता है किन्तु सौंदर्य के अक्षय कोष की सुरक्षा से उनका सौन्दर्य निखर पड़ता है। कानों को धीरे से मसलने पर जैसे उनमें हल्की कालिमा आ जाती है उसी प्रकार लज्जा जब नारी के अंग प्रत्यंग को मसल देती है तो उसके रूप में भी कालिमा आ जाती है।

लज्जा का उपयुक्त मनोवैज्ञानिक चित्र कवि की सूक्ष्म अन्तदृष्टि तथा उसकी सौंदर्य प्रियता के द्योतक हैं।

नारी जब आत्म-समर्पण की भावना से विह्वल हो पुरुष पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है उस समय का मोहक रूप निम्नलिखित कविता में देखिए

मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ
भुजलता फँसा कर नर-तरु से झूले-सी झोंके खाती हूँ।

—कामायनी पृ० १०९

नारी अपने कोमल बाहुमृणाल पुरुष के गले में फँसा उसे जब बाँधने का उपक्रम करती है उस समय वह स्वयं झूले सी लटक कर उसमें फँसी रह जाती है। जैसे वृक्ष को बाँधने वाली लता स्वयं उसमें आबद्ध हो जाती है। व्यापार-साम्य पर आधारित लज्जा का यह अनुपम चित्र कला और भाव के उचित सम्मिश्रण से देदीप्यमान हो उठा है।

कामायनी के स्वप्न सर्ग में स्मृति चिन्ता उद्वेग दैन्य विषाद, उन्माद आदि विरह दशाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है। इनका विरह-वर्णन बहुत मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है; उसमें रीतिकालीन ऊहात्मक प्रणाली की गन्ध नहीं आती। चन्द्रगुप्त नाटक में सुवासिनी सौंदर्य का अनुभूतिजन्य कलात्मक चित्र प्रस्तुत करती है

तुम कनक किरन के अन्तराल में
लुक छिप कर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन रस कन ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों?

सौंदर्य का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण इस गीत में मिलता है। सौन्दर्य स्वयं मौन है। अधरों के मधुर कगारों और कल-कल ध्वनि की गुंजारों में ही वह मधु सरिता सी अपनी तरल हँसी पी जाता है। होठों पर मन्द मुस्कान है, आँखों में यौवन की बेहोशी, मदिरा की ईषत झलती है यौवन घन से बरसती कामनाओं की बूँदें हैं किन्तु मौन सलज्ज और भारावनत।[1]

विरह का एक भावपूर्ण चित्र देखिए

एक वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं।
अपनी ही अस्पष्ट उपेक्षा एक कलक साकार रही
हरित कुंज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती
वह छोटी-सी विरह नदी थी जिसका था अब पार नहीं।—कामायनी, पृ० १७५

१. रामेश्वरनाथ वाजपेय गीति काव्य पृ० ११

विरहिणी श्रद्धा इतनी क्षीणकाय हो गयी है कि सहसा पहचानी नहीं जाती। वेदना की तीव्रता से वह कसक की साकार प्रतिमा बन गयी है। आलोचक के शब्दों में श्रद्धा का यह विरहिणी रूप हमें भवभूति की सीता की याद दिला देता है जो राम के वियोग में क्षीण होते-होते स्थूल जगत् से उठ कर भाव जगत् की वस्तु रह गयी है

परिपाण्डुदुर्बल कपोल सुन्दरम्
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरह व्यथेव वनमेति जानकी

—उत्तर रामचरित तृतीय अंक

जिस प्रकार सीता विरह-वेदना में करुणा की जीवित प्रतिमा बन गयी है उसी प्रकार श्रद्धा भी गहन विरह-व्यथा के भार से विश्व की मौन वेदना जगती की अस्पष्ट उपमा साकार कसक तथा अपार विरह-नदी में परिवर्तित हो गयी है।

कामायनी की विरह-दशा का दूसरा चित्र देखिए

कहाँ तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुरझाए,
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी न मधुप आए।
वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं,
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिम तल में जम जाये।

—कामायनी पृ० १७५

श्रद्धा वह सरसी थी जिसमें अपने डंठलों पर तामरस (लाल कमल) इन्दीवर (नील-कमल) सित शतदल (श्वेत कमल) तीनों प्रकार के कमल मुरझा गये थे। लाल कमल के मुरझाने का भाव यह है कि उसके मुख की लालिमा और कांति नष्ट हो चुकी है। नील कमल के मुरझाने का भाव यह है कि उसकी कजरारी आँखों में कटाक्ष करने की क्षमता नहीं रह गयी। श्वेत कमल के मुरझाने का तात्पर्य यह है कि उसका गोरा रंग पीला पड़ गया है। सरसी की अप्रस्तुत योजना प्रसादजी की असाधारण प्रतिभा और कमनीय कल्पना की द्योतक है। यद्यपि उपमान परम्परित हैं फिर भी उनका प्रयोग ऐसी कलात्मकता के साथ हुआ है कि वे एकदम मौलिक और नवीन लगते हैं।

प्रसादजी के विरह-चित्र जिस मात्रा में हृदय में बड़वाग्नि सुलगाने में समर्थ हुए हैं उसी प्रकार उनके मिलन-चित्र भी काफी उत्तेजनापूर्ण और उद्दीपनकारी हुए हैं। कुछ चित्र उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जाते हैं

(१) परिरम्भ कुम्भ की मदिरा निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से मैं उठता था मुँह धोके।
(२) थक जाती थी सुख रजनी मुखचन्द्र हृदय में होता
श्रम-सीकर सदृश नखत से अम्बर पट भीगा होता।

—आँसू, पृ० २१

उपर्युक्त दोनों चित्र संयोग शृंगार के हैं। प्रथम उदाहरण में प्रेमी और प्रेमिका आलिंगनपाश में आबद्ध हैं। प्रेमिका का निश्वास प्रेमी को मलय झोंके जैसा प्रतीत हो रहा है।

प्रेमी कहता है कि मैं प्रातःकाल प्रेमिका के मुखचन्द्ररूपी चाँदनी के जल से मुँह धोकर उठता था। तात्पर्य यह कि उठने के पहले प्रेमी प्रेमिका का आलिंगन और चुम्बन करता था।

दूसरा चित्र भी प्रेमी-प्रेमिका के मिलन का दृश्य उपस्थित करता है किन्तु इसमें कुछ-कुछ अश्लीलता की झलक मिलती है। इन पंक्तियों में चाँदनी रात का रूपक बाँधा गया है। प्रेमियों की मिलन-वेला ही सुख की रात है। वक्षस्थल में छिपा हुआ प्रेमिका का मुख ही चन्द्र है। वस्त्र ही आकाश है और वस्त्र पर सात्त्विक भाव के कारण प्रेमियों के शरीर से निकले हुए जो स्वेद-कण छाये हुए हैं, वे ही मानो तारे हैं।[1]

'कामायनी' के वासना सर्ग में लज्जा से अनुशासित मिलन का एक अति संयत चित्र देखिए

> गिर रहीं पलकें झुकी थी नासिका की नोक
> भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
> स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
> खिला पुलक कदम्ब-सा था भरा गद्‌गद बोल।

—कामायनी पृ० ९४

श्रद्धा मनु के समीप लज्जा चिंता और उल्लास तीनों का अनुभव कर रही है। प्रणय की प्रथम कहासुनी में स्त्री में थोड़ी झिझक और लज्जा की भावना का आ जाना स्वाभाविक है फिर भी मिलने की आतुर प्रतीक्षा में मन उल्लसित रहता है। चिन्ता इसलिए रहती है कि इन सब का परिणाम न जाने क्या हो। इतना होने पर भी वह आत्म-समर्पण के लिए बेचैन है। समर्पण के पूर्व श्रद्धा के मनोभावों का चित्रण उसके विभिन्न अनुभावों में देखिए श्रद्धा की पलकें गिरने लगीं गिरने लगीं नासिका का अग्रभाग झुक गया भौंहें कान तक खिंच गयीं और लाज की लालिमा उसके कपोलों और कानों पर फैल गयी और अन्त में कदम्ब पुष्प की भाँति शरीर रोमांचित हो गया और आनन्दातिरेक में वाणी गद्‌गद हो गयी।

(क) मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह मिलन का
 दुख सुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का मन का।

(ख) सुखदुख में उठता गिरता संसार तिरोहित होगा।
 मुड़ कर न कभी देखेगा किसका हित अनहित होगा। —आँसू पृ० ४२

(ग) दुख की पिछली रजनी बीच
 विकसता सुख का नवल प्रभात।
 एक परदा यह झीना नील
 छिपाये है जिसमें सुख गात॥
 नित्य समरसता का अधिकार
 उमड़ता कारण जलधि समान।
 व्यथा से नीली लहरों बीच
 बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान। —कामायनी

उपर्युक्त उद्धरणों में सुख-दुख विरह मिलन का दार्शनिक विवेचन किया गया है किन्तु वर्णन इतना सरस और मधुर है कि उसमें दर्शन की शुष्कता के दर्शन नहीं होते । उद्धरण (क) में यह भाव व्यक्त किया है कि मानव जीवन में सुखदुख और विरह-मिलन बारी-बारी से आते हैं । अतः संसार तो पूर्णतः दुखमय है न सुखमय । सुख-दुख के ताने-बाने से जीवन का वस्त्र बुना गया है । यहाँ वेदी और परिणय को आधार मानकर चित्र को सबल बनाया गया है । यही भाव उद्धरण (ख) में भी व्यक्त किया गया है । संसार कभी सुख और कभी दुख के झूले पर पेंग मारता है यह जीवनपर्यन्त चलता रहता है । व्यक्ति अपने ही सुख-दुख से बेसुध रहता है अतः उसे इतना अवकाश नहीं कि दूसरे के सुख-दुख की चिन्ता करे । यहाँ उठना और गिरना क्रिया से सुख दुख और उत्थान-पतन का भाव मूर्तिमान किया गया है ।

उद्धरण (ग) मे समरसता का सिद्धान्त प्रतिपादित करती हुई श्रद्धा विषयोन्मुखी दुखी मनु को समझाती है । उसका मत है कि दुख की रजनी बीत जाने पर ही सुख का नवल प्रभात आनन्द और उत्साह लेकर आता है । सुख की ही सत्ता वास्तविक है, दुख तो सुख का वैभव बढ़ाने के लिए ही आता है—दुख तो सुख के छिपाने का एक झीना आवरण है । जैसे लहरों के ऊपर फेन का अस्तित्व है उसी प्रकार दुख के ऊपर सुख छाया रहता है । रजनी प्रभात लहर आदि प्राकृतिक उपकरणों पर आधारित यह चित्र कला और भाव दोनों से परिपूर्ण है ।

परिवर्तन का एक चित्र देखिये

> प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल
> मिलेंगे वे जा कर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल ।
> पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक
> नित्य नूतनता का आनन्द किये है परिवर्तन में टेक ।
>
> —कामायनी पृ० ५५

इन पंक्तियों में बासी फूल प्रकृति तथा शृंगार को पृष्ठभूमि बना कर परिवर्तन को मूर्तरूप दिया गया है । तीसरी पंक्ति में निर्मोक (केंचुली) शब्द पर परिवर्तन का भाव आधारित है । जैसे सर्प अपनी केंचुल छोड़ देता है उसी प्रकार प्राचीन वस्तुएँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं और नवीन का प्रादुर्भाव होता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसादजी की 'कामायनी' और 'आँसू' में भावचित्रों की बहुलता है । इस छोटे से प्रबन्ध में उन सब चित्रों को दिखाना न तो सम्भव ही है और न अभीष्ट ही । अकेली 'कामायनी' में चिन्ता सर्ग में चिन्ता के अतिरिक्त तन्मय अनुभावों—विस्मृति वैवर्ण्य, जड़ता आदि के भी भावपूर्ण चित्र हैं । आशा सर्ग में विश्वास माधुर्य अनुराग आकांक्षा आदि के अनेक चित्र भरे पड़े हैं । श्रद्धा सर्ग में दया ममता माधुर्य, उत्साह आत्म-समर्पण आदि के अनेकानेक रूप चित्र अथवा शब्दचित्र उभरे हुए हैं । इसी प्रकार काम वासना, लज्जा कर्म ईर्ष्या, इड़ा संघर्ष निर्वेद दर्शन रहस्य तथा आनन्द आदि सर्गों में मानव मन की विभिन्न वृत्तियों का उद्घाटन भावपूर्ण चित्रों के माध्यम से हुआ है ।

गुणात्मक रूप-विधान

गुणात्मक रूप-विधान की सृष्टि करने वाले पाँच विभिन्न उपकरणों में प्रसादजी का ध्यान अन्य छायावादी कवियों की भाँति रंगों ने ही अधिक आकर्षित किया है। स्पर्श, गन्ध आदि उपकरणों से भी चित्र-निर्माण में सहायता ली गयी है, किन्तु इनके माध्यम से बने चित्र बहुत कम हैं।

रंग

सात रंगों में नीला रंग प्रसादजी को अधिक प्यारा लगता है। अतः यथा अवसर अपने विभिन्न चित्रों को रँगने में इसी रंग का उपयोग करते हैं, सुनहले रुपहले लाल गुलाबी आदि रंगों का अपेक्षाकृत कम उपयोग किया गया है।

नव नील पयोधर नभ में काले छाये	—कानन कुसुम पृ० १८
नील गगन सम राम	—वही पृ० १७
किसी गगन की नील-शिखा में	—लहर पृ० ५०
इस नील विषाद गगन में	—वही पृ० ५४
अवगुंठन नील गगन-सा	—आँसू पृ० १४
देवकामिनी के नयनों से जहाँ नील नलिनों की सृष्टि	—कामायनी पृ० १२
उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुसक्यान	—कामायनी पृ० २९
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग	—कामायनी पृ० ४६
घिर रहे थे घुँघराले बाल नीलघन शावक से सुकुमार	—कामायनी पृ० ४७
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुखमणि गण द्युतिमान	—कामायनी पृ० ५४
नवनील कंज हैं झाँक रहे	—कामायनी पृ० ६५
नीलिमा से नयन की रचती तमिस्राभास	—कामायनी पृ० ९१
नीले किरनों से बुना हुआ यह अंचल कितना हलका-सा	—कामायनी पृ० ९८
नयनों की नीलम की घाटी	—कामायनी पृ० १०१
नील गरल से भरा हुआ यह चन्द्र कपाल लिये हो	—कामायनी, पृ० १२२
नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग बालिका-सी किरनें	—कामायनी पृ० १७५
रवि कर-सदृश हेमाभ चमकी	—कानन कुसुम पृ० १००
विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे ?	—आँसू, पृ० १९
हीरे-सा हृदय हमारा कुचला शिरीष कोमल ने	—आँसू पृ० २६
रजनी की रोई आँखें आलोक बिन्दु टपकातीं	
तम की काली छलनाएँ उनको चुप चुप पी जातीं	—आँसू पृ० ५१
प्राची के अरुण मुकुर में	—आँसू पृ० ६१
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलंक-सी	—लहर, पृ० २१
चाँदनी के अंचल में	—लहर पृ० १८
किसी स्वर्ण मल्लिका की सुरभित वल्लरी-सी	—लहर पृ० ६९

कीर्ति दीप्ति, शोभा थी नचती अरुण किरण-सी चारों ओर —कामायनी पृ० ९
सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे —कामायनी पृ० ११
उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी-सी उदित हुई —कामायनी पृ० २१
नव कोमल आलोक बिखरता हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसे मधुमय पिंग पराग —कामायनी पृ० २१
स्वर्णशालियों की कलमें थीं दूर-दूर तक फैल रहीं —कामायनी, पृ० २८
जब कामना सिन्धु तट आई ले सन्ध्या का तारा दीप
फाड़ सुनहली साड़ी उसकी तू हँसती क्यों अरी प्रतीप —कामायनी, पृ० १८
उषा की पहली लेखा कान्त माधुरी से भीगी भर मोद
मद भरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक द्युति की गोद —कामायनी पृ० ४७
और उस मुख पर वह मुसक्यान रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम —कामायनी, पृ० ४७
लता कुञ्ज की झिलमिल से हेमाभरश्मि थी खेल रही —कामायनी पृ० ७८

प्रथम सोलह पंक्तियों में नील के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न-भिन्न स्थलों पर आकर भिन्न-भिन्न अर्थ और रस देने में यह शब्द कितना समर्थ है। प्रसाद के रंग निरीक्षण की अद्भुत शक्ति का परिचय इससे भलीभाँति मिल जाता है। ऐसे ही हेमाभ हीरा अरुण स्वर्ण रक्त, सित आदि शब्दों के विविध प्रयोगों पर ही ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके माध्यम से अभीप्सित रंगों एवं अर्थों की व्यंजना किस प्रकार की गयी है।

श्रवण

कंकण क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार

—कामायनी पृ० ११

गंध

जब सिरीष के कुसुम-गन्ध की मान भरी मधु-ऋतु रातें —कामायनी
× × ×
परिरम्भ कुम्भ की मदिरा निश्वास मलय के झोंके

—आँसू, पृ० २७

स्पर्श

मृत्यु, अरी चिर निद्रे ! तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल

—कामायनी, पृ० १८

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी रजनी तू किस कोने से
आती चूम-चूम चल जाती पढ़ी हुई किस टोने से।

—कामायनी पृ० १९

गुणात्मक रूप-विधान

गुणात्मक रूप-विधान की सृष्टि करने वाले पाँच विभिन्न उपकरणों में प्रसादजी का ध्यान अन्य छायावादी कवियों की भाँति रंगों ने ही अधिक आकर्षित किया है। स्पर्श, गन्ध आदि उपकरणों से भी बिम्ब-निर्माण में सहायता ली गयी है, किन्तु इनके माध्यम से बने बिम्ब बहुत कम हैं।

रंग

सात रंगों में नीला रंग प्रसादजी को अधिक प्यारा लगता है। अतः यथा अवसर अपने विभिन्न बिम्बों को रँगने में इसी रंग का उपयोग करते हैं, सुनहले रुपहले लाल, गुलाबी आदि रंगों का अपेक्षाकृत कम उपयोग किया गया है।

नव नील पयोधर नभ में काले छाये —कानन कुसुम पृ० १८
नील गगन सम राम —वही पृ० ९७
किसी गगन की नील-निशा में —लहर, पृ० ५०
इस नील विषाद गगन में —वही पृ० ५४
मधुप सम नील नयन-सा —आँसू पृ० १४
देवकामिनी के नयनों से जहाँ नील नलिनों की सृष्टि —कामायनी पृ० १२
उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुस्क्यान —कामायनी पृ० २१
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग —कामायनी पृ० ४६
घिर रहे थे घुँघराले बाल नील घन शावक से सुकुमार —कामायनी पृ० ४७
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुखमणि गण द्युतिमान —कामायनी पृ० ५४
नवनील कुंज हैं झीम रहे —कामायनी पृ० ६५
नीलिमा से नयन की रजनी तमिस्राभास —कामायनी पृ० ९१
नीली किरनों से बुना हुआ यह अंचल कितना हलका सा —कामायनी पृ० ९८
नयनों की नीलम की घाटी —कामायनी पृ० १०१
नील गरल से भरा हुआ यह चन्द्र कपाल लिये हो —कामायनी पृ० १२२
नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग बालिका-सी किरनें —कामायनी पृ० १०५
रवि कर-सदृश हिमानी उँगली —काननकुसुम पृ० १०
विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे ? —आँसू, पृ० १९
हीरे-सा हृदय हमारा कुचला शिरीष कोमल ने —आँसू पृ० २६
रजनी की रोई आँखें आलोक बिन्दु टपकातीं
तम की काली छलनाएँ उनको चुप चुप पी जातीं —आँसू पृ० ५१
प्राची के अरुण मुकुर में —आँसू पृ० ६१
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलंक-सी —लहर, पृ० २१
चाँदनी के अंचल में —लहर पृ० १८
किसी स्वर्ण मल्लिका की सुरभित वल्लरी-सी —लहर, पृ० ६९

कीर्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती अरुण किरण-सी चारों ओर —कामायनी पृ० ९
सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे —कामायनी पृ० ११
उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी-सी उदित हुई —कामायनी पृ० २१
नव कोमल आलोक बिखरता हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसे मधुमय पिंग पराग —कामायनी पृ० २१
स्वर्णशालियों की कलमें थीं दूर-दूर तक फैल रहीं —कामायनी, पृ० २८
अब कामना सिन्धु तट आई ले सन्ध्या का तारा दीप
फाड़ सुनहली साड़ी उसकी तू हँसती क्यों अरी प्रतीप —कामायनी, पृ० १८
उषा की पहली लेखा कान्त माधुरी से भीगी भर मोद
मद भरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक द्युति की गोद —कामायनी पृ० ४५
और उस मुख पर वह मुसक्यान रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम —कामायनी, पृ० ४५
सदा कनक की झिलमिल से हेमाभरश्मि थी खेल रही —कामायनी पृ० ७८

प्रथम सोलह पंक्तियों में पीत के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न-भिन्न स्थलों पर आकर भिन्न भिन्न वर्ण और रंग देने में यह शब्द कितना समर्थ है। प्रसाद के रंग निरीक्षण की अद्भुत शक्ति का परिचय इससे भलीभाँति मिल जाता है। ऐसे ही हेमाभ, पीत, अरुण, स्वर्ण, रक्त, सित आदि शब्दों के विषय प्रयोगों पर ही ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके माध्यम से अभीप्सित रंगों एवं वर्णों की व्यंजना किस प्रकार की गयी है।

श्रव्य

कंकण क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार

—कामायनी, पृ० ११

गंध

जब शिरीष के सुमन-गन्ध की मान भरी मधु-ऋतु रातें —कामायनी

× ×

परिरम्भ कुम्भ की मदिरा निश्वास मलय के झोंके

—आँसू पृ० २५

स्पर्श

मधु, अरी फिर मिल ! तेरा
मन हिमानी-सा शीतल

—कामायनी, पृ० १८

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी रजनी तू किस कोने से
आती चूम-चूम चल जाती पढ़ी हुई किस टोने से।

—कामायनी पृ० १९

मलयायम मारुत से कम्पित
पल्लव सदृश हथेली

—कामायनी पृ० १२७

यौवन मधुवन की कालिन्दी बह रही चूम कर सब दिगन्त

—कामायनी पृ० १५९

ऊपर श्रवण गन्ध और स्पर्श पर बने रूपों के उदाहरण में प्रस्तुत की गई पंक्तियों में रेखांकित शब्दों के प्रयोग की सार्थकता अपेक्षित बिम्ब-निर्माण में उनके योग से सिद्ध है।

स्मृति रूप-विधान

देवता बड़े विलासी थे इनका जीवन कामिनी और कादम्ब में इतना घुलमिल गया था कि तीसरी वस्तु को देखने के लिए न तो इनके पास दृष्टि थी न मन था। मकरन्द और पराग से सुवासित कुंजों में सुन्दरियों के साथ हास विलास करने में ही ये अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठे थे। परिणामस्वरूप इनकी अतिशय विलास प्रियता से प्रकृति क्रुद्ध हो उठी। अस्तु इनका वैभव और विलास प्रकृति के क्रुद्ध आवाहन को सहन न कर सका, टूट-टूट कर नष्ट हो गया। अल्पकाल में ही प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया विश्व जलमग्न हो गया। अकेले मनु को छोड़ कर सब को प्रलय ने उदरस्थ कर लिया। इस विनाश को देख चिन्ता तुर मनु अतीत के वैभव और विलासमय जीवन की याद कर रहे हैं:

(१) अब न कपोलों पर छाया-सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुज मूलों में शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप —कामायनी पृ० १०

(२) बिछुड़े तेरे सब आलिंगन
पुलक स्पर्श का पता नहीं
मधुमय चुम्बन कातरताएँ
आज न मुख को सता रहीं

—कामायनी पृ० १२

प्रथम उदाहरण में मनु उस क्षण का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं जब अप्सराओं और देवताओं के विलासमय पारस्परिक आलिंगन और चुम्बन से एक मादक वातावरण की सृष्टि उत्पन्न हो जाती थी। दूसरे उदाहरण में भी उसी आलिंगन और चुम्बन का स्थूल रेखाचित्र उपस्थित किया गया है।

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

पंत ने छायावाद को सुकुमार कलेवर दिया उसे नव-वधू-सा कोमल और आकर्षक बनाया प्रसादजी ने आनन्द-मूलक प्रेम से उसमें पुलक भर दी तो निरालाजी ने आत्मिक स्फूर्ति आंतरिक शक्ति और निज का अभिज्ञान देकर उसमें अपने व्यक्तित्व की छाप जमा दी और उसमें इतना आत्म-विश्वास उड़ेल दिया कि युगों से आती हुई सुगम छन्दों की पिटीपिटाई राह छोड़ वह अकड़कर अतुकांत भाव प्रवाह के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चल पड़ी। पथ के शूल फूल हो गए। छन्दों की कारा से इस उद्धार के लिए कविता-कामिनी निराला की सदैव ऋणी रहेगी।

निरालाजी बंगला अंग्रेजी और संस्कृत के समन्वय रूप में उपस्थित हैं। इसीलिए हिंदी को 'निराला' से कुछ अधिक मिल सका है। बंगला की मधुरिमा तथा संस्कृत और अंग्रेजी का चिन्तन-मनन सर्वत्र है। स्वामी रामकृष्ण और विवेकानन्द से वेदान्त का वरदान पाकर किशोरावस्था में ही इनके जीवन में दार्शनिकता गहरे पैठ गई। दार्शनिकता की आँखों से निरालाजी विश्व को देखते अवश्य रहे हैं परन्तु सामाजिक संघर्ष और उल्लास-पूर्ण मुक्त भाव-धारा में उमड़ती आई है। इस प्रकार निरालाजी का काव्य किसी सीमा में आबद्ध नहीं है, जीव-जगत, प्रकृति-पुरुष व्यक्ति-समाज भूत-वर्तमान-भविष्य सभी चित्र इनकी लेखनी से सँवारे गये हैं।

'अनामिका' में प्रारम्भिक कविताएं संग्रहीत हैं। विवेकानन्द तथा रवीन्द्र के अनुवाद भी 'निराला' के अपने बनकर आये हैं। इन कविताओं की धारा मानवीयता और आध्यात्मिकता इन दो कगारों के बीच बहती है, कभी इसको छूती है तो कभी उसको। पुरातनता तथा प्राचीन बन्धनों के प्रति एक व्यापक विद्रोह निरालाजी के मन में जोर मारता है तो वे जीवन-सिद्धांतों के साथ ही साथ काव्य-सिद्धांतों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। वे अपनी अलग राह बनाना चाहते हैं और उसकी सफलता पर उन्हें अपूर्व विश्वास भी है। इनके आनन्द और अवसाद की व्यंजना मानवीय धरातल पर बड़ी ही सशक्त है। यद्यपि 'अनामिका' का अधिकांश कलेवर अभिधा-परक ही है तथापि निराला की निरालता पूर्ण रूप से प्रस्फुटित है। दृष्टिकोण पूर्ण रूप से मौलिक है।

'परिमल' में एक ही तरह की कविताओं का संग्रह है। इसमें आख्यानात्मक बड़े-बड़े कथा-काव्य और प्रतीकात्मक छोटे-छोटे चित्रों में उसका अन्तर का आकुल अभिव्यंजन भी है। 'अनामिका' का मौलिक कवि 'परिमल' में भावुक तो दीख पड़ता है पर उसके श्रृंगार वर्णन के स्पष्ट रूपों में मानवीय प्रेम का नहीं आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन होता है। 'शेफालिका' 'जूही की कली' मानवीय कार्य-व्यापारों से ऊँचा उठ उसी सीमा तक पहुँच जाती है। मूर्तिमत्ता तक ही सीमित रह कर यदि कवि इन चित्रों में सम्प्रेषणात्मकता न भर देता तो वे एक

स्वरूप खड़ा करने में समर्थ न होकर वस्तु चयन मात्र रह जाते । 'वन-कुसुमों की सज्या' 'सन्ध्या सुन्दरी' जैसे प्रथम श्रेणी के प्रकृति चित्रों में भी कवि वस्तु-चयन तक ही सीमित नहीं रहता । चेतना का आरोप कर कवि ने इन्हें सजीव बना दिया है । 'सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह, छाँह-सी अम्बर पथ से चली' में रूप-विधान के साथ ही साथ एक क्रिया व्यापार भी है जो सजीवता का रूप देता है ।

'परिमल' में निराला का कवि गीति सृष्टि की ओर उन्मुख हुआ था 'गीतिका' में उसके स्वर सध गये 'प्रसाद' के काम को 'गीतिका' में निरालाजी ने आगे बढ़ाया और गीतों में कलात्मकता के साथ ही साथ स्वभाव भी अनुभूति-प्रधान हो उठा है । इन अनुभूति को निरालाजी द्वारा सर्वत्र दार्शनिकता की ऊँचाई मिलती आई है जो कभी रूप विधानों द्वारा और कहीं अन्य संकेतों द्वारा लक्षित होती है । प्रकृति का सम्पूर्ण मन कवि के लिए खुला पड़ा है ।

अभिनव 'अनामिका' में जीवन की विविधता के प्रति कवि अधिक जागरूक है । विद्रोह के तीव्र 'स्वर' गूँज उठे हैं । साम्राज्यवादी वैभव के विरुद्ध धर्म के साथ मानव-मानव समान का नारा लगाता है । काव्य परिष्कार और पांडित्य के साथ सरल जीवन की विडम्बनाओं का चित्र उभर कर आया है । जीवन के प्रति लेखक का दृष्टिकोण भौतिक तो है पर सूखा और कोरा नहीं । क्रमश: 'परिमल' का 'भिक्षुक' 'तोड़ती पत्थर' की सीमा तक पहुँच गया है । कवि चुटीले व्यंग का भी प्रथम लेखा है । व्यंग पूर्णत: प्रगतिशील है । इसमें 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्तिपूजा' जैसी कवितायें भी संग्रहीत हैं एक में धैर्य की सीमा है तो दूसरी में शक्ति की ।

'राम की शक्तिपूजा' के चरम विकास के रूप में 'तुलसीदास' का आविर्भाव हुआ। 'तुलसीदास' की आंतरिक उथल-पुथल का जो मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया गया है वह मानव जीवन में गहरे पैठ की सूचना देता है ।

पश्चात् निरालाजी की प्रवृत्ति व्यंगात्मक अधिक हो गई है । सरल सीधे प्रतीकों को ग्रहण कर मन के भीतर क्रान्ति का सर्जन कर देना इन कविताओं का सिद्ध गुण हो गया है । 'कुकुरमुत्ता' एक सामान्य श्रमजीवी का प्रतीक है और गुलाब पूँजीवादी का । इस वैषम्य से उन्होंने कड़ा आघात किया है । 'गरम पकौड़ी' 'प्रेम संगीत' आदि अनेक कविताओं में रोमांस की सबल प्रतिक्रिया है । 'अणिमा' सक्रमण-कालीन रचना है इसमें प्राचीनता और नवीनता दोनों के दर्शन होते हैं । 'गीतिका' के स्वर उठे तो हैं पर इनमे असहृदता नहीं है, विषाद की छाया स्वर में घुलमिल भी गई है । कवि की मन स्थिति चपल नहीं गम्भीर हो गई है वह अपने को अकेला पा रहा है और उसके जीवन की सान्ध्य बेला भी समीप आती जा रही है । उसके बाल अपपके हो गये हैं और गाल पिचक गये हैं जो नदी-झरने पार करते थे कर चुका है ।

'बेला' का कवि वर्ग-संघर्ष के कारणों के प्रति जागरूक है—'परिमल' में एक बार फिर 'और नाच तू श्यामा' का आग्रह करने वाला कवि अब सीधे जन-शक्ति मे विश्वास रखने लगता है । उद्बोधन का मन्त्र-पाठ करता है और आने वाले युग का चित्र खींचता है । वह आवाहन करता है आओ ! आओ । जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ आज अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला होगी । धोबी चमार और पासी अंधेरे का ताला खोलेंगे । एक पाठ पढ़ेंगे

टाट बिछाओ। उसका विश्वास है कि सरसे फूल से उसमें मन भकर कहीं तू बने पहाड़'। जमाहर के प्रति लिखी गई कवली अपने प्रतीकों में उमड़ कर तूफानी छवित रखती है। 'नय पत्ते सामाजिक आवरण के साथ जीवन का व्यंग्यात्मक रूप से तथ्य निरूपण करने में सफल हैं। कवि भावों के क्षेत्र में विद्रोही है और कला के क्षेत्र में अभिव्यंजनावादी। प्रयोग प्रयोग न रहकर अभिव्यंजना के वैशिष्ट्य का उद्घाटन करते हैं।

'अर्चना' के गीत विविध मनःस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसे कवि दो टूक कहने में विश्वास करने लगा हो। यह उसकी आत्म-शक्ति के विकसित रूप से भी हो सकता है और ह्रास से भी। भावों की सृष्टि करने में निराला ने प्रकृति तथा दर्शन से विशेष प्रेरणा ली है।

व्यावहारिक पक्ष

सांस्कृतिक रूप-विधान

भारत की प्राचीन संस्कृति तथा आचार विचार पर आधारित रूप-विधानों को ही सांस्कृतिक रूप-विधान के अन्तर्गत लिया गया है। निरालाजी भारतीय संस्कृति तथा सोहाग के अमर गायक और पोषक रहे हैं। भारतीय वेद-वेदांगों और दर्शन शास्त्रों के प्रभाव से ही आपकी कविता में आध्यात्मिक तत्त्व अधिक विद्यमान है। सांस्कृतिक रूप विधान के कतिपय उदाहरणों से उपर्युक्त बात विशेष स्पष्ट हो जायगी।

निरालाजी ने अनामिका में 'ज्येष्ठ'[1] महीने के लिए एक स्थल पर 'धूलि-धूसरित सदा निष्काम और जटा पिंगल मंगलमय' कहकर भारतीय तपस्वी का चित्र खींचा है। रूप तथा गुण-साम्य पर आधारित यह चित्र कवि की अद्भुत परिवीक्षण शक्ति का परिचय देता है। इसी शीर्षक में दूसरे स्थल पर 'गत वर्ष' के लिए मृतक का रूपक बाँधा है। मृत गत वर्ष चिता पर जल रहा है। इस करुण अवसान को देखकर प्रकृति निराश है और दिग्वधू रोती है। मृत व्यक्ति को चिता पर जलाना, यह भारतीय संस्कृति की एक प्रथा है।

'राम की शक्तिपूजा'[2] शीर्षक कविता में सांस्कृतिक उपकरणों से निर्मित भव्य चित्र देखिए। राम रावण को जीतने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। रणक्षेत्र से शिविरपुर लौटे हुए राम का उसी समय का चित्र है। राम के धनुष की प्रत्यंचा शिथिल है, तूणीर धरणी पर पड़ा है, उनका कटिबन्ध अस्त तथा दृढ़ जटा-मुकुट विपर्यस्त हो पीठ पर भुजाओं पर और वक्ष पर फैला है। इसमें धनुष तूणीर तथा जटा-मुकुट आदि भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत विशेष महत्त्व रखते हैं।

भक्त के रूप म भगवान का दूसरा चित्र भारत के ऋषि-मुनियों और साधकों की स्मृति ताजी कर देता है। वाम कर दक्षिण-पद पर और दक्षिण कर-तल पर वाम चरण रखे एक आसन से भगवान राम समन्वित जप कर रहे हैं। उपासना की यह मुद्रा भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है। चित्र में किसी अप्रस्तुत-विधान की योजना नहीं है, प्रस्तुत के द्वारा ही चित्र निर्मित किया गया है।[3]

---

१ अनामिका, पृ० ११२१
२ " " १४६
३ " " १२२

सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग
किन्तु नहीं चंचल प्रवाह उद्दाम वेग—
संकुचित एक लज्जित गति है वह
प्रिय समीर के संग।

—परिमल पृ० ११४ से ११६

उपर्युक्त पंक्तियों मे भारतीय संस्कृति में पली 'बहू' का यथार्थ चित्र अपनी सम्पूर्ण कलात्मकता के साथ भावानुभूति को तीव्र करता है। देखिये

वह सौन्दर्य-सरोवर की एक तरंग के सदृश है किन्तु उसमें विदेशी युवतियों की चंचलता और वाचालता नहीं बल्कि स्त्रियोचित लज्जा और संकोच है। वसंत ऋतु की किसलय-कोमल लता जिस प्रकार किसी वृक्ष के आश्रय में रहती है उसी प्रकार वह अपने पति के आधीन है। यहाँ भारतीय स्त्री के पातिव्रत धर्म की ओर संकेत है। जो अपना तन-मन धन सब कुछ पति के चरणों में समर्पित कर उसके बंधन में चिरकाल तक बँध गई है। वह शमा की भाँति तिल-तिल जलती है किन्तु सुहाग की रानी वह बहू अपने पतिगृह को सर्वदा ज्योतिर्मय किए रहती है। उसकी अपनी न कोई इच्छा है न अभिलाषा। विषय-वासना का तुच्छ मानती हुई वह प्रिय-पूजा में निरन्तर लगी रहती है। व्यतिरेक अलंकार द्वारा तरंगो का अपकर्ष दिखाकर लज्जा की पुतली बहू का उत्कर्ष प्रकट किया गया है।

'बहू' की भाँति अंचल, घूँघट साड़ी दुल्हा-दुल्हिन मंगल-कलश पूजा-आरती आदि सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से कुछ सुन्दर पूरे या अधूरे चित्र दिये हैं। "तरंगों के प्रति"[1] शीर्षक कविता में कवि तरंग पर नारी का आरोप करके कहता है कि अपना नीला अंचल हिला-हिला कर किस अनन्त से आ रही हो। इसके 'अंचल' में भारतीय संस्कृति की छाप है।

भारतीय समाज में विवाहोपरान्त बहुएँ पति-गृह में पर्दा प्रथा के अनुसार अपने पूज्यों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के निमित्त 'घूँघट' निकालती हैं। घूँघट के उठने और गिरने से भी एक लघु-चित्र बनता है। नैहर में घूँघट के उठने से[2] बुआ ने स्वतन्त्रता प्राप्त करली थी। अतः पति-गृह की मर्यादाएँ भी घूँघट के उठने से अब कम हो गई थीं। इसी प्रकार "भरी तुम्हारी धरा हरित साड़ी पहने ज्यों युवती देख रही हो गगन को नहीं कहाँ क्यों"[3] में साड़ी भारतीय स्त्रियों की वेशभूषा और संस्कृति से सम्बन्धित है।

लला ज्यों ही उधर दूल्हा
बैठने लगे दोनों दुल्हन-दूल्हा
कोठरी में मलग था
आँख बाँसी की बचा।
हैरियर या बरसी—

—कुकुरमुत्ता पृ० २९

१ परिमल पृ० ६४
२ कुकुरमुत्ता पृ० २८
३ कविता पृ० १९

उपर्युक्त पंक्तियों में रूपक अलंकार की सहायता से मोती और बहार का दुल्हन और दुल्हा बनाया गया है तथा टीसियर कुंज को बराती। दुल्हन-दुल्हा का बन्द कोठरी में छिपकर बातें करना तथा छाती में बरात इत्यादि का आयोजन भारतीय संस्कृति की बहुत प्राचीन प्रथा है। राम के युग में भी बरात की प्रथा थी। चित्र में भावों को उद्दीप्त करने की क्षमता तो नहीं है—हाँ उनमें चमत्कार अवश्य है।

सूर्यास्त के पश्चात् कुल-वधुएँ भवन में दीपक जलाकर देवता की आरती उतारती हैं। उसका एक सीधा-सादा चित्र देखिए। इसमें कला नहीं भावुकता और सादगी है।

सुभासना उठी प्रिया
आनत-नयन,
भवन-दीप जला रही
आरती-उतार।

—गीतिका पृ० १०८

भवन में दीप जलाकर आरती उतारने की प्रथा भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है।

वैवाहिक आदि मांगलिक अवसरों पर अथवा किसी पहुँचे हुए साधु महात्मा के स्वागतार्थ 'शामियाना' ताना जाता है जिसके चारों ओर अशोक और आम की पत्तियों से निर्मित 'तोरण' लगाये जाते हैं और द्वार के दोनों ओर जलपूर्ण मंगल-कलश रख जाते हैं जिन पर सेंदुर से स्वस्तिक का चिह्न खींचकर उसके ऊपर जौ और धान से भरी हुई थाली और आम्र-पल्लव तथा नारियल रखा जाता है। ऐसा ही चित्र 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज'[1] के स्वागत में निरालाजी ने खींचा है।

भारत[2] माता की दिव्य मूर्ति का चित्र देखिए — हिम तुषार का शुभ्र मुकुट धारण किये हुए हैं जिनका वसन तरु-तृण-वन-लता है, और अंचल में राशि राशि सुमन बिखरे हुए हैं गंगाजी का पवित्र जल ही जिसके गले का श्वेतहार बना हुआ है। ऐसी देवी-स्वरूपा भारत माता के पद प्रक्षालन का कार्य नाना प्रकार की स्तुति करके सागर करता है। इसमें अंचल और हार सांस्कृतिक उपकरण हैं। 'कनक-शस्य-कमल-धरे' तथा 'प्राण प्रणव-ओंकार' के माध्यम से भारत माता के विराट चित्र की अवतारणा सांस्कृतिक चेतना का कलात्मक स्वरूप है।

पौराणिक रूप-विधान

पतझड़ में पेड़ की सूखी डाली को लेकर पार्वती का सुन्दर चित्रण निराला ने किया है।

सूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी।
देख खड़ी करती तप अपलक,

१. अणिमा पृ० ७९
२. गीतिका पृ० ७९

हीरक-सी समीर-माला जप
शैल-सुता अपर्ण-अशना
पल्लव-वसना बनेगी—

—गीतिका पृ० १४

इन पंक्तियों में बाल पर आधारित पार्वती का रूपक बाँधा गया है। यह सूखी डाल तपस्या के बल पर मधुऋतु को प्राप्त होगी (वर प्राप्त करेगी) तथा वासंती वसन धारण करेगी। पार्वती देखो कितने मनोयोग से निश्चल मन से तपस्या कर रही है और हीरों से गुँथी समीर की माला जप रही है (यहाँ तुषार बिन्दु हीरे हैं जो समीर-ताग में पिरोये प्रतीत हो रहे हैं।) यह शैल सुता (डाल) अपर्ण अस्थल बसन पहन कर निराहार तप कर रही है अतः इसकी मनोकामना अवश्य सफल होगी, अर्थात् पल्लव रूपी वसन धारण करेगी। इसके कठिन तप से प्रसन्न हो मधुऋतु अपने सारे फूलों के गुँथे हुए हार इसे पहनायेंगे उस समय यह स्नेहातिरेक से आत्मविस्मृत हो जायेगी। तब यह स्मरहर (शिव) को वरण करेगी। उसे देखने पर देखने वालों का काम विकार नष्ट हो जायगा और वे सच्चे आनन्द के भागी होंगे। आज यह बाला (पार्वती सूखी डाल) तप में तल्लीन है इसकी सफलता से सारे विश्व को अनन्त स्वाद और सन्तोष देने वाले मधुर फल मिलेंगे। जिस शिव ने गरल को अमृत के समान पान कर लिया उन्हीं के बल का समस्त संसार गैय चाहता है। प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से शंकर को वरण करने के निमित्त पार्वती के तप का यह विराट रूपक तपश्चर्या में निमग्न गिरिजा का तपःपूत चित्र 'निराला' की अद्भुत कल्पना और परिवीक्षण शक्ति का परिचय देता है। 'निराला' ने वैष्णव काव्य में प्रचलित प्रतीकों का सर्वथा परित्याग करके प्राकृतिक उपकरणों की सहायता से नये-नये मौलिक प्रतीक चुने हैं। इसीलिए इनके दार्शनिक बिम्बों में थोड़ी अस्पष्टता आ गई है।

परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से 'निराला' के गीत ओतप्रोत हैं। रहस्य की जीव और ब्रह्म की आत्मा तथा परमात्मा की कलात्मक अभिव्यक्ति की क्रिया में निरालाजी छायावादी कवियों में विशेष स्थान रखते हैं। आत्मा परमात्मा की खोज में भटकते भटकते जब थक जाती है तो निरालाजी प्रतीकों की सहायता से बताते हैं कि 'पास ही रे हीरे की खान खोजता कहाँ और नादान' और उस हीरे की खान परमात्मा को पाने का साधन भी बताते हैं। देखिये

जल के सूक्ष्म छिद्र के पार
देखना तुझे मीन इस पार,
चित्त के जल में बिम्ब निहार
कर्म का धनु ध कर में धार,
मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान,
खोजता कहाँ इसे नादान ?

—गीतिका, पृ० ३६

कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में महाभारत काल का एक पौराणिक चित्र दिया है। अर्जुन ने ऊपर नाचती हुई मछली का प्रतिबिम्ब जल में देखकर उसकी आँख में बाण से

निशाना लगाकर तृष्णा को वरण किया था। उसी धरातल पर यह आत्मा और परमात्मा का रूपक बाँधा गया है। चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार नाचती हुई मछली को ऐ आत्मा! तुझे बाण से बेधना है। मन कर्म का धनुष हाथ में ले चित्त के जल में उसका प्रतिबिम्ब देखकर उसे बेधने पर ही वह तृष्णारूपी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। तात्पर्य यह है कि आत्मा को कर्मनिष्ठ और ध्याननिष्ठ बना अनवरत रूप से साधना करने पर ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। इसी को स्पष्ट करने के लिए इस पौराणिक रूपक का आश्रय लिया गया है। इस कविता में भी प्रतीकों का चयन नितांत मौलिक है।

'प्रेयसी' शीर्षक कविता में प्रेयसी के यौवन-उभार तथा वासना से प्रदीप्त उसके शरीर का चित्रांकन करने के लिए पौराणिक उपमान चुना है। वासना से झुलसती हुई उसकी देह इस प्रकार प्रतीत होती थी जैसे 'मन्मथ-निकुंज की रति को मद-प्रवेश मिल गया हो।' मन्मथ-निकुंज और रति पौराणिक अप्रस्तुत रूप-विधान हैं। इन उपमानों से प्रेयसी के रूप का प्रभाव चित्र ही सम्मुख आता है। एक दूसरे स्थल पर प्रेयसी का रूपानुभव कराने के लिए उर्वशी अप्रस्तुत के रूप में प्रस्तुत की गई है।'

'सरोज स्मृति' शीर्षक कविता में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को (जिनके चमरौधे जूते से भयानक गन्ध आती है और जिनके पैर में बेवाई फटी है) शंकर और फूल सी कोमल 'सरोज' को 'गिरिजा' कहा है। तुल्य अथवा तुल्य शंकर को तो गिरिजा ने वरण कर लिया था किन्तु निरालाजी कहते हैं कि ऐसी शक्ति नहीं कि मैं अपनी गिरिजा का विवाह ऐसे आधुनिक शंकर से कर दूँ। शंकर और गिरिजा पौराणिक उपमान हैं। गिरिजा कहने से सरोज का स्वस्थ सुन्दर शरीर सामने आता है और शंकर कहने से कुरूप एवं दरिद्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण के किसी लड़के का कल्पित रूप दृष्टिगोचर होने लगता है।

'राम की शक्तिपूजा' शीर्षक कविता में निरालाजी ने माँ दुर्गा का स्पष्ट चित्र दिया है। वाम पद असुर स्कन्ध पर, दक्षिण पद सिंह पर था। ज्योतिर्मय रूप वाली माँ दुर्गा के दसों हाथ विभिन्न अस्त्र से सुसज्जित थे। उनकी मन्द मुस्कान के समक्ष विश्वश्री भी लज्जित हो जाती थी। उनके दक्षिण में लक्ष्मी और गणेश वाम में स्वामी कार्तिकेय तथा मस्तक पर शंकर विराजमान थे। यह चित्र सीधा-सादा और प्रभावशाली है इसमें किसी अप्रस्तुत की सहायता नहीं ली गई है।

निम्नलिखित पंक्तियों में पौराणिक उपकरणों के माध्यम से 'माया' का चित्र देखिए — माया क्या है?

यक्ष विरही की कठिन विरह-व्यथा
या कि तू दुष्यन्त-काम्य शकुन्तला?
या कि कौशिक-मोह की तू मेनका
या कि चित्त-चकोर की तू विधु-कला?

—परिमल पृ० ७२

---

१ प्रेयसी अनामिका पृ० १
२ ,, ,, पृ० २
३ सरोज स्मृति अनामिका पृ० ११
४ अनामिका पृ० १५४-६२

प्रस्तुत पंक्तियों में 'माया' को स्पष्ट करने के निमित्त तीन पौराणिक उपमान चुने गए हैं। माया या तो विरही यक्ष की विरह-व्यथा है, या दुष्यन्त की शकुन्तला है अथवा कौशिक-मोह की मेनका है। चित्र उग्र और कठोर प्राकृतिक उपादान हैं। प्रभाव-साम्य पर आधारित यह चित्र सन्देहालंकार से और भी स्पष्ट हो जाता है।

निरालाजी का 'कुकुरमुत्ता'[1] शोषित श्रमजीवी का प्रतीक है हास्य व्यंग्य की शैली में कैपिटलिस्ट गुलाब से वह श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। उसी कुकुरमुत्ता का रूप-चित्रण करने के लिए निराला ने कुछ पौराणिक उपमानों को चुना है। कभी उसे विष्णु का सुदर्शन चक्र' बनाया कभी यशोदा की मथानी और कभी तीर से बींधा हुआ राम का धनुष बना दिया है। उपर्युक्त उपमान कुकुरमुत्ता का रूपानुभव कराने में समर्थ हैं। इन नये उपमानों से पाठक चमत्कृत तो होता है किन्तु काव्योत्कर्ष में इनसे बाधा भी पड़ी है। अगुन्दर वस्तु का सुन्दर उपमान हास्य-विनोद की भले ही पुष्टि कर दे भाव-सृष्टि में वह सर्वत्र निष्फल सिद्ध होता है।

ऐतिहासिक रूप-विधान

'निराला' की कविता में ऐतिहासिक और राजनैतिक रूप-विधान बहुत विरल हैं। जो एकाध ऐतिहासिक चित्र मिलते हैं वे स्मृति-रूप-विधान के धरातल पर खड़े किये हैं। उनमें अप्रस्तुत रूप विधान का योग नहीं है। ऐतिहासिक वातावरण का दृश्य उपस्थित करके अथवा ऐतिहासिक पात्रों का नामोल्लेख करके ही कवि छुट्टी पा लेता है। 'दिल्ली'[2] शीर्षक कविता में ऐतिहासिक वातावरण का दृश्य दर्शनीय है।

यह वही देश है जहाँ कामिनी कांचन और कादम्ब तीनों का विलासमय नृत्य निशि दिन होता रहता था जहाँ की सुन्दरियाँ ऊँचे-ऊँचे प्रासादों में बैठकर झरोखों से बाह्य दुनिया की चहल-पहल देखती थीं, उनकी नस-नस में प्रेम की मदिरा और स्नेह का उन्माद भरा था। जहाँ नारियाँ 'केश-गुच्छ-भार रख मुख प्रिय-स्कन्ध पर' 'भाव की भाषा' से रात-रात भर जागकर बातें करती थीं और उनके प्रियतम का मुख प्रिया की प्रीवाकपोल बाहुओं से घिरा हुआ अनुराग राग में रंजित रहता था। किन्तु आज यमुना की ध्वनि में अतीत की सुहाग-गाथा गूँज रही है। वह 'दिल्खुश' और 'दीवाने-आम' आज स्तब्ध है। शाही बेगमों का दल भी मौन है, 'मीनार' और 'मकबरे' भी सो रहे हैं। सती संयोगिता और अन्य हिन्दू रानियों के पातिव्रत की कहानी ही आज शेष है। इस प्रकार कवि ने अतीत की कथा और वातावरण का चित्र उपस्थित करके पाठकों के मन में भावोद्रेक करने में सफलता प्राप्त की है।

'कुकुरमुत्ता'[3] में मैहरुन्निसा, फारस तथा ब्रिटेन आदि ऐतिहासिक पात्रों से 'कुकुरमुत्ता' का सम्बन्ध जोड़कर हमारी ऐतिहासिक कल्पना को जगाया है। इसी प्रकार गड्ढे में हुए बोलते एक मेढक को सुकरात और दूसरे सुनने वाले मेंढक को अफलातून' बना दिया है।

---

१ कुकुरमुत्ता' पृ १

२. अनामिका पृ २८

३ कुकुरमुत्ता

के लिए प्रयुक्त 'सुकमल' और 'अरुणापूर्ण' उपमान नवीन भले ही हों किन्तु बेतुके-से लगते हैं, इससे भाव-सौन्दर्य मिट-सा जाता है।

प्राकृतिक रूप-विधान

पंत की भाँति 'निराला' को भी प्रकृति से एक गाढ़ा मोह है इस मोह की अभिव्यक्ति वे या तो दार्शनिक सद्भावों एवं रहस्यवादी चिंतन-धारा से करते हैं अथवा एक सहृदय भावुक कवि की भाँति प्रकृति का मानवीकरण करके उससे तादात्म्य स्थापित करते हैं। विशुद्ध प्रकृति चित्रण तथा मानवीकरण में 'निराला' ने इतना सामंजस्य स्थापित कर दिया है कि दोनों के बीच में कोई विभाजक रेखा खींचना कठिन सा प्रतीत होता है।

'निराला' का[1] 'सजल शिशिर धौत पुष्प' कहीं किरणकुमारी को देखता है, कहीं वसंत[2] 'क्षीण कटि तटिनी के तट' की सैर करता है और किरणबालाएँ लहरों से खेलती हैं। यहाँ प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। अब विशुद्ध प्राकृतिक चित्रण के साथ-साथ उसका मानवीकरण देखिये।

'प्रात'[3] शीर्षक कविता में प्रातःकालीन प्राकृतिक सुषमा का एक दृश्य लीजिये। पार्वती की गोद में स्वस्थ-पुष्ट बालारुण की शोभा दर्शनीय है। चुम्बित सस्मित कुंचित कोमल किरणें अति कोमल हैं। किसलयों के मधुर यौवन-मद से रक्ताभ हैं और सुन्दर भौंरे चारों ओर गुंजार कर रहे हैं। 'अमलधवल हिमहार' पहने हुए हैं लाल-लाल पलाश का पुष्प हँसता-सा प्रतीत होता है। वन-उपवन में नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प हँस रहे हैं और 'सौरभ-वसना समीर' कानों में अमृत घोल जाती है। इन पंक्तियों में एक ओर प्रकृति को आलम्बन मानकर उसका रूप चित्रण किया है। 'रक्ताभ किसलय' रक्ताम्बर पलाश, हिमहार, में रंग का चुम्बित तथा कोमल में स्पर्श का मधु-गुंजन में श्रवण का सौरभ-वसना समीर में गंध का वर्णन करके विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से गुणात्मक रूप-विधान की सृष्टि की है। इन इन्द्रियों की सहायता से भी एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हो जाता है जिसका आस्वादन इन्द्रियों के माध्यम से ही होता है। दूसरी ओर प्रकृति का मानवीकरण करके उसका चित्र खींचा गया है। 'नाचे उस पर श्यामा' में प्रकृति का सीधा-सादा चित्र भी काफी आकर्षक और यथार्थ बन पड़ा है—देखिए विकसित पुष्प की मादक सुगंध से उन्मत्त होकर आकुल-व्याकुल भौंरे चारों ओर घूम रहे हैं। सुरभित मलयानिल चल रही है। नदी-नद तथा निर्झरिणी की कल-कल में गीतों की लय है। किसलय-निलय में विहंगों का कलरव गूँज रहा है। अगली पंक्तियों में सूर्योदय का दृश्य भी काफी मनोरम है।

तरुण-किशोर अरुण कलाकार
स्वर्ण-तूलिका-कर सुकुमार
पट-भूमी पर रचता है जब
कितने वर्णों का आकार —अनामिका पृ० १०४

---

१ अनामिका पृष्ठ ९।
२ ,, ,, ४९।
३ ,, ,, ९९।

इसमें सूर्य चितेरा है, उसकी सुनहली किरणें ही स्वर्ण-तूलिका है तथा पृथ्वी चित्र-फलक है जिस पर नाना वर्णों का चित्रांकन करता है। चितेरे का रूपक बाँधकर सूर्योदय का गत्यात्मक सौन्दर्य बहुत स्पष्ट कर दिया है। गंध और रंग का भी उचित सामंजस्य स्थापित किया गया है। निराला की इन्द्रियाँ इतनी सजग हैं कि जहाँ वे बाग बाग बन-बन की वासंती सुगंध का जिक्र किये हैं वहाँ वे मटर के पुष्प की सुगंध लेना भी नहीं भूले। रंगों के चयन में एक ओर नीले नभ के विशाल प्रांगण में विचरण करते हैं वधि-सा मुख ज्योत्स्ना-सा गात देखते हैं और दूसरी ओर अलसी के नीले फूलों की भी कमनीयता निहारना नहीं भूलते।

निराला ने प्राकृतिक चित्र खींचते समय वस्तु-परिगणन-शैली का भी उपयोग किया है। देखिये

आमों की मंजरी पर उतर चुका है वसन्त"

—अणिमा, पृ० ९८ ९९

उद्दीपन रूप में कवि ने पावस का सरस वर्णन किया है

अलि घिर आये घन पावस के।
द्रुत समीर कम्पित थर-थर-थर,
झरती धाराएँ झर-झर-झर,
जगती के प्राणों में स्मर शर
बेध गए, कसके —परिमल पृ० ७७

उपर्युक्त पंक्तियों में ध्वनियों के माध्यम से चित्र खींचा गया है। थर-थर-थर कहने से कम्पित समीर का और झर-झर-झर कहने से झरती धाराओं का रूप बहुत स्पष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार की ध्वनि प्रतिमा 'बादल राग' में देखिये

झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर।
राग-अमर। अम्बर में भर निज रोर।
झर झर-झर निर्झर गिरि सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर सागर में,
सरित तड़ित-गति-चकित पवन में
मसता पल पल
हँसता है नद खलखल
बहता, कहता कुल-कुल कल-कल कल-कल।

—परिमल पृ० १४९-५०

उपर्युक्त रेखांकित पंक्तियों से तदनुकूल चित्र बन जाते हैं।

प्रभात का चित्र देखिये

प्रिय के हाथ लगाये जागी
ऐसी मैं सो गई अभागी।
हरसिंगार के फूल झर गये,
कनक रश्मि से द्वार भर गये,

खिड़कियों के कल कण्ठ भर गये
भस्म रमाकर चला विरागी।
शिशु-गण अपने पाठ हुए रत,
हुई निपुण गृह के कर्मोन्नत
गृहिणी स्नान-ध्यान को उद्यत,
भिक्षुक ने घर भिक्षा माँगी।

—अर्चना पृ० ६८

इस गीत की प्रत्येक पंक्ति प्रभात-कालीन वातावरण का चित्र प्रस्तुत करती है। चित्र में यद्यपि लक्षणा और व्यंजना का पुट नहीं है फिर भी यह आकर्षक है। 'प्रसाद' ने भी 'बीती विभावरी जाग री' शीर्षक कविता में प्रभात का चित्र खींचा है जो वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रभात का सर्वश्रेष्ठ चित्र कहा जा सकता है।

शिशिर-समीर के कार्य-व्यापार का प्रभाव-चित्र देखिये

काँपी नील मृणाल वृन्त पर
नील-कमल-कलिकाएँ थर-थर
प्रात-अरुण को करुण नयन भर
तकती महा अधीर।

—गीतिका पृ० ८

शिशिर समीर के चलने से नील नील-कमल-कलिकाएँ मृणाल वृन्त पर थर-थर काँपने लगीं उन पर पड़े हुए ओस-बिन्दु ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे डबडबाई आँखों से वे अपने प्यारे प्रियतम प्रातःकाल की प्रतीक्षा कर रही हैं। कलिकाओं का कम्पनमय चित्रण शिशिर-समीर का भी गुणानुभव करा देता है।

इसी से साम्य रखता हुआ 'शिशिर'[1] का दूसरा प्रभावपूर्ण चित्र शिशिर को सजीव कर देता है। शिशिर की ठण्ढी-ठण्ढी वायु तथा कुहरे के प्रभाव से 'तिमिर-तिमिर हो गये हैं दिशा-पथ। और तरु गत-किसलय जीवित होते हुए भी मृत मालूम होते हैं। 'सलिल अनिल' आश्चर्य-चकित और निरुपाय हैं। पक्षियों का कलरव भी बन्द है। इस प्रकार तुषार-दल से सारा का सारा रूप नष्ट हो गया है। शिशिर का यह आतंकपूर्ण चित्र रूपक अलंकार के योग से और भी भयानक हो गया है।

'बादल राग' शीर्षक कविता में बादल के रौद्र रूप का वर्णन कीजिये। बादल की भयंकरता को प्रदीप्त करने के लिए तदनुकूल विशेषण और उपमान चुने गए हैं। बादल के लिए प्रयुक्त विशेषण देखिए निर्बन्ध अगम-तम-अपम अनर्गल स्वच्छन्द, अपार कामनाओं के प्राण विराट्, विप्लव के प्लावन सावन-घोर-गगन के सम्राट्, उन्माद विश्व-विभव को मट-कूट भरने वाले अपवाद इत्यादि विशेषण प्रध्वंसकारी बादलों के विराट रूप और उनके कार्य-व्यापार का प्रभावपूर्ण चित्र खींच देते हैं।

इसके ठीक विपरीत 'बादल' का कोमल आह्लादकारी स्वरूप देखिये:

सिन्धु के अश्रु!
धरा के खिन्न दिवस के दाह!

---

१. परिमल पृ० १११।११

विदाई के अनिमेष नयन।
छोड़ अपना परिचित संसार—
चले जाते हो सेवा-पथ पर—

—परिमल पृ० १५१-५४

सेवा-पथ पर बालक 'धन्य साथी' की भाँति दूसरों का दुख-दर्द मिटाने के लिए बन्धुओं के उत्सुक नयनों का सच्चा प्यार छोड़कर चल पड़ता है। मानव आकृति और मानव-व्यापारों से परिपूर्ण प्रकृति के दर्शन हमें 'बादल राग' शीर्षक कविता में होते हैं।

कविवर 'निराला' ने प्रकृति के माध्यम से साकार ब्रह्म की मृदु मुस्कान और उसकी प्रखर-ज्योति का भी दर्शन किया है। नील नभोमंडल में जगमगाते रवि शशि तथा नक्षत्रों को वह एक ही शक्तिशाली हाथ की कृति मानता है।

गगन घन विटपी, सुमन नक्षत्र ग्रह, नव धाम
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना वसु परिणाम।

—गीतिका पृ० ६२

इसी प्रकार अमावस्या की तिमिर अन्धकार-मयी रजनी ब्रह्म की निर्मल ज्योति से प्रकाशपूर्ण हो जाती है। कवि हर्षातिरेक में आत्मविस्मृत हो जाता है और आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है।

तुम आये
अमा निशा थी

—अणिमा पृ० ५४

मानवीकरण : नारी-रूप

'जूही की कली'[1] शीर्षक कविता में निराला ने 'जूही की कली' तथा 'मलयानिल' का मानवीकरण करके पारस्परिक मिलन का सजीव चित्रण किया है। विरह विधुरा सुसुप्त जूही की कली का रूपकमय चित्र देखिए

'अमल कोमल तन वाली सुहागभरी जूही की कली प्रियतम मलयानिल के विरह में विजन-वन-वल्लरी पर शिथिल पत्रांक में स्नेह-स्वप्न-मग्न दृग बंद किये वासंती निशा में शांत भाव से सो रही थी। उधर वियोगी मलयानिल को भूली हुई चाँदनी रात की मधुर मिलन की बात तथा कान्ता (जूही की कली) के कम्पित कमनीय गात की याद आई। अतः मिलनातुर पवन उपवन-सरसरित् गहन-गिरि कानन तथा कुञ्ज-लता-पुञ्जों को पार करता हुआ अपनी प्रियतमा के समीप पहुँच गया। सोती हुई प्रियतमा का चुम्बन किया, नायक के अधरों के स्पर्श मात्र से उसका शरीर सिहर उठा। किन्तु अपने मधुर स्वप्नों में तल्लीन यौवन की मदिरा से उन्मत्त नायिका अपने बंकिम विशाल नेत्र निद्रावश मूँदे ही रही। दीर्घकालीन वियोग में तड़पते हुए नायक को अब प्रेमिका का इस प्रकार का सोना अखरने की सीमा तक पहुँच गया उस समय वह अपने को नियंत्रित न कर सका। अस्तु उसने निपट निठुराई के साथ झोंकों की झड़ियों से उसकी सुन्दर सुकुमार देह झकझोर डाली और गोरे गोरे कपोल मसल दिए। युवती चौंक पड़ी। उसने देखा उसके मनचाहे प्रियतम उसकी सेज

[illegible]

के समीप ही बढ़ रहे हैं। नम्रमुखी नायिका ने खिसककर आत्मसमर्पण कर दिया।"

निरालाजी की प्रकृति में मानवीकरण की यह भावना इनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। इन्होंने प्रकृति में मानव की प्रत्येक गतिविधि का अनुभव करके प्रकृति के माध्यम से वासना-मय यौवन का स्थूल चित्रण किया है, इसे हम रति चित्रण की कोटि में रख सकते हैं। प्रो० कमलाकांत पाठक का मत है कि 'निराला' ने अपने प्रकृति-चित्रों में दो प्रकार से रूपक-योजना की है। पहला नारी के रूपक द्वारा मानवीकरण और दूसरा जीव-ब्रह्म-परक शृंगार के रूपक द्वारा आध्यात्मिक व्यंजना। पाठकजी 'जूही की कली' को दूसरे प्रकार की रचना मानते हैं।[1] इसी मत का समर्थन डा० रामरतन भटनागर ने भी किया है। 'जूही की कली' का विश्लेषण करते हुए आप कहते हैं कि यहाँ अनन्त की राह पवन है। इस कविता में पवन (परमात्मा व्याप्ति का प्रतीक) अभिमान है। वैष्णव भक्त यह भी मानते हैं कि चिदात्मा स्वयं पुष्टि की भावना में भरकर जीवात्मा के प्रति क्रियाशील होती है।[2] किन्तु मुझे तो यह चित्र पूर्णरूपेण रोमांटिक लगता है। दार्शनिकता का पुट देकर कविता के स्वाभाविक सौन्दर्य पर तापसी गेरुआ वस्त्र डालना, खींचातानी-सा लगता है।

कविता का कलापक्ष भावपक्ष से घुलमिलकर चित्र को जानदार कर देता है। इसी से साम्य रखता हुआ दूसरा नारी-चित्र देखिये

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक-आह्वान-भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।

—शेफालिका परिमल पृ० १००

यौवन-उभार ने 'शेफालिका' की 'कंचुकी' के 'बंद' प्यार से खोल दिए। उस समय शेफालिका सोने की मुद्रा में थी—वह पल्लव-पर्यंक पर सो रही थी। मिलन की उत्कंठा से उच्छ्वसित उसके लालसी कपोलों पर शिशिर से गगन के चुम्बन झरते हैं। इस प्रकार शेफालिका को पूर्ण युवती बनाकर उसके वासना-पूर्ण मानवी व्यापारों का चित्रांकन किया गया है। निरालाजी की प्रकृति—'शेफालिका' साकार तरुणी की भाँति सोती जागती चलती फिरती है—यही नहीं वह चुम्बन और परिरम्भन आदि वासनामयी प्रणय-क्रीड़ाएँ भी करती है। 'शेफालिका' आत्मा का प्रतीक है। आत्मा-परमात्मा के मिलन का नग्नचित्र कवि ने रूपक द्वारा स्पष्ट किया है। प्रकृति के विराट रूप की यह कल्पना 'निराला' की मौलिकता है।

शरद और शिशिर ऋतुओं की विभाजित रेखा बड़ी सूक्ष्म है। ये ऋतुएँ एक दूसरे के इतनी समीप हैं कि यह ज्ञात करना कठिन हो जाता है कि कब शरद बीत गया और 'शिशिर' आया। शरद और शिशिर को दो बहनें बनाकर निराला ने उनका सुन्दर चित्रण किया है। देखिये

१. प्रो० कमलाकांत पाठक, आधुनिक हिन्दी काव्य दूसरा भाग पृ० १०२
२. डा० रामरतन भटनागर, कवि निराला, पृ० २००

सोती हुई सरोज अंक पर,
शरत-शिशिर दोनों बहनों के
सुख-विलास-मद शिथिल अंग पर
पद्‌म-पत्र पंखे झलते थे,

—परिमल पृ० १२७

उपर्युक्त कविता में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का भेद भाव मिट-सा गया है। शरद् और शिशिर दोनों पर सुख में पली दो बहनों का अध्यवसान किया गया है। यहाँ समीरण दासी है। 'जूही की कली' में समीरण को नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वर्षा बड़ी बहन है।[1]

इसमें आदि से अन्त तक एक प्रकार का सांग-रूपक है। दोनों बहनों को पद्‌म-पत्र का पंखा झलना अस्वाभाविक है, क्योंकि शिशिर में कमल मर जाता है। दासी समीरण डाँट-डपट खाने के भय से हाथ-पैर मलती थी। बड़ी बहन के नाते वर्षा को छोटी बहनों को झिड़कने का अधिकार था पर प्यार से। उसने उन्हें हृदय से लगाकर उठाया। शरद् और शिशिर में बहनों का-सा कुछ सादृश्य नहीं है। न वे सोती हैं न जागती। उनके सोने-जागने का भाव मन्द पड़ जाना और तीव्र हो जाना है। यही धर्म का सादृश्य है। किन्तु शिशिर में हवा उनके विकास-निकास में हाथ बटाती है। वर्षा से इनका उत्थान होता है। यह साधर्म्य-प्रभाव है। ऐसी अप्रस्तुत योजना करके कवि कल्पना के इतना वशीभूत हो गया है कि वह गुण-साम्य के भाव को भूल-सा ही गया। सम्भव-असम्भव की सीमा रेखा लाँघ गया। अप्रस्तुत नारी-रूप ही रह रह कर हमारे सामने आ जाता है। अप्रस्तुत से प्रस्तुत दब-सा गया है। पर लक्षणा के बल पर रूपक रस-संचार में सर्वथा समर्थ है। रसानुभूति प्रबल है।

परी-सी आकाश-मार्ग से उतरती हुई सन्ध्या सुन्दरी का चित्र देखिये। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने एक सफल चित्रकार की भाँति रंग में तूलिका डुबोकर विशाल चित्र-फलक पर अनन्त प्रकृति के अनन्त रूपों का चित्रांकन किया है।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किन्तु जरा गंभीर, नहीं है उसमें हास-विलास
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।

—संध्या सुंदरी अपरा पृ० ११-१४

1. पं० रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० ११

धीरे-धीरे मंथर गति से सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी मेघाच्छन्न आकाश से धरती पर उतर रही है। धीरे-धीरे कहने में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार के योग से सुन्दरी की चाल की मंथरता में और भी सौन्दर्य आ गया है। उसके तिमिरांचल में चंचलता का लेश भी नहीं है। उसके अधर सम्पुटों में मुसकान की बिजली नहीं कौंधती वहाँ तो गम्भीरता और मौन बसा है। एक देदीप्यमान तारा उसकी घुँघराली काली अलकों में गुँथा हुआ हँसकर अपने हृदय-राज्य की रानी का अभिषेक कर रहा है। यह सुन्दरी अलसता की लता के सदृश नीरवता-सहचरी के कंधे पर बाँह डालकर छाया के समान आकाश-मार्ग से धीरे-धीरे चुपचाप उतर रही है। उसके हाथों में न तो वीणा है और न पैरों में नूपुर। चारों ओर नीरवता का वातावरण छाया हुआ है। इस कलात्मक चित्र से कविता का रागात्मक भाव मूर्तिमान होकर सामने आ जाता है। अगली पंक्तियों में सन्ध्या-सुन्दरी मद-कलश-वाहिनी (साकी) नायिका के सदृश नींदरूपी मद का एक-एक प्याला वितरित कर प्रेमियों को बेहोशी की नींद में सुला देती है। उपमान के रूप में सन्ध्या का यह मानवीकरण पीने और पिलाने वाली दोनों का रूप खड़ा कर देता है। कविता का नारी रूप निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

शिलाखंड पर बैठी वह नीलांचल मृदु लहराता था—
सुप्त मन्द सन्ध्या-समीर सुन्दरी संग
कुछ गुपचुप बातें करते जाता और मुस्कराता था,
विकसित असित सुवासित अलकें उसके
चुंबित कर गोरे कपोल झुक-झुककर—
लिपट उरोजों से भी वे जाती थे
चपती एक मारकर बड़े प्यार से हट जाते थे,
शिथिल बिन्दु रस-बिन्दु बहाता सुन्दर
अंचल अंक पर अधरागम से गिरकर
यह कविता थी और साथ था उसका बस भू भार।

कविता पर नारी का यह आरोप न तो रूप तथा धर्म-साम्य पर आधारित है और न प्रभाव-साम्य पर अतः कविता का स्वरूप खड़ा नहीं होता क्योंकि प्राकृतिक वस्तुओं का मानवीकरण इस प्रकार होना चाहिए जिससे वस्तु-व्यापार की सम्यक् व्यंजना हो सके। जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ अमूर्त पदार्थों का मूर्तीकरण नहीं होता। उसी प्रकार कविता पर नारी का आरोप कविता के विषय में कोई भी भाव या विचार का स्फुरण नहीं करता। इससे न तो कविता का रूप ही खड़ा होता है और न उसके किसी गुण की ही तस्वीर सामने आती है।

इस आरोप से कविता का नहीं, कल्पना-नारी का एक सुन्दर रूप सामने अवश्य मूर्तिमान हो सकता है। कविता शिलाखंड पर कैसे बैठी है? उसका नीलांचल क्या है? उसकी घुँघराली लटों और गोरे कपोल का क्या तात्पर्य है? कविता रूपी सुन्दरी के उरोज से क्या ध्वनि निकलती है? इससे कुतूहल तो बढ़ता है पर कविता का रूप नहीं खड़ा होता। समीर उसका प्रेमी प्रतीत होता है, इसीलिए उसे देखकर मुसकराता और चुप चुप बातें भी करता है। ये नायक के वे भाव हैं जो नायिका के प्रति व्यक्त किये गये हैं। सम्पूर्ण कविता

पढ़ने पर कविता की कोई भी स्पष्ट या अस्पष्ट मूर्ति सामने नहीं आती है—हाँ कुचित कच और गोरे कपोल वाली एक सुन्दरी अवश्य साकार हो उठती है। 'निराला' का यह चित्र बौद्धिक-विलास जान पड़ता है भावोत्कर्ष में इससे सहायता नहीं मिलती।

प्रगल्भ प्रेम[१] शीर्षक कविता में कवि अपनी कवितारूपी प्रणयिनी को बन्धनमय छन्दों की छोटी राह छोड़कर नित नवीन भाव भूमि पर चलने का आग्रह करता है। गजगामिनि कविता-सुन्दरी से कवि निवेदन करता है कि यदि तुम अपने संकीर्ण कंटकाकीर्ण पथ का त्याग न करोगी तो तुम्हारा अंचल और गले का हार काँटों में उलझकर छिन्न-भिन्न हो जायगा।

'भगिस' शीर्षक कविता में 'धरा' को नारी तथा पवन को पुरुष का रूप दिया है। देखिये

> *युवती धरा का यह था भरा वसन्त काल*
> *हरे भरे स्तनों पर पड़ी कलियों की माल,*
> *सौरभ से दिक्कुमारियों का मन सींचकर*
> *बहता है पवन प्रसन्न तन खींच कर।*

—अनामिका पृ० १८७

वसन्त ऋतु का मादक स्पर्श पाकर युवती धरा के वक्षस्थलों पर हरियाली छा गई है और उन हरे-भरे स्तनों पर कलियों की माला सुशोभित हो रही है। पवन दिशारूपी कुमारियों का अंचल मादक सुगन्ध से भर कर प्रसन्नचित्त बह रहा है। कवि के कहने का तात्पर्य है कि बसन्त ऋतु में धरती हरी-भरी हो जाती है तथा पेड़-पौधों में अनन्त कलियाँ मुस्करा उठती हैं और दिकदिगन्त में फूलों का सौरभ छा जाता है। प्रकृति का मानवीकरण करने का उपर्युक्त भाव स्पष्ट ही नहीं मूर्तिमान हो उठा है। छायावाद युग की यह अभिव्यंजना प्रणाली है जब कवि 'मुँह से कुछ बोलो न कहु कर' यह कहना अधिक पसन्द करता था कि 'मौन भार से दबे हृदय को कुछ मुखरित मुख सह लेने दो'।

'तरंगों के प्रति[२] शीर्षक कविता में तरंगों का मानवी रूप तथा उसका गत्यात्मक सौन्दर्य हमें उस भाव भूमि पर पहुँचा देता है जहाँ से हम तरंगों के मानवी-व्यापारों को साक्षात् देखते और उस पर मुग्ध होते हैं।

अनन्त नीली जल-राशि ही मानो तरंगों का दुकूल है जो हवा में लहराता हुआ अंचल है। लहरों के उठने और गिरने में जो कल-कल ध्वनि निकलती है वही मानो लहरों के गीत हैं जिन्हें लहरें ताली बजा-बजाकर गा रही हैं। लहरों को तट की ओर निरन्तर अग्रसर होते हुए देख कर कवि प्रश्न करता है कि तुम लोग किस प्रियतम से मिलने की प्रबल उत्कण्ठा से सलिल की भुज मृणाल से काटती हँसती आपस में परिहास करती चली आ रही हो। यहाँ तक तो तरंगों का मधुर रूप है। आगे की पंक्तियों में उसका रौद्र रूप सामने आता है जब वह शिलाखण्ड के ऊपर से बहती है उस समय की कवि कल्पना करता है मानो लहरें शिलाखण्ड के गले को कभी मरोरती हुई आगे बढ़ती हैं और कभी लौटती हैं। यही नहीं उसी भावावेश में बहुत

१ अनामिका पृ० ९४
२. परिमल पृ० ५४

ऊँचाई तक उठ कर संसार को अपना रौद्र रूप दिखाती है। रूप-साम्य तथा गुण-साम्य पर आधारित यह रूप-विधान भावों का मूर्त्त-चित्र खींच देता है। इसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों आपस में घुलमिल गये हैं जिससे रूप में और भी निखार आ गया है।

इस प्रकार निराला की समस्त रचनाओं में जड़ प्रकृति के अनेक प्राणवान चित्र मिलते हैं। उन सबको इस छोटे से निबन्ध में संकलित कर देना सहज सम्भव नहीं है, अतः कतिपय सुन्दर चित्रों को देकर ही उनकी अद्भुत चित्रकारिता तथा उनके विराट चित्र-फलक का परिचय मात्र दिया है।

नारी-सौंदर्य

अंकुरित यौवन का उद्दीपनकारी चित्र निराला की 'रेखा' में देखिए :

प्रतिमा सौंदर्य की
हृदय के मंच पर
आई न थी तब भी,
पत्र-पुष्प-अर्घ्य हो
संचित था हो रहा—
आगम-प्रतीक्षा में
स्वागत की कल्पना हो
सीखी थी हृदय ने।
उत्सुकता वेदना
भीति मौन प्रार्थना
नयनों की नयनों से
चितवन सुहाग-प्रेम
मृदुता चिबुक की
अधरों की विह्वलता,
भ्रू कुंचितता, सरस हास,
वैदग्ध कंठ में
मृदुता हृदय में
काठिन्य वक्षस्थल में,
हाथों में निपुणता
शैथिल्य चरणों में
सीखी नहीं तब तक
एक ही मूर्ति में
तन्मय मसीनता।

—अनामिका पृ० ७३-७४

प्रथम पाँच-छः पंक्तियों में हमें विद्यापति की अंकुरित-यौवना की छवि दिखाई पड़ती है। 'पत्र-पुष्प-अर्घ्य' नारी के उरोज और अन्य आंगिक विकास के प्रतीक हैं। हृदय के मंच

पर प्रेमी के स्वागतार्थ पत्र-पुष्प का संचय दाम-दाम विकसित होती हुई यौवन की देहली पर चरण रखने वाली भोली-भाली बालिका का चित्र खींच देता है। उत्सुकता वेदना भीति नयनों की नयनों से मौन प्रार्थना आदि कायिक अनुभावों से एक नवयुवती का चित्र सजीव हो उठता है। चिबुक की दृढ़ता अधरों की विह्वलता भ्रू-कुटिलता वक्षस्थल की कठोरता हाथों की निपुणता, चरणों में शिथिलता आदि तो उस युवती के रूप में रंग भरने का काम देते हैं। इस प्रकार के शृंगारिक चित्र हमें प्राचीन कविताओं में भी मिलते हैं किन्तु यह चित्र प्राचीन परिपाटी का अनुसरण करते हुए भी आधुनिक है।

उपर्युक्त चित्र से साम्य रखता हुआ नवयुवती का दूसरा चित्र देखिए। इस चित्र में युवती के सौंदर्यांकन के साथ-साथ युवावस्था के भावी व्यापारों एवं शृंगारिक चेष्टाओं की ओर भी संकेत किया गया है।

घेर अंग-अंग के
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की
ज्योतिर्मयि-लता सी हुई मैं तत्काल
घेरि निज तरु तन।
खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगन्ध के
प्रथम वसन्त में गुच्छ-गुच्छ।
दृगों को रंग गई प्रथम प्रणय-रश्मि
चूर्ण हो विच्छुरित
विश्व-ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहु रंग-भाव भर
शिशिर ज्यों पत्र पर कनक-प्रभात के
किरण-सम्पात से।
दर्शन-समुत्सुक युवाकुल पतंग ज्यों
विचरते मंजु अलि-पुंज
मुखर-उर मौन वा स्तुति-गीत में हरे।

—प्रयसी अनामिका, पृ० १

ज्योतिर्मयी लता के सदृश तारुण्य की तरंग ने उसके तन-तरु को पूर्णरूपेण आच्छादित कर लिया। तारुण्य तरंग के लिए तथा तन के लिए तरु उपमान इतने भावपूर्ण और सटीक बन पड़े हैं कि तरु से लिपटी हुई लता का मूर्त रूप सामने आते ही लावण्यमयी युवती सजीव हो जाती है। यौवन-वसन्त के आगमन के साथ-साथ गुच्छ-गुच्छ सुगन्धित नव पुष्पों का उभार उसके अंग-अंग में होने लगा। गुच्छ-गुच्छ नव-पुष्प में तरुणी के उरोज आदि के विकास का संकेत है। यौवनारम्भ के समय प्रणय-रश्मि की मादक लालिमा से उसके नेत्र रतनारे हो गये हैं और सूर्य की सुनहली किरणों के संयोग से पत्तों पर पड़ी ओस की बूँदें जिस प्रकार अपार सौंदर्यमयी दिखाई पड़ती हैं उसी प्रकार यौवन के रंग से नायिका का शरीर अद्भुत आकर्षण पैदा कर रहा है। फलस्वरूप युवाकुल पतंग तथा अलि सदृश उसके रूप का पान करने के निमित्त उसके चारों ओर चक्कर काटने लगे। तरुणी के मादक सौंदर्य का प्रभाव

साम्य पर आधारित चित्र अपनी सम्पूर्ण बारीकियों के साथ उभर आया है। रूपक और उपमा अलंकार की सहायता से इसका कलापक्ष भी काफी सशक्त हो गया है।

'पंचवटी प्रसंग'[1] में नारी का स्थूल चित्रण देखिए। यह चित्र अपनी मांसलता में रीतिकालीन नारी के अधिक समीप पहुँच गया है। वायु के झकोरों से वन की लताएं जब झुक जाती हैं तो कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वे सूर्पणखा के अप्रतिम रूप को निहार उसकी समता न करने के कारण लज्जावश अंचल से अपना मुँह छिपा रही हैं। सुगन्धित पुष्पों से सुशोभित असित-श्याम से उसके केश-पाश की समता अभिसारिका के सदृश शिप्रगति से चलती हुई गोदावरी नहीं कर सकती। उसके नेत्रों में विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता भरी है, उनमें वशीकरण मारण तथा उच्चाटन की अमोघ शक्ति छिपी है। उसकी नाक बंसी के सदृश मदन रूपी मीन को फँसा लेती है। पंखुड़ियों-से लाल कोमल उसके कपोल हैं। चिबुक सुन्दर और हँसी बिजली-सी। उसका मुखमण्डल इतना सुवासित रहता है कि दिक्मण्डल योजन भर सुगन्धित हो उठता है, जिसके लोभ से खिचकर प्यारे भौंरे (प्रेमी) उसके समीप चले आते हैं। कपोत के सदृश कंठ वल्लरी के समान बाहु कमल के समान कर तथा उठे हुए कठोर वक्षस्थल तथा क्षीणकटि वाली नायिका के नितम्बों का गुरुतर भार लिये उसके सुकुमार चरण मन्द गति से चल रहे हैं। इस प्रकार सौंदर्यराशि को देख देवों तथा ऋषि-मुनियों का भी धैर्य छूट जाता है। इस चित्र की अप्रस्तुत योजना परम्परा-विहित है, ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा चित्र तो हमने कई बार देखा है।

'सरोज स्मृति' में सरोज के चित्र निराला ने बाल्यकाल की गलियों से निकलकर लावण्य-कुंज में जाती हुई नारी के गत्यात्मक रूप का सजीव चित्र खींचा है। लावण्य कुंज में पहुँचने पर लावण्य भार से दबा कामिनी का कोमल वपु इस प्रकार थर-थर काँपने लगा जैसे मालकौस का स्वर नव वीणा पर कंपित हो उठता है। नव निर्माण-स्वरूप शब्दों और अप्रस्तुत विधानों के माध्यम से यहाँ उसकी का रूप जगमगा उठता है। देखिये 'सरोज स्मृति', (अनामिका, पृ० १२६) उपमा अलंकार से चित्र का कलात्मक पहलू और भी निखर आया है।

छायावाद-युग की अभिसारिका का चित्र देखिये

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती
सब कहते शृंगार।
कण-कण कर कंकण प्रिय,
किण्-किण् रव किंकिणी
रणन-रणन नूपुर, उर लाज
लौट रंकिणी,
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार,
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार। —गीतिका पृ० ६

---

१. परिमल, पंचवटी प्रसंग पृ० २१८
(भौंहे-चरण खींचने की बंसी-सी विचित्र नासा)

प्रस्तुत पंक्तियों में आत्मा को अभिसारिका तथा परमात्मा को प्रियतम मानकर रूपक के माध्यम से अभिसारिका का चित्रांकन किया है। आत्मा को चिंता है वह हारकर प्रिय पथ पर चल रही है। उसके प्रत्येक आभूषण से इसी आत्म-समर्पण की ध्वनि निकल रही है। हृदय एकदम विगलित है। अभिसारिका सोचती है यदि वह लौट गई तो प्रियतम फिर कहाँ मिलेगा ? वह पुनः सोचती है कि प्रियतम ने आगमन की प्रतीक्षा में यदि सम्भवतः नूपुरों का शब्द सुन लिया हो। फिर किसकी शरण मिलेगी ? प्रिय की ओर बढ़ती हुई अभिसारिका (परमात्मा की ओर बढ़ती हुई जीवात्मा) में यही संवादी-विवादी स्वर बज रहे हैं यही तर्क-वितर्क हो रहा है।[1] यहाँ निराला ने अभिसारिका का रूपानुभव और गुणानुभव दोनों का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है।

नारी के अनुभावों का चित्रण

झुक-झुक तन तन, फिर झूम झूम हँस-हँस झकोर,
चिर परिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर।

—अनामिका पृ ८८

उपर्युक्त पंक्तियों में 'वन बेला' का मानवीकरण करके अनुभावों द्वारा नारी के आत्म समर्पण का चित्र प्रस्तुत किया है। ये कायिक अनुभाव शृंगार-रस-प्रधान हैं। इसके प्रत्येक अनुभाव से एक युवती के सहज समर्पण का रूप खड़ा हो जाता है। प्राकृतिक उपकरणों से सुसज्जित युवती का प्रस्तुत चित्र बहुत ही आकर्षक बन पड़ा है। इस चित्र में प्रस्तुत इतना सशक्त है कि चित्र बनाने में यह अप्रस्तुत की सहायता की अपेक्षा नहीं करता।

हेर उर-पट फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल
गेह में प्रिय-स्नेह की जय-माल

—गीतिका पृ २

तारकों एवं नक्षत्रों से खचित रजनी-रानी का कवि ने जय-माल लिये हुए शशिमुखी सुन्दरी के साथ रूपकमय चित्रण किया है। 'वास्तविक सत्य और नैसर्गिक छटा से अभिभूत निशीथ-रानी का गत्यात्मक चित्र' अपनी सम्पूर्ण स्वाभाविकता लिये उभर आया है। रात्रि के घनांधकार का लावण्यमयी सुन्दरी के केश-कलाप से सादृश्य प्रकट करते हुए कवि ने बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रस्तुत-अप्रस्तुत का चित्रांकन नवीन रूप में किया है। ऐसे स्थलों पर अप्रस्तुत के लिए प्रस्तुत की आवश्यकता नहीं रहती, दोनों एकाकार हो जाते हैं और मानवीकरण साकार हो जाता है।[2] इसी प्रकार

कुम्भल-कलित चतुर्दिक चंचल
हेर-फेर मुख कर बहु सुख-छल,
कभी हास फिर त्रास, साँस-बल
उर-सरिता उमड़ी।

—गीतिका पृ० ११

१ डा रामरतन भटनागर कवि निराला पृ ११८
२. किरण कुमारी गुप्ता, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण पृ ७८८

यहाँ विभिन्न हाव भाव और अनुभावों के माध्यम से प्रेम-सरिता के सदृश किसी नव युवती का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

नारी के अंग-प्रत्यंग का चित्रण :

(क) नग्न बाहुओं से उछलती नीर,
तरंगों में डूबे दो कुमुदों पर
हँसता था एक कलाधर

(ख) नव-वसंत काँपा पत्रों में देख दृगों की ओर

(ग) अंग अंग में नव-यौवन उच्छृङ्खल
किन्तु बँधा लावण्य-पाश से नम्र सहास ससंयम।

(घ) झुकी हुई कल कुंचित एक अलक ललाट पर
बढ़ी हुई ज्यों प्रिया स्नेह की लड़ी बाट पर।

—अनामिका पृ० ५०

उद्धरण (क) का अभिप्राय यह है कि तरंगों में डूबे हुए दो कुमुदों पर एक चन्द्रमा हँसता था। समता से चित्र स्पष्ट हो जाता है। तरंगों में डूबे हुए नायिका के दो उरोज और उन पर कलाधर सा हँसता हुआ मुख। इससे वयःसन्धि की अवस्था में कुमुदोपम उरोजों को देखकर प्रसन्न होने की भावना तथा मुख में सुकुमारता मधुरता तथा सुन्दरता लक्षित होती है।

उद्धरण (ख) में नायिका के नेत्रों की सुन्दरता देख नव-वसंत लज्जित होकर पत्रों में काँपने लगा। यहाँ नायिका के नेत्रों का शब्द-चित्र दिया है।

उद्धरण (ग) में नव-यौवन के अंग-अंग की उच्छृंखलता को लावण्य-पाश से बाँधकर कवि ने एक छविमयी तरुणी का छायाचित्र दिया है।

उद्धरण (घ) में नायिका के ललाट पर झुकी हुई एक घुँघराली लट का चित्र प्रस्तुत किया गया है। उत्प्रेक्षा चमत्कार के माध्यम से कवि ने उसे प्रियतम का मार्ग जोहती हुई एक प्रमिका बना दिया है। यह अन्तिम चित्र विशेष सशक्त और मौलिक है।

नेत्रों का भावपूर्ण चित्र देखिये

मद भरे नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं ?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?

—परिमल पृ० ५२

प्रस्तुत पंक्तियों में नयनों के उपमान नलिन और मीन हैं। यह उपमान परम्परित होते हुए भी कार्यकारण के उचित संयोग से इनका नवीन संस्कार हुआ है। मद भरे नयनों का विशेषण है। मदभरे नयन कहने से नयनों की ललाई और उनकी मस्ती की छवि सामने आ जाती है। किन्तु रात भर प्रियतम की प्रतीक्षा में जगे रहने से थोड़े जल में तड़पते हुए मीन की भाँति दिखाई दे रहे हैं नयनों का चित्र संदेहालंकार से और भी चटकीला हो गया है। आचार्य शुक्ल का कथन है कि सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतों की ओर जाती है

को प्रस्तुतों के समान ही सौन्दर्य, दीप्ति, कान्ति, कोमलता, प्रचंडता भीषणता उग्रता उदासी अवसाद, खिन्नता आदि की भावना जगाते हैं। नैनों का उपर्युक्त रूप तदनुकूल भावों को भी जगाता है। नैनों के लिए सुन्दर उपमानों की भावपूर्ण कड़ियाँ 'फुल्ल नयन थे,' शीर्षक कविता में दर्शनीय हैं। खुले हुए विशाल नैनों को निरालाजी 'भूम-धक-चोमी-फुल्ल' कहते हैं कभी उनके कार्य-व्यापारों की चर्चा करते हुए उन्हें जीवन के 'मधु-मंद-चयन' 'रवि के पूरक' कवि तथा अनंत के छाया छवि' 'देह भूमि के सजल श्याम-घन' तथा 'प्रेम-पाठ के प्रथम पृष्ठ' कहते हैं। नैनों के लिए उपर्युक्त उपमान सर्वथा नवीन और मौलिक हैं। इसमें प्रत्येक उपमान अपना अलग अस्तित्व रखता हुआ नैनों का पृथक-पृथक चित्र प्रस्तुत करता है। चित्रों में कलात्मकता तथा भावात्मकता दोनों का पूर्ण सामंजस्य है।

सामाजिक रूप-विधान

'निराला' का विद्रोही कवि समाज की कुरीतियों धार्मिक और वैवाहिक रूढ़ियों का कट्टर शत्रु रहा है, उसने इन प्रचलित रूढ़ियों और विश्वासों एवं मर्यादाओं को समूल ध्वंस करने के लिए सबसे पहले अपना स्वर ऊँचा किया। परिणामस्वरूप उनकी कविताओं में विविध रूप रंग के सामाजिक चित्र मिलते हैं। हिन्दू विधवा हमारे समाज में सबसे अधिक ठुकराया हुआ दयनीय प्राणी है। निम्नलिखित पंक्तियों में विधवा की शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं का दयनीय चित्र देखिये

> वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
> वह दीप-शिखा-सी शान्त भाव में लीन,
> वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी
> वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
> दलित भारत की ही विधवा है।

—परिमल पृ० १००

इसमें विधवा के लिए लता और दीपशिखा जैसे मूर्त उपमान हैं, उसी प्रकार अमूर्त पूजा और स्मृति रेखा भी उपमान हैं। एक ही वस्तु के लिए मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के उपमान वस्तु की दोहरी छवि अंकित कर देते हैं। विधवा को 'पूजा-सी' कहने में उसकी सुचिता सौम्यता तथा अलौकिकता प्रकट होती है। उसी प्रकार 'दीप शिखा' कहने से तिल-तिल जलकर घर के कोने-कोने में प्रकाश बिखेरती हुई दीप-शिखा के सदृश विधवा का करुण चित्र सम्मुख आ जाता है जो अमित कष्ट झेलकर भी परिवार की सुख-शान्ति को सतत बढ़ाने में क्रियाशील रहती है। 'टूटे तरु की छूटी लता' कहने से उसके मृतक पति तथा उसकी असहाय मूर्ति का रूप स्पष्ट हो जाता है। अगली पंक्तियों में कवि का कथन है कि उसने मधु-सोहाग का दर्पण जिसमें उसने एक बार, केवल एक बार, अपना जीवन-धन बिम्बित देखा था जो उसके लिए ध्रुवतारा के समान था वह टूट गया। इन पंक्तियों में कवि का अभिप्रेत यह है कि हिन्दू समाज की विधवा का सोहाग-चिन्ह एक बार धुल जाने पर आजन्म

---

१. अपरा पृ० ८९

निराशामय वैधव्य-जीवन व्यतीत करती है। इसीलिए यह विधवा अपनी व्यस्त विवशता और मलिन मुख को दुनिया की नजरों से बचाकर अस्फुट स्वर में रोती है। उसके इस हाहाकार मयी रुदन को सुनने के लिए समाज का कोई प्राणी नहीं आता। अतः कुछ प्राकृतिक उपकरण (आकाश वायु नदी) दया करके उसकी दुःख-गाथा सुनते हैं। विधवा का इतना भावपूर्ण चित्रण हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

'वे किसान की नई बहू की आँखें'[1] शीर्षक कविता में किसान की नई बहू का सामाजिक चित्रण बहुत ही यथार्थ और मर्मस्पर्शी है। वो आँखें सामाजिक रूढ़ियों में बन्द होने के कारण न कभी किसी न विश्व-विषय से ही मिलीं और ना अपने सपने कभी सत्य नहीं कर सकीं वे अपने प्रियतम के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटती हैं। उनकी दुनिया वहीं तक सीमित है।

'प्रणयी'[2] अपने प्रियतम से मिलने के लिए कटिबद्ध है किन्तु उसके सामने रूढ़ि, धर्म के विचार, कुल मान शील मान की प्राचीर खड़ी थी। यद्यपि प्रेमी-प्रमिका केवल 'अपनाव' से प्राणों से एक थे किन्तु दोनों के रूप वर्ण जाति तथा धर्म सब भिन्न थे। कवि का अभिप्राय स्पष्टतः यही है कि हमारे समाज में एक ही वर्ण एक ही जाति और धर्म के मानने वालों से प्रेम और विवाह करने की प्रथा है। इन रूढ़ियों को उल्लंघन करने की शक्ति किसी में नहीं है और जो किंचित् ऐसा करता है वह समाजद्रोही कहकर समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इन्हीं सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण कवि ने 'प्रणयी' के इस स्वगत कथन के आत्म-निवेदन में किया है।

आधुनिक युग की धार्मिकता का व्यंग्य-चित्र देखिये[3]

मेरे पड़ोस के वे सज्जन जो प्रतिदिन सरिता मज्जन करके शिव पर कुर्वाद्य तन्दुल तिल तथा पानी चढ़ाते तथा रामायण का पारायण करते हैं अपनी झोली से पुए निकालकर कपियों को वितरित करते हैं अस्थि चर्मावशिष्ट भिक्षुक के हाथ पर पुए रखने की कौन कहे उस ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। धर्मी मित्र का यह यथार्थ चित्रण करके कवि हमारी मनुष्यता की खिल्ली उड़ाता है। हमारे समाज का यह धर्मगत स्वरूप है।

समाचार-पत्रों के सम्पादकों के मुद्रित चित्र देखिये जो सच्चे सेवक की नहीं बल्कि किसी राजपुरुष की कीर्ति का विज्ञापन अपने-अपने समाचार-पत्रों में लिख-लिखकर देते हैं।[4]

इसी प्रकार अशिक्षित समाज साँपी खीदर का व्यंग्य-चित्र बड़ा ही दयनीय बन पड़ा है। कवि का कथन है कि यदि किसी धनी पिता का पुत्र होता तो मैं विलायत शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त जाता, सम्पादकगण मुझ पर अग्रलेख लिखते और मेरा चित्र छापते। थोड़े दिनों के पश्चात् अपनी शिक्षा समाप्त करके पुनः वायुयान से घर लौट आता तथा

१. स्वर्णकिरण पृ० २४६
२. स्वर्णधूलि, पृ० ७०
३. ग्राम्या पृ० १२०-२१
४. स्वर्णधूलि, पृ० ८१

कार्ड के लाइनों को बड़ी-बड़ी दावतें देता। पत्र प्रतिनिधि मेरे चारों ओर चक्कर काटते और मैं आगे-पीछे ऊपर-नीचे देख सिर झुका-झुकाकर मंच पर खड़ा होकर साम्यवाद पर भाषण देता। रूस की साम्यवादी प्रथा की प्रशंसा करता। यह तो हुआ मेरा सामाजिक रूप। व्यक्तिगत रूप से मेरा दृष्टिकोण धन प्राप्त करना ही रहता है।[1] इसी प्रकार उन नेताओं का व्यंग्य चित्र देखिये जिनके जीवन का लक्ष्य है, सादा जीवन और उच्च विचार तथा कार्य है जन-सेवा करना। देखने में तो सचमुच ऐसे ही प्रतीत होते हैं किन्तु जनता के पैसे का दुरुपयोग करके वे इतने मोटे हो जाते हैं कि तपेदिक के इलाज के लिए अपने परिवार वालों को वे स्विटजरलैंड भेजते हैं वैसे अस्पताल उनके लिए बेकार हैं।[2]

कुकुरमुत्ता[3] में निराला ने सामयिक वेश-भूषा पर आधारित उपमानों को चुना है। कुकुरमुत्ता को सर्वप्रथम फँसाने वाला 'ट्रेप' कहा। तत्पश्चात् उन्हें टर्की टोपी कुपड़िया गांधी कैप और अंग्रेजी हैट बना दिया है।

'कुकुरमुत्ता' का यह रूप भावोद्रेक करने में असमर्थ है; हाँ चमत्कारिक अवश्य है। हमारी धर्मगत भावनाओं पर आधारित समाज का एक चित्र देखिये

कुछ राह घेरे हुए पत्थर एक रखा था
महादेव की जगह, माथ पर पनका था।

—कुकुरमुत्ता पृ० ५१

इन पंक्तियों में हमारी उन धार्मिक-प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है जिनसे परिचालित होकर हम इधर उधर का पत्थर उठाकर एक जगह रख देते हैं और उसे शिव मान कर पूजते हैं।

निराला ने सामाजिक चित्रण यथार्थ के धरातल पर ही किया है इसीलिए बिना किसी अप्रस्तुत के ही प्रस्तुत काफ़ी सजीव और स्पष्ट हो गया है। चित्र की भावात्मकता तथा कुरूपता यथार्थता के अंचल में छिप गई है।

राजनैतिक रूप-विधान

(क) खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा सहाया जाड़ा-घाम।

—कुकुरमुत्ता पृ० ४

(ख) चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर,
बहार उसके पीछे ज्यों मुखबड़ फालोवर।

—कुकुरमुत्ता पृ० २४

१. अनामिका पृ० ८९
२ अनामिका पृ ८७
३ कुकुरमुत्ता, पृ ११

उपर्युक्त दोनों उद्धरण अप्रमाण राजनीतिक परिधि में आते हैं। उद्धरण (क) में कुकुरमुत्ते और गुलाब का मानवीकरण किया गया है। कुकुरमुत्ता श्रमजीवी का और गुलाब कैपिटलिस्ट का प्रतीक है। आज के युग के कैपिटलिस्ट की समृद्धि जनता के शोषण पर ही आश्रित है। अपनी इस शोषण की क्रिया में वह किसानों को गुलाम बनाता है और किसानों को नौकर। कैपिटलिस्ट वर्ग पर यह एक व्यंग्यात्मक चित्र है। उद्धरण (ख) में गोली का 'डिक्टेटर' और बहार का फ़ालोवर के रूप में चित्रण हुआ है। 'डिक्टेटर' और 'फ़ालोवर' बीसवीं सदी के राजनीतिक उथल-पुथल की दो प्रधान प्रतिमायें हैं।

आर्थिक रूप-विधान

कवि निराला का जीवन अभावों के बीच ही पला बढ़ा और गिरा-उठा। अर्थाभाव ने कवि के तन को जर्जरित किया और मन को स्पर्श। सरस्वती का यह वरद पुत्र जीवन के आदि काल से लक्ष्मी को ठुकराता आ रहा है और लक्ष्मी भी इनसे तनी-तनी दूर ही दूर रही कवि के मस्तक को कभी भी उसने दुलार से नहीं सहलाया। ऐसी परिस्थितियों में कवि का अन्तर्मन रोया तो बहुत लेकिन हार कभी नहीं स्वीकार की। दुख के इस प्रबल प्रभंजन को झेलने के लिए उसने जन जन के दुख को अपना दुख समझा उनके क्रन्दन में अपनी चीत्कार मिला दी उनके अर्थ-संकोच को अपना अर्थ-संकोच समझ उनकी दरिद्रता तथा आर्थिक दशाओं का नग्न चित्रण किया।

भिक्षुक का एक करुणा-विगलित चित्र देखिये :—

एक ओर पथ के, कृष्णकाय
कंकालशेष नर मृत्यु प्राय
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल,
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल
अति क्षीण कंठ, है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास।

—अनामिका, पृ० २४

आर्थिक विषमता की चक्की में पिसा हुआ जीवन से उदास कंकाल-शेष नर मृत्युप्राय भिक्षा माँग रहा है। भिक्षुक का यह भावपूर्ण चित्र है जिसमें लक्षणा और व्यंजना के गुण नहीं हैं, फिर भी चित्र करुणार्द्र और प्रभावोत्पादक है। इसी प्रकार 'दुर्भिक्ष'[1] का एक चित्र है जब लोग पेड़ों की छाल खा-खाकर पेट भरते हैं उन्हें कोई आश्रय देने वाला भी नहीं। आर्थिक विषमता ने आधुनिक सभ्य युग के मानव को भी इतना बर्बर और आदिकालीन बना दिया है कि वह पेड़ की छाल खाकर पेट भरता है।

निराला के प्रसिद्ध 'भिक्षुक'[2] का चित्र देखिये। यह चित्र ऐसी सामान्य मानव भाव भूमि पर खींचा गया है कि इसे देखते ही ऐसा प्रतीत होता है कि सचमुच वह कलेजे को दो टूक करता पथ पर पछताता आ रहा है। अन्न के अभाव में वह इतना दुर्बल हो गया है कि

[1] अनामिका पृ. १०६
[2] भिक्षुक परिमल पृ. १०७-८

उसके पीठ-पेट दोनों एक हो गए हैं और इतने बड़े जर्जर कंकाल को सँभालने के लिए वह लकड़ी के सहारे से चल रहा है। एक मुट्ठी अन्न के मात्रव में वह अपनी फटी-पुरानी झोली जन-जन के सामने फैलाता है। उसके साथ के बच्चे तो बरबस रुला देते हैं—उन दोनों बच्चों के हाथ भिक्षा के निमित्त सदैव फैले रहते हैं। उनकी मुद्रा कितनी दयनीय है—बायें हाथ से खाली पेट मलते रहते हैं और दाहिने हाथ को दाताओं के सामने पसारे चलते हैं। इस चित्र को देखकर उन्हें कोई पेशेवर भिक्षुक न मान के इसीलिए कवि ने उन्हें इतना दयनीय बना दिया है कि वे भूखे बच्चे सड़क पर पड़े हुए जूठ पत्ते चाट रहे हैं और कुत्ते पत्तों को झपटने की ताक में खड़े हैं। सम्पूर्ण चित्र बहुत ही यथार्थ तथा प्रभावोत्पादक है। निराला के भिक्षुक का चित्र अपने आप में इतना समर्थ है कि उसे रंगने के लिए किसी अप्रस्तुत रूप विधान के रंग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

किसान का दयनीय रूप बादल राग' में देखिये[1]। किसान की भुजायें जीर्ण और शरीर क्षीर्ण है उनके जीवन का सारा सार चूस लिया गया है, अब वह कंकाल मात्र ही रह गया है।

'सरोज-स्मृति' में निराला ने अपनी दयनीय आर्थिक परिस्थितियों का नग्न चित्रण किया है।

> धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
> कुछ भी तेरे हित न कर सका।

—अपरा पृ० १६६

इसीलिए तो दविमुखी सरोज को निरालाजी 'बीनामुक' न पहना सके और अर्थो-पार्जन में असमर्थ होने पर उसका उत्तम ढंग से पोषण भी न कर सके और अन्त में दवा दारू के अभाव में १९ वर्ष की अल्पायु में ही सरोज स्वर्ग सिधारी। निरालाजी की आर्थिक परिस्थितियों का यह सीधा-सादा चित्रण इतना कारुणिक और मर्मस्पर्शी है कि प्रत्येक सहृदय की आँखें आँसुओं से छलछला उठती हैं। शरद[2] ऋतु में कपड़े के अभाव में सी-सी करते हुए 'साधारण जन' का चित्र देखिए। उन दुखियों के पास आधा शरीर ढकने के लिए भी वस्त्र नहीं है रजाई और दुशाले की बात कौन कहे आग ताप-ताप कर ही शीत निवारण कर रहे हैं। दूसरी ओर जमींदारों की बन गई है महाजन को मूर्त पिशाच और धूर्त हैं बनी हुए हैं।

अर्थाभाव में गाँवों का दयनीय दृश्य देखिये। वहाँ के लोगों का रूप चूसे हुए दमड़ी के आम जैसा हो गया है।[3] चित्र यथार्थ होते हुए भी काव्यगत सौन्दर्य से रहित है।

> कच्चे घर, ऊबड़-खाबड़ रस्ते
> पनिहारे, जब पड़े लूल बच्चे
> लोग बैठे कोड़ते हैं अम्हाई।

—कुकुरमुत्ता पृ० १७

---

१ बादल राग परिमल पृ० १६६
२ देवी सरस्वती अपरा पृ० १६६
३ कुकुरमुत्ता पृ० २१

नव्य-रूप विधान

व्यावहारिक

'तोड़ती पत्थर'[1] निरालाजी की प्रौढ़तम रचनाओं में से एक है। इसमें इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई एक सामान्य मजदूरनी की विवशताओं तथा उसकी कार्य-पटुता और गम्भीरता का चित्र अपने सम्पूर्ण वेग के साथ उभर आया है। यद्यपि 'श्याम-तन भर, बँधा यौवन' कहने से उसके गदराये यौवन की छवि आँखों में झूल जाती है, फिर भी उस यौवन के मादक चित्र को 'नत-नयन कर्मरत' चित्र दबा देता है। सम्पूर्ण कविता में मजदूरनी के ही चित्र की प्रमुखता देखी जाती है। गर्मियों की झुलसाने वाली लू के झोंके सहती हुई गुरु हथौड़े से बार-बार पत्थर पर प्रहार करती हुई वह मजदूरनी बरबस लोगों की सहानुभूति अपनी ओर खींच लेती है। कोई छायादार वृक्ष भी नहीं है जिसके नीचे बैठकर वह पसीना सुखा सके। सामने की 'तरु-मालिका' और अट्टालिका जैसे उसका उपहास कर रही हैं। पर पुरुष को भीरु-कातर दृष्टि से देख वह काँप गई। फिर भी गिरते हुए पसीने को बिना पोंछे एकाग्रचित्त से अपने कठिन श्रम-साध्य कार्य में लग गई। इस कविता में न तो कोई अलंकार है न कोई विशेष लक्षणा और व्यंजना। फिर भी मजदूरनी का प्रस्तुत चित्र हृदय का कोना छूता हुआ उसमें करुणा की सिहरन भर देता है।

मैं डाँड़ी से लगा पल्ला
सारी दुनिया तोलती गल्ला

—कुकुरमुत्ता, पृ० ७

उपर्युक्त पंक्तियों में 'कुकुरमुत्ते' के लिए बनिये की तराजू का उपमान चुना है। तराजू की डाँड़ी से लगे हुए पल्ले की भाँति कुकुरमुत्ते का आकार होता है। इसी रूप साम्य पर कवि ने उसे तराजू बना दिया है। चित्र में कल्पना की उड़ान तो है पर भावों की गहराई नहीं है। इसी प्रकार 'गोली' को डाँड़ी में पद्मिनी-सी बँधी कौड़ी और स्टीम बोट की डोंगी कहा है।[2] गोली मालिन की लड़की थी जो नवाब की लड़की बहार के साथ घूमती फिरती थी। इस असमान जोड़ को देखकर ही कवि ने ऐसी कल्पना की है।

हाईकोर्ट के वकीलों का यथार्थ चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए

दौड़ते हैं बादल काले-काले
हाई कोर्ट के वकील मतवाले।
चाहिए जहाँ वहाँ नहीं बरसे,
देख धान सूखते नहीं तरसे।

—कुकुरमुत्ता पृ० १६

इस कविता में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि आसमान में दौड़ते हुए काले-काले बादल काला गाउन पहन कर दौड़ने वाले हाईकोर्ट के वकील हैं। इन बादलों को सूखते धान के खेतों

---

१ अनामिका पृ ७९-८०
२ कुकुरमुत्ता पृ १७

को देखकर तनिक भी दया नहीं आती किन्तु ये वहाँ बरसते हैं जहाँ इनकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। तात्पर्य यह है कि हाईकोर्ट के वकील गरीब मुवक्किलों पर दया नहीं करते। 'सूखते धान' गरीबों का प्रतीक है। कविता में वकील के व्यवसाय की एक झाँकी दी गई है। धनी ग्राहकों के पीछे घूमने वाले वकीलों का यह व्यंग्य चित्र बहुत ही स्वाभाविक और वास्तविक है।

तेज हवा से पछाँह की झुके
ज्वार पौधे सिपाहियों से दिखे।

—कुकुरमुत्ता पृ० ४

इसमें ज्वार के पौधे के लिए 'सिपाही' उपमान बन गया है। उपमेय और उपमान एक दूसरे का शब्दचित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हुए हैं।

उठा तूलिका मृदु चितवन की,
भर मन की मदिरा में मौन
निर्निमेष नभ-नील-पटल पर
अटल खींचती छवि वह कौन।

—यमुना के प्रति परिमल पृ १२

यमुना का मानवीकरण करके कवि ने उसे चित्रकार का रूप प्रदान किया है और चित्रकारी के सारे उपकरणों को सँजोकर रूपक खड़ा किया गया है। तूलिका के लिए मृदु चितवन रंग के लिए मन की मदिरा चित्रपट के लिए नभ-नील-पटल उपमान बनकर आये हैं। चित्रकार के विविध उपकरणों का सुन्दर चित्र इन पंक्तियों में अंकित हो गया है। अनुभूति और कल्पना का उचित सामंजस्य चित्र को और भी प्रभावशाली बना देता है।

कृषि क्षेत्र पर आधारित चित्र

खेत में पड़ भाव की जड़ गड़ गई
धीर ने दुख-नीर से सींचा सदा,
सफलता की थी लता आशामयी
झूलते थे फूल—भावी सम्पदा।

—परिमल पृ० ७५

उपर्युक्त पंक्तियों में हृदयगत भावों का चित्र कृषि-क्षेत्र के उपकरणों के माध्यम से खींचा गया है। खेत मानव मन का भाव बीज का धीर किसान का दुख-नीर पानी का सफलता लता का फूल भावी सम्पदा का प्रतीक है। जिस प्रकार खेत में बीज डाल कर किसान उसे पानी से सींचता है तभी पौधों में हरियाली आती है फल-फूल आते हैं उसी प्रकार भाव भी मन में अंकुरित होकर फल-फूल देते हैं। रूपक अलंकार द्वारा चित्र सजीव हो उठा है।

छत्रपति शिवाजी का कृषि क्षेत्र पर आधारित चित्र कम आकर्षक नहीं है। कवि ने शिवाजी को 'भारत उद्यान के बहु-जाति-क्यारियों के पत्र-पुष्प-दल भरे'[1] कहा है। इससे

१ अपरा, पृ० ८

उनका 'सरधारा' के सरदार वाला रूप काफी स्पष्ट हो गया है। इसी प्रकार खेत निराती बालायें कर लिये खुरपियाँ, गातीं बारहमासी सावन और कजलियाँ[1] में खेतों का उस स का चित्र सम्मुख नाच उठता है जब सावन भादों के महीने में खेतों में काम करने वा मजदूर स्त्रियाँ बारहमासी और कजलियाँ गा-गाकर हाथ में खुरपी लेकर खेतों को निरा हैं। मटर[2]-पुष्प के सौरभ सरसों की पीली साड़ी अलसी के नीले फूल तथा पके खेत सं के जैसे 'अंचल लहरें' लिख कर खेती का सफल और यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, ऐ प्रतीत होता है कि कवि ने खेतों के बीचो-बीच बैठकर मटर, अलसी तथा सरसों निहारा है।

दैनंदिन

निराला के दैनन्दिन चित्र भी बहुत ही स्वाभाविक बन पड़े हैं। बहुत दिनों की पर टोन बदली के बाद आकाश में स्वच्छ धूप निकली। जंगल में ढोर चरने के लिए चले लड़ बच्चे सब खेलने लगे। कहीं बाजार में कहीं बरगद के तले जाँघिया लंगोटा सम्भाले ता लोकगान अखाड़े में दिखाई दिये और उधर पनघट पर गाँव की गोरियों की भीड़ जमा हुई, बड़ी-बड़ी बातें करती और नयनों के सधे बाण भी चलाती जाती है। गाँव का यह छोटा-दृश्य गाँव को सामने खड़ा कर देता है।[3] भट्ठी और ईंधन के माध्यम से निर्मित एक सुप दैनन्दिन चित्र देखिए। कवि ने शिवाजी के समय की देश-गत परिस्थितियों का और आप फूट का चित्रण करते हुए रूपक की लपेट में एक चित्र दिया है :

'तृष्णा की भट्ठी में देख हिन्द-धारा-धाम'[4] ईंधन की तरह जल रहे हैं। ईंधन भ भट्ठी या चूल्हे का प्रयोग हम प्रतिदिन अपने घरों में करते हैं। इस प्रकार दैनन्दिन उपकर की सहायता से देश की तत्कालीन परिस्थितियों का चित्र काफी स्पष्ट हो गया है।

नित्यप्रति के सत्य को लेकर जीवन के क्रम का एक भावपूर्ण चित्र निरालाजी अर्चना[5] में दीया है। दीप जलता रहा हवा चलती रही मीर पलता रहा अर्क चलती र मान बढ़ता रहा जग ढलती रही। इस प्रकार 'समय की बाट पर हाट लगी रहती है अ अचानक एक दिन ऐसा आता है जब सदैव के लिए पलक बन्द हो जाते हैं और आँखें मु जाती हैं।

अन्य छायावादी कवियों की भाँति निरालाजी ने भी चित्रों के निर्माण में वैज्ञानि उपकरणों का बहुत कम उपयोग किया है। फिर भी 'कुकुरमुत्ता' के आकार प्रकार की तुल 'पैराशूट'[6] से करके विज्ञान की ओर भी अपनी अभिरुचि दिखाई है।

---

१. अपरा पृ० ११४
२. अपरा पृ० ११९-२०
३. अनामिका पृ० ११०
४. अपरा, पृ० ६६
५. अर्चना पृ० ६६
६. कुकुरमुत्ता, पृ० ६

भावात्मक रूप-विधान

प्रेम विवाह मिलन सुख-दुख आशा निराशा, यौवन बुढ़ापा, हास अश्रु के अनेकानेक चित्र निरालाजी की रचनाओं में बिखरे पड़े हैं। इन अमूर्त पदार्थों का कहीं तो खंडचित्र मिलेगा और कहीं-कहीं इनकी सम्पूर्ण प्रतिमा सामने आ जाती है। इसी तरह चित्र-निर्माण की क्रिया में कहीं-कहीं तो अप्रस्तुत रूप-योजना से सहायता ली गई है और कहीं कहीं प्रस्तुत चित्र ही इतना सजीव हो उठा है कि अप्रस्तुत की अपेक्षा नहीं रहती।

मुस्कान का एक चित्र देखिये

मृदु सुगंध-सी कोमल दलफूलों की,
शशि-किरणों-सी वह प्यारी मुस्कान।
स्वच्छन्द पवन की मुक्त, वायु-सी चंचल
कोई स्मृति की फिर आई-सी पहचान।

इसमें मुस्कान के कई मूर्त और अमूर्त उपमान हैं। सुगन्ध किरण पवन वायु उपमान मूर्त और अमूर्त दोनों हैं। ये उपमान प्रभाव-साम्य पर आधारित हैं। शशि-किरणों-सी मुस्कान का तात्पर्य मुस्कान की उज्ज्वलता और स्निग्धता से है। वायु-सी चंचल कहने पर मुस्कान की तीव्रगति का भान होता है।

आँसू का चित्र

युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कवि ने, चमके नभ में ज्यों तारा दल, —अनामिका पृ० १५२

यहाँ अश्रु की उपमा नभ के चमकते हुए तारादल से दी गई है। आँसुओं का चरणों पर गिरने का रूप आकाश से टूटते हुए तारागण के सदृश उज्ज्वल और असहाय है।

वियोग का चित्र

ग्रीष्म-घन-अभिसार-निशा के व्यतीत हो जाने पर प्रिय से वियुक्त प्रणयिनी का कितना भावपूर्ण दयनीय चित्रण निरालाजी ने किया है। उम्र ढल जाने पर नायिका कहती है कि मेरी वेणी और लाज की ग्रन्थि शिथिल हो गई। मेरा दृढ़ आलिंगन तथा चुम्बन भी शिथिल पड़ गया है। सेज पर अंचल भी शिथिल पड़ा है और मेरी चंचल चितवन जिससे खिंच कर प्रियतम पास में आते थे वह भी आज शिथिल है। इसीलिए मेरा आदर और अभिमान भी शिथिल है।[1] शिथिल यहाँ विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो अपने विशेष्य का रूपानुभव तथा गुणानुभव भलीभाँति करा देता है।

'गीतिका'[2] में कवि एक स्थल पर कहता है कि सुख के दिन बीत गए अब तो 'वियोग

---

१. अनामिका पृ० ६४
२. गीतिका पृ० ८२

की छाँह' ही अवशेष है जहाँ 'सुघर-छाँह' रो रही है। इन पंक्तियों में वियोग का मानवीकरण करके वियोग-व्यथा की मार्मिक व्यंजना की गई है।

यौवन तथा बुढ़ापे का चित्र

नदी की बाढ़ को यौवन का प्रतीक मानकर यौवन की उद्दाममयी लहरों के वेग का प्रभावपूर्ण चित्रण यौवन को साकार कर देता है। कवि का कथन है कि यौवन का वेग नदी के सदृश है, जब नदी में बाढ़ आती है, उस समय तरंगों के बीच फँस कर तिनकों का गर्व चकनाचूर हो जाता है। उसी प्रकार मानव तिनके के समान यौवन के प्रवाह में बिना किसी कूल-किनारे के बहता चला जाता है। यौवन का पूरा चित्र रूपक के सहारे टिका हुआ है। इन पंक्तियों में भावानुभूति के साथ-साथ कलात्मकता का भी पुट है।[1]

इसके विपरीत बुढ़ापे का एक दृश्य देखिये

पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती आ रही है
हट रहा मेला, —अपरा पृ० ५४

आधे बालों का पकना गालों की कांति का निष्प्रभ पड़ना तथा गति में शिथिलता आना—सब बुढ़ापे के लक्षण हैं।

प्रेम और मिलन के कतिपय चित्र

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है।
सदा ही निःसीम भू पर।
प्रेम की महोर्मि-माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट,
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
तृणसम बह जाते हैं। —परिमल पृ० २१९

इन पंक्तियों में प्रेम के लिए पयोधि का विराट् रूपक बाँधकर प्रेम की अनन्तता तथा उसकी अपार शक्ति का प्रभावपूर्ण चित्रांकन हुआ है।

इसी प्रकार प्रेम के वास्तविक और अवास्तविक रूप का परिचय देते हुए कवि ने 'अनामिका' में संकेत किया है कि दुनिया अपनी रंगीन वासनाओं के वसन को धारण कर 'प्रेम' को ललचाती है, रिझाती है और 'रूप' को आलिंगन में बाँधकर कहती है कि हमने प्रेम पा लिया है। लेकिन वह प्रेम नहीं प्रेम की छाया है। वासना प्रेम तथा रूप का मानवीकरण करके वासना और प्रेम का अन्तर स्पष्ट किया गया है।[2]

'नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे खेली होली'[3] कविता में कवि ने नारी को नाम

---

१ परिमल पृ० १११ ११२

२ अनामिका, पृ० ११

३ गीतिका पृ० ७४

भौम धरातल पर उतार कर नारी का रूपात्मक और भावात्मक व्यक्तित्व मूर्तिमान किया है। प्रियतमा प्रियतम के साथ सेज पर रात भर जागकर होली खेलती है और प्रिय के मुख पर चुम्बन की रोली लगाती है और उधर प्रियतम के नख-कर के स्पर्श से चोली मसक-मसक गई और प्रिया 'एक वसन' रह गई। इस प्रकार अधरों का मद पीकर वह बेसुध हो गई। परिणामस्वरूप पलक-दल मुँद गये और अलकें खुल गईं। प्रातःकाल ठंडी वायु के झकोरे से नायिका उठते ही मुख पर बिखरी लटों को सँभालती है और रात भर से जलते हुए दीपक को बुझा देती है। इस कविता में स्थूल रति का चित्रण किया गया है। यदि इसे जीवात्मा और परमात्मा का प्रेम-विलास मान लिया जाय तो कुछ कहना ही शेष नहीं रह जाता क्योंकि तब निराला की ये पंक्तियाँ कबीर की अनेक रहस्यमयी कविताओं के समक्ष रखी जा सकती हैं।

महादेवी वर्मा

बहुत दिनों के पश्चात् हिन्दी साहित्य में मीरा जैसी कवयित्री का जन्म हुआ जो हाथ में मीरा की वीणा नहीं, युग-युगों को प्रभूत करने वाली साधना की वीणा लेकर आई। मीरा और महादेवी के युग और परिस्थितियों में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर इन दोनों की कविताओं में भी पाया जाता है। मध्ययुग की मीरा की तन्मयता उपासना तथा साधना मूलक भक्ति बीसवीं शताब्दी में लाक्षित-भाषित महादेवी वर्मा में नहीं मिलती। संसार के घात प्रतिघातों और प्रतिकूल परिस्थितियों ने महादेवी के मन को झकझोर डाला और नारी की सहज सुकुमारता तथा भावुकता को अन्तर्मन में छिपाये इनका मन संघर्षों में न लगा। परिस्थितियाँ इन्हें दबाती गईं। अतः संसार के कठोर तथ्यों की ओर दृष्टिपात करने का न तो इनमें साहस ही था और न मन ही। परिणामस्वरूप इनका भावुक मन भीतर ही भीतर वेदना से तिलमिला उठा और कवयित्री की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो उठीं। वास्तविक जीवन और जगत् से प्रादुर्भूत कभी न भरने वाले घाव और अभाव के दंश की पीड़ा को महादेवी ने वाणी दी। इसी तथ्य का पोषण शचीरानी गुर्टू ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है— 'यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन गगन के स्वर्णाभ-पट पर स्नेह-ज्योत्स्ना छिटक रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिल-खिला पड़ी और मुस्कराते प्राणों की भूमिका में अस्पष्ट-सी रेखाएँ अंकित कर गई। आत्म-संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने लौकिक प्रेम को ठुकरा कर जिस पीड़ा को गले लगाया वह कालान्तर में आध्यात्मिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उसके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा। और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने का मानो हठ पकड़ बैठीं।'[1] इसी अभाव की भाव भूमि पर ही देवीजी ने अपने 'सूक्ष्म प्रिय' का निर्माण किया जिससे वे कभी रीझती-खीझती तथा मिलन-सुख का काल्पनिक आनन्द लेतीं और कभी स्त्रियोचित मान, अभिमान, शृंगार, अभिसार भी करती देखी जाती हैं। इस प्रकार महादेवी की प्रेरणा का मुख्य स्रोत 'कामद' का काम(सेक्स) ही है। इसी अप्राप्य की चाह और उत्कंठा ने ही उनकी अटारियों को कभी सूखने नहीं दिया। इसीलिए कवयित्री अपने आँसुओं को पानी नहीं मानती

जग से यह सार है मैंने इन्हीं का प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना।'[2]

एक प्रकार से 'दुखवाद' ही उनकी कविता का विषय बन गया किन्तु देवीजी का

---

१ साहित्य दर्शन पृ० १११

२. वामा पृ० ११६

दुःख से यह अटूट लगाव सुख और उल्लास की ऊँची अटारी पर चढ़ने के लिए सोपान के रूप में ही हुआ है।

पंत प्रसाद, निराला छायावाद युग के तीन प्रमुख कवियों ने साम्यवाद के नारे से प्रभावित होकर अपने अंतर की खिड़की से बाहर की ओर भी झाँका किन्तु महादेवी वर्मा आँसुओं की बरसात में निरंतर भीगती रहीं। दूसरे शब्दों में उनके गीतों के स्वर नहीं बदले, भाव नहीं बदले भाषा नहीं बदली। प्रारम्भ से अब तक 'तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा तुम में ढूँढ़ूँगी पीड़ा' की क्रिया में संलग्न हैं।

महादेवी की कविता पर 'रहस्यवाद' की छाप लगाई जाती है। अंशतः यह ठीक है। किन्तु उनकी अनुभूति में मध्ययुगीन संतों के समान सघन एकस्वरता—सहज एकांतता नहीं है। उसमें कभी अद्वैत के प्रति लगाव झलकती है, कभी द्वैत के प्रति कामना उमड़ती है और कभी स्थूल के प्रति राग सहज हो उठता है। "अतः महादेवी की रचनाएँ निर्गुण संतों की एक मुखोन्मुख सघन अनुभूति और उनके साधन-मार्ग-परम्परा की नहीं हैं।[1] 'नीहार' एक अनुभूति प्रधान ग्रन्थ है। उसमें चिंतन कम हृदय-मंथन अधिक है। इन गीतों में प्रेमिका और प्रियतम का सम्बन्ध स्थापित होता है। इसके पश्चात् हृदय में वैराग्य के अंकुर उगने प्रारम्भ होते हैं। (नीहार) में प्रेमिका और साधिका दोनों रूपों में कवयित्री के दर्शन होते हैं। महादेवी जी की दूसरी पुस्तक 'रश्मि' के अधिकांश गीतों में आत्मा प्रकृति तथा परमात्मा का स्वरूप निरूपण तथा सृष्टि, स्थिति प्रलय तथा परिवर्तन की चर्चा की गई है। तीसरी पुस्तक 'नीरजा' में पुनः महादेवीजी की अनुभूतियों का प्रत्यावर्तन हुआ है। 'नीरजा' में महादेवीजी की विचार धारा ज्ञान और प्रेम जीव और ब्रह्म सूक्ष्म और स्थूल का स्पर्श करती हुई प्रवाहित हुई है। 'सांध्यगीत' में साधना के स्वर मुखरित हुए हैं। सूफियों की मार्मिक अनुभूति तथा अद्वैतवादियों की दार्शनिक चिंतन-धारा का आभास इन गीतों में मिलता है। 'दीपशिखा' में अधिकांश रचनाएं दीपक पर आधारित हैं। दीपक को आत्मा का प्रतीक मानकर उसे प्रिय-विरह में जलने को प्रोत्साहन दिया गया है। बौद्ध-दर्शन की प्रतिष्ठा जिस करुणापूर्ण दुःखवाद पर हुई थी उसका आभास महादेवीजी की कविताओं में यत्र-तत्र परिलक्षित होता है किन्तु कवयित्री का बौद्धों के नैरात्म्यवाद में विश्वास नहीं है। वे आत्मा को नित्य और अमर मानती हैं। इस सूक्ष्म विवेचन से हम इस परिणाम पर सहज ही पहुँच जाते हैं कि महादेवीजी को कबीर, दादू जायसी और मीरा की कोटि का रहस्यवादी न भी मानें तो भी उनकी रचनाओं में व्यक्त प्रणयानुभूति आत्मा की परमात्मा से मिलन की छटपटाहट, असीम के प्रति ससीम की सबल प्रेमाभिव्यक्ति इस वैज्ञानिक युग के 'रहस्यवाद' की कोटि में उन्हें खड़ा कर देती हैं।

महादेवीजी की कविता का दूसरा प्रमुख तत्त्व है—उनका प्रकृति-प्रेम। प्रकृति के माध्यम से ही देवीजी ने अपनी समस्त आशा निराशा सुख-दुःख विरह मिलन नश्वरता अमरता आत्मा-परमात्मा जीव-ब्रह्म आदि के गीत गाये हैं। छायावाद और प्रकृति के सम्बन्ध में यहाँ उनका मत उद्धृत करना अनपेक्षित न होगा—उन्होंने 'यामा' की भूमिका में लिखा है

१. महादेवी वर्मा प्रो० विनयमोहन शर्मा पृष्ठ ६१

"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा मानव की लघुता-विशालता कोमलता-कठोरता चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि महादेवीजी प्रकृति में एक ओर अलौकिक सत्ता का दर्शन करती हैं और दूसरी ओर लौकिक छाया-छवियों का भी आभास पाती हैं। महादेवीजी में प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण की प्रवृत्ति कम पाई जाती है। इन्होंने प्रकृति का मानवीकरण करके ही चित्रण किया है। इसके सम्बन्ध में महादेवीजी का यह कहना है कि वेदों में उषा मारुत अग्नि आदि का मानवीकरण किया गया है, वहीं से मैंने भी प्रेरणा ली है। इन्होंने प्रायः प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से रहस्यात्मक प्रेम की अभिव्यंजना की है। कहीं-कहीं प्रतीकों की दुरूहता से काव्यगत सौन्दर्य और भाव अस्पष्ट और दुरूह हो जाता है। प्राकृतिक प्रतीकों पर परोक्ष व्यापारों के आरोप से उनके प्राकृतिक रूपों में एकरूपता स्थापित करने में पाठक को कठिनाई होती है। अतः प्रकृति का दृश्य उपस्थित करने की अपेक्षा इन्होंने उसका भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने पंत और महादेवी के प्रकृति-प्रेम का जिक्र करते हुए लिखा है कि प्रकृति के मनोहर व्यक्तित्व का परिचय पंत ने दिया प्रकृति को पुरुष पुरातन का चिर परिचय महादेवी ने। प्रकृति का उल्लास पंत में है, प्रकृति का उच्छ्वास महादेवी में। पंत की कविता में प्रकृति एक बालिका की तरह खेलती है महादेवी की कविता में प्रकृति विरहिणी की तरह अपने को निवेदित करती है। एक में क्रीड़ा है दूसरे में पीड़ा।[2] वस्तुतः महादेवी की प्रकृति प्रायः म्लानमुखी विरह-विधुरा रमणी की भाँति सर्वदा 'नीर भरी दुख की बदली' बनी रहती है। कहीं-कहीं प्रकृति महादेवीजी के लिए शृंगार का उपकरण बन गई है कहीं वह प्रियतम के घर का मार्ग बताने वाली अभिन्न सहचरी बन गई है। कहीं-कहीं कवयित्री ने प्रकृति के साथ इतना तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि वे प्रकृति से घुल-मिल-सी गई हैं। 'प्रिय! सान्ध्य गगन मेरा जीवन' में यही भाव व्यक्त हुआ है।

महादेवीजी ने रूपक, रूपकातिशयोक्ति और समासोक्ति अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है किन्तु रूपक, उपमा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों में उन्होंने केवल प्रभाव-साम्य को ही ग्रहण किया है। रूप-गुण तथा व्यापार-साम्य के चित्र बहुत विरल हैं।

१- आधुनिक कवि भाग, पृ० ६-७

२- महादेवी समीक्षा ग्रन्थ पृ० २२७

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रूप-विधान की दृष्टि से महादेवीजी के गीत विशेष उर्वर नहीं हैं। इनकी कविता में केवल दो प्रकार के बिम्ब विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं। (क) भावचित्र जिसके अन्तर्गत सुख-दुख आशा-निराशा विरह मिलन पीड़ा-कराह कसक उत्कंठा आदि आ जाते हैं (ख) प्रकृति का मानवीकरण करके इनका विभिन्न रूपों में चित्रण। इन चित्रों के निर्माण में कवयित्री ने कहीं-कहीं उपमानों का आश्रय ग्रहण किया है और कहीं-कहीं प्रतीकों से ही काम चला लिया है। उपमानों का चयन विशेषत: बसंत एवं पावस ऋतु से ही किया है। सांस्कृतिक रूप-विधान भी मिलते हैं लेकिन उतनी मात्रा में नहीं जितने प्राकृतिक चित्र मिलते हैं। गुणात्मक रूप विधान में इनके रंगों के विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता है, स्थान-स्थान पर चित्र-निर्माण में रंगों का उपयोग कलात्मक ढंग से किया गया है। स्पर्श गंध श्रवण, स्वाद के चित्र नहीं के बराबर हैं। कवयित्री की दृष्टि बहिर्मुखी न होने के कारण इनकी रचनाओं में ऐतिहासिक राजनीतिक सामाजिक आदि क्षेत्रों के चित्रों का अभाव है।

व्यावहारिक पक्ष

परंपरित रूप-विधान

सांस्कृतिक

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप
विहँसती संध्या भरी-सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग;

—यामा पृ० ७२

उपर्युक्त पंक्तियों का वास्तविक अर्थ है कि अस्ताचलगामी सूर्य की लालिमा पश्चिम दिशा में फैल गई है। प्रसन्न-वदना सन्ध्या से स्वर्ण तथा स्वर्णिम किरणें बिकीर्ण हो रही हैं। यहाँ प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से किसी पतिव्रता नायिका का रूप सम्मुख आ जाता है जो प्रिय की सेवा में सदैव निरत रहती है। गुलालों से रवि का पथ लीपने तथा पश्चिम में पहला दीप जलाने से नायिका के कार्य-व्यापार का आभास मिलता है। भारतीय संस्कृति में गोबर से धरती को लीपकर वहाँ स्त्रियाँ दीपक जलाकर रख देती हैं। यह क्रिया किसी मांगलिक अवसर पर की जाती है। ऐसा करते समय नायिका अत्यधिक प्रफुल्लित रहती है। गुलाल दीप तथा स्वर्ण पराग उपमेय छिपा है, केवल उपमानों का ही प्रयोग हुआ है इस प्रकार रूपकातिशयोक्ति से चित्र की सुघड़ता और भी बढ़ जाती है। प्राकृतिक धरातल पर विविध रंगों के उचित उपयोग से भारतीय संस्कृति में पगी नायिका के कार्य व्यापार का चित्र सजीव हो गया है।

महादेवीजी अरूप-रूप वाले ब्रह्म की उपासिका हैं उनका प्रियतम किसी मंदिर में प्रतिष्ठापित नहीं है अत: वे पूजा के बाह्याडम्बर को अस्वीकार करती हुई कहती हैं

क्या पूजा क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।

—यामा, पृ० १९२

इस गीत में पूजा के उपकरणों के माध्यम से एक विराट रूपक बाँधा गया है। देवीजी के मत से बाह्य पूजा और अर्चन सब व्यर्थ है। क्योंकि मेरा लघुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मन्दिर है (फिर मुझे दूसरे मन्दिर में जाने की आवश्यकता क्या) और मेरी श्वासें निश-दिन प्रिय का अभिनन्दन करती रहती हैं। मैं अपने नेत्रों के जल-कण से ही प्रिय का पद प्रक्षालन करती हूँ (मुझे गंगाजल नहीं चाहिए) मेरे पुलकित रोम अक्षत का काम देते हैं, पीड़ा चन्दन का और मेरा स्नेह भरा मन दीपक के सदृश जलता रहता है मेरे दृग तारक कमल के फूल बन जाते हैं हृदय की धड़कन ही धूप बनकर उड़ती है अधर, प्रिय प्रिय जपते हैं तथा पलकों का नर्तन ताल बना है फिर मुझे मन्दिर में जाने की क्या आवश्यकता है। इसीलिए देवीजी शून्य मन्दिर में स्वयं प्रियतम की प्रतिमा बनकर अपने गीले नयन से आरती करना चाहती हैं।[1] पूजा का यह रूप तथा उसके उपयुक्त उपकरण भारतीय संस्कृति तथा धर्म में मूलमिल गये हैं। इन पंक्तियों में पूजा के निमित्त मन्दिर में बैठी किसी भारतीय उपासिका की छवि उतर आई है। चित्र प्रभाव-साम्य पर आधारित होते हुए भी नैवेद्य तथा आरती आदि का क्रम तो सम्मुख खड़ा ही कर देता है। अनुभूति और कला के उचित सम्मिश्रण से चित्र बड़ा ही प्रभावोत्पादक बन गया है।

ऐसा ही एक दूसरा चित्र द्रष्टव्य है जिसमें आरती का सांग-रूपक बाँधकर कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।

—यामा पृ० २०४

इस गीत में देवीजी ने श्वासों के तार में अपने सपनों को गूँथ कर वेदना-चर्चित वन्दनवार बनाया है (फूलों को सूत में पूँथकर वन्दनवार बनाया जाता है) तथा जीवन-घट को दुख-नीर से भरकर मूक प्राणों में मधुर श्लोकों से भरा है। उनके दोनों नेत्र ही झिल मिलाते हुए दो दीपक हैं जिनमें आँसू का स्नेह डाल सुधि रूपी बत्ती जलाकर प्रियतम की पग-ध्वनि पर प्रकाश कर रही है। आरती करती हुई नारी का भावपूर्ण चित्र सांस्कृतिक तथा धार्मिक धरातल पर अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ उभर आया है।

ठीक ऐसा ही सांस्कृतिक चित्र प्रतीकों के माध्यम से 'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।'[2] कविता में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत चित्र में दीप रजत शंख घड़ियाल आरती वंदन की देहली सुमन अक्षत धूप-अर्घ्य तथा नैवेद्य आदि पूजा के उपकरणों से रंग भरा गया है। महादेवीजी छोटे-छोटे रूपकों से बड़े सुन्दर कलात्मक चित्र प्रस्तुत करती हैं किन्तु लम्बे रूपकों में पांडित्य के बोझ से भाव दब जाते हैं अतः कहीं-कहीं भावों में एकरूपता का अभाव खटकने लगता है। उपर्युक्त पंक्तियों में सांग रूपक का आश्रय लिया गया है जिससे कुछ अस्पष्टता आ गई है।

महादेवीजी के सांस्कृतिक चित्रों में एक ही भाव भूमि और एक ही अनुभूति सर्वत्र

---

[1] शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।
मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।

[2] दीपशिखा पृ० ५८

दृष्टिगोचर होती है। विशेषतः इन्होंने दीप मन्दिर तथा पूजा के उपकरणों के प्रतीक-माध्यम से ऐसे बिम्बों के निर्माण किये हैं। अपने 'असीम' से तादात्म्य स्थापित करने के निमित्त आत्म-समर्पण की भावना ऐसे गीतों में सर्वत्र पाई जाती है। इसीलिए वे कभी 'आरती' बन जाती हैं जिसमें स्नेह की वर्तिका जलती रहती है और कभी उनके नयन का नीर ही अभिषेक करने का जल बन जाता है।[1]

भारतीय वेश भूषा तथा रीति-रिवाज पर आधारित कुछ सांस्कृतिक बिम्ब मिलते हैं किन्तु ऐसे बिम्ब अपने आप में पूर्ण नहीं अधिक होकर ही सामने आये हैं। देखिये —

(क) काले रजनी अंचल में
लिपटी लहरें सोती थीं,

—यामा पृ० २२

(ख) शिवपुरी है घन-घूंघट के अंचल हौले छोर

—यामा पृ० १४७

(ग) स्वर्ण कुम-कुम में बसा कर
है रंगी नव-मेघ चूनर।

—यामा पृ० १८५

उपयुक्त तीनों बिम्बों का धरातल प्रकृति की रम्य-ओर ही है। उदाहरण (क) में 'अंचल' (ख) में 'घूंघट' तथा (ग) में 'चूनर' शब्दों के प्रयोग से भारतीय नारी की छवि सम्मुख आ जाती है। किन्तु यह छवि नारी के रूप की नहीं उसके अंचल चूनर और घूंघट की है। घूंघट कहने से लज्जालु नई वधू का रूप सम्मुख घूम जाता है।

प्राकृतिक रूप-विधान

जिस प्रकार पंत की प्रारम्भिक रचनाओं से उनकी अंतिम रचना तक सबमें सौन्दर्य के लिए एक अतृप्त प्यास और अटूट रुझान हम देखते हैं उसी प्रकार महादेवी की समस्त कृतियों में अपने 'प्रियतम' से मिलने की अतृप्त ललक है। किन्तु पंत की प्यास में जहाँ उल्लास है वहाँ देवीजी की प्यास में अवसाद और विषाद है। दोनों का एकाकी जीवन उनकी कृतियों में पृथक-पृथक रूप से झाँकता है। यद्यपि दोनों प्रतिभाओं की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हैं किन्तु इस एकता में भी एक भिन्नता है। वह भिन्नता है पुरुष और स्त्री की। डॉक्टर नगेन्द्र के शब्दों में "पुरुष कवियों का प्रणय निवेदन अधिक व्यक्त अतएव ऐन्द्रिय एवं रोमानी होगा। स्त्री का प्रणय निवेदन संयत एवं गार्हस्थिक होगा। पुरुष में रोमांस की उन्मुक्तता होगी नारी में स्वाधिकार का बन्धन। अतएव स्वीकृत रूप से लौकिक तल पर स्त्री कवि का प्रणय एकमात्र स्वकीया का घरेलू प्रणय ही हो सकता है। स्त्री अपनी प्रकृति के कारण न तो असंयत उद्गारों को ही व्यक्त कर सकती है और न स्वकीया की सीमित रेखा से बाहर ही जा सकती है।"[2] इसलिए महादेवीजी ने अपना प्रणय निवेदन (चाहे वह स्थूल के प्रति

---

१ दीपशिखा पृ० ७७

२ महादेवी वर्मा सम्पादक शचीरानी गुर्टू पृ० २११

हो या सूक्ष्म के) विरह, निवेदन अवसाद-विषाद, आशा-निराशा शृंगार तथा साधना सब प्रकृति के माध्यम से ही व्यक्त किया है। इन्होंने प्रकृति का उपयोग चार रूपों में किया है। (१) प्रकृति में तत्त्व का आभास (२) मानव भावों का आरोप (३) अलंकार (४) उपदेश।

मुस्काता संकेत भरा-नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं? —नीरजा पृ० ८६

प्रियतम प्रियतमा की साधना से प्रसन्न होकर अपने आगमन की सूचना मुस्कराते हुए आकाश के माध्यम से देता है। यहाँ आकाश का मानवीकरण करके उसे मुस्कराता हुआ दिखाया गया है। मानो 'प्रियतम' के आगमन की सूचना से ही उसकी यह दशा हुई है। कहीं-कहीं देवीजी प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करती हुई अपने मनोभावों और प्रवृत्तियों की तुलना संध्या से करती हैं।

प्रिय सान्ध्य गगन, मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,

—यामा पृ० २०३

तात्पर्य यह कि सन्ध्या का गगन ही मेरा जीवन है। धुंधला क्षितिज विराग है, अरुण अरुण सूर्य मेरा सुहाग है, संध्या की छाया ही मेरी वीतराग काया है रंग-बिरंगे घन स्मृतिमय स्वप्न हैं, पुलकाकुल मेरी साँसें हैं गहन तिमिर, बिखरा हुआ मेरा विषाद है तथा संध्या और नभ का मूक-मिलन मेरी आँसुओं से भीगी हँसती हुई दृष्टि है। इसी प्रकार "मैं बनी मधुमास आली"[1] "मैं नीर भरी दुख की बदली"[2] "विरह का जलजात जीवन"[3] आदि गीतों में देवीजी ने प्रकृति को आत्मसात करने की बात कही है।

मानवीकरण

महादेवीजी की वृत्ति विशेषतः प्रकृति के चेतन रूप में अधिक रमी है।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी।
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसंत रजनी।
—यामा पृ० ११०

१. डा० किरण कुमारी गुप्ता हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण पृ० ४५०
२. यामा, पृ० १९८
३. यामा पृ० ११०
४. यामा पृ० ११८

उपर्युक्त पंक्तियों में वसंत की मधुरिम रात का नारी का रूप दिया है। वसंत रजनी की वेणियों में तारे गूँथे हुए हैं, शशि शीश फूल है, रश्मियाँ ही भुज-बंध हैं और उसने मेघों का अवगुंठन लगाया है। इस प्रकार सज-धज कर वह आकाश मार्ग से उतर रही है। अगली पंक्तियों में देवीजी कहती हैं कि पत्तों की मर्मर ध्वनि ही उसके नूपुर की ध्वनि है और अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि पहने हुए है। अगली पंक्तियों में वह पूर्ण अभिसारिका बनकर अवतरित हुई है—पुलकित स्वप्नों की रोमावलि कर में स्मृतियों की अंजलि तथा मलयानिल का चंचल दुकूल धारण किये हुए नमित दृग लज्जालु अभिसारिका की भाँति आ रही है। सांग रूपक से वसंत रजनी का चित्र बहुत स्पष्ट हो गया है।

सकुच सलज खिलती शेफाली
अलस मौलश्री डाली-डाली
बुनते नव प्रवाल कुंजों में
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधु-कण
हर सिंगार झरते हैं झर-झर
आज नयन आते क्यों भर-भर ? —यामा पृ० १११

शेफाली के सकुच सलज खिलने में मुग्धा नायिका बोल उठती है। अलस मौलश्री से अलसाई नारी का शब्द-चित्र बन जाता है। नवप्रवाल का कुंजों में रजत-श्याम तारों से जाली बुनना नवप्रवाल के मानवी कार्य-व्यापारों का रूप प्रस्तुत करता है। मधु-पवन के मधु-कण गिनने में पवन की मुखरित ध्वनि का चित्र बन जाता है। इसी प्रकार पिक के कूजन में वंशी की ध्वनि भौंरों के भ्रमण में नृत्य तथा अरुण पाटल पुष्प के विकास में रोली की वर्षा का समारोपण किया गया है। इसी प्रकार दर्पण के सदृश सर को अंक में धारण कर रात अपने इन्दीवर लोचन में अंजन लगा रही है। इसमें शृंगार करती हुई नायिका का शब्द-चित्र प्राणवान बन गया है। चित्र की कलात्मकता भावों के संयत संयोग से निखर उठी है। देखिये :

लय गीत मदिर, गति-ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर गर्जन रुन झुन मंजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
रवि शशि तेरे अवतंस लोल
सीमंत जटित तारक अमोल
चपला विभ्रम स्मित इन्द्र धनुष
हिम कण बन झरते स्वेद निकर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर। —यामा पृ० १५५

महादेवीजी ने उपर्युक्त पंक्तियों में उस विराट सत्ता को अप्सरा के रूप में चित्रित किया है और प्राकृतिक उपकरणों से उस स्वर्गीय अप्सरा का शृंगार करके बहुत ही मोहक बना दिया है। दिन के प्रकाश और रात के अन्धकार को क्रमश: उसके शरीर पर सुशोभित सफेद और काला वस्त्र बताया है सागर की गर्जन को मंजीरों की रुन-झुन प्रभा को अलक-जाल मेघों की ध्वनि को किंकिणी का मधुर स्वर, रवि शशि को लोल कुंडल तारों को माँग का मोती चपला को विभ्रम इन्द्र-धनुष को स्मित तथा हिम-कणों को स्वेद बिंदु के रूप में चित्रित किया है।

रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली—१
शशि को छूने मचली सी
लहरों का कर-कर चुम्बन
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिंगन—२
पल्लव के डाल हिंडोले
सौरभ सोता कलियों में,
छिप-छिप किरणें आतीं जब
मधु से सींची गलियों में,—३
अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता जब
सूखा अवनी का अंचल—४
आँखों में रात बिता जब
विधु ने पीका मुख फेरा
आया फिर चित्र बनाने
प्राची में प्रात चितेरा।—५

—यामा पृ० ९

उपर्युक्त पंक्तियों में पाँच पृथक-पृथक चित्र हैं। पहले चित्र में रात के जाने और प्रभात के आने की कल्पना की गई है। रजनी एक सुन्दर नायिका के रूप में झिलमिल तारों की जाली ओढ़कर जा रही थी और प्रातःकाल की उजियाली रूपी नायिका ओस के मिस आँसू बहा रही थी। पहली पंक्ति की कल्पना बड़ी सरस और सुग्राह्य है जिससे चित्र भी स्पष्ट हो जाता है किन्तु उजियाली का हँसना तो हमने देखा है किन्तु आँसू के मिस उसके रोने की कल्पना महादेवीजी की अद्भुत सूझ का परिचय देती है। उनकी यह कल्पना कष्टसाध्य है जिसमें अनुभूतियों का नहीं मस्तिष्क का योग अधिक है। महादेवीजी की कल्पना और प्रतीक योजनाएं इस प्रकार कहीं-कहीं बहुत ही बौद्धिक हो गई हैं वहां सौंदर्य का दर्शन करने के लिए मस्तिष्क को बहुत कुरेदना पड़ता है। दूसरी कविता में तटनी नारी रूप में शशि को

लहरों के माध्यम से चूमना चाहती है और तम की छाया का आलिंगन करती है। तीसरी कविता में दो अलग-अलग चित्र हैं। पहले चित्र में पुरुष रूप में और दूसरे में नारी रूप में प्रकृति को चित्रित किया गया है। सौरभ पल्लव के हिंडोले डाल कर कलियों में सोता है। इसमें देवीजी ने बड़ी सुकुमार कल्पना की उद्भावना की है। व्यंजना है, कलियों के उर में सौरभ का निवास है किन्तु इतनी-सी छोटी बात को बड़े ही कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। उद्धरण तीन की अन्तिम दो पंक्तियों में किरणों का मधु से सींची कलियों में जाने के कार्य-व्यापार का चित्र किरणों की गत्यात्मकता का भान करा देता है। उद्धरण चार में भी दो चित्र हैं—प्रथम दो पंक्तियों में पुरुष रूप में मलयानिल अपनी करुण कहानी कहता है और पृथ्वी प्रभावित होकर उससे समवेदना प्रकट करती हुई रोती है तथा उसका सूखा आँचल आँसुओं से भर जाता है। यहाँ मलयानिल के रोने की कल्पना बड़ी ही कष्टसाध्य है। मलयानिल तो सर्वदा हँसता हुआ ही देखा जाता है किन्तु वियोग में न होने पर भी मलयानिल का करुण क्रन्दन कुछ अस्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है, जो बुद्धिगम्य भले ही हो हृदय-गम्य नहीं है। पाँचवें उद्धरण में अस्त होते हुए चन्द्र को देख कवयित्री कल्पना करती है कि जैसे रात के आवरण से चन्द्र का मुख पीला हो गया है और वह संसार से पीठ फेरकर जा रहा है। और अंतिम पंक्तियों में प्रातःकाल को चितेरे के रूप में चित्रित किया है।

इसी प्रकार एक ही गीत में एक साथ ही कई चित्रों का गुम्फन निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए।

(क) निश्वासों का नीड़, निशा का बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के बन्दनवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख-लिख जाता है, 'कितना अस्थिर है संसार'

(ख) हँस देता जब प्रात, सुनहरे अंचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब मचली पड़ती किरणें भोली,
तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती हैं, 'कितना मादक है संसार'

(ग) स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में देती अगणित दीपक बार,
हँसकर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़-बढ़ पारावार,
'बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार'।

—यामा, पृ० ९

उद्धरण (क) में आकाश एकाएक मेघाच्छन्न हो गया, पानी बरसने लगा। रात्रि की मुक्तावलियों के अभिराम बन्दनवार (तारों की पंक्ति) छिन्न-भिन्न होकर लुट गये हैं, और निश्वासों का नीड़ उसका शयनागार बन गया है। तारों का बुझना और बूँदों का गिरना ही मानो बुझते हुए तारों के हाहाकार और आँसू हैं जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है कि 'संसार कितना अस्थिर है'? इस चित्र में भी कल्पना बड़ी बौद्धिक और कष्टसाध्य हो गई

है जिससे चित्र पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाता। यहाँ प्रकृति का उपदेशात्मक रूप भी काफी निखरा प्रतीत होता है।

उद्धरण (ख) में प्रातःकाल, किरणों एवं कलियों को सप्राण किया गया है। 'प्रातःकाल हो गया' इतनी सी बात को स्पष्ट करने के लिए प्रातःकाल की सरस अभिव्यंजना चित्र के माध्यम से की गई है। अपने सुनहले अंचल में रोली बिखरा प्रातःकाल मानो हँस देता है और लहरों की सिहरन पर मोती किरणें मचली पड़ती हैं। प्रिय प्रातःकाल के रूप को देख कर कलियाँ चुपचाप पल्लव के सुकुमार घूँघट उठाकर पलकों से कहती हैं 'संसार कितना मादक है'? यहाँ प्रातःकाल को पुंलिंग मानते हुए भी देवीजी ने उसे अंचल में लपेट कर नारी का परिधान पहना दिया है जो खटकने वाली बात है। कलियों के घूँघट उठाने में नारी का सांस्कृतिक चित्र उभर आया है। अभिव्यंजना प्रणाली छायावाद-युग की प्रमुख विशेषता रही है। जैसे 'मुँह से कुछ बोलो' को छायावादी कवि इस प्रकार कहता है—'मौन भार से दबे हृदय को कुछ मुखरित सुख सह लेने दो।' ठीक ऐसी ही अभिव्यक्ति उद्धरण (ख) में हुई है।

उद्धरण (ग) में सन्ध्या का रूप-चित्रण किया गया है। सूर्य हँसते-हँसते डूबती हुई अपनी स्वर्णिम किरण विश्व पर डालता है उस समय कल्पिणी अपनी मधुर कल्पना से उसे रूप देती हुई कहती है कि मानो वह सुनहले अक्षर से अपने पराजय की कथा लिख रहा है। तत्पश्चात् भोली गृहिणी के रूप में नभ के आँगन में अनेकानेक दीपों को बसा देती है। इसकी अंतिम पंक्ति में नारी का सांस्कृतिक रूप अधिक उज्ज्वल बन पड़ा है। रंगों के उचित सामंजस्य से चित्र काफी सुहावना और सजीव लगने लगता है।

देवीजी की सूक्ष्म कल्पना और अद्भुत परिवीक्षण शक्ति का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है। देखिए

(क) नीरव नभ के नयनों पर हिलती हैं रजनी की अलकें,
जाने किसका पंथ देखतीं बिछकर फूलों की पलकें।

(ख) फूलों की मीठी चितवन नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ,

(ग) पोंछती जब हौले से वात, इधर निशि के आँसू अवदात,
उधर क्यों हँसता दिन का बाल, अरुणिमा से रंजित कर गाल ?

(घ) निशा को, धो देता राकेश
चाँदनी से जब अलकें खोल
कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधु मदिरा का मोल'

क—यामा पृ० ४
ख—यामा पृ० ११
ग—यामा, पृ० ७१
घ—यामा पृ० १

उद्धरण (क) में नभ रजनी तथा फूलों का रूपानुभव कराया गया है। नभ के तारे ही उसके नेत्र हैं, 'उँजियारी' रजनी की श्यामल अलकें हैं और पृथ्वी पर बिछी हुई पंखुड़ियाँ मानो पलक-पाँवड़े बिछाकर किसी की बाट जोह रही हैं। छायावाद-युग में ऐसे सूक्ष्म और भावात्मक प्रतीकों का बाहुल्य है विशेषतः देवीजी की कविता तो ऐसे अमूर्त प्रतीकों से भरी पड़ी है। उद्धरण (ख) में फूलों की मीठी चितवन' तथा 'सन्ध्या के पीछे मुख में' दो अलग-अलग खंड-चित्र दिखाई पड़ते हैं। उद्धरण (ग) में प्रातःकाल का चित्रांकन हुआ है। प्रातःकाल होते ही 'रात' निशि के आँसू (ओस) धीरे-धीरे पोंछती है और आकाश अरुणिमा से गाल रंजित करके हँसता है। रात और आकाश के कार्य-व्यापार से दोनों चित्र अपनी सम्पूर्ण कमनीयता से सजीव हो उठे हैं। चित्र (घ) में प्रकृति का एक कथन चित्र प्रस्तुत किया गया है। इन पंक्तियों में निशा और राकेश कली तथा मधुमास के पारस्परिक व्यवहार अलकों को खोलकर धो देना तथा मधुमास और कली के वार्तालाप से नायक और नायिका के कामुकतापूर्ण व्यवहार की छवि अंकित की गई है।

(क) अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।

—यामा पृ० ७९

(ख) विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी-सी
जिसमें उजियारी रातें
लुटती घुलती मिसरी-सी

—यामा पृ० १९

उद्धरण (क) में 'जलधि' को मोती 'अवनि-अम्बर' को सीप, 'घन मृदुल' को 'हिम-पुंज' तथा 'ज्योत्स्ना' को रजत-पारावार कहने में कवयित्री ने रूपानुभव कराने में यद्यपि अपने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। फिर भी चित्र में अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। उद्धरण (ख) में 'विधु' को मादक मकरन्द से भरी थाली तो स्वीकार कर कह सकते हैं किन्तु 'उजियाली रात उसी प्रकार लुट जाती है जैसे मिसरी घुल जाती है' यह सूक्ष्म कल्पना वस्तुसाम्य, गुणसाम्य तथा क्रिया-साम्य किसी पर आधारित न होने के कारण पकड़ में नहीं आती। थोड़ा-थोड़ा भाव-साम्य शंकित भर है लेकिन उससे चित्र स्पष्ट नहीं हो पाता।

विद्युत के चल स्वर्ण पाश में बँध, हँस देता रोता जलधर
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर
दिन निशि को देता निशि दिन को रजत-कनक के मधु प्याले हैं।

इन उपर्युक्त पंक्तियों में स्वर्ण-पाश में पदगत रोता में विशेषणगत हँस देता में क्रियागत और 'सागर ज्वाला गीतों से नहलाता में वाक्यगत लक्षणा है। प्रिय के आगमन की मधुर आशा में रोता हुआ अर्थात् कुछ कदन शब्द करता और मधुकण के समान फुहारे

बरसाता जलधर स्वर्ण पाश (विद्युत की स्वर्णाभा) में बँधा बहुत उत्फुल्ल प्रतीत हो रहा है। समुद्र की उठती-गिरती लहरों से जो ध्वनि निकलती है उसमें कुछ हाहाकार-सा भरा रहता है। इससे उसकी ध्वनि को व्यथा गीत कहना अनुचित नहीं। हम उसकी व्यापक गम्भीर ध्वनि को सुनते ही नहीं अपने सब अंगों से अनुभव करते हैं। इससे महत्ता की भी सार्थकता है और अर्थ में व्याघात भी नहीं पड़ता। दिन के प्रकाश और रात की चाँदनी के लिए सोने-चाँदी की तुलना अप्रतिम है। उसमें मद की प्याली का आरोप उनकी मादक भावव्यतिरेक की भावना व्यक्त करता है। कविता के भाव रूपक के स्पर्श से ऐसे सजीव हो उठे हैं जैसे सचमुच प्रियागमन की प्रत्याशा में प्रकृति थिरकने लगी है।[1]

इसके अतिरिक्त देवीजी के काव्य में ऐसे और भी अनेक उदाहरणों की भरमार है। प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से मानवी-व्यापारों और स्वभावोचित अन्य प्राणी-व्यापारों की अभिव्यंजना हुई है। देखिये —

(१) किरणों के प्याले चुम्बन में —यामा, पृ० १२

(२) अलसाती भी लहरें पीकर
मधु-मिश्रित तारों की ओस —यामा, पृ० १३

(३) झुक-झुक झूम-झूम कर लहरें
भरती बूँदों के मोती। —यामा, पृ० १४

(४) जल चपला के दीप जलाकर
किसे ढूँढ़ता अन्धकार? —यामा पृ० १४

(५) रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले श्रम के कण —यामा पृ० १६

(६) सीखा बालक मेघों ने नभ के आँगन में रोदन —यामा पृ० ४५

(७) उजियारी अवगुण्ठन में विधु ने रजनी को देखा —यामा पृ० ४५

(८) रजनी के अभिसारों में नक्षत्रों के पहरों में
ऊषा के उपहासों में मुस्काती सी लहरों में —यामा पृ० ६०

(९) गोधूली के ओठों पर किरणों का बिखराना है
यह सूखी पंखुड़ियों में मारुत का इठलाना है। —यामा, पृ० ६१

(१०) सौरभ का फैला केश-जाल करतीं समीर-परियाँ विहार
गीली केसर-मद झूम-झूम पीते तितली के नव कुमार —यामा, पृ० ६६

(११) शून्य नभ में तम का चुम्बन जला देता असंख्य उडुगन। „ „ ७१

(१२) यह आँखें मिलते-मिलते नभ की पलकें झप जातीं। „ „ ८७

(१३) जब समीर-यानों पर उड़ते मेघों के लघु बाल। „ „ १०४

(१४) ज्यों भाल पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती
भारी पलकों में धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती। „ „ ११८

(१५) यह सागर का चंचल छौना (बादल) —दीपशिखा पृ० १४६

१. पं० रामदहिन मिश्र काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० ६२

मध्य रूप विधान

भावात्मक

प० नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में प्रसाद' के 'आँसू' 'निराला' की सरोज स्मृति' जैसी उदात्त एकतान कल्पना तथा 'पल्लव' का-सा सौन्दर्योन्मेष महादेवीजी में नहीं है, किन्तु वेदना का विन्यास उसकी वस्तुमत्ता (आब्जेक्टिविटी) का बहुरूप और विवरणपूर्ण चित्रण जितना महादेवीजी ने किया है, उतना वे तीनों कवि नहीं दे सके हैं।[1] वाजपेयीजी के इस कथन में एक वाक्य और जोड़ा जा सकता है कि भावपूर्ण चित्रों की बहुलता और उनका कलात्मक निखार जितना महादेवीजी की कविताओं में मिलता है उतना प्रसाद को छोड़ अन्य छायावादी कवियों में नहीं मिलता। इनके भावात्मक चित्रों के चार मुख्य आधार हैं (क) दार्शनिक (ख) प्रेम तथा माधुर्य भाव (ग) प्रणयानुभूति तथा (घ) दुःख तथा निराशा। इन चार प्रमुख आधारों पर मानव-मन की विभिन्न रागात्मक प्रवृत्तियों के चित्र खींचे गये हैं जिनमें प्रमुखता प्रेम और विरह को ही मिली है। ऐसे कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं।

पत्र-लेखन भी मिलन का एक माध्यम है। यह एक प्रकार का मानसिक मिलन होता है इसमें काल्पनिक मिलन से अधिक उल्लास और आनन्द की प्रतीति होती है। पत्र व्यवहार काल्पनिक मिलन की भाँति एकांगी नहीं होता यद्यपि प्रेम की वह अनुभूति और तीव्रता इस मिलन में नहीं होती फिर भी इस मिलन में निश्चयात्मकता की भावना पाई जाती है। किन्तु महादेवी का प्रियतम अलौकिक अरूप आह है—उसे कैसे पत्र लिखा जाय और लिखें भी तो किस पते से भेजें? यही समस्या महादेवीजी के हृदय को मथ रही है। उन्हीं परिस्थितियों का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है। देखिये

> प्रिय कहाँ संदेश भेजूँ ?
> मैं किसे संदेश भेजूँ ?
> उड़ रहे यह पृष्ठ पल के
> अंक मिटते श्वास चल के,
> किस तरह लिख सजल करुणा की कथा सविशेष भेजूँ ?

—दीपशिखा पृष्ठ १०४

इन पंक्तियों में एक ओर विवशता का चित्र बनता है, दूसरी ओर अंतिम दो पंक्तियों में द्रुत-गति से भागते हुए जीवन की तस्वीर खींची गई है। जीवन के बीतते हुए एक-एक पल कागज के पृष्ठ की भाँति उड़ रहे हैं और उस पर लिखे हुए अंक मिटते हुए श्वास के सदृश हैं। रूपक अलंकार के सहारे भागते हुए जीवन की मूर्ति स्पष्ट हो गई है।

दीप-शिखा में अधिकांश कविताएँ दीपक को ही पृष्ठभूमि बनाकर लिखी गई हैं। दीपक को देवीजी ने आत्मा का प्रतीक मानकर उसे निष्काम भाव से विरहाग्नि में जलने के लिए प्रोत्साहन दिया है। जब तक प्रभात के दर्शन नहीं होते तब तक दीपक जलता ही रहता है। जैसे-जैसे दीपक तिल-तिल जलता है वैसे-वैसे उसका प्रिय प्रभात समीप आता

---

१. महादेवी वर्मा, सम्पादक रश्मिरानी द्युई पृ० २१०

जाता है। तात्पर्य यह है कि आत्मा प्रिय के विरह में जितनी ही घुलती है परमात्मा उतना ही पास आता प्रतीत होता है। आत्मा के लिए दीपक का प्रतीक अधिक तर्कसंगत और प्रभावपूर्ण है। "यहाँ रात विरह निशा के लिए, अंधकार प्रणय-पीड़ा के लिए, तमस संसार के लिए, लौ सुधि के लिए, प्रकाश पु थके पथ को प्रकाशित करने के लिए और प्रभात मिलन-बेला के लिए प्रयुक्त हुए हैं।"[1]

(१) दीप मेरे जल अकंपित घुल अचंचल।
(२) जब यह दीप थके तब आना।
(३) मैं क्यों पूछूँ यह विरह-निशा
कितनी बीती क्या शेष रही ?
(४) शेष यामा यामिनी मेरा निकट निर्वाण।
पागल रे शलभ अनजान।
(५) पूछता क्यों शेष कितनी रात ?
(६) तमक है कितना सबेरा ?

पहले उद्धरण में उस उत्साह के दर्शन होते हैं जिसकी अनुभूति 'यात्रा' के प्रारम्भ में सभी उत्साही यात्रियों को होती है। दूसरे में यह भाव व्यक्त किया गया है कि यात्रा की थकान से थक जाने पर आ जाना। तीसरा चित्र उस परिस्थिति का विश्लेषण करता है जब आधी यात्रा समाप्त हो चुकी, किन्तु आधी अभी तय करनी है। मुख्य बात साधना है साध्य की चिंता नहीं। साधन सफल होने पर लक्ष्य अपने आप पास आ जायेगा। यही भाव पाँचवें उद्धरण में भी दृढ़ता के साथ व्यक्त किया गया है। चौथी पंक्ति में विरह-निशा के अवसान तथा आत्मा-परमात्मा के मिलन के विश्वास का चित्र उभर आया है। छठी पंक्ति में प्रभात के दर्शन से लक्ष्य को प्राप्त करने की खुशी में आत्मा आत्मविभोर हो झूम उठती है। इसीलिए आत्मा आवेश में कह उठती है, तमक है कितना सबेरा? महादेवीजी का लक्ष्य साध्य नहीं साधन रहा है, तृप्ति नहीं अतृप्ति से मोह है साधना की पिपासा सदैव जागरूक बनाये रखने में ही वे अपना कल्याण समझती हैं अतः वे कहती हैं कि :

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सागर।

—आधुनिक कवि पृ० २८

उन्हें जीवन में तृप्ति की आकांक्षा नहीं वे आँखों की प्यास को निरंतर बनाये रखना चाहती हैं। इन पंक्तियों में कवयित्री के मनोभावों का एक करुण चित्र बन गया है। प्यासी आँखों के विशेषण विपर्यय से चित्र और भी सजीव हो गया है।

छायावादी कवियों की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों ने उन्हें कुछ सीमा तक वेदनावादी बना दिया, उन्हें आँसुओं की माला गूँथने में विशेष आनन्द आता है। करुणा और आँसू को देवीजी ने अपना आत्मीय ही मान लिया है। अतः उससे प्यार हो जाना सहज स्वाभाविक

---

१. महादेवी, दिसम्बर 'मानव' पृ० २४
२. महादेवी, दिसम्बर 'मानव', पृ० २२

है। देखिये

जन्म से ये साथ हैं, मैंने इन्हीं का प्यार जाना,
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना।

—यामा पृ० २१९

आँसुओं से कवयित्री की ममता है, उस ममता को व्यक्त करने के लिए किसी प्रकार के अप्रस्तुत विधान की योजना नहीं की है फिर भी चित्र बहुत प्रभावोत्पादक है।

कवयित्री का जीवन ही वेदनामय हो उठा है। किन्तु वेदना दुखद नहीं सुखद है। इस प्रकार आँसुओं के असम-सिन्धु में वह डूबती-उतराती निरंतर साधना के पथ पर बढ़ती चली आ रही हैं। देखिये

इस मीठी सी पीड़ा में डूबा जीवन का प्याला।
लिपटी-सी उतराती हैं, केवल आँसू की माला॥

ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन का सब रस निचुड़ कर आँसू ही बन गया है। वेदना की इस तस्वीर को देखकर आँखों में बरबस आँसू आ जाते हैं।

भाव-विह्वल होकर महादेवीजी ने अपने को प्रकृति से इतना मिला दिया है कि दोनों दो होकर भी एक प्रतीत होते हैं। वे अपने को रंगीले भावों का रंग साँध्य नभ में देखती हैं तथा तिमिर की दीपावली (तारिकाओं) में अपनी पुलकित रोमावलियों का आभास पाती हैं।

महादेवीजी ने अपनी अधिकांश रचनाओं में यह संकेत किया है कि उनका प्रियतम कबीर की तरह उन्हीं के पास है—

मुझको कहाँ ढूंढ़ता बंदे मैं तो तेरे पास में—कबीर

उपनिषद् में भी हृदय को उस परम-सत्ता का निवास स्थान बताया गया है—

"वहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो"—प्रश्न० ६।२

इसी भाव की अभिव्यक्ति महादेवीजी के इस कथन में होती है कि

प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूं?

—दीपशिखा पृ० १०४

'चुभते ही तेरा अरुण बान'[१] शीर्षक कविता में यों तो प्रभाव का चित्रांकन किया गया है। चित्र का बहिरंग इस प्रकार है—किरणों का तम-सिंधु विहग क्षितिज तथा मेघ आदि पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। बाणने पर कलियों के चटकने ओस बिन्दुओं के नाचने, तितली के नवकुमार के गूंजने पत्तलों से मधुर ध्वनि के निकलने, वायु में गंध भरने तथा कंज-कोष के खुलने आदि का चित्रण हुआ है। किन्तु इन पंक्तियों का आध्यात्मिक पक्ष भी है। 'रश्मि' को ज्ञान का प्रतीक मानने पर अर्थ इस प्रकार होगा : अन्तःकरण में ज्ञान का बाण चुभते ही हृदय का कोना-कोना आनन्दातिरेक से लहरा उठता है। उस ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान का समुद्र सूख जाता है। अगली पंक्तियों में मधुर भावनाओं के प्रवाहित होने—कलुषित आत्मा तथा हृदय के प्रकाशमान होने तथा उसे सात्विक भावों

१. यामा पृ० ९६

के रंगने नवीन विचारों एवं भावों पर ज्ञान का आधिपत्य जमाने अज्ञान की रात में शयन करने वाले मन के उस दिव्य ज्योति में अवगाहन कर आत्मा-परमात्मा के प्रेम-मिलन के बीच वाले चेतना के प्रकाश में आपाद-मस्तक सवलीन होने और सांसारिक सुख-स्वप्नों में विलीन होने की बात कही गई है।

ज्ञान आते-आते आता है, इसी प्रकार महादेवीजी ने कहा है कि ज्ञान के नयन-कज धीरे-धीरे खुलते हैं। अतएव विस्मृति की कुछ खुमारी बनी ही रहती है। इसी मधुर स्मृति से कि आत्मा परमात्मा की प्रियतमा है, हृदय में हँसी और आँसू दोनों का सामंजस्य हो जाता है। 'मानव' के शब्दों में हास तो अपने परिचय की महत्ता के कारण और आँसू इसलिए कि इतने दिन बीत जाने पर भी यह सुधि अभी तक सार्थक क्यों न हुई। यही भाव—

रंग रहा हृदय में मधु हास
यह चतुर चितेरा सुधि विहान।

—पंक्तियों में चित्रित किया गया है।

पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर-भर ?
सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली-डाली
बुनते नव प्रवाल कुंजों में
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधु पवन गिन-गिन मधु-कण,
हरसिंगार झरते हैं झर-झर।
आज नयन आते क्यों भर-भर।

—यामा पृ० १११

इन पंक्तियों का बाह्य रूप उपवन का-सा है जहाँ शेफाली खिलती है, हरसिंगार झरते हैं और नायिका चकित वासन्ती रजनी का मादक वैभव बिखरा पड़ा है। शेफाली लजीली नायिका की भाँति सकुचा रही है, लजा रही है खिल रही है। किन्तु देवीजी को यह अवसर कभी भी नहीं प्राप्त हुआ कि क्षण भर के लिए ही वह प्रिय का सान्निध्य पाकर शेफाली बन जातीं। डाली-डाली पर मौलश्री अलस-मुद्रा में पड़ी है क्योंकि मादक पवन का सुखद स्पर्श उसे सहज ही प्राप्त है किन्तु उसका जीवन तो इन मादक स्पर्शों से शून्य है। 'कुंजों के नीचे झरते हरसिंगार की सय्या पर तम और चाँदनी परिरम्भकुसुम की मदिरा का आस्वादन कर रहे हैं। पवन मधुभार से दबा हुआ चलने में असमर्थ है। महादेवीजी प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से मिलन का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती हुई, अपनी वियोगावस्था की तीव्रता का भाव स्पष्ट कर रही हैं। एक ओर प्रकृति है वह कितनी सुखी है। एक ओर मैं हूँ कितनी दुखी हूँ। प्रकृति प्रियतम के कितने समीप और मैं कितनी दूर हूँ। इसीलिए "पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर तन आज नयन आते क्यों भर-भर।" उपर्युक्त पंक्तियों में कवयित्री ने अपनी प्रणयानुभूति का बड़ा ही कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है।

दुख के बाद सुख निराशा के बाद आशा और विरह के बाद मिलन यही इस जीवन का क्रम है। इसी भाव को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

जब मेरे शूलों पर शत-शत मधु के युग होंगे अवलम्बित,
मेरे क्रन्दन से आतप के दिन सावन हरियाले होंगे।

महादेवीजी कहती हैं कि दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।[1] इस पृष्ठभूमि पर महादेवीजी की रचनाओं को रखकर देखें तो उनमें हमें 'दुःख' के रंग-बिरंगे चित्र मिलते हैं। किन्तु प्रतीकों की दुरूह योजना से कहीं-कहीं चित्र बहुत धूमिल और अस्पष्ट हो गये हैं। देखिये

उच्छ्वासों की छाया पीड़ा के आलिंगन निःश्वासों के रोदन इच्छाओं के चुम्बन मल-यानिल की अलकें सपना की मुग्ध हँसी, रजनी के अभिसारों, नक्षत्रों के पहरे आदि अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप देकर भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। छायावाद युग की यह विशेष प्रवृत्ति रही है किन्तु इन पंक्तियों से चित्र उभर नहीं पाता केवल इतना ही पता चलता है 'इतने अमूर्त और मूर्त के गहन वन को पार करते हुए मेरे नीरव मानस में वे धीरे धीरे आये।'[2]

तुम हो प्रभात की चितवन मैं विधुर निशा बन आऊँ
काटूँ वियोग-पल रोते संयोग-समय छिप जाऊँ।

तात्पर्य यह कि प्रिय के वियोग में दिन-रात आँसू बरसाने पर भी मिलन-सुख नहीं मिलता क्योंकि मिलन-वेला में उनका अस्तित्व ही मिट जाता है।

भक्त का भगवान में समा जाना ही संयोग है।

कबीर का भी यही मत है

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

प्रभात की चितवन और विधुर निशा इन दो अप्रस्तुतों की योजना से भाव सजीव हो उठा है।

नश्वरता का यह चित्र प्राकृतिक उपादानों से कितना सजीव हो गया है—देखिये

विकसते मुरझाने को फूल, उदय होता छिपने को चंद　　—यामा पृ० ४२
तेरे असीम आँगन की देखूँ जगमग दीवाली
या इस निर्जन कोने में बुझते दीपक को देखूँ।　　—यामा पृ० १००

---

१. यामा की भूमिका से उद्धृत
२. यामा पृष्ठ ६०

यहाँ दो विरोधी वस्तुएँ पास-पास रखी गई हैं, एक ओर असीम आँगन की (तारों की) जगमग दीपावली है। दूसरी ओर निर्जन कोने में बुझता हुआ मृतप्राय दीपक। दीपक में साम्य है। किन्तु निर्जन कोने में एक ही दीपक है और आकाश में अनन्त तारे दीपक की भाँति जगमगा रहे हैं। "इन पंक्तियों में कवयित्री की दृष्टि में सांसारिक सुख-दुख आशा निराशा अमीरी-गरीबी, आलोक-अन्धकार, अपेक्षा-उपेक्षा उन्नति-अवनति विकास ह्रास उत्थान-पतन के प्रदर्शन के भाव हैं। इसी प्रकार के भाव निम्न पंक्तियों में भी प्राणवान हो गए हैं।'[1]

देखूँ हिम-हीरक हँसते हिलते नीले कमलों पर।
या मुरझाई पलकों से झरते आँसू कण देखूँ।

—यामा पृ० ९९

नील-कमल के सदृश आँखें हैं और आँसू हँसते हिमहीरक जैसे हैं। कवयित्री की दृष्टि दोनों ओर है। एक ओर प्रकृति का विहँसता हुआ रूप है दूसरी ओर मानव का करुण चित्र। कवि असमंजस में है कि हम किधर मुड़ें। हमें दीपक को स्नेह दान करके गरीबों के दुख-दर्द और आँसू को पोंछना चाहिए अथवा अमीरों के वैभव विलास में योग देना चाहिए। इन पंक्तियों की व्यंजना-शक्ति अपरिमेय है। दो विरोधी चीजों को पास-पास रखकर भावों का चित्रांकन करना देवीजी की निजी विशेषता है। इसी प्रकार निम्नलिखित अवतरणों में विभिन्न भावों के कोमल और सूक्ष्म चित्र देखिये

(१) पीड़ा का साम्राज्य बस गया —यामा, पृ० ३
(२) मेरा यह भिक्षुक जीवन ,, ,, १७
(३) कहीं है पीड़ा संगहीन ,, ,, ५३
(४) घुलाकर सारा उन्माद ,, ,, ५३
(५) लालसा सोती थी साकार ,, ,, ५४
(६) जला वेदनाओं के दीपक ,, ,, ५९
(७) रहने दो प्यासी आँखें ,, ,, ७९
(८) मोम-सा तन घुल चुका। अब दीप-सा मन जल चुका है।

—दीपशिखा, पृ० १०५

उपर्युक्त पंक्तियों में सुख-दुख आशा निराशा तथा विरह-मिलन के भावात्मक चित्र बिखरे पड़े हैं, जिनका निर्माण कहीं विशेषण विपर्यय के माध्यम से, कहीं प्रतीक योजना के बल पर और कहीं मानवीकरण तथा चेतन-प्राणियों के माध्यम से किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी की कविता में रति विस्मय शोक और शम इन स्थायी भावों की और रोमांच कंप वैवर्ण्य अश्रु और प्रलय इन सात्विक भावों की प्रधानता है। व्यभिचारियों में से मरण ग्लानि निद्रा स्वप्न उन्माद, भय मोह, चपलता, स्मृति, वितर्क आवेग विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य चिन्ता शंका, त्रास गर्व और व्रीड़ा इस

१. डॉ० रामरतन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० २८३

प्रकार से पचास में से सत्ताइस भावों का ही विशेष प्रयोग किया गया है।[1] इसी कारण इनके भावात्मक चित्रों में विविधता नहीं एकांगीपन आ गया है। इनके व्यक्तिगत दुःख की भावाभिव्यक्ति आध्यात्मिक भाव भूमि पर सर्वत्र न पहुँचने पर भी अपनी गहरी अनुभूति और गहन वेदना का अक्षय कोष लिये आध्यात्मिक ही प्रतीत होने लगती है। इसीलिये चित्रों के पृथक्करण में भ्रांतियाँ भी हो सकती हैं।

गुणात्मक रूप-विधान

रंग गंध स्पर्श श्रवण तथा स्वाद इन्द्रियों के इन पाँच गुणों में देवीजी की दृष्टि विशेष रूप से रंगों पर ही अधिक पड़ी है। अन्य चार गुणों के चित्रण बहुत विरल हैं, और जहाँ कहीं हैं भी वे सीधे ढंग से आये हैं उनसे चित्र नहीं बनता।

सांसारिक अभावों से दूर ऐश्वर्य की गोद में पली महादेवीजी ने वैभवपूर्ण और मूल्यवान रंगों पर ही अधिक दृष्टिपात किया है, शुद्ध और मलिन रंग उनके दृष्टि-पथ से सम्भवतः नहीं गुजरे हैं। कनक से दिन मोती सी रात मरकत प्याली कंचन के प्याले नीलम के बादल इन्द्रमणि जैसे कुमकुम प्रवाल सी आभा, इन्द्रधनुषी चीर, निशि-वासर कनक और नीलम के यानों पर चढ़ते हैं। महादेवी को काले बादलों में बिजली ऐसी प्रतीत होती है जैसे नीलम के मन्दिर में हीरक प्रतिमा। वे मेघों की चूनर स्वर्ण-कुंकुम में बसा कर रँगती हैं। गगन के तारे ऐसे लगते हैं जैसे रजनी ने नीलम-मन्दिर के वातायन खोल दिये हों। इसी प्रकार सित-असित पीत-अरुण आदि रंगों को भी देवीजी ने ममतामयी दृष्टि से देखा है। कुछ उदाहरण लीजिये।

हिमालय तथा बादल के चित्र विभिन्न रंगों के भरे जाने पर कितने आकर्षक प्रतीत होते हैं देखिये

धू धू के प्राणों का सत्वर।
सित क्षीर-फेन हीरक रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित
पारद की रेखाओं में चिर
चाँदी के रंगों से चित्रित
खुल रहे दलों पर दल झलमल
सीपी से नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मँडराते शत शत अलि बादल।

—दीपशिखा पृ० ११९ ४०

इन पंक्तियों में सित क्षीर-फेन हीरक रज पारद की रेखाओं तथा चाँदी के रंगों से चित्रित सीपी तथा नीलम से द्युतिमय कुछ पिंग कुछ अरुण तथा कुछ श्यामल रंगों से हिमालय

---

१. प्रभाकर माचवे

तथा बादलों की शोभा सजीव हो उठी है। उपमा तथा रूपक के योग से रंगों का वैभव और भी बढ़ गया है। इसी प्रकार रंगों के उचित सम्मिश्रण से कवयित्री ने अपने जीवन को संध्या में समाहित कर दिया है

प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीत राग
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन,
साधों का आज सुनहला पन
घिरता विषाद का तिमिर गहन। —यामा पृ० २०१

संध्या का धुँधला विराग अरुण सुहाग रंगीलेपन साधों का सुनहलापन, विषाद का गहन तिमिर आदि से जीवन और संध्या का रूप-साम्य पर आधारित चित्र काफी प्राणवान हो उठा है।

कनक से दिन मोती सी रात, सुनहली साँझ गुलाबी प्रात
मिटाता रँगता बारम्बार कौन जग का यह चित्राधार?

—यामा, पृ० ७१

कनक मोती सुनहली तथा गुलाबी शब्द क्रमशः दिन रात साँझ तथा प्रात के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इन रंगों के योग से दिन रात साँझ तथा प्रातःकाल का स्वाभाविक चित्र बन जाता है।

महादेवीजी को गुलाबी मरकत कनक रजत नीलम सुनहली तथा अरुण रंगों से विशेष मोह है। देखिये —यामा पृ० १९, १०३, १०७ १५५, १७९ १८५, २०७
—दीपशिखा पृ० ८५, ९७ १२९

स्पर्श तथा गंध पर आधारित चित्र

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है?

स्पर्श छू अरुण का किरण चामर,
झुक गये नभ-दीप निर्झर—

श्रवण तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत-सा वह कौन है?

—यामा पृ० १९०

महादेवीजी की समस्त रचनाओं को देखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंत जैसा रूप और रंग-वैविध्य महादेवी में नहीं है महादेवी का कल्पना-विस्तार भी उतना नहीं है। पर एक बात जो महादेवी में है, वह न पंत में है न निराला और प्रसाद में ही।

यह है आनुभूतिक वेदना का तीखापन और उस पर सहजता का आक्षेप लगाने वाली हरी वेदना जो महादेवी की कविता की प्राण-पीठिका है। भावना लोक की यही सहजात वेदना उनकी समस्त काव्य-कृतियों को अन्तर्मुखी बना देती है। इस पराकाष्ठा तक पंत प्रसाद या 'निराला' अन्तर्मुखी नहीं हो सके हैं वैसे अन्तर्मुखी वे भी हैं। यही कारण है कि जहाँ उनकी काव्य-कल्पना प्रकृति के विविध रंग-वर्णों को चूमने के उपक्रम में प्रकृति जैसी ही कुछ विस्तार पा गई है, वहाँ महादेवी की कल्पना समस्त प्राकृतिक वैभव को समेट कर सुरभि के सदृश उनके अंतर में ही गहरे पैठ गई है।

डा० रामकुमार वर्मा

विज्ञान ने विश्व को सदैव 'ज्ञेय' के रूप में ही स्वीकार किया है। उसके 'प्रेय' रूप की ओर आकर्षित होने की न उसमें सुरुचि ही है और न क्षमता। अपनी निस्संग रागहीन निरपेक्ष दृष्टि द्वारा वह इस असीम विस्तार के रहस्योद्घाटन में कटिबद्ध है। विशेष को सामान्य में तिरोहित कर, सामान्य सिद्धान्तों के निर्माण द्वारा वह जग-जीवन के अविभाज्य सत्य को खण्डित कर, उन खण्ड-सत्यों पर लेबल चिपकाने की प्रवृत्ति से आक्रांत है। विज्ञान की यह प्रवृत्ति अपनी सहज सीमा-रेखाओं का अतिक्रमण कर आज कला-क्षेत्र को भी आक्रान्त कर रही है।

आज हम काव्य-धारा के अजस्र प्रवाह को 'वादों' की संकीर्ण नालियों में प्रतिवर्तित करने में प्रयत्नशील हैं। 'वाद' के सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से हम कवि और उसकी कलाकृति के निरीक्षण-परीक्षण के अभ्यस्त हो चले हैं फलस्वरूप स्वस्थ और रसोपभोग की सहज क्षमता भी आनुपातिक रूप से कम होती जा रही है। हम जानकर भी यह भूलना चाहते हैं कि काव्य अन्वेषण और विश्लेषण का नहीं अनुभूति और भावना का विषय है।

कवि की आत्मा चिर मुक्त और स्वतंत्र है। वह 'वादों' और विवादों से सुदूर और परे है। उसके प्राणों का स्वर कभी करुणा की वीणा में झंकृत हो जन-जन को वेदना से अभिषिक्त कर देता है तो कभी 'नूपुरों' का हास बनकर रास में रस-सृष्टि करता है। कभी वह क्रोध और आवेश से फुफकार उठता है तो कभी वह पाञ्चजन्य के तुमुल घन-घोष से पृथ्वी के प्राचीरों को स्तब्ध और मौन कर देता है। उसके सुधा-सिक्त प्राणों में जीवन के विष-पान की ललक भी कम नहीं है।

जीवन के छायातप अश्रु-हास पाप-पुण्य में डूबता-उतराता कवि सत्यान्वेषण की नूतन उपलब्धियों द्वारा निराश मग्न मानव हृदय को आशा का संदेश देता रहता है। अपनी मंगलाकांक्षा से विश्व के कण-कण को रस-सिक्त करने की कामना लिये 'मानवता' के विकास में योगदान किया करता है। जग की नश्वरता के स्वर, कवि को अपने ससीम व्यक्तित्व की विवशता और असहायता की ओर आकृष्ट कर अवश विकल कर देते और रुलाते हैं और 'निराशा' की उन भीम-शिलाओं से टकराने पर विवश कर देते हैं जो उसे चूर-चूर कर उसके व्यक्तित्व का नव-निर्माण करती हैं जो उसके हृदय में अदम्य साहस, स्फूर्ति और आशा की अक्षय-राशि उड़ेल देती हैं। और जो उसके ससीम को असीम के अज्ञात प्रदेश की ओर संकेत कर दिशा-निर्देश करती हैं।

दुःख-सुख में राग-विराग में सामंजस्य स्थापित कर, जीवन की संकीर्णताओं की परिधि से ऊपर उठकर, कवि सारी धरती और आकाश को अपनी उन्मुक्त बाँहों में समेट लेने की स्वच्छन्दता चाहता है। उसका 'अहं (ससीम) 'इदं' (प्रकृति) में भी एक ही सत्ता के प्रसार

से कवि का मन उदासीन और विपण्ण प्रतीत होता है। मुस्काने वाले फूलों को तोड़ने के व्यर्थ श्रम का यह कायल नहीं है। यह उच्च स्तर असंग की दिव्य भूमिका में ही उतर सका है।

रहस्योन्मुख कविताओं के प्रति कवि ने स्वयं अपनी भूमिका में संकेत किए हैं। वे इतने स्पष्ट और सुचिंतित हैं कि उनकी पुनरावृत्ति वक्तव्य-सी प्रतीत होती है। कवि अपनी अनुभूतियों के प्रति ईमानदार रहा है और उनके प्रकाशन में पूर्ण सफल हो सका है। कवि की अनुभूतियों की वास्तविकता के प्रति जो शंकालु हों उन्हें आचार्य वाजपेयी के 'माया का दार्शनिक आधार' नामक निबंध के अन्तिम दो पृष्ठ पढ़ लेने के बाद ही ऐसा दुःसाहस करना चाहिए।

डॉ० वर्मा के प्रथम कविता संग्रह 'चित्तौड़ की चिता' में वह भावुकता नैराश्य तथा कल्पनातिरेक न था जिसके लिए वे आज प्रसिद्ध हैं—वह एक अत्यन्त मनोरम वर्णनात्मक काव्य था। अभिशाप' में अवश्य ही अच्छी शैली की वह सब विशेषताएँ बीज रूप में निहित थीं जो 'चित्ररेखा' में प्रकट हुईं। 'अंजलि' में भावुकता ही सब कुछ थी पर 'रूप राशि' में कल्पना ने इस भावुकता का स्थान ले लिया। 'चित्ररेखा' में यह भावुकता, कल्पना-प्रियता वेदना विवृति, झीनी-झीनी रहस्यात्मकता करुणापूर्ण सौन्दर्य लिप्सा मुखर हो उठती है। 'चित्ररेखा' कवि का कीर्ति-स्तम्भ है। 'चन्द्रकिरण और 'संकेत' चित्ररेखा' के कलात्मक स्तर से ऊँचे नहीं उठ सकीं।

काव्य-सौष्ठव और कलागत विशेषताओं का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

सांस्कृतिक रूप-विधान

वर्माजी की रचनाओं में सांस्कृतिक रूप-विधान का सर्वथा अभाव-सा है। हाँ सांस्कृतिक रूप विधान के अन्तर्गत मानवीय रूप-चित्रण के कुछ चित्र अवश्य उपलब्ध हैं। 'एकलव्य' कवि का महाकाव्य है उसमें एकाध सांस्कृतिक चित्र देखने को मिले हैं। एक नमूना देखिए

दुन्दुभि ने घोष किया और द्रोणाचार्य ने
धनुष उठाये युग लक्ष्य युग बाणों से
वेध दिया साथ ही वे बाण ऐसे थे चुभे
मानों हो चरण वे वे मंगलाचरण के।[1]

भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रत्येक काव्य ग्रन्थ के प्रारम्भ में किसी इष्टदेव या देवी की स्तुति की जाती है, उसके पश्चात् ही ग्रंथ का श्रीगणेश किया जाता है। वो चरण में की गई यह स्तुति मंगलाचरण के नाम से विख्यात है। उपर्युक्त पंक्तियों में बाणों के वेधने की क्रिया को रूप देने के लिए 'मंगलाचरण' की अवतारणा की गई है। वे बाण प्रारम्भ में ही ऐसे चुभ गये जैसे पुस्तक के प्रारम्भ में मंगलाचरण' हो। उत्प्रेक्षा अलंकार से गुण-साम्य पर आधारित यह रूप काफी आकर्षक बन गया है।

---

१ 'एकलव्य महाकाव्य से

सुरभि से शृंगार कर—
नव वायु प्रिय पथ में समाई,
अरुण कलियों ने स्वयं सज
आरती कर में सजाई
झलमला कर पल्लवों से,
मंगल वन्दनवार छाये।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में आरती और वन्दनवार सांस्कृतिक उपकरण हैं। इस आधार पर हम इस कविता को सांस्कृतिक रूप-विधान के अन्तर्गत ले सकते हैं। कवि ने नव वायु का शृंगार सुरभि से करके वायु का गुणानुभव कराया है और साथ ही उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके बिम्ब की सजीवता को भी बढ़ा दिया है। उसी प्रकार अरुण कलियाँ नारी रूप में हृदय में आरती सजा कर प्रिय की अगवानी के लिए खड़ी हैं और पल्लवों ने स्वागतार्थ वंदनवार लगा दिया है। उस परम सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रकृति भी सजीव हो गई है। यही इन पंक्तियों की रहस्यात्मकता है जिसे अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने प्राकृतिक धरातल पर सांस्कृतिक उपादानों से एक रूप खड़ा कर दिया है।

प्राकृतिक रूप-विधान :

वर्माजी ने प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन नहीं किया है। प्रकृति का चेतन स्वरूप ही कवि को अधिक आकर्षण दे सका है अतः प्रकृति का मानवीकरण करके कवि ने मानव से उसका तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। प्रकृति की शोभा को देखने के लिए कवि की आँखें सदैव प्यासी रही हैं। प्रकृति का आह्लादकारी रूप कवि के नेत्रों में सदैव झूलता रहता है, और प्रकृति के ही दैवी चित्र को वे रहस्यवाद के क्षेत्र में भावना के व्यक्तीकरण का प्रधान कारण मानते हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकृति का मानवी रूप देखिये

(१) झूली झोंकती है समीर को
लता कुंज के द्वार-द्वार में।

—संकेत, आधुनिक कवि—६, पृ० १९

(२) घोर घन-गम्भीर में तो
क्यों व्यथित है कामिनी ?

—चन्द्रकिरण, आधुनिक कवि—६ पृ० २४

(३) रजत-रश्मि अपनी रश्मि-माल
जब रजनी को पहनाता हो,
अथवा जब फूलों के तन से
प्रेरित सुगन्धि का आता हो।

—चन्द्रकिरण, आधुनिक कवि—६ पृ० २०

---

१ संकेत, आधुनिक कवि ६, पृ० ११

प्रथम उद्धरण में जूही नायिका के रूप में चित्रित की गई है जो अपने प्रियतम समीर को लता-कुंज के द्वार-द्वार में झाँक रही है। यहाँ नारी के झाँकने का खंड-चित्र ही प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे उद्धरण में 'दामिनी' का मूर्तीकरण किया गया है। यहाँ दामिनी घन-प्राचीर में किसी जीवित प्राणी की भाँति व्यथित चित्रित की गई है।

तीसरे उद्धरण में पूर्णमासी के चाँद की रजत रश्मियाँ अवनि और अम्बर में फैली हैं। कवि उसका भावुक चित्र प्रस्तुत करते हुए यह कल्पना करता है कि मानो चन्द्रमा रजनी रानी को रश्मि-माल पहना रहा है। रश्मि और माला में थोड़ा रूप-साम्य है और अभिसारी के रूप में रजनी का रूप सामने आता है अन्य का नहीं।

(१) इतना विस्तृत होने पर भी
    क्यों रोता है नभ का शरीर।[1]

(२) यह कौन व्यथा है, जिस कारण
    है सिसक रहा तब में समीर।
    वारिधि के मुख में रखी हुई
    यह लघु पृथ्वी है एक ग्रास।[2]

(३) रजनी का चुनायन विलोक
    हँस पड़ा पूर्व में चपल प्रात
    यह वैभव का अवपात देख
    दिन का विनाश कर भगी रात।
    नभ छूने को पर्वत-स्तम्भ
    है खड़ा धरा का पुलक गात।[3]

पहले उद्धरण में ओस बिन्दुओं को नभ के आँसू के रूप में चित्रित किया गया है। आकाश मानो मानव के रूप में व्यथित होकर रो रहा है। दूसरे उद्धरण में समीर के सर सर बहने की ध्वनि से कल्पना की गई कि मानो किसी व्यथा को उर में दबाये वह सिसकी भरकर रो रहा हो। पृथ्वी के तीन ओर समुद्र की वस्तुस्थिति से अनुप्राणित हो कवि ने यह कल्पना कर डाली है कि मानो वारिधि किसी मानव का मुख है जिसके भीतर पृथ्वी ग्रास बन कर समाई हुई है।

तीसरे उद्धरण में प्रात हँसता और रात भागती हुई दिखाई गई है। व्यंजना प्रातःकाल और रात की है। किन्तु कवि ने उनमें भावों का स्पन्दन भरके उन्हें गतिमान कर दिया है।

इसी प्रकार ओसों का हँसना और नभ का रोना मानवीय कार्य-व्यापार की सूचना देते हैं।

पूर्व दिशा को जननी-रूप में कवि देखता है, प्रकाश उसका शिशु है जिसकी मृत्यु से

---

१. चित्ररेखा आधुनिक कवि १ पृ० २२
२. चित्ररेखा आधुनिक कवि १ पृ० २६
३. चित्ररेखा आधुनिक कवि १ पृ २७

जननी बहुत चिन्तित और दुःखी है।

यह पूर्व दिशा को थी प्रकाश की—
जननी छविमय प्रभापूर्ण,
निज मृत शिशु पर रख नमित माथ
बिखराती घन-केशान्धकार।[1]

पूर्व दिशा में अन्धकार हो जाने पर कवि कल्पना करता है कि मानो प्रकाश रूपी शिशु के मर जाने पर पूर्व दिशा रूपी जननी अपने मृत शिशु के ऊपर मस्तक झुका तथा अन्धकार रूपी केशों को बिखरा चिन्तामग्न है। कवि कभी प्रकृति को रोती हुई चित्रित करता है और कभी हँसती हुई। यह कवि की मनःस्थिति का परिणाम है। आकाश पृथ्वी से मिलने के लिए आतुर है, इसीलिए उसे रोमांच हो आया है।

नभ में कैसा रोमांच हुआ
बिजली का विचलित वेप थार।[2]

इसी प्रकार कवि को सावन कभी शिशु-सा प्रतीत होता है,[3] सागर बादलों के काले कारागृह में बंदी तथा अम्बर उदास है।

आकाश में बिखरे तारक-समूह तथा उपवन में कलिका को देखकर कवि कल्पना करता है कि तारे यात्री के सदृश नभ-पथ पर चले जा रहे हैं और बन्द कली को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई नायिका निद्रित अवस्था में अधरों को बन्द किये चुपचाप पड़ी है। इसमें तारों को यात्री के रूप में चित्रित किया गया है यह कुछ खटकने वाली बात है। तारे आकाश में स्थिर रहते हैं किन्तु यात्री तो चलते रहते हैं। अतः व्यापार-साम्य की योजना कुछ बेतुकी-सी लगती है।

नभ पथ यात्री तारे सा मौन

कलिका के निद्रित अधर मंजु
कोमल शीतल निस्पन्द बन्द।[4]

प्रकृति क्षण-क्षण अपना रूप बदलती रहती है, उसे देखकर कवि की जिज्ञासा-वृत्ति जाग उठती है और वह अपने स ही पूछता है कि

दिन को क्यों लपेट देती है
श्याम वस्त्र में रात ?
और, ओस के पुतले, गिनकर,
भर क्यों नभ के थाल,

---

१. चित्ररेखा, आधुनिक कवि १ पृष्ठ १६
२. चित्ररेखा, आधुनिक कवि १ पृष्ठ १६
३. चित्ररेखा आधुनिक कवि १ पृष्ठ ४८
४. चित्ररेखा आधुनिक कवि १ पृष्ठ ४५
५. रूपराशि आधुनिक कवि १, पृष्ठ २१

भूले हुए पथिक शशि को दुःख
देता है नभ मौन ?[1]

इन पंक्तियों में दिन रात शशि तथा नभ को प्राणवान किया गया है। दिन के बीतने पर काली रात आती है। इसकी अभिव्यक्ति कवि बिम्ब के माध्यम से करता है। जैसे किसी मानव को काले वस्त्र में लपेट दिया जाय इसी प्रकार रात दिन को तम की चादर से ढँक देती है। दूसरा बिम्ब है आकाश में बिखरे तारों का, जिसके लिए कवि कल्पना करता है कि नभ एक पथ है उस पथ का पथिक शशि है किन्तु नभ शशि के मार्ग में काँच रूपी तारक-समूह को बिखेर कर उसका पथ अवरुद्ध कर देना चाहता है। अन्त में स्वयं कवि अपनी शंका समाधान करता हुआ कहता है कि यही विश्व का नियम है। दिन रात सुख-दुःख क्रमशः आते-जाते रहते हैं। जैसे लता में भीषण व्याल छिपा रहता है उसी प्रकार जीवन के सुख में दुःख की अँधियारी का आना सहज सम्भव है।

निम्नलिखित पंक्तियों में रजनी को एक बाला के रूप में चित्रित किया गया है जो तारों का गजरा बनाकर बेचने जा रही है।

इस सोते संसार बीच
जग कर सज कर रजनी बाले।
कहाँ बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?[2]

रूप-साम्य पर आधारित यह बिम्ब स्थिति को बहुत स्पष्ट कर देता है। सारा संसार सो रहा है लेकिन रजनी बाला सज-सँवर कर तारों का गजरा लेकर बेचने जा रही है। तारक-समूह गजरे में गूँथे हुए श्वेत पुष्प की भाँति दिखाई दे रहे हैं।

कवि ने अपनी एक कविता में प्रातः समीर को मानवीय रूप देकर उसके कार्य व्यापारों का प्रभाव व्यक्त किया है। कवि समीर को संबोधित करके कहता है कि तुम धीरे धीरे चलो कहीं तुम्हारे पद चाप की आहट से सोते हुए पल्लव जग न जाएँ। सरल सुमन शिशुओं ने तो तुम्हारी आहट पाते ही आँखें खोल दी (प्रातःकाल होने पर कलियाँ विकसित होकर पुष्प का रूप धारण कर लेती है।) कलियों को मत छूना क्योंकि वे अनजान भोली-भाली बालिकाएँ हैं उनके समीप यौवन के उन्मादक गीत मत गाना। तुम किसी की चितवन चुराकर ओसों में भर देते हो इसलिए ओस बिन्दु इतने निर्मल और भोले प्रतीत होते हैं। किसी की लालिमा छीनकर तुम ऊषा-प्रेयसी का शृंगार करते हो। (प्रातःकाल ऊषा का रंग लाल रहता है, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है *मानो ऊषा-सुन्दरी ने शृंगार किया है।*[3] अपने एक झोंके से तुम तारक-फूल को गिरा देते हो। (प्रातःकाल होने पर तारक समूह लुप्त हो जाते हैं।) इन पंक्तियों में प्रातःकाल का चित्रण बड़े कलात्मक ढंग से किया गया है। इसमें समीर, पल्लव सुमन, कली तथा ऊषा इत्यादि को मूर्तिमान किया गया है।

१. अभिशाप आधुनिक कवि ३ पृष्ठ ८१
२. अंजलि आधुनिक कवि पृष्ठ ६९
३. अंजलि आधुनिक कवि ३ ९९-१००

पतझड़ आने पर वृक्ष के पीले पत्ते गिर जाते हैं और हरे पत्ते वैसे ही बने रहते हैं। इसी दृश्य का चित्रांकन नीचे की पंक्तियों में देखिये

तरुवर के जो पीले पात।
पतले एक हाथ से पकड़े हो तरुवर का गात।
मग्न तुम्हारे स्वजन,
हरे रंगों का के परिधान,
मर मर मर कर गात ?'

नीचे गिरने की मुद्रा में पीले पत्ते ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे अपने मस्तक हाथों से तरुवर के गात को पकड़े हैं। मग्न हरे पत्ते हरा परिधान पहन कर पीले पत्तों की आश्रय हीनता पर हँस रहे हैं। यहाँ 'मरमर' में श्लेष है। 'मर मर' का अर्थ है मर जाओ और दूसरा अर्थ है 'मरमर' की ध्वनि जो वायु के चलने से पत्तों के बीच से निकलती है। इस चित्र से जीवन की क्षणभंगुरता का बोध होता है।

रात को काली चादर ओढ़
निकले थे तारे चुपचाप,
देखते थे वे चारों ओर
भयानक अन्धकार का पाप।'

यहाँ रजनी की काली चादर ओढ़कर तारों के चुपचाप निकलने और अंधकार के भयानक पाप के देखने की योजना से जहाँ एक ओर तारों और अन्धकार का मानवीकरण किया गया है वहाँ दूसरी ओर रात्रि की निस्तब्धता को और गहराई देकर परिस्थिति-विशेष को गम्भीर भी बना दिया गया है।

'एकलव्य' महाकाव्य के कुछ छंदों को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इसके प्रकाशन के साथ-साथ काव्य-प्रेमियों के सम्मुख एक नई भाव भूमि अपने नये प्रतीकों और मौलिक उपमानों के साथ आई है। वर्माजी का यह प्रयोग यदि सफल रहा तो बहुत कालान्तर में कविगण अक्षरों तथा विराम चिह्नों से भी उपमान का काम लेंगे। रूपानुभव या गुणानुभव कराने के लिए यह नया प्रयोग अपने में काफी शक्तिशाली है। जैसे—वह गरीब ठंडक से सिकुड़ कर ऐसा बैठा है जैसे वर्णमाला का 'ङ'। मनुष्य ठंडक से बचने के लिए घुटनों को छाती में चिपका कर बैठने की मुद्रा में 'ङ' प्रतीत हो सकता है। शिरोरेखा से मिला हुआ अंश उसकी पतली गर्दन है और उसके नीचे का अंश उसके सिकुड़े हुए हाथ-पैर हैं।

घोषणा के होते शिष्यवृत्ति से कुसुमस्यों ने
शस्त्रोपकरण उपस्थित किए सत्वर
और सब राजपुत्र आये रंगशाला में
जैसे वर्णमाला में प्रथम स्वर आते हैं।'

उपर्युक्त पंक्तियों में राजपुत्रों के रंगशाला में आगमन की क्रिया के लिए वर्णमाला का

१. पंतजी, आधुनिक कवि २ पृ० २
२. महादेवी आधुनिक कवि १, पृ० १७
३ 'एकलव्य'

प्रथम स्वर उपमान बनकर आया है। इस उपमान से उपस्थिति का भाम होता है जब अतीत काल में लड़ने के लिए पहले राजपुत्र ही घर से निकलते थे उनके पीछे-पीछे सेना चलती थी।

उनके शरीर पर कवच कसा हुआ
जैसे सद्धर्म पर आवरण हो नीति का।

इन पंक्तियों में सद्धर्म पर नीति का आवरण कवच की विशेषता स्पष्ट कर देता है। राजपुत्रों के शरीर पर कसा हुआ कवच इस प्रकार अभेद्य है जैसे सद्धर्म पर नीति का आवरण चढ़ाने से वह और भी दृढ़ और कठिन हो जाता है।

रण चर्चा और चर्म अंग पुष्ट प्रहार
करते हुए वे लघु गुरु बन जाते थे।
होते संयुक्त पूर्व लघु भी गुरु दीखता
द्वन्द्व क्रम में समान नियमित सब थे।[1]

पिंगल शास्त्र के अनुसार संयुक्ताक्षर के पहले की लघु मात्रा भी गुरु बन जाती है उसी प्रकार योद्धागण लड़ते समय जो शक्ति में शौर्य में बहुत लघु होते थे वे भी गुरु बन जाते थे। योद्धाओं के शौर्य तथा उनके कार्य-व्यापार का स्पष्ट चित्र लघु-गुरु के उपमान से और भी चटकीला बन जाता है।

इसी प्रकार चन्द्रबिन्दु को उपमान बनाने से चित्र कितना मुखर हो गया है देखिये

आयत दृढ़ मुष्टि शोभा स्थिरता अपार थी
उनका प्रयोग योग्य आरम्भ से व्यस्त था
गुरु संकेत से वे सब समवेत हुए
जैसे चक्र पूर्ण है बिन्दु पर।[2]

द्रोणाचार्य को घेरकर सब खड़े हुए योद्धागण इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे बिन्दु को चक्र घेर लेता है। चन्द्रबिन्दु (ँ) से उस समय की स्थिति बिल्कुल साफ दृष्टिगोचर होने लगती है।

द्वन्द्व समास और उसके विग्रह की क्रिया को किस प्रकार उपमान बनाया गया है—देखिये

दोनों के अनेक गदा कौशलों के बीच में
दोनों की वार्ता आलिक बन जाती थी।
सुयोधन और भीम विग्रह में व्यस्त थे
और बन सिन्धु था समास द्वन्द्व रूप में[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में सुयोधन और भीम की पारस्परिक लड़ाई को विग्रह का उपमान दिया है और सेनाएँ आपस में द्वन्द्व समास के समान गुँथी हुई थीं।

शस्त्र की परीक्षा कहीं युद्ध बन जाये ना
मानें द्रोण ने किया लक्षित आचार्यता को।

---

१. एकलव्य
२. ,,
३. ,,

आकर खड़े हुए वे दोनों ही के मध्य
ज्यों दो अक्षरों के बीच चिह्न हो विसग का।'[1]

दोनों योद्धाओं की स्थिति आर्य द्रोणाचार्य के बीच में पड़ने से ऐसी हो गई जैसे दो अक्षरा के बीच विसर्ग ( ) का चिह्न हो। भाव यह है कि दोनों एक दूसरे से पृथक थे, गुत्थमगुत्था नहीं कर रहे थे।

इस प्रकार के उपमानों में हमें बौद्धिकता का आभास मिलता है। ये सारे उपमान तदनुकूल चित्र खड़ा तो कर देते हैं किन्तु उनमें अनुभूति का अभाव चित्र की सारी सरसता पर पानी फेर देता है। वर्माजी की अन्तर्मुखी दृष्टि रहस्यवाद तक ही सीमित रह गई इसलिए इनकी रचनाओं में ऐतिहासिक पौराणिक सामयिक आदि उपकरणों पर आधारित चित्र नहीं मिलते। इनकी रचनाएँ भी संख्या में कम हैं इसलिए उनमें विविधता का अभाव अनिवार्य है।

भावात्मक रूप-विधान

मेरे दुख में प्रकृति न देती क्षण भर मेरा साथ
उठा शून्य में रह जाता है मेरा भिक्षुक-हाथ।

—अभिशाप आधुनिक कवि—३, पृ० ८५

उपर्युक्त पंक्तियों का तात्पर्य केवल इतना ही है कि विरह-कातर असहाय कवि के भिक्षुक-हाथ शून्य में किसी के लिए उठकर उठे ही रह जाते हैं। यहाँ 'शून्य' में हाथ उठने की क्रिया शांत निस्तब्ध वातावरण में खल रहे एकाकीपन की सघनता को और भी गाढ़ा कर देती है जिसका चित्र भिक्षुक-हाथ से और भी स्पष्ट हो जाता है। दूसरे भिक्षुक-हाथ का यहाँ एक और प्रयोजन है—इसमें याचना की दीनता मुखर हो उठती है। प्रस्तुत पंक्तियों का प्रतिपाद्य पुरुष के एकाकीपन की यही विरह-स्थिति है जिसके आधार रूप में 'भिक्षुक-हाथ' रूपक के रूप में आया है। प्रेम-भिखारी का विरह में दर-दर भटकना सर्व विदित है। प्रेम में पड़कर लोग सब कुछ लुटा देते हैं और अन्ततः भिखारी बन जाते हैं और अन्त तक भिखारी के भिखारी ही बने रह जाते हैं। रूप के लोभी और प्रेम के प्यासे के लिए ऐसा कोई क्षण नहीं जो तृप्ति दे सके। 'जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल'। भिक्षुक-हाथ प्रेम-भीख से सम्बन्धित इसी विशिष्ट भावना के प्रतीक हैं। प्रस्तुत रूप-विधान के इसी भिक्षुक-हाथ और उसमें सन्निहित भावना के प्राधान्य के कारण विरह की दीनता का भावात्मक चित्र इन पंक्तियों में साकार हो गया है।

आली चुम्बन-सी छोटी है यह जीवन की रात

—चित्ररेखा आधुनिक कवि—१ पृ० ११

उपर्युक्त पंक्ति में जीवन की नश्वरता का चित्र प्रस्तुत किया गया है। जीवन की नश्वरता का भान कराने के लिए चुम्बन उपमान बनकर आया है। चुम्बन मधुर होते हुए भी क्षणिक होता है उसी प्रकार जीवन मधुमय हो सकता है किन्तु उसका विनाश निश्चित है। स्थिति-साम्य पर आधारित यह चित्र जीवन की क्षणुता का भान करा देता है।

निसपन्द तरी अति मन्द तरी।

१ एकलव्य

सांसों के दो पतवार चपल,
सम्मुख लसते हैं नव नव पल
अविदित भविष्य की आशंका की
छाया है कितनी गहरी।

—चित्ररेखा आधुनिक कवि—१ पृ० ४३

यहाँ 'तरी' जीवन का प्रतीक है। भवसागर में जीवन की तरी अविचल जल पर चल रही है। नासिका के दोनों छिद्र ही दो पतवार बने हैं—(भाव यह है कि जब तक सांसें आती हैं तभी तक जीवन चलता है। जैसे पतवार के सहारे नाव आगे बढ़ती है वैसे ही सांसों की पतवार से जीवन अग्रसर हो रहा है। नाव आगे बढ़ती है किन्तु यह सदैव आशंका बनी रहती है कि शायद आगे अथाह जल न हो उसी प्रकार जीवन का भविष्य सदैव अन्धकार के गर्भ में रहता है जिसके प्रति मानव का आतंकित रहना सहज स्वाभाविक है। इन पंक्तियों में जीवन का मत्स्यात्मक चित्र सामने आ जाता है जो अदृष्ट की विभीषिका से सदैव आतंकित रहता है।

(१) देह सिली है मुझसे इन ढीले सांसों के धागों में
(२) लघु उर में गूँजा करती है एक वेदना बहुत विकल
नभ से इस विशाल जीवन में आँसू का छोटा-सा जल।

—चित्ररेखा आधुनिक कवि—१ पृ० ४६

प्रथम उद्धरण में जीवन की नश्वरता का भान कराया गया और सिले कपड़े की उपमा देकर यही बात स्पष्ट की गई है। ढीली सांसों के लिए 'धागा' तथा 'देह' के लिए सिला (वस्त्र) उपमान रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे ढीले धागे से सिला हुआ कपड़ा अधिक नहीं टिक पाता सीवन उखड़ जाने से वह अस्त-व्यस्त हो जाता है उसी प्रकार 'देह' ढीली सांसों के धागे से सिली होने पर इसके अस्त-व्यस्त होने का सदैव भय बना रहता है।

दूसरे उद्धरण में विकल वेदना तथा आँसू का अंक चित्र दिया गया है। लघु उर में वेदना का व्याकुल होकर गूँजना उसका मूर्त रूप सामने ला देता है और जीवन नभ जैसा विशाल है फिर भी छोटा सा अश्रुबिन्दु इतने बड़े जीवन को हिला देता है।

जीवन की नश्वरता का एक अत्यन्त मार्मिक चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

जीवन के दिन गया है अनेक ?
मुदा के सिर के श्याम केश।
कर्मरत ही है मुक्त हार,
जिसके सम्मुख है मृत्यु-वेश।
यह वैभव का उज्ज्वल शरीर,
जो दिन करता है अट्टहास
फिर देख स्वयं निज विकृत वेश
लज्जित हो करता है प्रयास।

—रूपराशि आधुनिक कवि—१ पृ० ७०

प्रस्तुत पंक्तियों में जीवन की क्षणभंगुरता को चित्रित करने के लिए 'मुदा के सिर

के श्याम केशों की अवतारणा की गई है। उपमा बड़ी सटीक और तर्कसंगत है। जिस प्रकार वृद्धा के सिर में एकाध ही श्याम कच मिलते हैं उसी प्रकार यौवन के बहुत कम क्षण अवशेष हैं जो पर्जरित होकर एक दिन मृत्यु के देश में पहुँच जायगा। यौवन की तरह जीवन का वैभव भी अट्टहास की भाँति क्षणिक है, अन्त में उसका भी विनाश निश्चित है।

ओस सदृश अवनी पर बिखरा
कर यह यौवन सारा।
किसी किरण के हाथ समर्पित
कर दूँ जीवन प्यारा।

—अभिशाप, आधुनिक कवि—६, पृ० ११२

इसमें कवि ने अपने यौवन और अभिलाषा का मूर्तीकरण किया है। कवि के अस्त-व्यस्त और बिखरे यौवन को रूप देने के लिए उस पर ओस का आरोप किया गया है। इस व्यापार-साम्य से यौवन की अस्त-व्यस्तता का रूप सामने आ जाता है। अन्तिम दो पंक्तियों में किरण 'मानव' का प्रतीक बन कर आई है। जिस प्रकार बिखरे हुए ओस बिन्दुओं को किरण अपने में आत्मसात कर लेती है उसी प्रकार कवि अपने यौवन को किसी के हाथों में समर्पित कर देना चाहता है जो अपने जीवन में कवि के यौवन को समेट ले। ओस और किरण के माध्यम से भाव बहुत स्पष्ट हो गया है।

(१) मेरे स्वर परिमित हैं जैसे प्रात नभ में तारे। —संकेत पृ० ८

(२) शब्दों के अधखुले द्वार से अभिलाषायें निकल न पातीं
उच्छ्वासों के लघु-लघु पथ पर इच्छायें चलकर थक जातीं।

—संकेत पृ० ११

(३) चिर अंधकार में दीपक-सी—
मेरी चितवन हो गई अमर।

—संकेत पृ० १६

(४) धूम राशि-सा घिरकर, उठकर
कुंज-कुंज का भय भाग गया।

—संकेत, पृ० २०

(५) काले भावों की रजनी में आशा का अभिसार।

—अभिशाप पृ० ८९

प्रथम उदाहरण में अल्पता का बोध प्रातःकालीन नभ के तारों द्वारा कराया गया है। जैसे प्रातःकाल नभ में तारे थोड़े ही रह जाते हैं वैसे जीवन के स्वर थोड़े हैं। यह चित्र गुण-साम्य पर आधारित है।

दूसरे उदाहरण में अभिलाषा उच्छ्वास और इच्छा का मूर्तीकरण किया गया है। हृदय में अनन्त अभिलाषाएँ संचित हैं, उनकी अभिव्यक्ति सीमित शब्दों के माध्यम से नहीं हो सकती। जैसे अधखुले द्वार से बहुत से लोगों को एक साथ निकलने में कठिनाई पड़ती है। छोटे-छोटे पथ की भाँति उच्छ्वास बिखरे हैं इन उच्छ्वासों की राह से आने में इच्छाएँ शिथिल हो जाती हैं।

तीसरे उद्धरण में अंधकार अज्ञान का, दीपक ज्ञान का तथा 'चितवन' चैतन्यता का प्रतीक है। *भाव यह है कि कवि की चेतनता उसी प्रकार प्रज्वलित हो रही है* जैसे अंधकार में दीपक चमककर प्रकाश बिखेरता है। कवि अज्ञान के अंधकार में दीपक की भाँति चैतन्य और प्रकाशमान है।

चौथे उद्धरण में जीवन में सुख और दुःख के भय के आने जाने के क्रम को स्पष्ट करने के लिए उस पर घूमराशि का आरोप किया गया है। जैसे घना धुआँ उठता है और फिर शांत हो जाता है उसी प्रकार सुख-दुःख का भय मिट जाता है। यहाँ 'धुआँ' सुख और दुःख दोनों के भय का प्रतीक है।

पाँचवें उद्धरण में आशा का मानवीकरण करके उससे अभिसार करवाया गया है। जैसे रजनी में अभिसारिका अपने प्रियतम से मिलने जाती है उसी प्रकार निराशा के बीच आशा का संचार होता है।

एक दीपक किरण कण हूँ।
शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया
सूर्य का सन्देश लेकर, रात्रि के उर में समाया
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक किरण-कण हूँ

—चन्द्रकिरण आधुनिक कवि पृ० २५

उपर्युक्त पंक्तियों का लक्षणा पर आधारित भाव चित्र देखिये। परवाने शमा पर जल मरते हैं किन्तु जल मरने पर उन्हें अमरत्व नहीं मिला करता। परवाने शमा के आकर्षण के कारण जलते हैं। इस आकर्षण को प्रेम नहीं कहा जा सकता है। निश्चय ही यह शलभ मामूली ढंग का परवाना नहीं है। प्रेम एक अलौकिक वृत्ति है। यह नारी-पुरुष का सामान्य आकर्षण नहीं है। यह वासना के बहुत ऊपर है। वासनामय आकर्षण को प्यार, प्रीति प्रणय रति आदि कह सकते हैं। प्रेम में आत्मा का आकर्षण होता है। अतएव प्रेम पर मरने का तात्पर्य हुआ आध्यात्मिक विरहानुभूति। यह आध्यात्मिक विरहानुभूति तब मिली जब शलभ अमरत्व पा गया। इस लोक का सब कुछ नाशवान है। अतएव अमरत्व का सम्बन्ध अलौकिकता से हुआ और तब अमरत्व का अर्थ हुआ अलौकिक अनुभूति। इस अनुभूति को पाकर कौन बदल जायगा ? हमारी सांसारिक प्रवृत्तियाँ। अतएव शलभ मनुष्य की उस रागात्मक वृत्ति का प्रतीक हुआ जो दिव्यानुभूति के अभाव में सांसारिक आकर्षणों में आत्मा को फँसाये रहती है किन्तु जब अलौकिक ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है तो वही अनुराग-वृत्ति अमर हो जाती है। शलभ और अनुराग वृत्ति में साम्य यह है कि शलभ दीपक की ओर खिंचता है और यह अनुराग सांसारिक विषयों या रागात्मक आकर्षणों की ओर। जिन बातों वाली प्रवृत्ति के साम्य ने शलभ का लाक्षणिक अर्थ अनुराग-वृत्ति कर दिया। इसी प्रकार सूर्य ब्रह्म और रात्रि अज्ञान या माया में फँसी हुई आत्माओं एवं संसार के लिए प्रयुक्त हुआ है। कबीर की उलटबाँसियों का, सूर के कूट पदों का अर्थ भी इसी प्रकार ही किया जा सकता है।[1]

---

१. डा० भोलानाथ हिन्दी साहित्य, पृ० ३४१

देख मैं अब भी हूँ अज्ञात ?
एक स्वप्न बन गई तुम्हारे प्रेम-मिलन की बात।
तुमसे परिचित हो कर भी मैं
तुमसे इतनी दूर।
करुणा सीख-सीखकर मेरी
आँसू बन गई क्रूर।
मेरी साँस कर रही मेरे जीवन पर आघात।

—चित्ररेखा आधुनिक कवि पृ० ३३

इसमें कवि यह स्पष्ट करना चाहता है कि मेरे सांसारिक जीवन की प्रत्येक साँस आध्यात्मिक जीवन-यापन करने में व्याघात पहुँचा रही है। अनवरत साधना के पश्चात् भी आत्मा परमात्मा से मिल न सकी। आत्मा परमात्मा से चिर-परिचित होते हुए भी उसमें अभिन्नता नहीं स्थापित हो सकी है। माया की दीवाल आत्मा और परमात्मा के मिलने में बाधा डाल रही है। ज्यों-ज्यों सांसारिक जीवन की अवधि बढ़ती जाती है—त्यों-त्यों संसार में रहने का मोह प्रगाढ़ होता जा रहा है परिणामस्वरूप अलौकिक प्रेम की चाह कम होती जा रही है। आँसू और साँस का मूर्तीकरण करने से भाव बहुत स्पष्ट हो जाता है।

मैं तुम से मिल सकूँ यथा उर से सुकुमार दुकूल,
समय-लता में खिले मिलन के दिन का रसयुक फूल।

—रूपराशि आधुनिक कवि ३ पृ० ५६

रहस्यवाद की यह विशेषता है कि आत्मा-परमात्मा में अभिन्नता स्थापित हो जाने पर आत्मा को अपनी सत्ता का ज्ञान सतत बना रहता है, और परमात्मा से तादात्म्य स्थापित हो जाने पर भी उसका यह ज्ञान बना रहता है। इसी कारण आनन्द की अनुभूति अन्त तक बनी रहती है। उपयुक्त पंक्तियों में इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है। दुकूल तथा शरीर के प्रतीकों द्वारा कवि यह संकेत करना चाहता है कि जैसे दुकूल और शरीर आपस में सटे रहते हैं फिर भी उनका पूर्ण तादात्म्य नहीं हो पाता उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा की भी दशा है। निम्नलिखित पंक्तियों में सुख-दुःख का प्रभावात्मक चित्र देखिये

सुख-सदृश स्मृत हैं लघु प्रसून,
दुःख के समान है कुश अपार

—रूपराशि आधुनिक कवि ३ पृ० ६८

इस संसार में फूलों की भाँति सुख की न्यूनता है और कुश के समान दुःख की अधिकता है। प्रसून और कुश के माध्यम से सुख और दुःख के अस्तित्व का भान हो जाता है।

अध्याय ५

छायावादोत्तर हिन्दी कविता

छायावाद-युग के धार्मिक व्यामोह, काल्पनिक दुरूहता तथा अतिशय आत्मपरक कविताओं के सघन निकुंज में जब कुछ सुधी पाठक आपाद-मस्तक निमग्न हो मधु-संचय कर रहे थे उस समय सामान्य पाठक मुंह पर बड़ा-सा प्रश्नवाचक चिह्न लगाये कौतुक से इस केलि को निहार रहा था। वह निहार भर रहा था समझ नहीं रहा था। ऐसी परिस्थिति में उत्तर छायावाद युग के कवियों ने अपनी सरस और सरलतम अभिव्यक्ति के मृदुल हिलकोर से उन्हें तर कर दिया। फलतः जो छायावाद-युग की कविताओं को अस्पष्ट और दुरूह कह कर कविता की अवहेलना-सी करने लग गये थे वे भी अब कविता पढ़ने-सुनने और समझने लगे।

छायावादी कवियों का स्वर इस सीमा तक वैयक्तिक हुआ कि अपने स्वर में उन्होंने सारे विश्व का सौन्दर्य समाहित करके यह नारा लगाया कि 'ना मैं देखूं' और को ना तोहिं देखन देउँ'। कवियों के इस आत्म मोह से उनके वैयक्तिक सुख-दुख आशा-निराशा विरह मिलन अवसाद विषाद टीस-कराह के भार से कविता-कामिनी का कमनीय कलेवर दब-सा गया। भावनाएँ वैयक्तिक थीं इसलिए उनकी अभिव्यक्ति में दुराव होने लगा। कवि सीधे सीधे अपने प्यार की सफलता तथा असफलता के गीत न गाकर किसलय अंचल कलिका सर, सरिता चाँद, सितारे, लता द्रुम वन उपवन आदि प्राकृतिक उपकरणों का अवगुण्ठन लगा कर अपनी बात कहने लगा। परिणाम यह हुआ कि जन साधारण की चित्तवृत्ति ऐसी कविताओं से हटती गयी और ऐसी रचनाओं को वे कवि के वैयक्तिक प्रलाप की परिधि में बन्दी कर ऐसे कवि की खोज करने लगे जो अपने सुख-दुख प्रेम मिलन की बात के साथ साथ जन-जन के आँसू और मुस्कान के गीत गाए।

परिस्थिति की इस अनिवार्यता के सम्मुख कवियों को झुक जाना पड़ा इसीलिए इस काल के कवियों में वैयक्तिक स्वर के साथ-साथ सामाजिक स्वर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। यद्यपि छायावाद-युग समाप्तप्राय हो चला था फिर भी उसके संस्कार जो कवियों के अन्तःकरण में घर बना कर बैठ गये थे वे ज्यों के त्यों बने रहे। उन संस्कारों से पिंड छुड़ाना साधारण बात न थी और पिंड छुड़ाने की बात भी नहीं उठती क्योंकि जाने या अनजाने छायावाद का मोह आलोच्यकाल के कवियों के हृदय से जा नहीं रहा था।

इसलिए इन कवियों के स्वरों में वैयक्तिकता के स्वर सुनाई पड़ते हैं। अन्तर इतना ही है कि छायावादी कवि अपने लाक्षणिक प्रयोगों एवं प्राकृतिक उपादानों का आवरण डाल कर जहाँ अपनी बात कहता था वहाँ इस काल के कवियों ने ललकार कर समाज को बताया कि मैं प्यार करता हूँ और यौवन की सार्थकता प्यार में ही है फिर

बृद्ध वय को क्यों अखरती यह समिक मेरी जवानी

किन्तु तत्कालीन सामाजिक उथल-पुथल और परिवर्तनों के झंझावात से इनमें सामाजिक चेतनता भी आई, इसलिए इनकी रचनाओं में विप्लव के स्वर भी बोलते हैं। बच्चन नरेन्द्र अंचल, माखनलाल चतुर्वेदी दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी नवीन तथा गुरुभक्तसिंह आदि आलोच्य काल के प्रमुख कवि हैं।

बच्चन की प्रारंभिक कृतियों में वैयक्तिक अनुभूतियों का तीव्र दंशन उन्हें मधुशाला में बहका ले जाता है। हिन्दी काव्य-जगत् में हालावाद का यह स्वर नितान्त नवीन था। हाला का मादक प्रभाव कम होते-होते बच्चनजी 'एकान्त संगीत' और 'निशा निमंत्रण' तथा 'सतरंगिनी' जैसी कृतियाँ लेकर प्रस्तुत हुए जिनमें वस्तु चित्रण के साथ रूप-चित्रण भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है। यद्यपि इन रचनाओं में कहीं-कहीं स्वस्थ चित्र के साथ पर मांसलता उभर आई है किन्तु इनका कलात्मक दृष्टिकोण कहीं भी पराजित नहीं हुआ है। बच्चन की यह प्रवृत्ति आदि से अन्त तक एक ही दिशा में भाँवर लेती रही है। वह प्रवृत्ति है प्रेम और निराशा की।

छायावाद की सूक्ष्म आध्यात्मिक बीमारी पकड़ में न आने वाली अशरीरी सौन्दर्य कल्पना तथा सूक्ष्म ऐन्द्रियता के विरुद्ध जो स्वर उठे उनमें अंचल बच्चन तथा नरेन्द्र के स्वर अधिक मुखर हुए। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में अंचलजी मुख्यतः विशिष्ट सौन्दर्य की विपण्ण स्मृतियों के गायक हैं। यौवन-सुलभ सौन्दर्य पिपासा तथा भोग की वृत्ति के दर्शन अंचल की रचनाओं में अधिक मात्रा में मिलते हैं। सौन्दर्यांकन करते समय कवि कहीं-कहीं उत्तेजनाशील ऐन्द्रियता की सीमारेखा को छू लेता है। इसलिए ऐसे चित्रों में अतिशय मांसलता तथा स्थूलता आ गई है जिसे वासना के चटकीले रंग से चित्रित करके और भी उत्तेजक बना दिया है। कहीं रूप को प्राकृतिक उपकरणों से सँवार कर कवि ने अपनी सूक्ष्म परिवीक्षण शक्ति का परिचय दिया है।

जहाँ अंचल ने एक ओर जन-मन को अपने प्रेम विरह तथा स्थूल रूप-चित्रण से आकर्षित किया वहाँ दूसरी ओर उनके सामाजिक दायित्व को भी उभारने की चेष्टा की है। समाज की विषमताओं से बौखला कर कवि गरज उठता है

हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े,
शोषण पर जिसकी नींव पड़ी।

कवि का यह प्रगतिशील दृष्टिकोण अधिक समय तक उसका साथ न दे सका क्योंकि कवि की आधुनिकतम रचना 'अपराजित के बादल' में प्रेम का वही रूमानी स्वरूप विरह की वही छटपटाहट तथा रूप की वही मांसलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

नरेन्द्रजी की प्रारम्भिक कृतियों में रूप और प्यार की प्यास अधिक परिलक्षित होती है। ये गीत लौकिक स्पर्श को पाकर जन-जन के कंठ में समा गये। रूप और प्यार की सफलता विफलता की पृष्ठभूमि पर कवि ने आशा और निराशा का भी आलिंगन किया। इनके शृंगार-चित्रण में रीतिकालीन कवियों की स्थूलता भी आ गई है। और कहीं प्रकृति के झीने आवरण में लपेट कर उन रूपों में विशेष आकर्षण और उन्माद भर दिया है। निराशा का स्वर मंद हो जाने पर कवि समाजोन्मुख होकर शोषकों और शोषितों के गीत गाने लगा।

कवि की मार्क्सवादी प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते राष्ट्रीय से अन्तरराष्ट्रीय हो गई इसीलिए वह चीन और रूस को भी अपनी कविता का विषय बना कर गाने लगा—लाल रूस है ढाल साथियो सब मजदूर किसानों की। भगवतीचरण वर्मा तथा 'नवीन' ने भी जहाँ एक ओर वैयक्तिक प्रेम के गीत लिखे हैं वहाँ दूसरी ओर किसानों मजदूरों और शोषितों से भी सहानुभूति प्रदर्शित की है। वर्मा और 'नवीन' के प्रेम और विरह के गीत लौकिक धरातल पर ही खड़े हुए हैं इसलिए जीवन की मार्मिक अनुभूतियाँ सुख-दुख आशा-निराशा के भाव उनकी कविताओं में सजीव हो उठे हैं। गुरुभक्तसिंह प्रकृति की स्मित भरी मुस्कान और मादक अँगड़ाई से अधिक अभिभूत हुए हैं। 'दिनकर' की रचनाओं में समाज की विषमताओं और आर्थिक असमानताओं के चित्रों के साथ अतीत कालीन भारतीय संस्कृति के ओजपूर्ण चित्र भी मिलते हैं।

सोहनलाल द्विवेदी ने 'दिनकर' की ही भाँति भारत के अतीत और वर्तमान दोनों पक्षों पर ममतामयी दृष्टि डाली है। रूप-चित्रण तथा मानसिक परिस्थितियों का यथातथ्य निरूपण करने में कवि अधिक सफल रहा है।

माखनलाल चतुर्वेदी डॉ॰ रामकुमार वर्मा के शब्दों में शरीर से योद्धा हृदय से प्रेमी आत्मा से विह्वल भक्त तथा विचारों से क्रांतिकारी हैं। परन्तु साहित्य के धरातल पर ये चारों घुलकर एक हो जाते हैं। उनके गीतों में सूफियों की प्रेम विह्वलता तथा आत्म समर्पण की भावना सदैव बनी रहती है, उनके चित्र साकार से आविर्भूत होकर निराकार में निमग्न होने के लिए आकुल-व्याकुल रहते हैं। इनके शृंगार-निरूपण में दार्शनिक समन्वय घुलमिल जाने से कहीं-कहीं नीरसता भी आ गई है। इनके राष्ट्रीय गीतों पर गांधीवाद की अटल छाप है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर छायावाद के कवि पृथक्-पृथक् अपनी विशेषताओं में उभर कर छायावाद और प्रगतिवाद के बीच की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। इन कवियों ने समान रूप से छायावादी कवियों की वैयक्तिक अनुभूतियों पर सामाजिक चेतना की विजय का उद्घोष किया तथा काव्य भाषा तथा अभिव्यंजना प्रणाली को छायावादी अवगुंठन से मुक्त करके जन-बोली तथा जन-साधारण से अधिकाधिक आत्मीयता स्थापित की।

उत्तरछायावाद के कवि

व्यावहारिक पक्ष

सांस्कृतिक रूप-विधान

निम्नलिखित पंक्तियों में प्राकृतिक धरातल पर नारी का एक कल्पनात्मक दृश्य उपस्थित किया गया है।

कुसुम-कलश ले ले लतिकाएँ श्रम-सीकर से सनी हुईं।
किसलय घूँघट में मुग्धा सी दुलहिन मानो बनी हुईं॥
राह किसी की निरख रही हैं स्वागत में तैयार खड़ी।
अगुवाई ले तक लेती हैं झुक-झुक तरु की धूप घड़ी॥
सरिता के अंचल में बालू कण-कण पर मणि दीपक बाल।
सन्ध्या सोना लुटा-लुटा कर लायी है माणिक का थाल॥
थिरक-थिरक कर नाच लहरियाँ हिलमिल करती हैं कल गान।
खग बालाएँ मधु कंठ से छेड़ रही हैं अपनी तान॥
पियरी पहन खड़ी है सरसों आम खड़े हैं लेकर मौर।
वेद मंत्र से पढ़ते फिरते हैं फिर फिर भौंरों के भौंर॥
स्वर्ण फूल कानों में धारे बाली 'तिल पतिया' बाला।
दुल्हा को पहिनाने को है लिये 'कांस पुष्पों' माला॥
कनक पत्र के विमल पाँवड़े बिछा दिया स्वागत छवि ने।
प्रकृति-वधू के संग पुरुष को बैठाया सादर रवि ने॥
ले सिन्दूर निशा मुख आया मधुकर ने वर मंत्र पढ़ा।
जीवन फल पाया रसाल ने माधव के सिर मौर चढ़ा।
ले वर-वधू तितलियाँ सुन्दर करा रही हैं भाँवरियाँ।
उस प्रमोद सागर में निखरी खेल रही हैं द्रुम तरियाँ॥
ललित नीर में सन्ध्या ने सिन्दूर विहँस कर ले डाला।
या ममता ने न्योछावर हो पहिना दी तारक माला।'[1]

यहाँ लतिकाएँ कुसुम-कलश लेकर किसलय का घूँघट निकाले दुलहिन का रूप धारण किये हुए हैं। वे किसी के स्वागत में खड़ी-खड़ी थक गयी हैं अतः अगुवाई लेती हैं तथा प्रतीक्षा में विह्वल झुक-झुककर तरु की धूप-घड़ी देख रही हैं। सरिता के अंचल में बालू के कण-कण पर सन्ध्या मणिदीपक जलाती है और सन्ध्या का सोना लुटाकर माणिक का थाल लेकर

---

[1] गुरुभक्तसिंह नूरजहाँ पृ ९२

कुणाल में 'अशोक' का रूप पूर्णरूपेण भारतीय संस्कृति का परिचायक है।

मस्तक पर अक्षत शुचि चंदन भुजदंडों पर मरकत कंकण
कटि तट पीताम्बर वर शोभन मणि मुकुट शीश पर कमनीय।[1]

मस्तक पर अक्षत चंदन भुजदंडों पर मरकत कंकण और कटि-तट पर पीताम्बर धारण करना प्राचीन समय में प्रत्येक हिन्दू अपना पावन कर्तव्य समझता था। चित्र में केवल प्रस्तुत का ही आश्रय लिया गया है फिर भी चित्र काफी स्पष्ट है। ऐसे चित्रों में वस्तु-परिगणन की शैली अपनायी जा सकती है उसम अनुभूति का योग न होने से कभी-कभी ये नीरस भी प्रतीत होने लगते हैं।

भारत में नारियाँ बहुधा गृह के मलिन कोने में बंदिनी-सी बना कर रखी जाती रही हैं। वे अबला मानी जाती रही हैं जो सांसारिक झंझावातों का डट कर सामना नहीं कर सकतीं। कुणाल की पत्नी कंचना का भी यही रूप है।

कभी नहीं निकली तुम गृह से, तुम गृह दीप-शिखा प्यारी
झंझा से तुम लड़ न सकोगी दुर्बल हो, तुम हो नारी।[2]

बच्चन की मधुशाला में कतिपय सांस्कृतिक उपकरण मिलते हैं जिनके माध्यम से कहीं-कहीं खंड चित्र बन जाते हैं किन्तु विशेषतः वे उपकरण तथ्य निरूपण ही करते हैं। निम्न लिखित पंक्तियों म एक खंड-चित्र प्रस्तुत किया गया है।

बने पुजारी प्रेमी साकी, गंगाजल पावन हाला
रहे फेरता अविरत गति से मधु के प्यालों की माला।
..
मंदिर हो यह मधुशाला।[3]

पुजारी मंदिर में बैठकर इष्टदेव के नाम की माला जपता है। इसमें पुजारी गंगा जल और मंदिर की अवतारणा करके एक सांस्कृतिक वातावरण तैयार किया गया है। पुजारी पर साकी का गंगाजल पर हाला का, माला पर मधु के प्यालों का, तथा मंदिर पर मधुशाला का आरोप करके एक संश्लिष्ट चित्र का आयोजन किया गया है। कवि का अभीष्ट यहाँ हाला और मधुशाला का गुणगान करना रहा है जिसके लिए उपर्युक्त सांस्कृतिक उपादानों का आश्रय लिया गया है।

वस्तुस्थिति का चित्रण करके सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह निम्नलिखित पंक्तियों में काफी सफलता के साथ किया गया है।

मेरे अधरों पर हो अंतिम वस्तु न तुलसी दल प्याला
मेरी जिह्वा पर हो अंतिम वस्तु न गंगा जल, हाला;
मेरे शव के पीछे चलने वालो याद इसे रखना
'राम नाम है सत्य' न कहना कहना सच्ची मधुशाला।

---

१ मोहनलाल द्विवेदी कुणाल पृ २६
२ मोहनलाल द्विवेदी कुणाल पृ ७२
३ मोशाला पृ ११
४ मोशाला पृ० २६

हिन्दू संस्कृति के अनुसार मरते समय मुँह में गंगाजल तथा तुलसी की पत्ती डाल दी जाती है। ये दोनों वस्तुएँ अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके डालने से मृतक व्यक्ति की सद्गति की आशा की जाती है। और मर जाने के पश्चात् शव के पीछे-पीछे चलने वाले 'राम नाम सत्य है सत्य बोलो मुक्ति है' का अनवरत पाठ करते जाते हैं। यहाँ हाला और प्याला के माध्यम से उसी वस्तुस्थिति का भान कराया गया है। कवि परम्परा-विहित परिपाटियों का कायल नहीं है। वह अन्तिम समय में अधरों पर प्याला और हाला रखना चाहता है और शव के पीछे चलने वालों को 'सच्ची मधुशाला' कहने का आदेश देता है। इस कथन से चित्र नहीं बनता। हाँ इससे मनुष्य की उस स्थिति का भान होता है जब वह मृत्यु के समीप पहुँच गया है, और पुर-परिवार के लोग परम्परा का पालन करते हैं।

कवि उसी प्रकार अगली पंक्ति में भी सांस्कृतिक परम्परा के निर्वाह का ही चित्रण करता है। वह कहता है कि मेरी चिता पर घृत का पात्र नहीं शराब का पात्र उड़ेला जाय और घंट अंगूर की लता से बाँधा जाय जिसमें जल के बदले हाला हो और श्राद्ध करते समय ब्राह्मणों को न खिला कर पीने वालों को बुलाकर मधुशाला का दरवाजा उनके लिए खोल दिया जाय।[1] हिन्दू संस्कृति में शव को जलाने के पूर्व चिता में काफी मात्रा में घी डाला जाता है, तत्पश्चात् पेड़ की डाल से घंट (जल से भरा एक मिट्टी का पात्र जिसके पेंदे में एक सूक्ष्म छिद्र होता है उसमें कपड़े की बत्ती भर दी जाती है, जहाँ से बूँद-बूँद कर जल नीचे टपकता है) बाँधा जाता है, जिसमें जल भर दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बूँद-बूँद कर टपकने वाला जल मृतक व्यक्ति के मुँह में जाता है। नौ दिन तक यह घट पेड़ से बँधा रहता है, दसवें दिन उसे वैदिक रीति से तोड़ दिया जाता है और उन उन वस्तुओं का दान किया जाता है जिनका उपयोग मृतक व्यक्ति अपने जीवन-काल में करता था। तेरहवें दिन श्राद्ध किया जाता है, जिसमें ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। यही दृश्य इन पंक्तियों में साकार हो उठा है। यद्यपि किसी अप्रस्तुत का विधान नहीं किया गया है, फिर भी 'बच्चन' ने अपनी सीधी और सरल शैली में वस्तुस्थिति का यथार्थ चित्र खींचने में सफलता पायी है। उसी प्रकार का चित्र इन पंक्तियों में मिलता है

जब निज प्रियतम का शव रजनी
तम की चादर से ढँक देगी।[2]

किन्तु यहाँ प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। रजनी अपने मृतक प्रियतम का शव तमरूपी कफन से ढँक देती है। तात्पर्य यह कि संसार में सब अँधेरा ही अँधेरा हो जायगा। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए शव और चादर की कल्पना की गयी है। प्रकाश के विनाश और अन्धकार के आगमन का चित्र इन पंक्तियों में स्पष्ट हो गया है।

नरेन्द्र शर्मा का प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर एक सांस्कृतिक चित्र देखिये

---

१. सोपान, पृ० ३०
२. सोपान, पृ० ४७

झीनी बूँदों झीनी वाली साड़ी पहने जो बरसात,
घरज-तरज कर चलती थी वह मेघों की मदमस्त बरात।[1]

इन पंक्तियों में बरसात का मानवीकरण करके उसे सांस्कृतिक रूप प्रदान किया गया है। झीनी-झीनी बूँदें पड़ रही हैं वही मानो बरसात रूपी कुलहिन की झीनी-झीनी साड़ी है और उमड़-घुमड़ कर आकाश में बिखरने वाले मेघ ही मानो बारात हैं। साड़ी और बारात दोनों सांस्कृतिक उपकरण हैं। इसी प्रकार युग की सन्ध्या[2] के माथे पर रक्ताभ चन्द्रमा की सुहाग बिन्दी लगा कर नरेशजी ने एक भारतीय सुहागिन का खंड चित्र प्रस्तुत किया है। इन दोनों चित्रों में वस्तुपक्ष तथा कलापक्ष दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

कलिंग-विजय में हुए नर-संहार का मार्मिक चित्रण दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

चूड़ियाँ दो एक की प्रति गृह हुई हैं चूर
पुछ गया प्रति गेह से दो एक का सिन्दूर।
बुझ गया प्रति गृह किसी की आँख का आलोक
इस महा विध्वंस का स्वामी महीप अशोक।[3]

इस पद में चूड़ियाँ और सिन्दूर दो सांस्कृतिक उपकरण हैं। इन्हीं दो शब्दों के बल पर लक्षणा के सहारे विध्वंस की विभीषिका चित्रित की गयी है। रमणी के सुहाग-चिह्न चूड़ी के टूटने और सिन्दूर के पुछने में हिन्दू विधवा का मलिन चित्र सम्मुख आ जाता है।

मानवीय रूप-चित्रण

'अंचल' ने छायावादी काव्य की कुहेलिका अस्पष्टता तथा सूक्ष्मता के प्रति विद्रोह किया था। इसीलिए इनके सौन्दर्यांकन में मांसलता और स्थूलता आ गयी है। नारी के रूप को कवि अतृप्त और भूखी निगाहों से देखता है, फलस्वरूप उसे नाना प्रकार के विशेषणों से विभूषित करता है। कवि द्वारा खींची गयी नारी की एकाध तसवीर का नमूना देखिये

तुम निशा के आदि स्वर की किरण माला एक
तुम तरणि की प्रथम उजली उच्छ्वसित मुस्कान
उल्लसित मधुवार वन की तुम वसती रैन
ऊर्म्मि-विह्वल सुधा-निर्झर की प्रणति अभिमान।
तुम लदी कौमार्य कलियों से लता सुकुमार
मुग्ध यौवन और शैशव की नयी पहचान।[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में विभिन्न प्राकृतिक उपमानों से नारी का रेखाचित्र खींचने का

---

१ मिट्टी और फूल पृ० ९७
२ माथे पर रक्ताभ चन्द्रमा की सुहाग-बिंदिया छोड़े। —अग्निशस्य पृ० १००
३ इतिहास के आँसू, पृ० ४७
४ लाल चूनर, पृ० ५
५. लाल चूनर, पृ० ९

प्रयत्न किया गया है। निशा के आदि स्वर की किरणमाला, उरमि की प्रथम मुस्कान, उल्लसित मलधार वन की वसंती रैन विहँस उमि कौमार्य कलियों से लदी हुई सुकुमार लता आदि नारी के विभिन्न उपमान हैं जो नारी के कौमार्य-काल की छवि अंकित करने में सहायक हुए हैं। इस रूप चित्रण में छायावाद-युग की अस्पष्टता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

नारी की चपलता तथा सुघड़ता का स्पष्ट चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

तुम दिया की जोत-सी तुम तो चमकते झूमरों-सी
अप्सरा के रूप-सी तुम तो किरण के नूपुरों-सी
लहलहाते बेल-सी उजले छिटकते बादलों-सी
तुम उषस की वायु में विहँसत निशा से घुम घनों-सी।[1]

यहाँ नारी के सौन्दर्य की मादकता तथा उसकी शोखी का भान कराने के लिए कवि ने विभिन्न उपमानों से उसका शृंगार किया है। दिया की ज्योति-सी चमकते झूमर-सी अप्सरा के रूप-सी किरण के नूपुर-सी लहलहाते बेल-सी उजले छिटकते बादल-सी कहने पर नारी अपने यौवन की सम्पूर्ण मादकता और कमनीयता लेकर सम्मुख उपस्थित हो जाती है। कला की कमनीयता से वस्तु का न्यायोचित समन्वय होने से चित्र में रंग-सा भर उठा है।

अगली पंक्तियों में कवि ने नारी के स्वभाव और गुण का मांसल चित्र दिया है

और बैठी-सी भरी मीठी—सितारों की रवानी
तब लता-सी कांपती तुम मीत में बहना हहरकर।[2]

पहली पंक्ति में नारी के मादक और मधुर रूप का धुंधला चित्र खींचा गया है। और दूसरी पंक्ति में उसे लता बनाकर उसके आत्म-समर्पण तथा उसकी अतृप्त वासना का पुनानुभव कराया गया है।

मेहरुन्निसा का रूप-चित्रण करते समय गुरुभक्तसिंह ने नारी के कौमार्य तथा यौवन का मादक चित्रण 'नूरजहाँ' में किया है। मेहरुन्निसा के यौवन का क्रमागत विकास इन पंक्तियों में सजीवता पा गया है। मेहरुन्निसा का यौवन कलिका के सदृश है जो मृदु वासन्ती समीर के स्पर्श से दिन-दिन विकास करता जा रहा है। वह किरण जाल-सी उज्ज्वल है, उस स्वच्छन्द किरण पर अलक-पटल का जाल नहीं फैला है। तात्पर्य यह कि अभी वह अज्ञात यौवना है। उसकी आँखें किसी प्रणयी की आँखों से अभी तक नहीं मिल सकी हैं, इसलिए उसमें यौवन की मादक सुरा का प्रभाव नहीं है, उसके नैनों की तलवार अभी म्यान में है और कटाक्ष के धनुष पर प्रत्यंचा ही नहीं चढ़ी है। उसका मन-मोती प्रणय-सूत्र में अभी बिंधा नहीं है। वह कली अभी तक मधुपों के स्पर्श से अछूती है। उसके मन में यौवन की टीस और विह्वलता का समावेश नहीं हुआ है।[3] मेहरुन्निसा का कौमार्य और उसका भोला-पन इन पंक्तियों में प्राणवान हो गया है।

अगली पंक्तियों में शैशव के बीत जाने पर यौवन के उभार के क्रमिक विकास का

१. लाल चूनर, पृ० २१
२. लाल चूनर, पृ० २१
३. नूरजहाँ, पृ० ४४-४५

चित्रात्मक इतिहास प्रस्तुत किया गया है ।

(क) जब प्रथम शिशिर सिधारा जो
कुछ गई लाज अंचल में छिप
फिर बसन्त ने उसका तोतलहू
बालापन चलकर खोया यौवन
बालों में श्याम घटाएँ कानों में
× ×
दो शिशिर धूप हैं खड़े हुए, मंदार
हैं मार-मार की धूम उठा जीवित हो
दो मीन केतु हैं फहराते दोनों वस
सैनिक आँखों में अंजन दे आयुध धर
× ×
(ख) शिशुता की शिखा सिरानी जब आया
कवि विकसित तन सरवर में दो सरसिज

उद्धरण (क) में शैलजिला के यौवन का चढ़ाई का उसके उरोज रूपी दो शिशिर गुंफ खड़े हैं आँखों के मीन केतु में अंजन लगाती है, मानो सैनिक लड़ने के लिए आयुध पर धारण पाकर भी चित्र मांसल हो गया है । यही रूप उद्धरण (शिशुता रूपी रजनी के बीतने पर बनारसनी के यौवन रूपी दि कर के प्रकाश में जिस प्रकार कमल विकसित हो उठे हैं, उसी में कुच-रूपी दो सरसिज विकसित हो उठे । प्रकृति के [illegible] से गई है किन्तु मांसलता घटी नहीं ।

'बच्चन' ने मधुशाला में नारी का रूप-चित्रण [illegible] संयम से किया है । जिस गजगामिनि को कवि पहचानता है, [illegible] पग के तल में रचने वाली मेंहदी की लाली का वर्णन है और उषा उसके जावक लगाती है ।[1]

रामकुमार द्विवेदी ने कुणाल में तिष्यरक्षिता का रूप-वर्ण[illegible] वर्णन में पन्त की शैली अपनाली है । उसके अप्रतिम रूप का गुंजन[illegible] माला में डोर लगी हो । वह यौवन की मादक सुषमा-सी मानस की [illegible] की मादक अभिलाषा-सी रागारुण रंजित ऊषा मधुर मिलन की संध्या[illegible] माया-सी करुणा की नव परिभाषा-सी माधवी मालती चम्पकली, बला

---

१. मधुशाला पृ० ३२ ३४
२. मधुबाला, पृ० ११
३ शोभना पृ० १२

कंचन चंपक तथा विद्युत की रेखा-सी[1] चित्रित किया है। इसमें अमूर्त और मूर्त दोनों उपमानों का कलात्मक समन्वय दिखायी देता है। उसके कुचों के लिए कुंभ उपमान बना है उनके अधरों की मुसकान सोई हुई उजियाली-सी लग रही थी।

पौराणिक रूप-विधान

(१) आई कुणाल के पार्श्व तिष्यरक्षिता सजे सोलह शृंगार
रति चली मुग्ध करने जैसे रूठे अनंग को ले प्रभार।[2]

(२) कालिदास के विधुर यक्ष के सहृदय दूत ! नील जलधर।[4]

(३) एक हाथ में डमरू, एक में वीणा मधुर उदार
एक नयन में गरल, एक में संजीवन की धार
जटाजूट में लहर पुण्य की शीतलता-सुखकारी,
बालचन्द्र दीपित त्रिपुण्ड पर बलिहारी बलिहारी

प्रथम उदाहरण में रति और अनंग दूसरे में यक्ष तथा तीसरे में अर्धनारीश्वर का छायाचित्र दिया गया है। रति जैसे अनंग को मुग्ध करने चली उसी प्रकार तिष्यरक्षिता सोलहों शृंगार करके कुणाल को मुग्ध करने चली। दूसरे उदाहरण में नील जलधर को यक्ष का सहृदय दूत कहा गया है। जलधर की छवि मानस-पटल पर बनते-बनते विरही यक्ष भी सामने आ जाता है। तीसरा चित्र अर्धनारीश्वर का सीधासादा-सा है इसमें किसी अप्रस्तुत की योजना नहीं की गई है।

ऐतिहासिक रूप-विधान

(१) विजय देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली पराधीन भारत की जलती हुई कहानी।
मरे हुओं की ग्लानि, जीवितों को रण की ललकार
दिल्ली, वीर विहीन देश की गिरी हुई तलवार।[5]

(२) तू वैभव-मद में इठलाती परकीया-सी सज चलाती
री ब्रिटेन की दासी! किसको इन आँखों पर है ललचाती।[6]

(३) यह निर्जन-कोर में देखो कोमल-गरिमा सोती है
यमुना-कछार पर बैठी विधवा दिल्ली रोती है।

---

१ कुणाल पृ० ५१ ५२
२. कुणाल, पृ ४१
३ चिता पृ० ७८
४ नील कुसुम पृ० ८४
५. दिल्ली, पृ० १
६ दिल्ली पृ १
७. इतिहास के आँसू, पृ ७

चित्रात्मक इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

(क) जब शैशव-शिशिर सिधारा यौवन बसन्त तब फूला।
कुछ नई लाज अंचल में छिप-छिप के झूली झूला॥
फिर बसन्त ने उसका सोलह शृंगार सजाया।
बालापन थककर सोया यौवन ने शीश उठाया।
बालों में श्याम घटाएँ गालों में बिजली चमकी—

× × ×

दो शिविर शृंग हैं खड़े हुए, मैदान साफ है भरा हुआ
है मार-मार की धूम उठा जीवित हो जो या मरा हुआ।
दो मीन केतु हैं फहराते दोनों दल मिलते जाते हैं
सैनिक आँखों में अंजन दे आयुध पर सान चढ़ाते हैं।[1]

× × ×

(ख) शिशुता की निशा सिरानी उग आया यौवन-दिनकर
छवि विकसित तन सरवर में दो सरसिज लसे मनोहर।[2]

उद्धरण (क) में मेहरुन्निसा के यौवन को लड़ाई का मैदान बना दिया है। यहाँ उसके उरोज रूपी दो शिविर शृंग खड़े हैं आँखों के मीन केतु फहराते हैं। नायिका आँखों में अंजन लगाती है मानो सैनिक लड़ने के लिए आयुध पर सान चढ़ा रहे हों। रूपक का आश्रय पाकर भी चित्र मांसल हो गया है। यही रूप उद्धरण (ख) में भी मिलता है। इसमें शिशुता रूपी रजनी के बीतने पर अनारकली के यौवन रूपी दिनकर का उदय हुआ। दिनकर के प्रकाश में जिस प्रकार कमल विकसित हो उठते हैं, उसी प्रकार अनारकली के तन-सरवर में कुच-रूपी दो सरसिज विकसित हो उठे। प्रकृति के माध्यम से चित्र में कलात्मकता तो आ गई है किन्तु मांसलता घटी नहीं।

'बच्चन' ने मधुबाला में नारी का रूप-चित्रण करते समय प्राकृतिक उपादानों का आश्रय लिया है। जिस पदध्वनि को कवि पहचानता है उस पद के तलवे की लाली नन्दन वन में उगने वाली मेंहदी की लाली के सदृश है और उषा उसके पाँवों में अपनी अरुणाई का जावक लगाती है।[3]

सोहनलाल द्विवेदी ने कुणाल में तिष्यरक्षिता का रूप-वर्णन करते समय उपमानों के चयन में पन्त की शैली अपनायी है। उसके अप्रतिम रूप का शृंगार करने के लिए जैसे उपमानों में होड़ लगी हो। वह यौवन की मादक सुषमा-सी मानस की मधुमय माया-सी उर की मादक अभिलाषा-सी रागारुण रंजित ऊषा मधुर मिलन की संध्या-सी नयनों की नीरव भाषा-सी लज्जा की नव परिभाषा-सी माधवी मालती चम्पकली, बेला रजनीगंधा कुन्द न

१. नूरजहाँ पृ० ४२-४५
२. नूरजहाँ पृ० ११
३. सोपान पृ० ५२
४. कुणाल, पृ० ४०

कंचन चंपक तथा विद्युत की रेखा-सी[1] चित्रित किया है। इसमें अमूर्त और मूर्त दोनों उप मानों का कलात्मक समन्वय दिखाई देता है। उसके कुचों के लिए कुंभ उपमान बना है उसके अधरों की मुसकान सोई हुई उजियाली-सी लग रही थी।

पौराणिक रूप विधान

(१) आई कुणाल के पार्श्व तिष्यरक्षिता सजे सोलह शृंगार
रति चली मुग्ध करने जैसे उठे अनंग को ले उभार।[2]

(२) कालिदास के विधुर यक्ष के सहृदय दूत! नील जलधर।[3]

(३) एक हाथ में डमरू, एक में वीणा मधुर उदार
एक नयन में गरल, एक में संजीवन की धार
जटाजूट में लहर पुण्य की शीतलता-सुखकारी,
बालचन्द्र दीपित त्रिपुण्ड्र पर बलिहारी बलिहारी

प्रथम उद्धरण में रति और अनंग, दूसरे में यक्ष तथा तीसरे में अर्धनारीश्वर का छायाचित्र दिया गया है। रति जैसे अनंग को मुग्ध करने चली उसी प्रकार तिष्यरक्षिता सोलहों शृंगार करके कुणाल को मुग्ध करने चली। दूसरे उद्धरण में नील जलधर को यक्ष का सहृदय दूत कहा गया है। जलधर की छवि मानस-पटल पर बनते-बनते विरही यक्ष भी सामने आ जाता है। तीसरा चित्र अर्धनारीश्वर का सीधासादा-सा है, इसमें किसी अप्रस्तुत की योजना नहीं की गई है।

ऐतिहासिक रूप विधान

(१) विवश देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली पराधीन भारत की जलती हुई कहानी।
मरे हुओं की समाधि, जीवितों को रण की ललकार,
दिल्ली, वीर विहीन देश की गिरी हुई तलवार।[5]

(२) तू वैभव-मद में इठलाती परकीया-सी सेज बिछाती,
री ब्रिटेन की दासी! किसको इन आँखों पर है ललचाती।[6]

(३) यह विपत्ति-नीर में देखो गौरव-गरिमा सोती है
यमुना-कछार पर बैठी विधवा दिल्ली रोती है।

---

१ कुणाल, पृ० ४१ ४२
२ कुणाल, पृ० ४६
३ शिवा पृ० ७७
४ नील कुसुम पृ० ८४
५. दिल्ली, पृ० १०
६ दिल्ली पृ० ६
७. इतिहास के आँसू, पृ० ७०

(४) चढ़े अश्व पर सेंक रहे रोटी नीचे कर भालों को
खोज रहा मेवाड़ आज फिर उन अल्हड़ मतवालों को।[1]

दिल्ली इतिहास-प्रसिद्ध नगरी है उसको दिनकरजी ने विविध रूपों में चित्रित किया है। प्रथम चित्र में विभिन्न विशेषणों से उसे विभूषित किया है। वह पराधीन देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी तथा बलती हुई कहानी है तथा मृतकों की ग्लानि, जीवितों को एक ही ललकार है। अन्त में उसे वीर-विहीन देश की गिरी हुई तलवार के रूप में देखा है। इन विशेषणों से पराधीन दिल्ली का एक मार्मिक भावचित्र प्रस्तुत हो जाता है। चित्र में कम नहीं प्रभाव की क्षमता है। दूसरे उद्धरण में पराधीन दिल्ली को परकीया नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। तीसरे उद्धरण में लुटी और धूल-धूसरित दिल्ली को विधवा के समान बताया है जो यमुना के कछार पर बैठी रो रही है। चौथे उद्धरण में उस ऐतिहासिक प्रसंग का मार्मिक दृश्य उपस्थित किया गया है जब मेवाड़ के सिपाही मुगलों के डर से त्रस्त होकर इधर-उधर जंगल में भटकते फिरते थे उन्हें खाने-पीने तक का मौका और सुविधा नहीं मिल पाती थी। उनका सोना-खाना सब घोड़े की पीठ पर ही होता था। इन कारुणिक और असहाय परिस्थितियों का मार्मिक उद्घाटन 'चढ़े अश्व पर सेंक रहे रोटी नीचे कर भालों को' से होता है।

प्राकृतिक रूप-विधान

इस काल के कवियों ने प्रकृति के चेतन स्वरूप को ही अधिक अपनाया है। प्रकृति कहीं-कहीं इतनी सजीव हो उठी है कि मानवीय कार्य-व्यापारों तथा प्राकृतिक कार्य-व्यापारों में तादात्म्य स्थापित हो गया है। गुरुभक्तसिंह के कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं

(१) नव कुसुमों का मृदुल हाथ रह रह ले रहा हिलोरें
भुन भुन कर रहा गुंजरित वन उपवन की छोरें
ओस-बिन्दु की मालाओं का सुघन भार सम्हाले।
उतर रही मुग्धा ऊषा रवि के कर में कर डाले॥
दुग्धफेन-सी उज्ज्वल चिकनी दीवारों से रविकर।
फिसला पड़ता है गिर-गिर कर काँप रहा है थर-थर।[2]

× × ×

(२) कुछ कतरन वैसे ही छेड़े हरियाली भी जागी।
परिमल सुरापान में रत है मलयानिल अनुरागी॥
एक दूसरे को सब लख लख कर करके गुप्त इशारे।
मुस्काईं कलियाँ चुटकी ले, छिपते देख सितारे॥
निशा-सुन्दरी ने तारों संग रति में रात गँवाई।
इन कलियों की अठखेली पर लज्जा लाली छाई।[3]

---

१. इतिहास के आँसू, पृ० ६१
२. नूरजहाँ, पृ० ५५
३. नूरजहाँ, पृ० ५६

प्रथम उद्धरण में प्रातःकाल का चित्रण किया गया है। वहाँ नवकुसुमों का हास हिलोरें ले रहा है और ऊषा मुग्धा नायिका की भाँति ओस-बिन्दुओं की माला धारण किये हुए प्रियतम सूर्य के कर में कर डाले आकाश से उतर रही है। यहाँ ऊषा और रवि का मानवीकरणात्मक चित्र काफी प्राणवान हो उठा है। सूर्य की किरणें पृथ्वी पर गिरती हुई ऐसी प्रतीत हो रही हैं जैसे सूय गिर कर काँप रहा हो।

इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में हरियाली नाचती है, मलयानिल मुरापान में रत है। एक दूसरे को देखकर इशारे करते हैं कलियाँ मुस्कराती हैं। निशा-सुन्दरी ने रात में तारों के साथ प्रणय-लीलायें कीं। अगली पंक्तियों में कवि और भी चित्र देता है—मैरव का परवा करके किरण नाचती जाती है लतिका ने कर-तारों पर कलिका रूपी मिजराब लगायी। इन पंक्तियों में कुसुम मलयानिल ऊषा रवि किरण कली निशा सब मानवीय कार्य-व्यापारों में रत दिखाये गये हैं। प्रकृति के ऐसे अनेकों चित्र 'नूरजहाँ' में अपने सम्पूर्ण कलात्मक उत्कर्ष के साथ बिखरे पड़े हैं।

'अंचल' की शारदी सन्ध्या का चित्र देखिये

देख संगिनि ! पीत रूपा शारदी सन्ध्या
जो शिथिल लेटी दिवा की मृत्यु-शैया पर
दूर-सरि-तट पर कहीं पाई गई गोरी सद्य निस्तेज
फीकी म्लान-अंचित !

×   ×   ×

देख संगिनि ! ताम्र नभ में फैल कर लेटी
रोगिणी-सी क्लान्त और विवर्ण
जर्जरित कृश यह कुँआरी शरदी सन्ध्या।[1]

सम्भवतः कवि का मन दुखी है अतः उसे शारदी सन्ध्या रुग्ण प्रतीत हो रही है जो दिवा की मृत्यु-शैया पर शिथिल-शिथिल लेटी है। अगली पंक्तियों में कवि ने उसे रोगिणी-सी क्लान्त और विवर्ण भी बताया है। 'अंचल' ने 'अपराजिता' में प्रकृति के अंग-अंग में प्राण डालने का प्रयत्न किया है। मेघपरी समीरण के पंखों पर चढ़कर नभ के आँगन में नाचती है। उसके काले-काले कुन्तल ही मेघ बनकर छाये हैं।[2]

एक दूसरा चित्र तारों का देखिये—वे माता-पथ की आतुरता से काँप रहे दुखियारे भिखारियों की भाँति काँपते दिखायी पड़ते हैं

प्रतिक्षण, नभ में काँप रहे
वे कुछ कुछ तारे
मानो, माता-पथ की आतुरता
से वे दुखियारे[3]

---

१. अतीत के पतझड़ पृ० ३७-३८
२. अपराजिता, पृ० १४२
३. नवीन : कुंकुम पृ० ४२

नरेन्द्र शर्मा ने शीत की भयंकरता और तीव्रता का बोध निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी सरलता से कराया है। देखिये

अब सिरा गयी है शीत रात
डरते-डरते दिन रहा निकल
प्राची के ठिठुरे कोने में।[1]

शरद ऋतु का सूर्य भी अपनी प्रखरता खो कर अपेक्षाकृत शीतल हो जाता है, प्रातःकाल लगभग दस बजे तक धूप में गर्मी नहीं रहती, इस स्थिति का भान कवि डरते डरते दिन निकल रहा कह कर कराता है, और प्राची दिशा भी मानव प्राणी की ही भाँति ठिठुरी प्रतीत हो रही है। इसी प्रकार 'बह रही लजीली-सी री पुरवैया'[2] में कवि ने मंद गति से बहती हुई पुरवैया को लजीली नायिका के रूप में देखा है।

(१) गरज रहे फिर मेघ साँवले नाच रही गोरी बिजली।[3]
(२) शरमा कर हामी भरती-सी होगी झुकी नीम की डाल।

बादलों की गोद में चमकती हुई बिजली की कवि ने नर्तकी के रूप में कल्पना की है और पानी की बूँदों से झुकती हुई नीम की डाल को उसने शरमा कर हामी भरती हुई आनत वदना रूपसी के रूप में चित्रित किया है।

मोहनलाल द्विवेदी से समीरण के क्रिया-कलाप की एक झाँकी लीजिए। उनका समीरण कुसुमों की नीलम प्यालों में अभिराम मादक मदिरा ले कर मंथर गति से चल कर सारे संसार को पिला रहा है। यहाँ पवन पुरुष रूप में चित्रित किया गया है।

कुसुम के नीलम प्यालों में ले मादिक मदिरा अभिराम
मंद चरण धर चला समीरण पिला रहा जग को अभिराम।[4]

द्विवेदीजी ने लहर को पद्म के वारस की भाँति अनेक उपमानों से लाद दिया है। इस रूप-चित्रण में छायावाद-युग की सूक्ष्म सौन्दर्यांकन की परम्परा का निर्वाह किया गया है। प्रणयी की मृदुल उमंग गंगा की तरल तरंग कवि की कल्पना बालक की सरल भावना युवक की स्वप्निल-कामना बुद्धदेव की करुणा लहराती ममता जल की सुन्दर परी आदि उपमान लहर के लिए प्रयुक्त हुए हैं जो कभी आकांक्षा की भाँति ऊपर उठती है और प्रार्थना की भाँति नीचे गिरती है।[5] कवि ने अमूर्त उपमानों में लहर को मूर्तिमान करने में अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है।

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारों को देखकर बच्चनजी कल्पना करते हैं कि जैसे वे हाथ पसार कर कुछ माँग रहे हैं।

---

१ मिट्टी और फूल पृ ५४
२. मिट्टी और फूल पृ ५७
३ मिट्टी और फूल पृ० ५४
४ मिट्टी और फूल, पृ ५४
५. चित्रा पृ ११
६. चित्रा पृ १०

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे माँग रहे हैं हाथ पसारे'

चाँद और चाँदनी के माध्यम से कवि द्वारा प्रस्तुत एक मांसल चित्र देखिये

दुग्ध उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पर्यंक पर आज उस पर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है
आज कितनी वासनामय चाँदनी है।'

इन पंक्तियों में कवि ने चाँदनी को वासनामयी निगाहों से देखा है। गगन पर चाँदनी छिटकी हुई है वही मानो नभ के पर्यंक पर बिछी हुई चादर है जहाँ चाँद से चाँदनी लिपटी हुई पड़ी है। यह चित्र रति-चित्रण के समीप पहुँच गया है।

भगवतीचरण वर्मा की सरिता नक्षत्रों के साथ खेलती है। निशिनाथ निशा के आलिंगन-पाश में बँध कर अत्यधिक आह्लादित था इस वैभव के वातावरण में चाँदी की रात मस्ती में हँसती थी और कुमुदिनी मस्तक ऊँचा करके अपनी मस्ती में झूम रही थी।

उस दिन सरिता खेल रही थी नक्षत्रों के साथ,
और निशा के आलिंगन में पुलकित थे निशिनाथ
वैभव की मस्ती में हँसती थी चाँदनी की रात
झूल रही थी अपनी कुमुदिनी करके ऊँचा माथ।'

यहाँ कवि ने अपनी मस्ती में प्रकृति को भी उल्लासमयी और प्राणवान बनाने का अभिनव प्रयास किया है। ठीक इसके विपरीत वियोगावस्था में प्रकृति को वियोगिनी और दुखिनी के रूप में चित्रित किया है। शिशिर की रात तारों के मिस आँसू बहाती है और ज्योत्स्ना ठंडी साँसें ले रही है।

देखा ! वियोग की शिशिर रात आँसू का हिमजल छोड़ चली
ज्योत्स्ना की वह ठंडी उसाँस दिन का रक्तांचल छोड़ चली।

इस प्रकार कवि प्रकृति को अपने ही सुख-दुख के पैमाने से नापता है। यदि वह सुखी है तो प्रकृति खिलखिलाती है और दुखी है तो प्रकृति रोती और आहें भरती है।

लता-वृक्ष, पशु-पक्षी तथा कीट-पतंगों पर आधारित रूप विधान

गुरुभक्तसिंह 'नूरजहाँ' में विस्तृत प्रकृति का कोना-कोना झाँक आए हैं, उन्होंने अनेकानेक पौधों तथा लताओं को जैसे मोरपंखी लवंग, मौलसिरी रसाल, नारिकेल अशोक कचनार, अमलतास, नारंगी माधुरीलता, मालती कामिनी पुंगीफल, अंगूर, गुलाब सुदर्शन

१ निशानिमन्त्रण सोपान पृ० १०८
२ मिलन यामिनी सोपान पृ० १००
३ मानव विस्मृति के फूल पृ ५४
४ [illegible]

छा गैया मुक्तमोहरी को सजीव करके उन्हें मानव कार्य-व्यापारों में रत बताया है। इसी कार तितली, मधुप पपीहा महोरव, काक चिरमिरा फाख्ता चकोर, कपोत मिरहुगाव आदि शु-पक्षियों और कीट-पतंगों को मानवीय क्रियाकलाप में निमग्न चित्रित किया है। इस यन में कहीं-कहीं वस्तु-परिगणन की शैली अपनाई है और कहीं-कहीं अत्यन्त कलात्मकता साथ मानव और प्रकृति के अभिन्न सम्बन्ध स्थापित किये गये हैं।

सोहनलाल द्विवेदी ने कोकिल मराल भ्रमर आदि से विशेष ममता दिखाई है। रेन्द्र को पलाश और अमलतास बहुत भाते हैं। दिनकर बाँसों तथा दूब की हरियाली पर ग्ध हैं तो बच्चन गुलमुहर, गुलहजारा पर प्राण न्योछावर करते हुए देखे जाते हैं। दिनकर हरी घास को खुरों से रौंदती हुई गायों का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। नरेन्द्र शर्मा ने पीहा मोर, कोयल तोता मैना कुररी क्रौंच खंजन सारस आदि पर ममतामयी दृष्टि री है।

राजनीतिक रूप-विधान

उत्तरछायावादी कवियों ने राजनीतिक परिस्थितियों और उससे उत्पन्न विषमताओं ा वर्णन तो किया है उनका चित्र प्रस्तुत करने में विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई है। यह युग ी अनिवार्यता थी कि वस्तुस्थिति का ज्ञान सीधी और सरल भाषा तथा शैली में करा या जाय फलतः इस कटघरे से बाहर आने में इन कवियों ने सार्थकता नहीं समझी। फिर ी छानबीन करने पर कुछ चित्र तो उपलब्ध हो ही जाते हैं। राजनीतिक विषमताओं के ारण ही संसार में युद्ध हुआ करते हैं उसी युद्ध की विभीषिका का चित्र दिनकरजी ने कितनी सफलता से खींचा है। देखिये

युद्ध का उन्माद संक्रमशील है एक चिनगारी कहीं जागी अगर—
तुरत, बह उठते पवन उनचास हैं, दौड़ती, हँसती उबलती
आग चारों ओर से।

युद्ध संक्रामक रोग की भाँति जनमानस में जगह-जगह फैल जाता है। उसे आग की चिनगारी की भाँति कहकर उसके स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान कराया गया है। आग के प्रज्वलित ोने और बढ़ने की क्रिया को दौड़ती हँसती कहा गया है। युद्ध के विस्तार पाने की बात ी दौड़ती कहने पर उसकी द्रुतगति का रूप सम्मुख आ जाता है आग के हँसने में उसकी ज्वाला का बोध होता है और उबलती कहने से उसकी भयंकरता सामने नाच उठती है। ूपकातिशयोक्ति से इन पंक्तियों में युद्ध का रूप बहुत स्पष्ट हो गया है। युद्ध होने के कारण के िए चिनगारी और उसके विस्तार पाने की स्थिति के लिए उनचास पवन तथा युद्ध के िए आग शब्द प्रयुक्त हुआ है।

ये छूरे कहीं चलते छिदती जाती स्वदेश की छाती है
लाठी खाकर भारत माता बेहोश हुई-सी जाती है।

—दिनकर

प्रस्तुत पंक्तियों में भारत-माता के ऊपर विदेशी सत्ता द्वारा किए गये अत्याचारों तथा मन की तसवीर सामने आ जाती है।

विद्रोही कवि नवीनजी जेल-जीवन की यातनाओं तथा शासकों के अत्याचारों का रेखा-चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी ओजपूर्ण शैली में प्रस्तुत करते हैं

चला चला कर अपनी चक्की स्वेद पोंछना, ए प्यारे
उन कायर मजुरों की घुड़की को सुन सुन तू हँसना रे !

× × ×

तासा कुंजी, कालकोठ, संतरा, कैदी, ये सब हैं ठीक
खींच चुकी है नौकरशाही अपने सर्वनाश की लीक ।
चक्कर से रोटी आवेगी, झमू भर आवेगी दाल,
तू शकटार बना है, पापी नंदवंश का जीवित काल ।

पराधीन भारत के कैदियों को जेल में तरह-तरह की यातनाएँ दी जाती थीं । उनका चक्की का पीसना अत्यधिक परिश्रम से पसीने से तर हो जाना और ऊपर से जेलरों की घुड़की सुनना उस समय साधारण-सी बात थी । कवि ने यहाँ कैदी को शकटार बताया है जो महापद्मनन्द की जेल में दीर्घ काल से सड़ रहा था । यह ऐतिहासिक उपमान कैदी की यातनाओं की एक विकराल और दयनीय स्थिति सामने ला देता है ।

राष्ट्रीय भावना से उद्वेलित एक देशभक्त के त्याग और बलिदान का चित्र अन्योक्ति के माध्यम से माखनलाल चतुर्वेदी ने एक कविता में बड़ी कलात्मकता से सजाया है

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,

—माखनलाल चतुर्वेदी

कवि ने देशभक्त पर सुमन का आरोप करके चित्र को और भी प्रभावशाली बना दिया है । देशप्रेमी को लौकिक और पारलौकिक किसी सुख की आकांक्षा नहीं है, वह तो मातृभूमि पर शीश चढ़ाने वाले वीरों की पंक्ति में खड़ा होना चाहता है ।

आर्थिक रूप-विधान

भगवतीचरण वर्मा ने दयनीय आर्थिक परिस्थितियों से कुचले जाने वाले शोषितों एवं दुखियों का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है

वे माँस हीन वे रक्त हीन वे अन्न हीन वे वस्त्र हीन
वे सड़कों पर सोने वाले वे धूल धूसरित अति मलीन
चिथड़ों में से दुर्गन्ध कढ़ी रोगों से उनकी देह सड़ी

× × ×

जूठे टुकड़े पाकर भूखे दे और रहे आशीर्वाद

सड़कों पर सोने वाले नर-कंकाल जूठे टुकड़ों पर कुत्तों की तरह टूटते हैं और देने वालों को आशीर्वादों से तर कर देते हैं ।

कवि की 'भैंसागाड़ी' शीर्षक कविता तो आर्थिक विषमता और विपन्नता का एक म्यूजियम है । इसमें गाँवों का यथार्थ चित्र सम्मुख आ जाता है ।

चरमर चरमर चूँ-चरर मरर जा रही चली भैंसागाड़ी ।[1]

---

१ मानव विस्मृति के फूल, पृ० ५

यह भैंसागाड़ी ग्रामीणों के जीवन का प्रतीक है। ग्राम के दुखी किसानों का जीवन अनवरत गति से भैंसागाड़ी की तरह दुख और दर्द के गीत गाता अभाव की कच्ची सड़क पर आगे बढ़ता ही चला जाता है और एक दिन कस्बे पर पहुँचने के पहले ही गाड़ी के पहिये अतिशय प्रयोग से घिस कर टूट जाते हैं। उसी तरह जीवन भी असमय में टूट कर नष्ट हो जाता है।

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।

गाँव में कच्चे घरों की उपमा छाती के फोड़ों से दी गयी है। इससे गाँव के मकानों की कुरूपता और नग्नता प्रत्यक्ष हो जाती है।

अगली पंक्तियों में कवि किसानों की एक नग्न तसवीर खींचता है, जिसमें भूख अभाव और दीनता के अनेकों काले धब्बे नजर आते हैं

चाँदी के टुकड़ों को लेने प्रतिदिन पिस कर भूखों मर कर
भैंसागाड़ी पर लदा हुआ जा रहा चला मानव जर्जर,
है उसे चुकाना सूद कर्ज, है उसे चुकाना अपना कर
जितना खाली है उसका घर, उतना खाली उसका अन्तर।[1]

यह दृश्य बिना किसी अप्रस्तुत के ही काफी स्पष्ट और प्रभावशाली बन गया है।

दिनकरजी ने कवि की मृत्यु शीर्षक कविता में गीतकार की दयनीय स्थिति का भान निम्नलिखित पंक्तियों में सफलता के साथ कराया है। चित्र की कलात्मकता से भाव अपने आप मूर्त हो गया है। देखिये

जब गीतकार मर गया चाँद रोने आया,
चाँदनी मचलने लगी कफन बन जाने को।
मलयानिल ने शव को कंधों पर उठा लिया।
वन ने भेजे चंदन-श्रीखंड जलाने को।[2]

कवि जीवन भर गीतों को बनाता और गाता है। दुनिया उसे सुनती और झूम उठती है, किन्तु उसके अन्तर के हाहाकार को कोई नहीं देखता भूख-प्यास से तड़पते हुए उसके मासूम बच्चों को कोई गोदी में नहीं उठाता यहाँ तक कि मर जाने पर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिए प्रकृति को सजीव होना पड़ता है। इसीलिए तो उसके मरने पर चाँद रोता है चाँदनी कफन ओढ़ाती है मलयानिल शव को कंधों पर उठाता है तथा वन शव को जलाने के लिए चन्दन और श्रीखंड देता है। तात्पर्य यह कि कवि की गरीबी का साथ प्रकृति देती है मानव नहीं।

सामाजिक रूप विधान

बट की विशालता के नीचे जो अनेक मूल
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने को वर दो।

---
१. सागर : निरमति के फूल पृ ५५
२. नीलकुसुम पृ ११

रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष
उसको गिराएँ तोड़ो डालियाँ कतर दो।

उपर्युक्त पंक्तियों ने समाज को दो भागों में विभक्त किया है—शोषक और शोषित। शोषक के लिए बटवृक्ष शोषित के लिए अनेक वृक्ष उपनाम बनकर आये हैं। शोषक बटवृक्ष की भाँति आज निर्धन समाज का शोषण कर रहे हैं वे छोटे छोटे पेड़ों की भाँति उसी आश्रय में पल रहे हैं। पूँजीपति अपनी शोषण-नीति से बटवृक्ष की भाँति जनता का शोषण करता है, अतः उस भीमकाय बटवृक्ष के सदृश पूँजीपति का विनाश करो जिससे शोषितों के पनपने और बढ़ने का अवसर मिले।

'अंचल' भी इसी भाव की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि

हो यह समाज चिथड़-चिथड़े
शोषण पर जिसकी नींव पड़ी।

किसानों और मजदूरों की सामाजिक स्थिति पर तरस खाकर अंचलजी कहते हैं कि

वह नरक जिसे कहते मानव कीड़ों से आज गयी बीती
बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कैसे जीती।

यहाँ मानव की सामाजिक विपन्नता तथा दयनीय स्थिति की तुलना कीड़ों से की गयी है।

गाँवों में किसानों का सामाजिक जीवन भगवतीचरण वर्मा की लेखनी का स्पर्श पाकर कितना मूर्तिमान हो गया है, देखिये

पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ, नारियाँ बन रही हैं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना यह है लोगों का एक काम।

दिनकरजी ने भी गाँवों में प्रचलित महाजनी प्रथा का यथार्थ चित्रण किया है

ऋण में सपद गई सिर्फ वो बिघा भूमि भी साथ
सात पुश्त तक जिसको लेकर पुरखे हुए निहाल
उस माता को आज बेच दूँ? मैं ऐसा कंगाल?
आगे आगे चला मैं रोता, छोड़ धरा औ धाम
झूठे ऋण का हुआ मुकदमा जमीं हुई नीलाम।
जग में जिसे बहुत है उसको हो न कभी संतोष
राजा का कर सदा चुकाता कंगालों का कोष।[1]

गाँवों में महाजन अपने कर्ज में किसानों की भूमि नीलाम करवा लेता है उसके ऊपर झूठे मुकदमे चलाये जाते हैं फिर भी राजा या जमींदार को संतोष नहीं होता क्योंकि राजा का कर कंगालों के कोष से ही दिया जाता है। चित्र में न तो भाषा का अवगुंठन है न भावों को व्यक्त करने के लिए व्यंजना और लक्षणा शक्तियों की ही आवश्यकता पड़ी है। शब्दों के अर्थ के साथ-साथ गाँव की गरीबी और सामाजिक अव्यवस्था का चित्र खड़ा हो गया है।

---

१ हुंकार पृ. ६६-६७

भावात्मक रूप-विधान

आलोच्य काल के कवियों की रचनाओं में व्यापक उत्पीड़न परिवर्तन निराशा विरह मिलन तथा सुख दुख के अनेक चित्र मिलते हैं :

तैरती सपनों में दिन-रात मोहिनी छवि-सी तुम अम्लान
कि जिसके पीछे-पीछे नाचि रहे फिर मेरे भिक्षुक गान।

—दिनकर

यहाँ कवि और भिक्षुक म साम्य स्थापित करके कवि के अन्तर्मन की सौन्दर्य की पिपासा का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि की सौन्दर्य-पिपासा नारी की छवि के गीत गाती है गीत की लालसा ने उसे भिक्षुक बना दिया है। भिक्षुक गान विशेषण विपर्यय का उदाहरण है। गान भिक्षुक नहीं है कवि का हृदय भिक्षुक है। विशेषण विपर्यय के कारण चित्र की रमणीयता बढ़ गयी है।

बसती हूँ जसे कुसुम बीच सौरभ समेट कर कमल बके
बसती हूँ वैसे छिपा स्नेह अन्तर में कोई बीन बके।

—दिनकर

यहाँ बसती हूँ क्रिया का कर्त्ता सातों सुरों से भरी बाँसुरी है। पर वे सुर पीड़ा के है। हृदय म सौरभ समेटे कमल भी बसता रहता है क्योंकि उसे छिन्न-भिन्न हो जाने का भय मर्दन बना रहता है। सुन्दरियों के पद, कर, मुख नयन से पराजित होने की भी संका रहती है। पर यहाँ 'बक' का अर्थ मार्मिक पीड़ा है। कवि आगे लिखता है

तुम नहीं जानते पथिक आग यह कितनी मादक पीड़ा है
भीतर पसीजता मोम स्वप्न की बाहर होती क्रीड़ा है।

यहाँ कवि अपनी मार्मिक पीड़ा और भी स्पष्ट कर देता है। जीवन और उसकी नश्वरता का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों मे देखिये

आदमी क्या स्वप्न ? है बड़ बुलबुला जल का
आज उठता और कल फिर फूट जाता है।[1]

इन पंक्तियों में आदमी को स्वप्न और बुलबुला बनाकर दिनकरजी ने नश्वरता का भाव चित्र प्रस्तुत किया है।

मन्ति क प्रलय के समय का एक चित्र देखिये

वृद्ध सूर्य की आँखों पर माँड़ी-सी चढ़ी हुई है
दम तोड़ती हुई बुढ़िया-सी दुनिया पड़ी हुई है।[2]

यहाँ दुनिया को दम तोड़ती हुई बुढ़िया के रूप मे चित्रित किया गया है। इससे मरणप्राय होती दुनिया का भाव बहुत स्पष्ट हो गया है।

---

१ काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० १९२
२ सामधेनी पृ २४
३ सामधेनी पृ ११

सोहनलाल द्विवेदी ने एक भावपूर्ण चित्र के द्वारा बताया है यह नियति का ही क्रूर व्यंग्य है कि हर्ष के पल क्षणिक और शोक के क्षण अनन्त होते हैं।

कवि बच्चन आशा का सम्बल लेकर कितनी दूर चल सकते हैं इसका एक भावपूर्ण चित्र देखिये

है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है ?

कल्पना के हाथों से कमनीय मंदिर बनाया था और उसे स्वप्न की रंग बिरंगी भावनाओं से सजाया था यदि वह दुर्भाग्य से ढह गया है तो ईंट पत्थर कंकड़ों से एक शांति कुटीर बना कर रहना चाहिए।[1]

यदि मधुपात्र टूट गया है तो हाथ की दोनों हथेलियों से अंजुली बनाकर तृष्णा को बुझा लेना चाहिए। यदि सारी मस्ती और उल्लास की घड़ियाँ जीवन से छीन ली गयी हैं, तो भी मुस्कराना चाहिए। यदि मन का मीत बिछुड़ गया हो तो दूसरा मित्र खोज कर जी बहलाना न्याय-संगत और उचित है। और अन्त में प्रकृति की नश्वरता का चित्र देता हुआ कवि कहता है कि संसार में जो बसता है वही उजड़ता है जो मिलता है वही बिछुड़ता है।

जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के जड़ नियम से
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है ?

कवि की आशा के तार इतने लम्बे हैं कि टूटते ही नहीं। वह कहता है कि आसमान से अनेक तारे टूट-टूट कर गिर जाते हैं किन्तु 'पर बोलो टूटे तारों पर अम्बर कब शोक मनाता है'।[2] इसी प्रकार जीवन-साथी के बिछुड़ जाने पर शोक मनाना व्यर्थ है। जैसे मधुवन अपनी सूखी कलियों मुरझाये फूलों और टूटी हुई वल्लरियों के लिए नहीं तड़पता यदि मदिरालय टूटे हुए प्यालों के लिए पश्चाताप नहीं करता उसी प्रकार जीवन की बहुमूल्य वस्तु के खो जाने पर भी शोक करना व्यर्थ है।

मिलन का एक मांसल चित्र देखिये

शिथिल पड़ी है नभ की बाहों में रजनी की काया
चाँद-चाँदनी की मदिरा में है डूबा भरमाया।[3]

यहाँ रजनी प्रणयिनी की भाँति नभ के आलिंगन-पाश में बँधी हुई दिखाई गयी है।

गुरुभक्त सिंह ने सुख-दुःख को फूल और काँटों तथा पक्षी के दो पंखों की तरह चित्रित किया है

दिन के पीछे रात लगी है सुख को शूल दिया है
काँटों की है बाढ़ लगा दी जिसमें फूल दिया है।
तब क्या जीवन के पक्षी के सुख-दुख दोनों हैं पर ?
क्या बहती है जीवन-सरि दो कूलों से होकर ?

---

१. सतरंगिनी सोपान १८९-९०
२. सतरंगिनी, सोपान, पृ० १८२
३ मिलनयामिनी, सोपान पृ० २११
४ नूरजहाँ, पृ० ६१

भावात्मक रूप-विधान

आलोच्य काल के कवियों की रचनाओं में शोषण उत्पीड़न परिवर्तन निराशा विरह मिलन तथा सुख-दुख के अनेक चित्र मिलते हैं :

तैरती सपनों में दिन-रात मोहिनी छवि-सी तुम अम्लान
कि जिसके पीछे-पीछे नाचि रहे फिर मेरे भिक्षुक प्राण ।

—दिनकर

यहाँ कवि और भिक्षुक में साम्य स्थापित करके कवि के अन्तर्मन की सौन्दर्य की पिपासा का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि की सौन्दर्य-पिपासा नारी की छवि के पीछे भागती है, भीख की लालसा ने उसे भिक्षुक बना दिया है। भिक्षुक प्राण विशेषण विपर्यय का उदाहरण है। प्राण भिक्षुक नहीं है कवि का हृदय भिक्षुक है। विशेषण विपर्यय के कारण चित्र की कमनीयता बढ़ गयी है।

जलती हूँ जैसे हृदय बीच सौरभ समेट कर कमल जले
जलती हूँ जैसे छिपा स्नेह प्रस्तर में कोई दीप जले।

—दिनकर

यहाँ जलती हूँ क्रिया का कर्ता सातों सुरों से भरी बाँसुरी है। पर ये सुर पीड़ा के हैं। हृदय में सौरभ समेटे कमल भी जलता रहता है क्योंकि उसे छिन्न-भिन्न हो जाने का भय सर्वदा बना रहता है। सुन्दरियों के पद, कर, मुख नयन से पराजित होने की भी शंका रहती है। पर यहाँ 'जल' का अर्थ मार्मिक पीड़ा है। कवि आगे लिखता है

तुम नहीं जानते पथिक आज यह कितनी मादक पीड़ा है
भीतर पसीजता मोम लपट की बाहर होती क्रीड़ा है।

यहाँ कवि अपनी मार्मिक पीड़ा और भी स्पष्ट कर देता है। जीवन और उसकी नश्वरता का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये

आदमी क्या स्वप्न ? है वह बुलबुला जल का
आज उठता और कल फिर फूट जाता है।[1]

इन पंक्तियों में आदमी को स्वप्न और बुलबुला बताकर दिनकरजी ने नश्वरता का भाव चित्र प्रस्तुत किया है।

शक्ति के प्रलय के समय का एक चित्र देखिये

वृद्ध सूर्य की आँखों पर माँड़ी-सी चढ़ी हुई है
दम तोड़ती हुई बुढ़िया-सी दुनिया पड़ी हुई है।[1]

यहाँ दुनिया को दम तोड़ती हुई बुढ़िया के रूप में चित्रित किया गया है। इससे नष्टप्राय होती दुनिया का भाव बहुत स्पष्ट हो गया है।

---

१ काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० १२५

२. सामधेनी पृ० १४

३ सामधेनी पृ० ११

सोहनलाल द्विवेदी ने एक भावपूर्ण चित्र के द्वारा बताया है यह नियति का ही क्रूर व्यंग्य है कि सुख के पल क्षणिक और शोक के क्षण अनन्त होते हैं।

कवि बच्चन आशा का सम्बल लेकर कितनी दूर चल सकते हैं इसका एक भावपूर्ण चित्र देखिये

है अँधेरी रात पर दीया जलाना कब मना है ?

कल्पना के हाथों जो कमनीय मन्दिर बनाया था और उस स्वप्न को रंग बिरंगी भावनाओं से सजाया था यदि वह दुर्भाग्य से ढह गया है तो ईंट पत्थर कंकड़ों से एक शांति कुटीर बना कर रहना चाहिए।[1]

यदि मधुपात्र टूट गया है तो हाथ की दोनों हथेलियों से अंजुली बनाकर तृष्णा को बुझा लेना चाहिए। यदि सारी मस्ती और उल्लास की घड़ियाँ जीवन से छीन ली गयी हैं, तो भी मुस्कराना चाहिए। यदि मन का मीत बिछुड़ गया हो तो दूसरा मित्र प्राप्त कर जी बहलाना न्याय-संगत और उचित है। और अन्त में प्रकृति की नश्वरता का चित्र देता हुआ कवि कहता है कि संसार में जो बसता है वही उजड़ता है, जो मिलता है वही बिछुड़ता है।

जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के जड़ नियम से
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है ?

कवि की आशा के तार इतने लम्बे हैं कि टूटते ही नहीं। वह कहता है कि आसमान से अनेक तारे टूट-टूट कर गिर जाते हैं किन्तु 'पर बोलो टूटे तारों पर अम्बर कब शोक मनाता है'।[2] इसी प्रकार जीवन-साथी के बिछुड़ जाने पर शोक मनाना व्यर्थ है। जैसे मधुवन अपनी सूखी कलियों मुरझाये फूलों और टूटी हुई वल्लरियों के लिए नहीं तड़पता यदि मदिरालय टूटे हुए प्यालों के लिए पश्चाताप नहीं करता उसी प्रकार जीवन की बहुमूल्य वस्तु के खो जाने पर भी शोक करना व्यर्थ है।

मिलन का एक मांसल चित्र देखिये

शिथिल पड़ी है नभ की बाहों में रजनी की काया
चाँद-चाँदनी की मदिरा में है डूबा भरमाया।

यहाँ रजनी प्रणयिनी की भाँति नभ के आलिंगन-पाश में बँधी हुई दिखाई गयी है।

गुरुभक्त सिंह ने सुख-दुख को फूल और काँटें तथा पक्षी के दो पंखों की तरह चित्रित किया है

दिन के पीछे रात लगी है सुख को दुख किया है
काँटों की है बाड़ लगा दी जिसमें फूल दिया है।
तब क्या जीवन के पक्षी के सुख-दुख दोनों हैं पर ?
क्या बहती है जीवन-सरि दो कूलों से होकर ?[4]

---

१. सतरंगिनी सोपान १७१-७३
२. सतरंगिनी सोपान पृ० १८१
३ मिलनयामिनी, सोपान पृ २११
४ नूरजहाँ, पृ० ९१

दिन के पीछे जिस प्रकार रात लगी रहती है और फूल में जैसे काँटे छिपे रहते हैं उसी प्रकार जीवन में सुख और दुःख दोनों का चोली-दामन का सम्बन्ध है। सुख और दुःख जीवन-पक्षी के दो पक्ष हैं और जीवन सरिता के ये दोनों किनारे हैं जिसे छूकर यह सरिता प्रवाहित होते-होते अनन्त सिन्धु में मिल जाती है।

मिलन का एक मांसल चित्र नरेन्द्र शर्मा के प्रवासी के गीत में देखिये

प्रणय प्रगल्भ पुलकित बाहों के भरे हुए दुहरे आलिंगन
आह आज क्यों याद आ गए कम्पित अधरों के चुम्बन।
तीव्र श्वास घुमड़ाकुल स्वेदित शिथिल गात्र मधु रात अचेतन
प्राणों में अब भेद नहीं था एक हो गये थे दोनों तन।[1]

—स्पष्ट करने से चित्र की मांसलता और बढ़ जायगी अत इसे पढ़कर ही चित्र का अनुमान लगा लेना अच्छा होगा। इसी से मिलते-जुलते अंचलजी के दो एक चित्र दर्शनीय हैं जिनमें मिलन की मांसलता वासना के कगारों से टकराने लगती है।

भर लो आज महासागर अधरों में जो सपनों वाली
छलकाती है प्यास न जाने कब से मेरी मतवाली।[2]
इस प्रेरित लोहित रति-गति में जब झूम झमकता बेसुध गात
गोरी बाहों में कस प्रिय को कर दूं चुम्बन से सुरा स्नात।[3]
बह रही थी सुप्त आधी रात तुमको नग्न घेरे।
मुसका मुझको न प्रियतम झुक पड़ते अंग मेरे।[4]

इन चित्रों में मिलन का नग्न और वासनामय चित्र अपनी पूर्ण मांसलता के साथ उभर आया है। अंचल बच्चन और नरेन्द्र शर्मा में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पायी जाती है।

नरेन्द्र शर्मा ने वियोग के कतिपय मार्मिक चित्रों की अवतारणा की है।

दूर हूं परदेस में हूं गूंज मत ओ देश के स्वर!
उमड़ मैदानी नदी-सी बढ़ चलेगी पीर
बहुत चौड़ा पाट बढ़ धारा बड़ी गम्भीर
कट गया है हृदय है दो-टूक क्यों दो तीर

इन पंक्तियों में कवि ने विरह-व्यथा को मैदानी नदी-सी बताया है जिसका पाट बहुत चौड़ा है और हृदय नदी के दो किनारों की भाँति जो कभी भी नहीं मिल सकते दोटूक हो गया है।

टूट गयी मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलाने वाले अब सामान कहाँ है?

---

१. प्रवासी के गीत पृ. २६
२. अपराजिता पृ. ४१
३. अपराजिता पृ. ७२
४. अपराजिता पृ. ११

अब वे मेरे गान कहाँ हैं ?
किस पर अपना प्यार चढ़ाऊँ ?
यौवन का उद्गार चढ़ाऊँ ?
मेरी पूजा को सह लेने वाले वे पाषाण कहाँ हैं ?[1]

मरकत की प्याली मदिरा की लाली और पाषाण कवि के प्यार के प्रतीक हैं जिन पर वह तन-मन न्योछावर कर चुका था किन्तु अब वे नष्ट हो चुके हैं। कवि का व्याकुल मन उनकी सुधि करके ही व्यथा से भर जाता है।

विरह तथा विरह से उत्पन्न मानसिक घुटन का संश्लिष्ट चित्रण हम नूरजहाँ काव्य के दसवें सर्ग में मिलता है जब सलीम अपनी प्रणयिनी मेहरुन्निसा से नहीं शेर अफ़गान की विवाहिता पत्नी से मिलने के लिए तस्कर की भाँति उसके महल में जाता है। शेर अफ़गान का न चाहने पर भी वह उसके गले मढ़ी गयी और सलीम को चाहने पर भी उससे दूर खींच ली गयी। इस बात से नूरजहाँ को अत्यधिक ठेस लगती है। अतः सलीम के पास आने पर उसकी यह दशा हुई—'छूट गयी तलवार हाथ से गिरी अचेत धरा पर' इसके पश्चात् उसकी मार्मिक पीड़ा का सजीव चित्रण देखिये—उसका प्यार टूट गया और प्यार से सम्बन्धित सारे प्रसंग और स्वप्न सब टूट गये। अतः नूरजहाँ यमुना के कल-कल नाद आँखों के उन्माद आमोदों के प्रासाद जीवन के आह्लाद, मधुर कल्पना शिल्पी के मायाजाल से बड़ी अनिच्छा से विदा लेती है। पुनः वह हृदय-सरोवर के सुखद मराल कौमार्य कली के कल्पित कामनाओं के मौन विकास अभिलाषा-नींव पर बने हुए अभिलाषाओं के कोट विलास के सुखमय सब आकांक्षाओं, जिनमें वह हँस पकड़ती थी वह जलक्रीड़ा की लहर झूला झूलने वाली तरु की सुन्दर डाल झूले को पेंग मारने वाली कोमल बाहु विशाल बाधा के पोत छिप छिप कर हृदय में उठने वाली मंद माग्य मानस में बंदी होने वाले चितचोर, अलभ्य अमरों की छाप यौवन के शृंगार भविष्य के चाँद तथा आलस्य-निशा के कभी न होने वाले सुन्दर विहान से विदा लेकर अन्त में वह कहती है कि

ओ शान्ति विदा, ओ शांति विदा ओ अपनी भोली भूल विदा
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा।[2]

गुणात्मक रूप-विधान

गंध

(१) कर रहे हैं बात यौवन की तरंगित अंग मेरे
पीत केशर सरसिजों से सुरभिवाही अंग मेरे।
(२) वह बरसाती शाम रंगीली खेतों की सौंधी धरती।

---

१. निशानिमंत्रण सोपान, पृ० ११५
२. नूरजहाँ पृ० ७१ से ७४
३. वर्षान्त के बादल पृ० २३
४. मिट्टी और फूल पृ० ४५

(३) भीनी थी मंद लाल चन्दन की बसी
थी खिली पत्तियाँ भी चम्पक चूरे-सी।[1]

पहले उद्धरण में 'अंचल' ने यौवन से तरंगित अंग को सरसिजों की सुरभि से भरकर बहुत ही आकर्षक बना दिया है। दूसरे उद्धरण में नरेन्द्रजी ने खेतों की सौंधी सुगन्ध का भान कराया है। तीसरे उद्धरण में नरेन्द्रजी ने पर्वतीय प्रदेश के सुरभिपूर्ण वायु से नासापुटों को आप्लावित कर दिया है।

(१) वे भंवर बुलाते वनीभव मलयज था बाँट रहा चन्दन
सौरभ से माता था गंधन वैदिक गाते वे साम गान।[2]
(२) उठता था सुरभित मलय धूम मंडल में थिर-थिर घूम-घूम।[3]
(३) यौवन के रसाल वन में मंजरी रूप की मादक
भरती कभी सुरभि तृण-तृण में विस्मृति सुख उन्मादक।[4]

उपर्युक्त तीनों उद्धरण सोहनलाल द्विवेदी के कुणाल से लिये गये हैं। प्रथम उद्धरण में मलयज चंदन बाँट रहा है दूसरे में सुरभित मलयधूम आ रहा है, और तीसरे में यौवन के रसाल वन में रूप की मादक मंजरी विकसित की गई है जो तृण-तृण में उन्मादक सुरभि भर रही है।

स्पर्श

(१) गोरी रात रेशमी अंगों में ओढ़े चाँदी की जाली[5]
(२) मदिर रसीली गोद तुम्हारी।[6]

प्रथम उद्धरण में रेशमी विशेषण से अंगों के सुखद एवं कोमल स्पर्श का भान होता है और द्वितीय उद्धरण में मदिर रसीली विशेषण लगाने से गोद का वासनामय आकर्षक स्पर्श बरबस अपनी ओर खींच लेता है।

ध्वनि

(१) ये नूपुर की रुनझुन रुनझुन
ये पायल की छम छम छम धुन।[7]
(२) आओ री यह छवि सघन आये मन क्यों न उमंग ?
फिर-फिर फिर चिव-चिव-चिव बोल रहे प्रेम-विहग।[8]

१ मिट्टी और फूल पृ० १७
२. कुणाल पृ० १६
३ कुणाल पृ० २६
४ कुणाल पृ० १७
५. बसन्त के पारन पृ० ११
६ लाल चूनर पृ० ८
७. भैरवी पृ० ४
८ वासंति, पृ० १११

उपर्युक्त उद्धरणों में रेखांकित शब्दों से नूपुर की रुनझुन तथा पायल की छम-छम साकार हो उठी है। इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में रेखांकित शब्दों से पैंस-विहग भी मूर्तिमान हो जाते हैं।

रंग

उत्तरछायावाद के कवियों के रंगों का मोह छायावादी कवियों से यदि गाढ़ा नहीं तो पतला भी नहीं है। रंगों के अनुकूल चयन से चित्र की कलात्मकता बढ़ाने की ओर इनका सतत झुकाव रहा है।

(१) सोने की मधु-शाला चमकी, माणिक द्युति से मदिरा दमकी।[1]

(२) उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद[2]

(३) रतनारी वारी सारी में, तुम प्राण मिली नत, लाज-भरी।

× × ×

सिंदूर लुटाया था रवि ने, सन्ध्या ने स्वर्ण लुटाया था
थे गाल गगन के लाल हुए धरती का दिल भर आया था।[3]

रेखांकित शब्दों के द्वारा 'बच्चन' ने अपने चित्रों को सँवारा है। मधुशाला और मदिरा वैभव-विलास की वस्तुएं हैं इसीलिए मधुशाला पर सोने का पानी चढ़ाया है और मदिरा में माणिक का रंग घोल कर उनके वैभव में चमक ला दी है। दूसरे उद्धरण में प्राची के भाल से निकलने वाला चाँद सिन्दूरी रंग का ही होता है। इसी प्रकार नत-लाज भरी प्यारी जिसकी आँखें भी सम्भवतः रतनारी हैं रतनारी सारी में अनुपम सौन्दर्यवती दिखायी पड़ती है। प्रेमी प्रेमिका की मिलन-वेला में प्रकृति भी अनुकूल वातावरण उपस्थित कर देती है इसीलिए रवि सिन्दूर लुटाता है, सन्ध्या स्वर्ण लुटाती है और गगन के गाल शरम से लाल हो गये हैं।

सोहनलाल द्विवेदी को चंपा जैसा गुलाब स्वर्णिम, ताम्र नील, उज्ज्वल अरुण, श्याम कापाय भूरा तथा हरित रंग से अधिक प्रेम है अतः अपने चित्रों को रंगने में इन्होंने इन्हीं रंगों का विशेष रूप से प्रयोग किया है।[4]

'अंचल' ने कपूरी संगमरमरी, गोरा सिन्दूरी रश्मि पीला, चंपई आदि रंगों के प्रति विशेष ममता दिखायी है और इनके उपयोग से चित्रों का शृंगार निखर उठा है। *कपूरी गिरि-शिखर तथा गोरी रात कहने से बर्फ से ढके हुए पर्वत शिखर तथा* चाँदनी रात का स्वरूप सामने आ जाता है इसी प्रकार संगमरमरी झरना कहने से धवल

---

१. मधुशाला, सोपान, पृ. ४१
२. मिलनयामिनी
३ मिलनयामिनी, सोपान
४ कुणाल पृ० २ ६१ १११

पानी के झरने का रूपानुभव होता है।[1] सिंदूरी स्नेह लाज-रक्तिम गाल, पीली चाँदनी में कसमसाती चाँदरानी प्यार कहने से क्रमशः प्यार का मादक स्वरूप लाज से झुकी छुई-मुई सी प्रेयसी का रक्तिम मुख और मांसल उरोजों की छवि आँखों में घूम जाती है।[2] इसी प्रकार अंगों की अंगड़ाई रेशमी परदा मुस्कानों की गोरी प्याली गुलाब-सी आँखें तथा कनक-सी देह कहने से चम्पे तथा कनक के सदृश गोरे रंग की युवती अधरों में उज्ज्वल मुस्कान और आँखों में मादकता लिये प्रत्यक्ष हो उठती है।[3]

नरेन्द्र शर्मा ने हरे नीले पिंगल स्वर्णिम गुलाबी माणिक पुखराज बादल फीरोजी इन्द्रधनुषी मरकत आदि रंगों को विशेष रूप से लिया है। हरे-हरे दिन, नीली रातें धुँधलाई सुन्दर प्रातें कहने से धवल दिन काली रात और स्वच्छ प्रातःकाल का चित्र उभर आता है। प्रातःकाल होने पर पल्लव पीले हो जाते हैं और नभ का नीलम थाल स्वर्ण चम्पा से भर उठता है, और सूर्य की स्वर्णिम किरणों की आभा से पीत पुखराज की सृष्टि हो जाती है।[4] इसी प्रकार पावस की सन्ध्या में आकाश में इन्द्रधनुषी चीर लहराने लगता है।[5]

गुरुभक्तसिंह ने अपने चित्रों में ऐसे तो सभी रंगों का उपयोग किया है किन्तु गुलाबी मोतिया मेंहदी स्वर्णिम रजत माणिक आदि रंगों पर उनकी दृष्टि विशेष रूप से जमी है।

---

१ वर्षान्त के बादल पृ० ११
२ वर्षान्त के बादल पृ० ८८
३ लाल चूनर पृ० ७-११ १२
४ मिट्टी और फूल पृ० ९६
५. वही, पृ० ७४
६. वही, पृ० ७३

अध्याय ६

प्रगतिवाद

विषय-प्रवेश और सामान्य प्रवृत्तियाँ

छायावाद की छायादृष्टि अन्ततः जब जन-दृष्टि को अपेक्षित विश्वास दिलाने में असमर्थ सिद्ध हुई और उसकी छाँह तले जन-मानस को सुख शान्ति और आराम का कोई सुदृढ़ आधार नहीं मिल सका तब हिन्दी कविता ने एक नया मोड़ लिया जो कि कुछ दिन बाद चल कर 'प्रगतिवाद' के रूप में अभिहित हुआ। प्रगतिवाद की काव्य चेतना एक नवीन और प्रगतिशील आधार-भूमि पर खड़ी होकर चली। उसके सामने कल्पना इतनी सत्य नहीं थी जितनी सत्य धरती की चीख और पुकार। सच तो यह है कि उसकी उत्पत्ति ही विशुद्ध वास्तविकता के अनिवार्य क्षणों में हुई थी। वास्तविकता का साथ छोड़कर चलना उसके लिए सर्वथा असम्भव था।[1] छायावाद की असफलता के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी था कि वह स्वयं स्थूल इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में प्रकट हुआ था। यह प्रतिक्रिया यहाँ तक बढ़ी कि उसने सूक्ष्मतम समष्टिगत चेतना और सौन्दर्य सत्ता के पीछे चलकर सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम हो जाने ही में अपनी परिणति मानी। फलतः वह हमारे लिए ग्राह्य नहीं हो सका।[2]

युग की करवट पर खड़ी होती हुई नई माँगों और नयी अनिवार्यताओं के साथ चलने में बहुत कुछ अपनी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण छायावाद असमर्थ रहा। जन-हित पर प्रतिकूल परिस्थितियों के निरन्तर हो रहे आघात जन-मानस को आन्दोलित करने के साथ ही जन-शक्ति के सम्मुख चुनौती के रूप में भी खड़े हो रहे थे। एक ओर पराधीनता शोषण उत्पीड़न और दमन की विकरालता राष्ट्र के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न प्रस्तुत कर चुकी थी और दूसरी ओर विश्व में उत्तरोत्तर बढ़ रहे संघर्ष और तनाव की प्रतिक्रियाएँ उसके अस्तित्व की जड़ें हिला रही थीं। यह नहीं था कि छायावाद का ही इसमें कोई हाथ रहा। छायावाद के माथे दोष केवल यही मढ़ा जा सकता है कि अपने संरक्षण और विकास की सम्भावनाओं को मूर्त करने के निमित्त संघर्षरत जन शक्ति की उभरती हुई भावनाओं का वह साथ नहीं दे सका। यही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी।[3]

---

१ मिलाइये वंग बयान की भूमिका

२ मिलाइये आधुनिक कवि महादेवी वर्मा भूमिका

३ मिलाइये, पन्त आधुनिक कवि की भूमिका

कविता को जीवित रहने के लिए जन-भावना के साथ खड़ा होना पड़ा। कल्पना उसे सँवार सकती थी जीवन नहीं दे सकती थी, जीवन का मन तो उसे वास्तविकता की भूमि से मिलने वाला था।[1]

द्विवेदीयुगीन कविता की स्थूल इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया में छायावाद का आविर्भाव हुआ और फिर छायावाद की सूक्ष्मातिसूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना और अपार्थिव ऐन्द्रीयता की प्रतिक्रिया में प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ। प्रगतिवाद का आविर्भाव, प्रसार और प्रतिष्ठापना एक प्रकार से सूक्ष्म पर स्थूल की अपार्थिव पर पार्थिव की कल्पना पर यथार्थ की और पलायन पर प्रत्यावर्तन की विजय के रूप में लिया जा सकता है।

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद को प्रमुखतः दो अर्थों में लिया गया। एक शाश्वत प्रगतिशील-चेतना के उन्नायक के रूप में और दूसरे एक विशेष राजनीतिक मतवाद के आग्रह के रूप में। जहाँ तक वह शाश्वत प्रगतिशील चेतना के उन्नयन को अपना लक्ष्य बनाकर चला है उसका सभी वर्गों ने स्वागत किया। पर जहाँ वह एक विशेष राजनीतिक और आर्थिक घेरे में अपने को सीमित कर चला है वहाँ साहित्य में उससे भिन्न मत और आदर्श लेकर चलने वालों द्वारा उसका उग्र विरोध हुआ। प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिवाद में अन्तर की स्पष्ट रेखाएँ खींची गयीं। काव्य में प्रगतिशील चेतना को मान्यता प्रदान करने वालों ने भी प्रगतिवाद की असमर्यादित भावनाओं और आग्रहों तथा सीमाओं का विरोध किया।

राजनीतिक और आर्थिक मतवादों के आग्रह के कारण ही हिन्दी काव्य की स्वस्थ और ऐतिहासिक चेतना, प्रगतिवाद के ऊपर भ्रम का एक बड़ा जाल फैल गया। सामान्य पाठकों और आलोचकों के अन्दर यह धारणा दृढ़ होती दिखायी पड़ने लगी कि राजनीति ने साहित्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। प्रगतिवाद पर यह खुले आम आरोप लगाया जाने लगा कि वह और कुछ न होकर हिन्दी कविता में मार्क्सवाद का ही भारतीय संस्करण है। हालांकि सत्य यह नहीं था। फिर भी ऐसे भ्रम के खड़े होने के लिए कतिपय ठोस आधार दिखायी पड़ते हैं। काव्य के शाश्वत उपादान कुछ समय के लिए चटाई में पड़ गये। राजनीति और उसकी मान्यताएं उसकी छाती पर जमकर खड़ी हो गयी। काव्य के वस्तु प्रतिपादन और उद्देश्य सिद्धि के बदले राजनीतिक सङ्घर्षों की हार-जीत अधिक महत्त्वपूर्ण साबित हुई। किसान-मजदूर एवं शोषितों को मनुष्य के रूप में प्रस्तुत न कर विभिन्न वर्गों के संघर्षशील पर उत्पीड़ित और पददलित प्राणी के रूप में सामने लाया गया। मनुष्य के अन्दर छिपी हुई महानता का न उभार कर उसे चारों ओर से घेर रही वर्गगत विषमताओं और तज्जन्य आक्रोश और हिंसा-प्रतिहिंसा आदि की भावनाओं को उभारा गया। तब देश के भाग्य और भविष्य का निर्माण करने में सक्षम सत्य-अहिंसा की दुहाई पर उतना ध्यान नहीं गया जितना मार्क्सवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को तत्कालीन समस्याओं की पृष्ठभूमि में अत्यधिक उपयोगी साबित करने, और स्टालिनवाद के घेरे, पर। इसीलिए प्रगतिवाद हमारी

---

१ रूपाभ सन् १९३९ अंक १

२. द्रष्टव्य : प्रगतिवादी समीक्षा इति। कुछ मान्यताएँ। आधुनिक समीक्षा डा० देवराज। प्रगतिवाद जीवन में गति देने का नाम है—हंस प्रगति अंक जयशंकर भट्ट

वास्तविक परिस्थितियों से उत्पन्न होकर भी 'मास्को छाप' के रूप में ही रूढ़ हो गया।

ऐसे साहित्य के साथ राजनीति के चलने के लिए एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। हमारे अन्दर की मिटी हुई प्रेम और सद्भावना की रेखाएँ फिर से उग आयें, हमारा सांस्कृतिक मोर्चा फिर से दृढ़ हो जाय—इसके लिए हम तत्कालीन राजनीतिक हलचलों से अपने को अलग नहीं रख सकते।[1]

राष्ट्र की जर्जर काया पर पड़ी दीर्घकालीन परतन्त्रता की छाया में सामाजिक सम्पन्नता एकता और शांति तो पीली पड़ कर मुर्झा ही गयी थी व्यक्ति के विकास के पत्र भी लहलहाते नहीं रह सके। विकास के सभी मार्ग चारों ओर से अवरुद्ध हो चुके थे। समाज निराशा के घने अन्धकार में डूब रहा था। उसके पास न तो बाह्य परिस्थितियों की भाषा को समझने के लिए बुद्धि ही रह गयी थी न आन्तरिक कमजोरियों के कारण हो रही दुर्गति को देखने की आँख और न ही अपने मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली शक्तियों का सामना करने का चारित्रिक साहस। जनता सभी प्रकार से निरुपाय होकर भगवान भरोसे बैठी हुई थी उसको अपने बाहुबल का भरोसा नहीं रह गया था। और किसी बात का पता उसे भले ही न हो इतना पता तो अवश्य था कि उस वातावरण में उसका दम घुटा जा रहा है। इसलिए बाहर से, अपने सामाजिक परिवेष्टन को बदल डालने के लिए, असमर्थ होने के कारण उसने भले ही कुछ नहीं किया पर उसके भीतर एक गहरा असंतोष पल रहा था। वह मुक्ति चाहती थी अपने विकास के लिए एक प्रशस्त और निष्कंटक मार्ग चाहती थी। बस वह चाहती भर थी। उसकी चाहत बाहर नहीं आ पाती थी उसकी जबान में हिलने की शक्ति नहीं थी अन्दर के असंतोष के ज्वालामुखी को आग-पानी का इतना बल नहीं मिला था कि उसमें कोई विस्फोट होता जबकि सामाजिक परिवेष्टन में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए एक भीषण विस्फोट आवश्यक था।

प्रगतिवाद हमारे सामने इस अपेक्षित विस्फोट की अनिवार्यता के रूप में प्रस्तुत हुआ।[2] प्रारम्भ में उसने दो महत्त्वपूर्ण कार्य किये (१) साहित्य को जो जन-जीवन की आशा आकांक्षा से विमुख होकर एक प्रकार से गगनारोही हो गया था फिर से चीख, पुकार, शोषण उत्पीड़न और संघर्ष के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। जिससे उसके कानों तक जन-कोलाहल का पहुँचना संभव हो सका उसकी आँखों के सामने देश की दयनीय और आर्त स्थिति आ सकी उसकी नाक में रक्त-रंजित धरती की गंध पहुँच सकी। (२) सोयी जन शक्ति को जगा कर उसे अपनी विरोधी शक्तियों से संग्राम करने के लिए खड़ा किया अनाचार और अपमान की जिन्दगी के प्रति उसके अन्दर घृणा और प्रतिकार की भावना को उत्पन्न किया। साथ ही जन-शक्ति की विजय के गान गा और सपने दिखा कर संघर्ष में

---

१ मिन्नाक्षे —मिट्टी की ओर
प्रगतिवाद समकालीनता की व्याख्या
—दिनकर

२. प्रगतिवाद जीवन और साहित्य का नया दृष्टिकोण है
—शिवमंगल सिंह सुमन 'जीवन के गान' भूमिका पृ० ६

उसकी अटूट आस्था और अपराजित विश्वास के बीज बोये।

इस प्रकार प्रगतिवाद ने अपनी मौलिक अनिवार्यता में भारतीय जीवन और साहित्य को आगे बढ़ाने के लिए एक नया रास्ता और दृष्टिकोण प्रदान किया। खासकर इसलिए कि इसकी उत्पत्ति समाज की कुण्ठा, प्रताड़ना पतनशीलता तथा अन्यान्य विकृतियों की भूमि से हुई थी इन सबका परिवर्तन उसका उद्देश्य रहा। वह शुरू से ही एक स्वस्थ और सबल सृष्टि का हिमायती रहा। उसने समाज की सुप्त चेतनाओं को झकझोर कर जगाने के लिए यथार्थ चित्रण का सहारा तो लिया पर वह उसके लिए साधन ही रहा साध्य नहीं। जिन साहित्यकारों और कवियों ने यथार्थवाद के नाम पर जीवन की भ्रष्टताओं को भ्रष्टताओं के लिए, कुत्सित गन्दगियों को केवल गंदगियों के लिए अपनाया उन्हें या तो अपनी दिशा बदलनी पड़ी या वे साहित्य के नाम पर केवल कूड़ा-करकट बटोरते रहे।

प्रगतिवाद निश्चित रूप से समाज के सामने कूड़ा-करकट प्रस्तुत करने के लिए नहीं आया था। एक परतंत्र समाज कालक्रम से अपना अतीत भूल जाने के लिए विवश हो जाता है और तब कुछ समय के लिए सारी मरणशील शक्तियाँ उसकी चेतना को मुमूर्ष करने के लिए उस पर आक्रमण करती हैं। उसकी भौतिक उपलब्धियों की तमाम संभावनाएँ मिट जाती हैं *आध्यात्मिक चिन्तन-मनन के लिए उसके पास मन या अवकाश नहीं रह जाता।* उसकी सामाजिक मान्यताएँ निरन्तर चोट खाते-खाते मर जाती हैं। सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ अपने विकास के अनुकूल भूमि या आकार नहीं पाने के कारण एक प्रकार से जाने के लिए मजबूर हो जाती हैं। एक प्रबुद्ध साहित्य का अवतरण समाज को इस अनपेक्षित मूर्च्छा की स्थिति से नजात दिलाने के लिए होता है। उस नजात की अनिवार्यता पर परिस्थितियां से समझौता नहीं संघर्ष होता है। प्रगतिवाद ऐसी ही अनिवार्यता की भूमि पर पनपा था।[1] उसके लिए वास्तविकता ही सबसे महान सत्य रही। इसीलिए जो प्रगतिशील चेतना वाले कवि थे, उनका अभीष्ट कभी भी असत्य को कलात्मक रूप देना नहीं रहा। उन्होंने सत्य को अधिक से अधिक व्यापक और मूर्त करने पर बल दिया, क्योंकि उनके सामने यह बात साफ थी कि बिना ऐसा किये उनकी रचना कभी कलात्मक और शाश्वतीन नहीं हो सकती।

प्रगतिवाद के लिए हमारे यहाँ भूमि पहले ही से तैयार हो गयी थी। जनता अपने आध्यात्मिक और भौतिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध पाकर मुक्ति के लिए छटपटा रही थी। उसके अन्दर असंतोष और विद्रोह का ज्वालामुखी विस्फोट के बिन्दु पर पहुँच गया था उसे एक धमाके की आवश्यकता थी। ऐसी परिस्थिति में प्रगतिवाद एक आँधी की तरह आया और जनता में चेतना की जबर्दस्त लहर दौड़ाने में समर्थ हुआ। उसमें जन मानस के सामूहिक विद्रोह की सक्रिय उद्घोषणा हुई। तत्कालीन संकट सबके लिए एक सामान्य संकट के रूप में महसूस किया गया। सामान्य संकट के नीचे आने पर सभी अपना अपना भेद भाव भूल कर एक हो जाने को विवश हो जाते हैं और यह विवशता सबको मान्य होती है क्योंकि एक हो जाने की विवशता ही उनके अन्दर शक्ति के महान स्रोत के फूटने

---

१. शिवदान—रामसहाय शुक्ल 'अंचल' साहित्य में प्रगतिवाद
आधुनिक हिन्दी साहित्य सम्पादक डा० नगेन्द्र

का कारण होती है।

प्रगतिवाद ने जहाँ जन-चेतना को उभारने की कोशिश की वहाँ जनता में परस्पर एकता प्रेम और सहयोग के बीज भी बोये। सबसे बड़ी बात तो यह लगती है कि इसने जनसाधारण को एक स्थिति एक संकट और एक जुल्म का शिकार होने की प्रतीति कराई। सबको समृद्धि चाहिए थी शांति चाहिए थी समता चाहिए थी सबसे पहले मुक्ति चाहिए थी। इसीलिए यह आवश्यक था कि जहाँ हम अपने मुक्ति-संग्राम की घोषणा करते वहाँ अपनी ही जैसी परिस्थिति के शिकार और दूसरों को भी वैसा करने के लिए उभारते उन्हें अपना सहयोग और समर्थन देते उनसे उनका सहयोग और समर्थन प्राप्त करते। प्रगतिवाद ने इस काम को पूर्ण सफलता के साथ किया। इसने किसी एक वर्ग समाज या देश का पक्ष न लेकर एक साथ ही विश्व की तमाम पददलित और शोषित जातियों का पक्ष लिया उनकी पुकार और उनके स्वप्नों को अपनाया।

आर्थिक मुक्ति के साथ-साथ बौद्धिक उन्नति के लिए संघर्ष करने को प्रस्तुत समाज की सामूहिक चेतना के प्रतीक रूप में प्रगतिवाद की प्रतिष्ठा हुई। किन्तु इसलिए कि तत्कालीन समाज में जहाँ एक ओर एकता प्रेम सहयोग विजय और उल्लास की भावना थी दूसरी ओर फूट के भयंकर परिणाम निराशा पराजय और विरोधी पक्षों के प्रति असंतोष नफरत और हिंसा प्रतिहिंसा की भावना भी जी रही थी—प्रगतिवाद में इन ग्राह्य और गर्हित दोनों कोटि की भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। कहीं-कहीं उसकी चेतना के महासागर में गंदा जल भी मिलता है लेकिन उसके प्रमुख ज्वार स्वस्थ और प्रगतिशील चेतना के ही प्रतीक हैं।[1] यही कारण है कि युग को नया मोड़ देने में प्रगतिवाद इतना समर्थ हो सका। बेलिन्स्की ने एक स्थल पर विश्व के महान् कलाकारों की सामर्थ्य के कारणों पर प्रकाश डालते हुए यह कहा है कि वे जीवन की भाषा वस्तुओं की भाषा इतिहास की भाषा बोलते हैं। प्रगतिवाद ने भी मानव पर मानव के शोषण और अत्याचार की समाप्ति और फिर, न्याय समता प्रेम सहयोग पर आधारित एक सच्चे वर्गमुक्त और शोषणमुक्त समाज की प्रतिष्ठा पर जोर दिया अपने युग-काल के वस्तु सत्य के यथातथ्य चित्र प्रस्तुत किये और इतिहास को वाणी दी। कतिपय त्रुटियों के बावजूद यह जाग्रत जन चेतना और युग-धर्म का प्रखर उद्‌घोष कर रहा है।[2] आवश्यकतानुरूप विध्वंस की भूमिका रचना उसका साधन भले ही रहा हो साध्य विश्व मंगल की प्रतिष्ठा ही था। जन-शक्ति में एक असीम आस्था लेकर यह खड़ा हुआ था और उसकी अंतिम सभी विरोधी शक्तियों पर सर्वांगीण विजय का सपना उसकी आँखों में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

साहित्य में आते पथ अन्य अनेक वादों की तरह प्रगतिवाद को भी किसी दर्शन का स्पष्ट आधार लेकर चलना पड़ा। दर्शन साहित्य का अभीष्ट नहीं होता यह कभी-कभी या तो उसमें निःसृत सत्य होता है या बाह्य वस्तु होकर भी उसकी अन्तर्वर्ती धाराओं की प्रमुख वृत्तियों से मेल खाने के कारण उसका सैद्धान्तिक आधार होता है। प्रगतिवाद जिस उद्देश्य

---

१ देखिये अचल साहित्य में प्रगतिवाद

२ देखिये, नयी चेतना १९५१ अंक ५, प्रगतिवादी कला—चन्द्रबली सिंह

सिद्धि के निमित्त खड़ा हुआ था उसके अनुरूप मार्क्सवाद पड़ा।[1] उसके कतिपय कारण ये

(१) मार्क्सवाद एक गतिशील जीवन-दर्शन है, साहित्य के मूल्यांकन के लिए उसके पास एक ही कसौटी है—जीवन जीवन की कसौटी पर जो साहित्य खरा उतरे वह खरा है और जो खोटा उतरे वह खोटा।

(२) मार्क्सवाद विचारों और उनमें होने वाले परिवर्तनों के मूल में अर्थ को ही कारण मानता है। उसकी यह स्पष्ट मान्यता है कि विचारों का निर्माण आर्थिक आधार पर होता है और अन्त में आर्थिक आधार ही उन्हें निर्धारित करता है। पर एक बार विचारों की उत्पत्ति हो जाने पर उन्हें अपने विकास के निमित्त में एक प्रकार की आपेक्षिक स्वतंत्रता (पूर्ण निरपेक्ष स्वतंत्रता नहीं) प्राप्त हो जाती है वे अपने विकास के नियमों से परिचालित होने लगते हैं।

आज जीवन का अर्थ जीवन के अन्यानेक साधनों के असमान वितरण के कारण अस्तव्यस्त हो गया है। उसे अपेक्षित स्थिति में लाकर उन्नति-पथ पर अग्रसर करने के लिए कोई सुनिश्चित आर्थिक हल खोज निकालना आवश्यक है। मार्क्सवाद साहित्य की दृष्टि को इस सत्य की ओर फेरने में समर्थ हुआ।

(३) मार्क्सवाद कला को जनता की थाती मानता है। उसकी दृष्टि में उसकी जड़ें का जन जीवन की विशेषतः श्रमिकों के जीवन की गहराइयों में जाना चाहिए। उसे उसके भावों विचारों आशा और आकांक्षाओं को अपने पोषण तत्त्व के रूप में ग्रहण करना चाहिए।[2]

(४) मार्क्सवादी आलोचकों की यह निश्चित मान्यता है कि किसी कलाकृति के महान् और सक्षम होने के लिए उसका सजीव और मर्मस्पर्शी होना आवश्यक है। बुद्धितत्त्व को उतना महत्व नहीं।[3] कोई कलाकृति किसी दूसरी कलाकृति की अपेक्षा कम व्यापक कम गंभीर और उथला हुआ बुद्धितत्त्व लेकर भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती है बशर्ते कि उसकी प्रेषणीयता सजीव और मर्मस्पर्शी हो। श्रेष्ठ कलाकृति निश्चित रूप से अफीम की गोली नहीं है जो मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों को थपकियाँ देकर सुला दे उसे जीवन-संघर्ष से निवृत्त कर दे। वह उद्दाम कर्म की प्रेरणा का शाश्वत स्रोत है।

(५) मार्क्स मनुष्य को मात्र यंत्र ही नहीं मानता। वह मनुष्य में चेतना की अव स्थिति भी मानता है। उसके अन्तस में स्थित इस चेतना का निरूपण ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में किया जा सकता है। मार्क्स की दृष्टि में मनुष्य केवल वातावरण का परिणाम नहीं है वातावरण को अपने अनुरूप बदलने की भी वह क्षमता रखता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य की इस क्षमता का उद्घाटन कर मार्क्स ने

१ अनुवाद : आलोचना का मार्क्सवादी आधार से उद्धृत
Lunacharsky : Lenin on Art and Literature

२ Literature and Marxism Editor Angil Flowerence P 10

३ Marxism and Modern Art F D Klingender P 45

४ Ibid, P 41

मनुष्य को अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से संघर्ष कर अपने अभिलषित भविष्य के निर्माण के लिए अपेक्षित प्रेरणा दी।

(६) मार्क्सवाद किसी भी अन्तिम सत्य (Final and revealed truth or wisdom) में विश्वास नहीं करता। लेनिन के शब्दों में मानव की विचार-शक्ति प्रकृत्या पूर्ण सत्य की उद्भावना करने की क्षमता रखती है और करती है। यह पूर्ण सत्य सभी सापेक्ष सत्यों से मिलकर बनता है। विज्ञान के विकास में प्रत्येक चरम पूर्ण सत्य की ओर बढ़ने वाला एक चरण होता है। किन्तु, प्रत्येक वैज्ञानिक सिद्धान्त में निहित सत्य-ज्ञान की सीमाएँ सापेक्ष होती हैं और ये सीमाएँ ज्ञान के विकास के अनुसार फैलती और सिकुड़ती रहती हैं।[1] इस प्रकार मार्क्सवाद और लेनिनवाद युग और समाज से ऊपर किसी शाश्वत मानदण्ड की स्थिति की कल्पना या धारणा को पूर्णतः भ्रामक मानता है।

(७) मार्क्सवाद ने ईश्वर की निस्सारता में लोगों का विश्वास उत्पन्न किया और प्रचलित धर्म के खोखलेपन का पर्दाफाश कर उनके दृष्टिकोण में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया आदमी आदमी के बीच जाति धर्म सम्प्रदाय और ऊँची-नीची श्रेणियों की जो अन्य अनेक खाइयाँ पड़ गयी हैं, उन्हें पाट कर मनुष्य को खड़ा होने के लिए एकता समानता और भाईचारे का एक सुदृढ़ आधार दिया। विश्व के अन्य अनेक वर्गों को मिटाकर उसने सिर्फ दो ही वर्गों की प्रतिष्ठा की (क) शोषक और (ख) शोषित [सर्वहारा] और फिर सर्वहारा वर्ग का एक होकर, शोषक वर्ग के विरुद्ध क्रांति करने के लिए आह्वान किया। मौत कठिनाइयाँ दमन प्रताड़न आदि की संभाव्य आशंकाएँ जो उनके पैरों में बेड़ियाँ डालती थीं उन्हें यह नारा लगाकर बेकाम कर दिया कि सर्वहारा वर्ग को शोषकों के विरुद्ध संघर्ष करने में अपनी बेड़ियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं खोना है। साथ ही उसने सर्वहारा वर्ग को दमन शोषण अन्याय और उत्पीड़न से मुक्ति और तत्पश्चात् समता की प्रतिष्ठा पर जोर देकर जन-समूह के सामने अपने को एक व्यावहारिक जीवन-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया।

(८) सबसे बड़ी बात तो उसने यह की कि मनुष्य को सबसे ऊपर स्थान दिया और कवि एवं कलाकारों के सामने अपनी युग-सापेक्षता प्रमाणित करने के साथ ही उनमें जन-हित के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न किया। कवि भी मानव का गुण-गान करने लगा। उसके मूल्यांकन की कसौटी जन-हित हुआ। मार्क्सवाद उसके सामने नये युग के नव-निर्माण का ठोस आधार लेकर प्रस्तुत हुआ।[2]

(९) चूँकि मार्क्सवाद का परीक्षण विश्व के बड़े-बड़े मुल्कों—रूस और चीन पर अप्रतिम सफलता के साथ हो रहा था विश्व की तमाम मुल्क शोषित और पददलित जातियों का ध्यान उसकी ओर गया। भारत ने भी अपनी मुक्ति खोजते हुए उसका सहारा लिया और विश्व के शोषितों और पददलितों के मुक्ति-संघर्ष में अपना अपेक्षित योग-दान किया।

---

१ Materialism and Empirio-criticism. P 135

—Lenin

२. वही, युगवाणी पृ० १२ भार ११

फलतः मास्को-पीकिंग शोषितों और पद-दलितों के मुक्ति-महल के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। हमारे कवियों के लिए मास्को और चीन की हार-जीत अपनी ही हार-जीत हो गयी।[1]

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। हमारे कवियों ने मार्क्स के द्वन्द्ववादी दर्शन के अतिशय विस्तार और उसकी सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक मान्यताओं की चमत्कारी सफलता के कारण उसको विशाल पैमाने पर ग्रहण तो किया मास्को-पीकिंग उन्हें मुक्ति-महल भी लगा फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि हिन्दी कविता में प्रगतिवाद का आविर्भाव महज इसलिए हुआ कि उसने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद[2] को अपने सामाजिक आधार के रूप में ग्रहण किया जो किन्हीं बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से हुआ। क्योंकि किसी वस्तु को अपने अनुकूल पाकर ग्रहण करना एक बात है, और उससे प्रभावित होकर कोई चीज ग्रहण करना बिल्कुल दूसरी बात। हमारी आन्तरिक परिस्थितियों ने बाह्य प्रतिक्रियाओं को लेकर हमारे अन्दर मुक्ति की प्रेरणा भर दी थी। उस प्रेरणा को जो वाणी मिली वह हमारी अपनी ही धरती की आकुल पुकार और क्षुब्ध जन मानस की उग्र उद्घोषणा थी।

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने एक जगह प्रगतिवाद के प्रेरणास्रोत की ओर संकेत करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि पराजयवाद और निराशावाद के इस रुद्ध स्वर को बदलने के लिए भारतीय साहित्य में प्रगतिवाद का आन्दोलन उठा। इस आन्दोलन की जड़ें हमारे साहित्य की धरती में हैं। कहीं बाहर की दुनिया से यह अचानक संघात नहीं आया। हमारे जीवन के अन्दर परस्पर संघर्ष करती प्रवृत्तियों के बीच से ही प्रगति और परिवर्तन की यह माँग उठी।[3]

इसके अतिरिक्त एक बात और है। प्राचीन भारत में ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध कोई आह्वान नहीं हुआ हो कोई आवाज न उठाई गयी हो भौतिकवाद का सर्वथा अभाव रहा हो ऐसी भी तो बात नहीं। लोकायत दर्शन चार्वाक-दर्शन और बार्हस्पत्य दर्शन आदि भौतिकवादी दर्शन ऐसे ही थे।

जैन-सन्त हरिभद्रसूरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'षड्दर्शन-समुच्चय' में भौतिकवाद के प्रधान सिद्धान्तों का इस प्रकार परिचय दिया है—लोकायतों के मत में न ईश्वर है न मोक्ष। न धर्म अधर्म कोई वस्तु है और न पुण्य-पाप का फल। यह संसार केवल उतना ही है जितना इन्द्रियों को प्रतीत होता है। पृथ्वी जल अग्नि और वायु इन तत्वों के सिवा संसार में और कुछ नहीं है। इन्हीं से चेतना उत्पन्न हो जाती है। इनके अस्तित्व में प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। जब पृथ्वी आदि भूतों के समुदाय से शरीर बन जाता है तो उसमें चेतना ऐसे उत्पन्न हो जाती है जैसे कि मगार के रसों में नशा उत्पन्न करने की शक्ति।

---

१ चंचल आज चीन

२ द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेष जानकारी के लिए देखिये Dialectical Materialism by Carl Marx

३ प्रकाशचन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा पृ० १४१

अतएव दृष्ट पदार्थों और सुखों की अवहेलना करके अदृष्ट पदार्थों और सुखों की ओर प्रवृत्ति रखना चार्वाकों के मत में लोगों की मूर्खता है।[1] इस दृष्टि से जो हिन्दी में प्रगतिवाद के आविर्भाव का कारण बाह्य परिस्थितियों को ठहराते हैं, इसे मार्क्सवाद का भारतीय संस्करण मानते हैं, उनकी धारणा को प्रस्तुत पृष्ठभूमि में रख कर विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उनका एक विशेष आग्रह है वस्तु-सत्य नहीं। प्रगतिवाद हमारी अपनी ही संघर्षशील परिस्थितियों का सहज प्रतिफलन है। मार्क्सवाद या बाहर की अन्य प्रतिक्रियाएँ उस विशेष मुखर और सबल करने में सहायक रही हैं यह दूसरी बात है।

जहाँ मार्क्सवाद ने प्रगतिवाद को खड़ा होने के लिए एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार दिया वहाँ फ्रायड ने समीक्षा के नये मनोविश्लेषणवादी आधार प्रस्तुत कर कविता को कल्पना रूप और रंग के नए लोक की ओर उन्मुख किया। विज्ञान के नित नये आविष्कारों और मार्क्स के द्वन्द्ववादी मूल्यांकन के प्रकाश में व्यक्ति के बाहर का विश्लेषण तो पर्याप्त रूप से हो चुका था किन्तु उसके अन्तर्मन और वहाँ तह पर तह बैठी हुई अन्यान्य मन भावों और कुण्ठाओं का विश्लेषण होना अभी बाकी था। फ्रायड ने अन्तर्मन और बाह्य परिवेश से उसके विभिन्न सम्बन्धों का क्रांतिकारी उद्घाटन एवं विश्लेषण कर काम्य-वस्तु और उसकी अभिव्यक्ति में नये मोड़ उपस्थित किए। उसने कला और कविता के साथ समस्त के शाश्वत सम्बन्ध की घोषणा की और लोगों के अन्दर यह प्रतीति उत्पन्न की कि कला की भूख की तृप्ति बाहर के साथ-साथ अन्तर के विश्लेषण और अभिव्यंजना पर आधारित है।

व्यक्ति के अन्तर में मूल रूप से काम-वृत्ति की उपस्थिति रहती है। यह काम-वृत्ति बाहरी अड़चनों और अवरोधों से कभी लुप्त नहीं होती; अतृप्ति की अवस्था में वहाँ अर्ध जाए तह-पर-तह बैठती जाती है जिसके फलस्वरूप अन्तर में एक उद्वेलन उत्पन्न होता है। उस आन्तरिक उद्वेलन और बेचैनी को नए प्रतीकों और माध्यमों के सहारे अभिव्यक्त कर कवि और कलाकार कुछ सन्तोष प्राप्त करता है।

फ्रायड के अनुसार मन के तीन स्तर हैं (१) चेतन (२) अर्धचेतन और (३) अचेतन। चेतन मन का कार्यक्षेत्र हमारा सामाजिक जीवन है। उसे सामाजिक मान्यताओं का ज्ञान होता है। वहाँ वे ही इच्छाएँ प्रश्रय पा सकती हैं जो सामाजिक मान्यताओं के प्रतिकूल न पड़ें। किन्तु, अवचेतन मन में अनजान ही वे हमारी सभी इच्छाएँ भावनाएँ अपनी जगह बनाती जाती हैं जिन्हें समाज में मान्यता प्राप्त नहीं होती जो दमित हैं। चेतन और अवचेतन मन एक दूसरे से पृथक् हैं एक दूसरे के विरोधी हैं। फिर भी चेतन मन से अवचेतन मन की शक्ति अधिक है अत्र व्यापक है। इनमें निरन्तर संघर्ष चला करता है। चेतन मन अवचेतन मन के विस्फोट पर हमेशा अंकुश देने का प्रयत्न करता है। किन्तु अधिक समर्थ और वैभव होने के कारण अवचेतन मन चेतन मन के ऊपर हावी हो जाया करता है। फ्रायड के मतानुसार मनुष्य का चेतन मन उसके अचेतन और अवचेतन मन से बहुत कमजोर

---

१. विशेष जानकारी के लिए देखिये
श्री कन्हैयालाल सहल : द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और प्रगतिवाद
सार प्रमीता सम्पादक डा० नगेन्द्र

है। और काव्य-सृजन एक ऐसी क्रिया-प्रणाली है जिसमें व्यक्ति का अवचेतन मन प्रस्फु
होता है उसकी आकांक्षाओं के जो स्वप्न हैं उन्हीं को कवि कविता का रूप देता है।
मनस्तुष्टि (जिसे मनोविज्ञान की शब्दावली में (Wish fulfilment) कहते हैं) का परिया
यथार्थ की अतृप्त वासनाओं विफलताओं पर एक स्वप्निल आवरण डाल कर उन्हें देखने
प्रयास है।[1]

प्रगतिवाद में सेक्स की अभिव्यक्ति कवि के अन्तर्मन की अतृप्त वासनाओं का प्रत
है। कवि अपनी इस अतृप्ति की अभिव्यक्ति अपनी कविता के माध्यम से बहुत पहले
करता आ रहा है। प्रगतिवादी युग तक आते-आते उसके लिए और स्पष्ट होकर आने
भूमिकाएँ बन गयी थीं। फलतः वह अपने अन्तर की अकुलाहट की अभिव्यक्ति में कहीं-
ही संयत रह सका है नहीं तो प्रायः बहक गया है या अनपेक्षित रूप से उभर गया है।
लिए उसने एक ओर कुछ अच्छे-अच्छे चित्र तो प्रस्तुत किये हैं पर दूसरी ओर उसमें नग्न
और अश्लीलता को आने से भी नहीं रोक सका है। छायावाद की अतृप्त और अधूरी का
कुण्ठित काम्य-वृत्तियों को पहली बार प्रगतिवाद के उन्मुक्त वातायन में खुल कर सांस लेने
मौका मिला। मांसल रोमांस उभरा और कहीं-कहीं दबी कामातुरता स्पष्ट और क
अस्पष्ट रूप लिप्सा आदि ऐसे अनेक उपादान सेक्स की अभिव्यक्ति के मूल आधार रहे।
अभिव्यक्ति में कवि का कामातुर अन्तर्मन तो सहायक रहा ही बाह्य प्रभावों का भी बहु
बड़ा हाथ रहा।

निम्नांकित उद्धरण कुछ बातों को स्पष्ट कर देते हैं

(१) तरुणी रूप-लिप्सा, स्पष्ट रूप

अरुणाली भव
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग-घट।

(२) यहाँ रूप-चित्र स्पष्ट है, पर मन की बात खुली नहीं

है मांसपेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,
संयोग अवयवों में अशक्य उसके उरोज
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे मान-कल्पित मनोज।

(३) कामातुरता :

आज दिवस से छीन तुम्हें प्रिय निज वक्षस्थल में भर लूँ री
मृदुल गोल गोरी बाहों में कंपित अंगों से कस लूँ री
फूलों के तन में भर लूँ री अलि से रैन निवारे बालक।

(४) संयत और कोमल चित्र असंयत प्रभाव :

सेज सुगन्धी
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का भर आना

१ अमृतराय : नयी समीक्षा, पृ ८१

निकल गई सपने जैसी वे रातें
याद दिलाने रहा सुहाग भरा यह टुकड़ा।
भावहीन चित्र, असफल काम्य चेष्टा
हाय
नजर के तारों पर जा,
जमा देते हैं एक झनझनी,
बिजली दौड़ जाती है,
एक सनसनी।
शरीर में
शरीर के रोम-रोम में
एक झनझनी।

प्रगतिवाद ने अपने स्वस्थ-ग्रहण के निमित्त जीवन में स्पष्ट नजर आने वाले उपादानों का चयन किया। पर्याप्तता समय व्यवस्था, ह्रास और निराशा के युग की आशा-आकांक्षा संघर्ष हिम्मत-परस्ती, जीवन उत्साह जोश और अन्यान्य भावनाओं की सामूहिक अभिव्यक्ति होने के नाते उसे अपने भावनानुकूल विविध प्रकारों के वर्णों की योजना करनी पड़ी। इन विविध वर्णों की योजना के लिए उसे विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न रंग और रेखाएँ लानी पड़ीं। उसकी दृष्टि मशीन से लेकर खेतों और गाँवों में काम आने वाले हल, बैल हँसिया हथौड़े तक दौड़ी उसकी भावना जोश में आकर अपने सिर के बाल नोचने के साथ विश्व का संहार करने तक गयी उसकी कल्पना अपने गाँव की रमिया महतू और झोकर की नारी की पीर से लेकर मास्को की सड़कों पर चलती हुई छाया-कवियों तक गयी। इस दृष्टि से उसकी आधार भूमि के पूर्णतः बदल जाने के कारण उसमें निम्नांकित परिवर्तन स्पष्ट नजर आते हैं—

(१) काव्य-वस्तु में परिवर्तन आने से उसके मूल्यांकन की दृष्टि को भी बदल जाना पड़ा।

(२) विभिन्न-वस्तुओं की भावुक अभिव्यक्ति के लिए भाषा को सर्व-तम पीछे विभिन्न उपकरणों का संग्रह करना पड़ा जिससे उसमें परम्परागत अपेक्षित परिमार्जन कम हुआ या कहा जाय तो एक तरह से खत्म हो गया और उसकी जगह खुरदरापन अधिक आ गया। इसका कारण कविता की एक विशिष्ट-वर्ग की सीमा से बाहर आकर जन-जन के पास पहुँचने की स्वाभाविक छटपटाहट थी।

(३) कहीं-कहीं जन-बोलियों का कुछ-कुछ समवाय, जन-संस्कृति की छाप और आंचलिक रंग-रूपों की रेखाएँ स्पष्ट उभर आयी हैं।

(४) जीवन का एक तरह से एक उपेक्षित पहलू (सामान्य जन-जीवन) अपनी विविधता में काव्य में रूप पा गया।

(५) परिणामतः सरल शैली खुरदरी भाषा और विविध भावों और रूपों की योजना ने अनेकविध अभिव्यक्ति का अत्यधिक विस्तार किया। यह दूसरी बात है कि काव्य-कल्पना और भावाभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित ऊँचाई और गहराई का एक प्रकार से लोप हो गया।

फिर भी जहाँ काम की वेदना घनीभूत हो गयी वहाँ बहुत गहरा उतर गया है, वहाँ उनकी कल्पना मूर्छना से मुक्त हुई है, बहुत ऊँची हो गयी है। पर ऐसा बहुत कम हुआ है।

व्यावहारिक पक्ष

प्रगतिवाद की किसी निश्चित सीमा रेखा का निर्धारण सरल कार्य नहीं प्रतीत होता। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर, इस युग-विशेष के अन्तर्गत किन किन कवियों की रचनाओं को विश्लेषण का विषय बनाया जाय। अब तक मैंने किसी युग विशेष की कविता के कला-पक्ष के व्यावहारिक विश्लेषण को प्रस्तुत करने के क्रम में केवल उन्हीं कवियों को चुना है जो उस विशेष युग की सामान्य प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं का सही सही प्रतिनिधित्व करते हैं और जिन्हें विशेषकर उसी युग की देन के रूप में समझा जाता है। द्विवेदीयुगीन कवियों में मैंने अपने विश्लेषण का विषय कतिपय उन्हीं कवियों को बनाया है जो द्विवेदीयुगीन काव्य-संस्कार को लेकर चलते रहे हैं वहाँ के समानान्तर चलने वाले अन्य कवि पंत प्रसाद और निराला वगैरह को ध्यान में नहीं रखा गया है। ऐसे ही छाया वादी-कवियों में प्रमुखतः पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा प्रभृति कवि आते हैं। इसका कारण यह है कि इनके काव्य-संस्कार कुछ भिन्न प्रकार के हैं। इनकी कविता रूप रंग विषय और शिल्प के क्षेत्र को लेकर अपने एक भिन्न और विशेष प्रकार के क्षेत्र का निर्माण करती है। काव्य-शिल्प और काव्य विषय दोनों ही दृष्टियों से ये कवि अन्य 'स्कूल' के कवियों से अलग खड़े होते हैं। किन्तु, प्रगतिवाद के साथ यह बात नहीं परिलक्षित होती। यहाँ प्रश्न कुछ टेढ़ा हो जाता है। कारण प्रगतिवादी कविता का प्रवर्तन एक ओर जहाँ कतिपय ठोस सामाजिक अनिवार्यताओं एवं आन्तर दबावों के फलस्वरूप हुआ था वहाँ दूसरी ओर उस प्रवर्तन एवं परिवर्तन की पृष्ठभूमि में व्यक्ति की निजी समस्याएँ और अन्य नवीन तथा युगान्तरकारी कलागत मान्यताएँ भी काम कर रही थीं। फलतः जिसे हम प्रगति वाद की मूल काव्य धारा कह सकते हैं उसमें अन्य अनेक अन्तर्धाराएँ भी दृष्टिगत होती हैं। परिगणना के निमित्त प्रथमतः हम छायावाद के बृहत्त्रयी में से दो महारथियों—पंत और निराला—को ले सकते हैं क्योंकि इनकी कविता में बाह्य जगत् की हलचल से आन्दोलित इनके अन्तर्जगत् की जो प्रतिक्रियाएँ नये-नये मोड़ लेकर समय-समय पर प्रकट होती रहीं हैं उनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो इन्हें प्रगतिवाद के विशिष्ट स्तंभ के रूप में प्रस्तुत करती हैं। फिर, उत्तरछायावाद के कतिपय कवि भी काव्यगत मान्यताओं को लेकर मार्क्स और फ्रायड के क्रांतिकारी सिद्धांतों से प्रभावित हुए दिखाई पड़ते हैं। इनकी कविता में भी तत्कालीन समस्याओं को सशक्त वाणी मिली है। इस नाते प्रगतिवाद में इनका योग भी पर्याप्त रूप से महत्त्वपूर्ण रहा है। इनमें प्रमुखतः दिनकर, नरेन्द्र अंचल प्रभृति कवि अपना विशेष स्थान निर्धारित करते हैं। फिर भी हिन्दी कविता के क्रमिक विकास के इतिहास की दृष्टि से देखा जाय तो ये कवि भी प्रगतिवाद की विशिष्ट देन के रूप में नहीं लिये जा सकते। इन कवियों को विशुद्ध रूप से प्रगतिवादी करार देना कुछ वैसा ही होगा जैसे निराला और पंत को छायावादी कवि के रूप में न ग्रहण कर प्रगतिवादी कवि के रूप में ही प्रतिष्ठित करना। जिन कवियों को हम सही-सही प्रगतिवाद की विशिष्ट देन के रूप में ग्रहण कर सकते हैं उनमें

नागार्जुन त्रिलोचन शिवमंगल सिंह 'सुमन', मोक्ष रांगेय राघव केदारनाथ अग्रवाल महेन्द्र आदि प्रमुख हैं। इनके साथ ही अन्य अनेक कवि भी हैं जिनका प्रगतिवादी कविता की प्राण एवं रूप-प्रतिष्ठा में अपेक्षित योग सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त कुछ कवि और हैं जिनका प्रगतिवादी काव्य-धारा में तत्कालीन योग तो निर्दिष्ट होता है किन्तु बाद में वे उस धारा से हटकर काव्य में विशेष रूप से विषय की अपेक्षा अभिव्यक्ति की नवीनता एवं कलात्मकता पर जोर देकर चलने लगे हैं वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ कवि के रूप में अब सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं। अपितु, प्रगतिवादी काव्य-धारा के कलात्मक विश्लेषण के क्रम में जहाँ नागार्जुन सुमन, केदार आदि लिए गए हैं वहाँ प्रसंगानुसार कतिपय अन्य कवियों को भी ले लिया गया है।

परंपरित रूप-विधान

सांस्कृतिक

(१) एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है।
× × ×
और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मंडप में पधारी।

—युग की गंगा केदार पृ० ६

(२) कौन झंझा को लपेटे फिर रहा है ?
प्रलय-घन-सा स्निग्ध नभ में फिर रहा है ?
× × ×
युद्ध का ज्वालामुखी हो कहीं हरदम
शान्ति की बाहें बढ़ाये हैं हिमालय।

—विश्वास बढ़ता ही गया सुमन पृ० १०१ १०२

× × ×
तुम एक विरोधाभास स्वयं
तुम निर्गुण-सगुण अर्धनर-नारीश्वर
के रूप परम कोमल
तुम विषम-समन्वित अमिय-गरल
तुम पुरावार या सुरसरि-जल—

—विश्वास बढ़ता ही गया सुमन पृ० ६६

(१) मौन
कोमल कल्पना सी
जो कि थी आकाशगामी
चूमती थी
चन्द्रमा का भाल
भरती थी सदा
नक्षत्र के मुक्ताफलों को
माँग में सिंदूर
ऊषा की
सजल अनुराग रंजित लालिमा का
—क्रूरता की चोट 'कमलेश' हंस अक्टूबर १९४६

× × ×

स्वस्थ मकोड़ा आकाशी का
पूंघट खोल दिखा देता है,
—कामधेनु-सी कांग्रेस बन-केदार : हंस जुलाई १९४८

× × ×

अभी मनोरथ की छाया में
होने को है शांति स्वयम्वर।
अभी नई माया के मुख पर
लिखने हैं चमकीले अक्षर।
—बदल रहा इतिहास कलेवर शील- नया साहित्य अगस्त १९५१

प्रथम उद्धरण में मानवीकरण के आधार पर दो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। पहला चित्र युवक-रूप में हरे छिमने चने का है जो सिर पर छोटे गुलाबी फूल का मुरैठा (पगड़ी) बांधे सज-धज कर खड़ा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि चने को इस रूप में प्रस्तुत करने से हमारे सम्मुख एक हँसमुख ठिमने कद के सजे-सजाये व्यक्ति का चित्र आ जाता है। यहाँ 'हंस' चने के लहलहाने की स्थिति की ओर संकेत करता है वहाँ वह किसी व्यक्ति के साथ आकर उसके बचाव और हँसमुख होने का बोध कराता है। दूसरे चित्र में पीले हाथ सरसों के सयानी होने की ओर संकेत कर ब्याह-मंडप में आने वाली नव-वधू को ही सम्मुख लाया गया है। वस्तु की दृष्टि से ये उपकरण प्रकृति-क्षेत्र से लिये गये हैं। पर इनके साथ प्रमुखतः मुरैठा पीले हाथ वाली नव-वधू और ब्याह-मंडप आदि कुछ ऐसे विशेष उपकरण हैं जो हमारी संस्कृति के विशिष्ट चिह्न हैं। अतएव इन्हें प्राकृतिक उपकरणों पर आधारित सांस्कृतिक बोध के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे उद्धरण में तीन चित्र दिये गये हैं। प्रथम दो चित्रों को युद्ध की पृष्ठभूमि में रखकर सरलता से परखा जा सकता है। प्रथम चित्र में श्रद्धा के खदेड़े जाने का चित्र है। बाद में श्रद्धा को खदेड़ने वाली शक्ति की व्यंजना प्रलय-घन के रूप में की गयी है। युद्ध प्रलय के रूप में विश्व को आत्मसात करने के लिए बढ़ा आ रहा है। युद्धग्रस्त विश्व के

लिए अन्ततः श्रद्धा का भिक्षुक ही रह गया है। जन-जन के शंकालु मन में श्रद्धा की प्रतिष्ठा हो तो विश्व-युद्ध की विनाशकारी विभीषिका से बचा जाय। लेकिन उसकी भी स्थिति डाँवाडोल है। महानाश की करालता का शिकार हो रहे विश्व की श्रद्धा रूप में शेष पुनीत एवं मंगल शक्ति का बोध प्रलय की पृष्ठभूमि में श्रद्धा को रखकर बहुत ही स्पष्ट रूप से कराया गया है। दूसरे चित्र में युद्ध के ज्वालामुखी के भयंकर विस्फोट में धधक रहे विश्व की ओर शांति की बाँह फैलाये हुए खड़े हिमालय का चित्र है। विश्व को शांति का संदेश भारत आदिकाल से ही देता आ रहा है। शांति एवं सुरक्षा में हमारी आस्था हमारे सांस्कृतिक संस्कारों का ही प्रतिफल है। हिमालय का मानवीकरण करके उसे शांतिदूत के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य इसी सत्य की व्यंजना है। तीसरा चित्र हिन्दी के महाप्राण कवि निराला की उन्मादमयता एवं महानता का है जिसे निर्गुण सगुण अर्द्ध नारीश्वर और अमृत एवं गरल आदि उपकरणों के माध्यम से मूर्त किया गया है। ये सभी उपकरण अपनी-अपनी विशिष्टता में एक-न-एक कहानी लेकर चल रहे हैं। निर्गुण-सगुण से ईश्वर के विराट-रूप की कल्पना साकार होती है अर्द्ध नारीश्वर पुरुष प्रकृति के साथ कोमल प्रकृति के मधुर मय समन्वय का परिचायक है और अमृत-गरल का योग 'शिवत्व' की ओर संकेत करता है। सभी मिलकर महाप्राण निराला के उस विलक्षण रूप को सम्मुख लाते हैं जो विराट, परुष और कोमल होने के साथ-साथ शिव-रूप भी है। शिव-रूप की योजना में विशेष व्यंजना यह है कि एक बार महाकवि के आह्वान पर जहाँ सृष्टि तन्मय होकर रास रचाने लगती है वहाँ दूसरी ओर विषमता थिरक-थिरक कर महाप्रलय के दृश्य को भी रचाती है। यह कवि के ऊपर है कि वह चाहे जब जैसे दृश्य को उपस्थित कर दे। यहाँ मात्र इस बात का अध्याहार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि शिव का लास्य और तांडव अकारण नहीं हुआ करता।

ऐसे ही तृतीय उदाहरण में भी तीन चित्र आये हैं। तीनों ही में किसी-न-किसी रूप में मानवीय स्थिति और व्यापार की व्यंजना है। प्रथम विशुद्ध प्राकृतिक उपकरण पर आधारित है। इसे सांस्कृतिक रंग और रेखा मात्र मुक्तकणों से सज्जित माँग और उषा की लालिमा से लिख गये सिन्दूर की योजना से प्राप्त होती है। यहाँ अप्रस्तुतों से अप्रस्तुत की योजना बहुत ही कलात्मक हुई है। उसके बल पर हमारे सामने कल्पना की पहचान में कभी आयी हुई कोई सुन्दरता आकर खड़ी हो जाती है। शेष दो चित्र क्रमशः भारत को प्राप्त नयी आजादी और विश्व-शांति पर खड़े हैं। 'घूँघट' की योजना आजादी को नवोढ़ा के रूप में और 'स्वयंवर' की योजना विश्व-शांति को हाथ में वरमाला लेकर 'स्वयंवर' में प्रवेश कर रही कन्या के रूप में प्रस्तुत करती है। कलात्मकता की दृष्टि से दोनों चित्र क्षीण संकेत पर खड़े हैं और साधारण कोटि के हैं।

पौराणिक

प्रगतिवाद-युग के कवियों के सम्मुख जीवन का संघर्ष बहुत उभर कर खड़ा हुआ था। पराधीन राष्ट्र की छाती पर दमन शोषण उत्पीड़न और अन्याय की चक्की निर्द्वन्द्व होकर चल रही थी। बाहर महायुद्ध की विभीषिका अपना कराल तांडव रचा रही थी। ऐसी विषम परिस्थिति में अन्याय की रक्षा और उसके विरोध में अँगड़ाई लेकर जाग

यही जन-शक्ति की विविध अवस्थाओं और क्रियाओं की व्यंजना कुछ उन पौराणिक नामों और घटनाओं के उल्लेख से भी की गयी है जो अपनी-अपनी स्थिति में उनके अनुकूल पड़ती है। जैसे पतनोन्मुख एवं विलासी शासकों को निर्वीर्य इन्द्र के रूप में बड़े-बड़े नरपतियों को कुबेर के रूप में आततायियों को रावण, धृतराष्ट्र जयद्रथ और दुश्शासन आदि के रूप में याद किया गया है। ऐसे ही जनता की सामूहिक मंगलेच्छा एवं शक्ति के प्रतीक कुछ नामों जैसे, शिव, अर्जुन अभिमन्यु आदि का उल्लेख उन व्यक्तियों के प्रसंग में किया गया है जो समाज और विश्व के कल्याण के लिए जान हथेली पर लेकर अन्याय और दमन से निरन्तर जूझ रहे थे। जब तक भारत पर विदेशी हुकूमत थी तब तक तो ये कवि अपने अन्तर का आक्रोश और असंतोष विदेशी महाप्रभुओं और उनके देशी मददगारों (विभीषणों) को व्यक्त कर करते रहे और जब भारत को चिराभिलषित स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी पर देश की आन्तरिक स्थिति में संतोषजनक परिवर्तन होता दिखायी न पड़ा तब निराश जनता के प्रतिनिधि कवि अपने देशी सत्ताधिकारियों के प्रति भी कुछ वैसे ही असंतुष्ट और उग्र दिखायी पड़े। इस असंतोष एवं आक्रोश की सीमा यहाँ तक बढ़ी कि भारत की महान राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस को सुरसा नाम की मायाविनी निशाचरी के रूप में उपस्थित किया गया। इसी प्रकार जन-जीवन पर अपनी भयंकर प्रतिक्रिया छोड़ने वाली कुछ अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं की व्यंजना भी प्रसंगानुकूल नामों और घटनाओं की योजना से की गयी है। यह दूसरी बात है कि इन योजनाओं में कलात्मकता कम दिखायी पड़ती है फिर भी इतना तो मानना पड़ेगा कि समसामयिक प्रश्न और परिस्थितियों की व्यंजना को सबल और स्पष्ट रूप देने में इनका प्रमुख हाथ रहा है। विचारपूर्वक देखा जाय तो यही इनका महत्व है।

अब कुछ उदाहरण लीजिये :

(१) फेंक मत तलवार
तेरी हड्डियों को काटती
तलवार भी
निर्वीर्य पापी इन्द्र के बल हाथ
का है वज्र—
वैसे भी दधीचि महान का चिरत्याग
भी अब व्यर्थ
× × ×
धन कुबेरों की भयंकर वासना का
हलाहल है कंठ में
धर
मानवी अज्ञान की उन
पार्वती की उँगलियों से
धर मुँ पीड़ा—
× ×

मैं वही हूँ एकलव्य—
कि धनुर्धारी वीर अर्जुन
डर गया था—
और तूने ले लिया था अँगूठा
मेरा कि तेरे स्वार्थ की हो
सिद्धि

—अरे ओ बस्तार[?] रांगेय राघव हंस, दिसम्बर १९४५

(२) और नव-कन्या के सकम्प[?],
उसी में प्राण प्रतिष्ठा हेतु,
अन्तरों का सागर मथ मौन[?]
पाटने को रचते थे सेतु
× × ×
कलह का ही पोषक है आज
धर्म का यह अंधा धृतराष्ट्र
महाभारत बुन रहा सबाब
मिट रहा है जिसमें यह राष्ट्र।
× × ×
प्रेम का एकाकी अभिमन्यु
घृणा के चक्रव्यूह में आज;
खड़ा है रोक मुक्ति का द्वार,
जयद्रथ बना विरोधी राज।
भटक रथ-रत हैं अर्जुन-कृष्ण
मुख्य समरस्थल से अति दूर;
लड़ रहे हैं सेनापति-हीन
उधर वे पांडव दल के शूर।

—शहीदों की मौत। मनस्वागसिंह सिसौदिया
हंस जनवरी-फरवरी १९४७

(३) धरा-गर्भ में निहित पराजित
जनता के अस्थि-रक्त कलश से
पापों की काली छाया में
प्रकट हुई युग की वैदेही
× × ×
चरण स्पर्श पा राम किसी का
बदल रही है
युग की धारा,
शिलाखंड सी

गौतम साथ लिये जो अब तक
पड़ी रही मानवता-पथ पर
× × ×
प्रगति पथ पर खड़ा हुआ
साम्राज्यवाद का शिशु अपरिमित,
खेल रही जिसकी लहरों पर
रत्नों से पृथ्वी की रानी,
एक निमिष में
सूख गया
ज्यों क्रुद्ध राम के धनुष-रोर से
× × ×
यह जन-बल है
शंकर की बाँहों-सा बल है।

—ममता सरवचन्द्र मिश्र हंस नवम्बर १९४७

प्रथम उदाहरण में तीन चित्र दिये गये हैं। तीनों ही चित्रों में क्रमशः इन्द्र-दधीचि कुबेर पार्वती और अर्जुन-एकलव्य आदि कतिपय पौराणिक नामों की योजना से अभिप्रत अर्थ की व्यंजना में कुछ चमत्कार आ गया है। ऐसे द्वितीय चित्र प्रथम और तृतीय की तुलना में अधिक निर्बल और अस्पष्ट है। कारण, कुबेरों की भयंकर वासना का हलाहल कंठ में धारण कर मानवी अज्ञान की पार्वती की उंगलियों से ग्रीवा को घेरने का अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। ये प्रतीक अधिक दुरूह हैं। इनका अर्थ कवि तक ही सीमित है। पाठक के अर्थ-बोध में कठिनाई होती है। प्रथम और तृतीय चित्र में यह दुरूहता नहीं मिलती। राजा दधीचि के त्याग की कहानी बहुत प्रख्यात है। दधीचि के त्याग की—व्यर्थता की ओर संकेत करने का अभिप्राय स्यात् त्याग की पराकाष्ठा की ओर संकेत करना ही रहा है। तृतीय चित्र का अर्थ तो बिलकुल साफ है। अर्जुन एकलव्य की बढ़ती हुई शक्ति से त्रस्त हो रहे थे। उन्हें निर्द्वंद्व करने के लिए द्रोण ने एकलव्य से उसके अंगूठे की माँग की। एकलव्य ने जो उभरती हुई जन-शक्ति का प्रतीक है बिना कुछ सोचे हुए अपना अंगूठा काटकर गुरु द्रोण को दे दिया। यह एकलव्य के साथ द्रोण द्वारा किये गये अवांछित छल की कहानी है। इस छल को दृष्टिगत कर कवि ने द्रोण को भी जल्लाद के रूप में ही याद किया है। द्वितीय उदाहरण में भी तीन चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। नल-नील ने सीता को अपने पास बंद रखने वाली रावण की लंका में राम को पहुँचाने के लिए सागर को पाट दिया था। यहाँ नल-नील के उल्लेख से स्यात् उन शहीदों को सम्मुख लाया गया है जिन्होंने अपनी कुर्बानी से आजादी के मार्ग को प्रशस्त किया है और जिनके फलस्वरूप जन-शक्ति (राम के रूप में) ने निर्दोष रूप से विदेशी महाप्रभुओं के लंका रूपी शासन चक्र को भेदकर, अपनी आजादी (सीता) की प्राप्ति की थी। नल-नील द्वारा बन्दरों के सागर के पाटे जाने के उल्लेख-स इतना बड़ा प्रसंग सम्मुख आ जाता है, यही इस योजना की कलात्मकता है। दूसरे चित्र में

धृतराष्ट्र के उल्लेख से तत्कालीन शासन-तंत्र के अंधे और अन्यायी होने का बोध कराया गया है। ऐसे ही, तृतीय चित्र में भी अभिमन्यु, जयद्रथ अर्जुन-कृष्ण और सेनापति भीम पांडव-दल के संघटन से प्रसंगानुकूल तत्कालीन सत्यों की व्यंजना बहुत ही कलात्मक ढंग से की गयी है।

तृतीय उद्धरण के चारों चित्र रामायण के नाम-सत्यों पर आधारित हैं जिनमें जनता की कुर्बानी से उत्पन्न स्वतंत्रता तत्कालीन युग की परिवर्तित परिस्थिति उत्तरोत्तर सबल एवं संगठित होती जा रही जन-जागृति जन-क्रान्ति के सम्मुख साम्राज्यवाद के अन्त और जन-गण-बल को क्रमशः ऋषि रक्त-कलश से प्रकट हुई वैदेही राम के चरण-स्पर्श से मुक्ति प्राप्त अहिल्या दक्षिण-समुद्र-तट पर विनय की विफलता के बाद क्रुद्ध राम के शर-संधान और अनन्त शक्ति शंकर के बाहुबल के सादृश्य से उपस्थित किया गया है।

इसी क्रम में राष्ट्रीय सरकार के प्रति कवियों के अन्दर जगे हुए चित्र भी द्रष्टव्य हैं —

(१) कामधेनु सी कांग्रेस अब
सुरसा जैसा मुंह बाये है। —केदार हंस जुलाई १९४८

(२) नेता ने कंट्रोल उठाया खूब मिलो सेठों को
शंकर का वरदान मिला है रावण के बेटों को
हर चीजों के दाम बढ़ गये आयी विपदा भारी
जय-जय राम-कृष्ण हारी।

—कीर्तन भजन बिहारी हंस जून १९४८

प्रथम चित्र में सुरसा और द्वितीय में 'शंकर का वरदान' और 'रावण के बेटे' से व्यंग्य में चमत्कार तो आया है पर कला निष्प्रभ ही रह गयी है। फिर भी, संतोष इस बात का है कि राष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक प्रतिक्रिया को यहाँ सशक्त वाणी मिली है।

इनकी तुलना में पौराणिक सत्यों के माध्यम से अभिप्रेत अर्थ के सजीव एवं मूर्त प्रकाशन के कुछ उत्कृष्ट कलात्मक उदाहरण और द्रष्टव्य हैं

(१) जाने कब शिव के जटा-जूट से
भागीरथी प्रथम छूटी—
कब अनायास वाणी फूटी
आसितिज प्रतिध्वनित हुआ
मन्द्र — घन गर्जन स्वन
आसिंधु संतरण करता था
बहु राग प्रमन।

—विश्वास बढ़ता ही गया सुमन, पृ० ५९

(२) नये भगीरथ सरिताओं की धार मोड़ते,
मधुप कड़ियों का जनता के राम तोड़ते।
ग्राम-ग्राम में नयी फसल का पर्व मन रहा
हल की नोकों से सीता का जन्म हो रहा।

—विश्वास बढ़ता ही गया सुमन, पृ० १०१

प्रथम चित्र का व्यंग्य युगान्तरकारी कवि महाप्राण निराला की सशक्त एवं प्रावमयी काव्य-धारा को लेकर खड़ा है। ऐसे ही द्वितीय चित्र का व्यंग्य नये चीन का स्वर्णिम नव विहान है। दोनों ही चित्रों की कलात्मकता आधार-सत्यों को दृष्टिगत करते हुए, अत्यन्त सफल और प्रशंसनीय है।

ऐतिहासिक

राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीतिक प्रतिक्रिया का रूप देखिये।[1]

कवि को इस बात से असंतोष है कि राष्ट्रीय सरकार जन-गण की न होकर, जन-हित के दुश्मनों—पूँजीपतियों की हो गयी। 'तख्त-ए-ताऊस' यहाँ ऐतिहासिक उपकरण के रूप में आकर 'राज्य सिंहासन' की ओर संकेत करता है। कलात्मक दृष्टि से यह चित्र अत्यन्त ही हीन है।

ऐतिहासिक उपकरण के माध्यम से राजनीतिक प्रतिक्रिया का एक और चित्र लीजिए

शासन के अधिकारी नेता
डायर की वर्दी पहने हैं।

—कामधेनु-सी कांग्रेस—केदार हंस जुलाई १९४८

डायर का नाम जलियाँवाला बाग के हत्याकांड से सबंधित है। यह कांड भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम के इतिहास का एक अविस्मरणीय प्रकरण है। वैसी अधिकारियों को डायर की वर्दी पहनाकर कवि ने इस बात को व्यंग्य-रूप से प्रकाशित किया है कि वे डायर के समान ही नृशंस और अन्यायी हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे चित्र भी हैं जो देश की तत्कालीन प्रतिक्रियाओं और जन-गण की सामान्य धारणाओं को विभिन्न रूपों में ऐतिहासिक सत्यों के माध्यम से प्रकट करते हैं। इस दृष्टि से निम्नांकित चित्र द्रष्टव्य है

(१) गोरे रंग के अभिमान।
अरे नादिरशाह।
मैं वह हूँ कि तेरी तेज
तलवारें यमी थीं काट—
लेकिन मर न पाया मैं
अभी तक।

—अरे ओ जल्लाद : रांगेय राघव हंस दिसम्बर १९४५

(२) उसी इन जीर्ण ध्वंसों में
सृजन-आरंभ की रंगीन-किरणों को दिशा में मान को बातें।
उठी संकीर्णता मुँह खोलकर सीमित स्वार्थों की।
लगे फिर बाँधने बाधक अगधक व्यास की सीमा।

---

१. शिशु राष्ट्र का जन्मदिन : नागार्जुन हंस, अगस्त ४८

बिछाकर जाल
माया-द्वेष, विग्रह, छल-कपट का।
मठों के देवता बोले।

—मठों के देवता बोले (१९४६) सुमन गीत

(३) चंद का था एक पृथ्वीराज
किन्तु मेरे तो अनेकों आज।

—धारा रांगेय राघव हंस जनवरी-फरवरी १९४७

(४) आर्यों के पौरुष मूर्तिमान
ज्ञानादित्य
कवि कालिदास तुमको पाकर
कह उठते 'जय विक्रमादित्य'।

—निराला के प्रति सुमन

प्रथम चित्र में अंग्रेज शासकों को नादिरशाह के रूप में सम्बोधित कर स्वतंत्रता प्रेमियों और निर्दोष जनता की कुर्बानी और नृशंस आक्रमकों के अत्याचार और दमन के प्रकरण को पुनः ताजा कर दिया गया है। साथ ही उस अजेय जन-शक्ति की ओर संकेत भी है जो बार-बार अन्याय और दमन की पापाग्नी चक्कियों में आकर भी अब तक अपना सिर उठाए हुए है। दूसरे चित्र में कुर्बानी और बर्बादी की मिट्टी से उठकर खड़े हुए जन-क्रांति के पौधे और उसके विकास की सम्भावनाओं को सम्मुख लाकर फिर उसके विरुद्ध छल-कपट विग्रह-द्वेष आदि का जाल फैलाने को तैयार कूटनीतिक राजनीतिज्ञों की ओर अर्थ-पूर्ण संकेत किया गया है। यहाँ चाणक्य की निर्माण-क्षमता को ध्यान में न रखकर उसकी उन घोर कूटनीतिक चालों को सम्मुख लाया गया है जिसके प्रहार से नन्द-वंश अपना दम तोड़ने को विवश हुआ था। क्रांतिचेता कवि गीत की पंक्तियाँ १९४६ की हैं और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का बहुत ही 'ग्राफिक' चित्र प्रस्तुत करती हैं। तृतीय चित्र में कवि ने अपने जन-कवि होने का बड़ा ही प्रभावपूर्ण अभिव्यंजन किया है। उसकी दृष्टि में उसके देश का वह हर व्यक्ति जिसमें उसकी आस्था है—पृथ्वीराज के समान ही शक्ति का अजस्र स्रोत है। चौथे चित्र में 'निराला' की महानता को आर्यों के पौरुष और विक्रमादित्य की उदारता एवं निर्भीकता को सम्मुख लाकर और अधिक बढ़ा दिया गया है। चित्रों की कलात्मक परिणति अभिप्रेत व्यंग्य की कुछ ऐसी ही सबल और सजीव व्यंजना से प्रमाणित होती है।

प्राकृतिक

प्रगतिवादी कवियों की कवि दृष्टि प्रमुखतः जीवन के संघर्ष से सम्बन्धित सत्यों पर पड़ी थी। अपितु, उनकी अभिव्यक्ति माध्यम के अनुकूल जो जो उपकरण पड़े उन्हीं को उन्होंने लिया। उनमें बहुत कम कवि ऐसे मिलते हैं जिनकी दृष्टि केवल सौंदर्योन्मेष के लिए प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों पर दौड़ी। वस्तुतः प्रकृति के सौंदर्य का उद्घाटन नहीं संघर्ष रत मानव-जीवन की अनेकविध अभिव्यक्ति ही उनका अभीष्ट रही। इसलिए उनका ध्यान मंद-मंद मुस्काती हुई चाँदनी उमक-उमक कर झाँकती हुई कली, हाथ उठा उठाकर अपनी ओर बुलाती हुई लहर और किसी के विरह में मुरझाई पड़ी छाया की ओर कम और जीवन

पर छाये हुए संकट स्वरूप कोहरे सभी को प्रेम-रूप आसव पिलाकर मिलाये रखने वाली बसंती हवा, संघर्षों के बीच से निकल कर उत्तरोत्तर विकासमान ज़िन्दगी के प्रतिरूप बीज और नवजागरण-स्वरूप नयी सुबह की ओर अभिमुख गया है। फिर भी ऐसा नहीं है कि यह कलात्मकता नहीं है, एक कलात्मकता यहाँ भी है अन्तर सिर्फ इतना ही है कि यह कलात्मकता कुछ वैसी ही अनगढ़ है, जैसी हमारी ज़िन्दगी और तत्कालीन परिस्थितियाँ। इस दृष्टि से नीचे दिये गये चित्र द्रष्टव्य हैं।

१ (क) शिशिर निशा के दुर्गम घोर तिमिर में
यह परदेशी भारी झब्बा कोहरा
धीरे-धीरे प्रिय धरती पर उतर

—युग की गंगा केदार, पृ० १

१ (ख) भार-भार बोझे खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।
ताकत से मुट्ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है;
हिम्मतवाली लाल फौज-सा
मर मिटने को झूम रहा है।

—युग की गंगा केदार पृ० १

२ (क) संघर्षों में बीज फेंककर, अंकुर-सी बढ़ चली ज़िन्दगी।
मनुष्यता की नयी सुबह में सूरज-सी बढ़ चली ज़िन्दगी॥

—युग-पथ पंत पृ ७

२ (ख) पानी-सी प्रिय स्वच्छ भाव-सी निर्मल कांति पर्व-सी पावन,
हँसती हुई कृषक-बाला-सी उगते खेतों-सी मन भावन।
खिलती हुई कली-सी पुलकित उड़ते हुए भ्रमर-से चंचल
नई सृष्टि के पृष्ठ खोलकर आई नई ज़िन्दगी हलचल।

—युग-पथ पंत पृ० ८

३ (क) दिन तपता है रात उसे
शीतल करने को साज सजाती
[illegible] के साथ-साथ
सन्ध्या रोती ऊषा मुसकाती।

—विश्वास बढ़ता ही गया सुमन पृ० १

३ (ख) प्राण प्राण में आज रक्त की सरिता खौल पड़ी है।
आज देश की मिट्टी बोल उठी है॥

३ (ग) सिन्धु चरण धोकर हर्षाये
अंचल थामे क्षिति-अम्बर।
चन्द्र-सूर्य उपहृत झिलमिल
कर-किरणों से छू-छू कर —वही पृ० ४९

४ (घ) सहम-सी साँस आती थी
शिथिल अंचल उड़ाती थी
पनीली रात आँखों में
नये सपने बसाती थी
उभरती साँस छाती में
कि चोली कसमसाती थी
कहीं से पास की बाती
कड़ी घुप-घुप बुलाती थी। —वही पृ० ९१ ९२

प्रथम उदाहरण क 'क' में कोहरा को परदेशी के रूप में प्रिय धरती पर उतारकर चित्र में सजीवता लायी गयी है। वैसे ही 'ख' में धन-समूह के प्रतीक स्वरूप बालों की संख्या में डटकर किसी का सामना करने को मुस्तैद खड़े गेहूँ को उपस्थित किया गया है। यहाँ गेहूँ को लाल-फौज के समान मर मिटने के लिए तैयार दिखाया गया है। साथ ही इस बात की ओर भी संकेत है कि उसे किसी बात की चिन्ता नहीं वह निर्भय होकर मस्ती में झूम रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गेहूँ के माध्यम से अपराजिता जन-शक्ति में कवि की वह आस्था व्यक्त की गयी है। द्वितीय उदाहरण में तितली को उसके विविध विकासोन्मुख रूपों में उपस्थित किया गया है। यहाँ रेखांकित शब्दों से चित्र में प्राण-प्रतिष्ठा सहज ही हो गयी है। यही सहजपन इस चित्र की विशेषता है। तृतीय उदाहरण में भिन्न-भिन्न चार चित्र उपस्थित किये गये हैं। प्रथम चित्र में कवि के हार नहीं मानने वाले मन को उपस्थित किया गया है। यहाँ यदि दिन तप कर उसे तप्त करता है तो रात शीतल कर जाती है। दूसरे और तीसरे चित्र में देश की जाग उठी मिट्टी को सम्मुख लाया गया है जिसकी नसों में रक्त की सरिता खौल रही है। यहाँ मौन तोड़कर सहसा 'बोल उठी मिट्टी' देश के नव-जागरण का प्रतीक है। चित्र की एक विशेषता और है। सिन्धु, क्षिति अंबर, सूर्य और चन्द्र को उसकी सेवा में नियुक्त कर उस मिट्टी को उसकी अनन्य महिमा में प्रतिष्ठित किया गया है। अंतिम चित्र प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से व्यक्त मन की मुग्ध-मधुर भावना पर खड़ा है। यह कवि की बहु प्रशंसित और प्रयोगवाद की अमर कला-कृति 'चल रहे हैं दीप' से उद्धृत है। कहा जाय तो यह पूरी कविता ही चित्रात्मकता और व्यंग्य के मर्यादित प्रकाशन को लेकर अपने आप में रंग बिरंगे चित्रों का एक अच्छा खासा अलबम प्रस्तुत करती है। साथ ही पशु पक्षी और कीट-पतंगों पर आधारित कुछ चित्र भी द्रष्टव्य हैं। भारत की 'दीप जलेगा' शीर्षक कविता देखिये।

---

१ हरीन्द्रनाथ चट्टो० 'दीप जलेगा' हंस कुमार ७०

प्रथम बिम्ब में लटक रही शाम को अजगर के सादृश्य से मूर्त किया गया है। द्वितीय बिम्ब में छल-बल और कलुषित कायरता को काले तक्षक के रूपक रूप में साकार मूर्त किया गया है। ऐसे ही तृतीय बिम्ब में भी धीरे-धीरे बढ़ते आ रहे भयानक अंधकार को अजगर और हिंस्र व्याघ्र के सादृश्य से उपस्थित किया गया है। जन-मन को भी प्रतीक के माध्यम से चीन्टियों की कतार को सम्मुख लाकर उपस्थित किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि की जागरूक सामाजिक भावना ही इस प्रतीक के निर्माण के मूल में उपस्थित है। देखिये

कतार की कतार धुआंधार
चींटियाँ अपार,
हैं उमड़ घुमड़ चलीं सहस्र हजार
दल सँवार —
एक, एक एक,
हाँ असंख्य औ अशेष,
हैं निकल रहीं अवक विलों से
चींटियाँ सवेग
—चींटी धीरेश्वर सिंह हंस अक्टूबर १९४६

बूटन से ऊब कर चींटियों की असंख्य सेना कतार बाँध कर निकल रही है। सभी एक हैं उनकी भूख एक है। प्यास एक है। उद्देश्य भी एक ही है। उन्हें भूख लगी है और भूख लगने पर अब उन्हें भगवान का किसी की मरजी का भरोसा नहीं रहा। वे जगत सारा स्वयं लूट लेंगी। उनकी सङ्गठित शक्ति का मुकाबला आज कोई नहीं कर सकता उनका रास्ता कोई नहीं रोक सकता। एक-एक चींटी में एक एक हाथी का बल है। लक्ष्य जनशक्ति की सशक्त प्रतिक्रिया की कितनी सबल व्यंजना है।

राजनीतिक

दासता की पापाची जंजीरों में देश सदियों तक कुचला जाता रहा। शोषण दमन और अत्याचार के धूर्तों ने उसकी आँख की ज्योति छीन ली धमनियों के खून को पानी कर डाला देश मुर्दा बनकर पड़ा रहा। शताब्दियों के बाद फिर उसकी काया में स्वतंत्रता की नयी हवा ने जब उत्सर्ग के फूल खिलाये नये प्राण की प्रतिष्ठा हुई और वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जाग उठा, उसके जागने पर कण-कण में नव-चेतना की लहर दौड़ उठी कण-कण से स्वतंत्रता और अधिकार की माँग उमगने लगी। प्रगतिवाद युग के कवि भी जन-जागृति के इस प्रबल झंझावात से अछूते नहीं रहे। उनकी काव्य-चेतना ने क्रांति के अवतरण के लिए नयी भूमि तैयार की कवि दृष्टि ने अंगारे बरसाकर पथ के शूलों को भस्मसात किया। कविवर दीक्ष की फौलादी लेखनी का उबाल देखिये।

जन क्रांति की देशव्यापी लपटों का कितना सजीव और सशक्त चित्रण 'नाविक विद्रोह' में किया है।

समय पुकार रहा संगर में, बलिवेदी में ज्वार उठा।
अधिकारों के लिए एक होकर मनुष्य ललकार उठा।
धधक उठी बम्बई, करांची, लपटों में है कलकत्ता।
जन-जन में विद्रोह बढ़ रहा, दहल रही सामन्तसत्ता।
करने लगा मौत से लड़कर, मनुज क्रांति की अगुआई।
मंधारों, बोली गोलों पर, लाल पताका फहराई।

—उदयपथ पृ० ४७

ऐसा नहीं है कि कवि की दृष्टि केवल अपने देश तक ही सीमित रही है। प्रगतिवाद की काव्य चेतना की यह एक बहुत बड़ी विशेषता रही है कि उसने अपना लक्ष्य अखिल विश्व और मानव मात्र को बनाया है। इसलिए कवि की दृष्टि जहाँ अपने यहाँ की जर्जर अर्थ-व्यवस्था पर जाती है वहाँ उसे पड़ोसी देश कोरिया का भी ध्यान है। ऐतिहासिक भाँति, इन दोनों तथ्यों के प्रमाण साथ-साथ देखे जा सकते हैं

अभी देश में सन्निपाती व्यवस्था
मरी-भुखमरी क्या है, प्रभुओं की माया।
खड़ी लाश में आचमन कर रही है
घृणा-अंग पहिने अकालों की छाया।

—उदयपथ पृ० ६१

यहाँ यही कहना पर्याप्त है कि यह रचना सन् १९५२ की है। अभिव्यक्ति सौन्दर्य 'सन्निपाती व्यवस्था' और खड़ी लाश में अकाल की छाया के आचमन करने की बात पर दृष्टि जाने से चित्र स्पष्ट हो जाता है।

कोरिया[1] का चित्र युग-चेतना की दृष्टि से इतना सशक्त और कतिपय कलात्मक बिन्दुओं के बल पर इतना अभिनव है कि उसे पूरा का पूरा पढ़ने के लोभ का संवरण नहीं किया जा सकता।

ऐसे ही एक चित्र अणुबम से ध्वस्त हिरोशिमा और द्वितीय विश्वयुद्ध में इटली की पराजय पर क्षुब्ध नेपथ्य का भी देखा जा सकता है

बुझ गयी बूढ़ों की दाढ़ें, सिसक रहा कोठी-सा जीवन
विश्राम धुएँ के अजगर-सा है लील रहा सब रंग।
—रेशमी मधु-मदा का—
हिरोशिमा में मनुज मर गया।

—समय देवता नरेश मेहता दूसरा सप्तक पृ० ११५

× × ×

नेपथ्य रोम के राजाओं की तरह विलासी
बैठा अपने ज्वालामुख पर हैरेनियम को घूर रहा है।
मुसोलिनी के मर जाने का सबसे अधिक दुःख इसको है।

---

१. उदयपथ कोरिया पृ० ६२

बदले की इच्छा का धुँआ पुरा पड़ रहा
पश्चिमाद्र की कगार पर चील सरीखा।

—समय देवता नरेश मेहता दूसरा सप्तक पृ० १४२

राजनीतिक हलचलों के बीच बड़े कवि का उद्वेलित अन्तर-मानस समय-समय पर स बात से विचलित होता रहा है कि किस प्रकार आज विश्व अपनी प्रगति में भी अपने ास एवं संहार की भूमिका रचता जा रहा है। विश्वयुद्ध और अशांति का स्थायी निरा रण ढूँढ़ निकालने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहा है। पल्लव के सुकुमार कवि पंत ब प्रगतिवाद-युग की भूमिका में प्रवेश करते हैं, उनके सम्मुख संक्रांति-काल का यही प्रश्न मुख रूप में उपस्थित रहता है। साम्य का संगीत उनके कानों में गूँजता है। साम्यवाद प्रवर्तक कार्ल मार्क्स के दर्शन पर उनकी आस्थाएँ खड़ी होती हैं। फलतः धर्मनीति और दाचार की सही कसौटी के रूप में ही नहीं विश्व संस्कृति की प्राण भावना के रूप में भी में जन-हित ही दिखाई देता है। इस विशाल विश्व-चेतना की सुन्दर अभिव्यक्ति निम्न अंकित पंक्तियों में रूप पा गयी है

सभ्य शिष्ट औ संस्कृत लगते मन को केवल कुत्सित।
धर्म नीति औ सदाचार का मूल्यांकन है जन हित।
× × ×
साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण।
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।
× × ×
धन्य मार्क्स! चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय-शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

—युगवाणी पंत

जहाँ कवियों की चेतना परिधि विश्व की तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं और रिस्थितियों को आत्मसात करते हुए चली है वहाँ उसके साथ कुछ ऐसे सत्य भी परिलक्षित ते हैं जो राष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रादुर्भूत हुए हैं। विभिन्न परि स्थितियों के विभिन्न चित्र पृथक-पृथक देखे जा सकते हैं।

एक सुदीर्घ काल तक पराधीन रहने के पश्चात् राष्ट्र को स्वातंत्र्य चेतना छू जाती । संपूर्ण राष्ट्र अपने अधिकार की लड़ाई के लिए हुंकार भर कर मत्त सिंह की भाँति उठ ड़ता है स्वतंत्रता-देवी के चरण चूमने के लिए जवानियाँ संगीनों और मशीनगनों की ोलियों पर निर्भीक होकर दौड़ पड़ती हैं। प्रगतिवादी कविता में इन विशेष परिस्थितियों भी बड़े ही सुन्दर और सप्राण चित्र उपलब्ध होते हैं।

निम्नांकित चित्र अगस्त क्रांति में अपना होम देने वाली उठती हुई जवानियों ा है

ये देख लो खड़ी है कौन तोप के निशान पर
ये देख लो खड़ी है कौन जिन्दगी की आन पर,

वे कौन थी जो कूद के अभी गिरी है आग में ?
लहू बहा ? कि तेल आ गिरा नया चिराग में ?

—दिनकर : सामधेनी पृ० ७०

यहाँ जवानी तो आँखों के सामने खड़ी होकर रगों में गर्म लहू की धारा प्रवाहित कर ही जाती है; साथ ही चिराग में नया तेल आ गिरने की व्यंजना भी सविशेष है। टिम टिम से चिराग में तेल पड़ने पर ज्योति जीवन्त होकर ऊपर उठती है उसकी रेखाएँ चारों ओर दौड़ जाती हैं। ऐसे ही क्रांति में नौजवानों के बहे हुए लहू का हाल हुआ। नौजवानों के लहू की धारा देखकर राष्ट्र का कण-कण जाग उठा।

राष्ट्रीय जन जागरण का निम्नांकित चित्र भी तात्कालिक उथल-पुथल का सजीव रूप उपस्थित करता है

आज कोपी सिंह-सी जनशक्ति की हुँकार गूँजी
अब भूपालों का मिटा साम्राज्य जग से
हो उठा है लाल नभ आया सवेरा
मंद तारे पड़ गये
आज जीवन] जागता है, रात की चूनर पुरानी हो गई।

—श्री हरिव्यास हंस अक्टूबर, १९४७

यहाँ और सब बातें तो स्पष्ट हैं। 'रात' पर ध्यान देना है। वह परतन्त्रता की काली निशा के लिए प्रतीक रूप में आयी है। उसकी चूनर के पुरानी हो जाने में विशेष व्यंजना यह है कि विदेशी शासकों की हस्ती अब नहीं रही उनकी चमक-दमक शान-बान सभी फीकी पड़ गयी।

एक ओर जहाँ राष्ट्र के जर्जर तन में एकाएक दौड़ गई नयी जिन्दगी के चित्र मिलते हैं वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश में स्वदेशी शासकों एवं अधिकारियों के शोषण दमन और उत्पीड़न के भी बहुत ही कारुणिक चित्र मिलते हैं जिनमें रग भरने के लिए कहीं कवि का क्षोभ उठ खड़ा हुआ है तो कहीं उसकी करुणा। नागार्जुन की 'सच न बोलना'[1] शीर्षक कविता देखिये।

इस प्रसंग में एक चित्र में हिन्दू-मुस्लिम दंगे का ही वर्णन है, यह चित्र भी देखने योग्य है। राजनीतिक पुट यहाँ भी है। कवि की व्यंग्यात्मकता उस अंग्रेजी सत्ता पर है जो देश में फूट के बीज डालकर, अब जो दंगे की आग भड़क उठी है, दूर बैठी तमाशा देख रही है

माई की गरदन पर
माई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है
पुरखों के घर का बँटवारा
एक अकड़ कर कहता
अपने मन का हक ले लेंगे

---

१. नागार्जुन सच न बोलना हंस, जून १९४९

बरसों की इच्छा का धुँआ घुटा पड़ रहा
पश्मियाद की कब्रगाह पर चील सरीखा।

—समय देवता नरेश मेहता दूसरा सप्तक पृ० १४२

राजनीतिक हलचलों के बीच बड़े कवि का उद्वेलित अन्तर-मानस समय-समय पर इस बात से विचलित होता रहा है कि किस प्रकार आज विश्व अपनी प्रगति में भी अपने ह्रास एवं संहार की भूमिका रचता जा रहा है। विश्वयुद्ध और अशांति का स्थायी निराकरण ढूंढ निकालने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहा है। पल्लव के सुकुमार कवि पंत जब प्रगतिवाद-युग की भूमिका में प्रवेश करते हैं उनके सम्मुख संक्रांति-काल का यही प्रश्न प्रमुख रूप से उपस्थित रहता है। साम्य का संगीत उनके कानों में गूंजता है। साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स के दर्शन पर उनकी आस्थाएँ खड़ी होती हैं। फलतः धर्मनीति और सदाचार की सही कसौटी के रूप में ही नहीं विश्व संस्कृति की प्राण-भावना के रूप में भी उन्हें जन-हित ही दिखाई देता है। इस विशाल विश्व चेतना की सुन्दर अभिव्यक्ति निम्न लिखित पंक्तियों में रूप पा गयी है

सभ्य शिष्ट औ संस्कृत लगते मन को केवल कुत्सित।
धर्म, नीति औ सदाचार का मूल्यांकन है जन हित।
× × ×
साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण।
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।
× × ×
धन्य मार्क्स! चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय-शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

—युगवाणी पंत

जहाँ कवियों की चेतना परिधि विश्व की तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं और परिस्थितियों को आत्मसात करते हुए चली है, वहीं उसके साथ कुछ ऐसे सत्य भी परिलक्षित होते हैं जो राष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रादुर्भूत हुए हैं। विभिन्न परिस्थितियों के विभिन्न चित्र पृथक-पृथक रखे जा सकते हैं।

एक सुदीर्घ काल तक पराधीन रहने के पश्चात् राष्ट्र को स्वातंत्र्य चेतना छू जाती है। सम्पूर्ण राष्ट्र अपने अधिकार की लड़ाई के लिए हुंकार भर कर क्रुद्ध सिंह की भाँति उठ पड़ता है, स्वतन्त्रता-देवी के चरण चूमने के लिए जवानियाँ संगीनों और मशीनगनों की नोकियों पर निर्भीक होकर दौड़ पड़ती हैं। प्रगतिवादी कविता में इन विशेष परिस्थितियों के भी बड़े ही सुन्दर और सप्राण चित्र उपलब्ध होते हैं।

निम्नांकित चित्र प्रचण्ड क्रांति में अपना होम देने वाली उठती हुई जवानियों का है

वे देख लो खड़ी हैं कौन तोप के निशान पर·
वे देख लो, खड़ी हैं कौन जिन्दगी की आन पर,

ये कौन थी जो छूट के अभी गिरी है जाम में ?
लहू बहा ? कि तेल आ गिरा नया चिराग में ?

—दिनकर : सामधेनी, पृ० ७१

यहाँ जवानी तो आँखों के सामने खड़ी होकर रगों में गर्म लहू की धारा प्रवाहित कर ही जाती है साथ ही चिराग में नया तेल आ गिरने की व्यंजना भी सन्निहित है। टिम टिम से चिराग में तेल पड़ने पर ज्योति दीप्त होकर ऊपर उठती है, उसकी रेखाएँ चारों ओर दौड़ जाती हैं। ऐसे ही क्रांति में नौजवानों के बहे हुए लहू का हाल हुआ। नौजवानों के लहू की धारा देखकर राष्ट्र का कण-कण जाग उठा।

राष्ट्रीय जन जागरण का निम्नांकित चित्र भी तात्कालिक उथल-पुथल का सजीव रूप उपस्थित करता है

आज कोपी सिंह-सी जनशक्ति की हुँकार गूँजी
अब शृगालों का मिटा साम्राज्य वन से
हो उठा है लाल नभ आया सबेरा
मंद तारे पड़ गये
आज जीवन] जागता है, रात की चूनर पुरानी हो गई।

—श्री हरिव्यास हंस अक्टूबर, १९४७

यहाँ और सब बातें तो स्पष्ट हैं। 'रात' पर ध्यान देना है। यह परतन्त्रता की काली निशा के लिए प्रतीक रूप में आयी है। उसकी चूनर के पुरानी हो जाने में विशेष व्यंजना यह है कि विदेशी शासकों की हस्ती अब नहीं रही उनकी चमक-दमक शान-बान सभी फीकी पड़ गयी।

एक ओर जहाँ राष्ट्र के जर्जर तन में एकाएक दौड़ गई नयी जिन्दगी के चित्र मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में स्वदेशी शासकों एवं अधिकारियों के शोषण दमन और उत्पीड़न के भी बहुत ही मार्मिक चित्र मिलते हैं जिनमें रंग भरने के लिए कहीं कवि का क्षोभ उठ खड़ा हुआ है तो कहीं उसकी करुणा। नागार्जुन की 'चुप न बोलना'[1] शीर्षक कविता देखिये।

इस प्रसंग में एक चित्र में हिन्दू-मुस्लिम दंगे का ही वर्णन है, यह चित्र भी देखने योग्य है। राजनीतिक पुट यहाँ भी है। कवि की व्यंग्यात्मकता उस अंग्रेजी सत्ता पर है जो देश में फूट के बीज डालकर, अब जो दंगे की आग भड़क उठी है, दूर बैठी तमाशा देख रही है

भाई की गरदन पर
भाई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है
पुरखों के घर का बँटवारा
एक अकड़ कर कहता
अपने मन का हक ले लेंगे

---

१. नागार्जुन चुप न बोलना, हंस, जून १९४२

और दूसरा कहता
तिल भर भूमि न बँटने देंगे।
पंच बना बैठा है घर में फूट डालने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

—सुमन विश्वास बढ़ता ही गया, पृ०४९

ऐसे ही विभिन्न राजनीतिक पहलुओं में अन्तर्हित सत्यों पर ढेरों चित्र श्रीनाथ द्विवेदी[१] तथा शिवशंकर वशिष्ठ[२] आदि कवियों की रचनाओं से उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रगतिवादी काव्य-चेतना के प्रमुखतः समाजोन्मुख होने के कारण ऐसे चित्रों का यहाँ मिलना स्वाभाविक है।

आर्थिक

राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व और पश्चात् दोनों की—जर्जर अर्थ-व्यवस्था और उसकी चक्की के नीचे दम तोड़ रही दीन हीन-निस्सहाय जनता की मजबूरी को व्यक्त करने भी अनेक कवियों ने अनेक मर्मस्पर्शी चित्र दिये हैं। उनमें से कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं।

दाने-दाने को तरस गयीं अगणित आँखें
दो बूँद दूध के लिए ललक
हिचकी लेकर, हो गये मौन
माताओं की छाती विदीर्ण अवरुद्ध कंठ रह गयी कसक।
बे-बरसे बिखर गये कितनी लाशों के घन।
कृमि-कीट सदृश
कुत्पाथों पर
मनु की प्यारी संतान मिट गयी बिलख-बिलख।

—सुमन विश्वास बढ़ता ही गया पृ० ९५

इन रेखाओं में बंगाल का अकाल ही नहीं, बबस भूखी लाशों का चित्र भी एक बार आँखों के सम्मुख खड़ा हो जाता है।

इसी क्रम में शहर में दम तोड़ रही एक बेबस पर और रास्ते पर बैठी छाया-सी मौन भिखारिणी के चित्र भी देखिये करुणा को रुलाने के लिए आह' इनके पास भी है

शहर में दूर कहीं
कूड़े से किसी घर में
टिमटिमाता है एक छोटा सा दिया
मौत की एक आँख-सी निर्लज्ज
बूढ़ी खटिया पे पड़े हैं बच्चे दो तीन
नंगे और भूखे;

—नेमिचन्द्र हंस नवम्बर १९५४

---

१ भारती कृष्ण श्रीनाथ द्विवेदी
२ सम्पुट शिवशंकर वशिष्ठ

'क्षयरोगी' का निम्नांकित चित्र कितना दर्दनाक है—

यह तो हड्डी का सूखा नर,
　　　　　अस्थिपिंजर।
जर्जर तन, मन, जीवन जर्जर,
　　　　　भग्न कलेवर।
गल गया हाड़ औ मांस रही बस
　　　　　　　त्वचा
यह जीवन का भग्नावशेष।
सूखी चमड़ी सिकुड़ी, सिमटी
हड्डी के ढांचे से लिपटी
पसली-पसली इसकी उभरी
हड्डी-हड्डी सूखी ठठरी
　　　　है कांप रही
पतझड़ के पीले पत्ते सी
अब गिरी और अब गिरी-गिरी,
यह नर है नर अथवा उसकी
है शापग्रस्त छाया भटकी ?

—त्रिभुवननाथ हंस

मध्यवित्त' का शोषित नारी के रूप में उपस्थित किया गया यह चित्र भी द्रष्टव्य

भटक-भटक मुँह बिचकाती है पथ पर पागल,
बूढ़े स्तन लटकाये नयी माता बेबस,
फूटे बर्तन-सी तिरस्कृता जन मानवता।

—गजानन मुक्तिबोध', हंस जुलाई १९४७

देश की इस दयनीय आर्थिक-स्थिति के फलस्वरूप अभाव अकाल और बीमारी का शिकार हुई जनता के ऐसे ही अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। उनके व्यंग्य की कलात्मक अभिव्यक्ति प्रत्येक स्थल पर भले ही न हुई हो, उसमें एक तीखापन तो अवश्य है, कुछ ऐसा तीखापन जो मनुष्य के अन्दर सोयी पड़ी मानवता और उसके पराक्रम को जगा दे। कुछ और चित्र देकर अब इस प्रसंग को समाप्त किया जाता है

(१) वह आता—
　　दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता

—निराला : भिखारी

(२) चुन चाटे अंगों के मोती चुन जाता जब दलित शरीर,
　　सहसा अग्रदूत आ जाता कौन उदर में लेकर पीर,
　　किन्तु कहाँ वह उदर भरा रह पाता है कुछ ही दो दिन,

पोसा करते हैं सियार दे रोटी के टुकड़े भिन्न-भिन्न,
माता बनी दूध भर आया किन्तु न भरता पापी पेट
जननी बनकर भी पशुओं के आगे नग्न सकेगी लेट।

—अंचल मधूलिका

(३) एक ओर समृद्धि थिरकती पास सिसकती है कंगाली,
एक देह पर एक न चिथड़ा एक स्वर्ण के गहनों वाली,
ऊपर खड़े हैं रम्य महल वे आसमान को छूने वाले
और बगल में बनी झोंपड़ी जिसके छप्पर चूने वाले।

—सुधीन्द्र प्रलय की वीणा

(४) खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा, खिलाया जाड़ा-घाम

—निराला कुकुरमुत्ता

(५) भूखे शिशुओं की चीत्कारें सोख रही नयनों का पानी,
सूखी सिकुड़ी सूखी हड्डियाँ करतीं विप्लव की अगवानी।
मुट्ठी भर दानों की तृष्णा महाक्रांति की भस्म जगाती,
आज क्षुधा इन कंकालों की सोये ज्वालामुखी जगाती।

—अंचल किरण बेला

प्रथम दो चित्र अस्थि-शेष भिखारी और पापी पेट के कारण अस्मत का सौदा करने को विवश औरत (जननी) का है। जननी रूप में औरत के पशुओं के सामने नग्न लेटने की समस्या को खड़ा कर कवि ने व्यंग्य को तीखा बना दिया है। तृतीय चित्र में गरीबी और अमीरी अभाव और वैभव तथा झोंपड़ी और महल के माध्यम से विषमता को उपस्थित किया गया है। ऐसे ही चौथे चित्र में श्रमिक वर्ग की कमाई पर मौज करने वाले धनिक-वर्ग को 'गुलाब' के प्रतीक से प्रस्तुत किया है। अंतिम चित्र में ऐसी व्यवस्था के प्रति कवि के गहरे क्षोभ और असंतोष के फलस्वरूप सूखी और बेजान हड्डियों को विप्लव की अगवानी करते हुए दिखाया गया है। यहाँ उसके साथ-साथ कोटि-कोटि शोषित और उत्पीड़ित जनता की भूख सोये हुए ज्वालामुखी (क्रांति) को जगाने में लगी हुई है।

साम जिक

प्रगतिवादी काव्य-धारा ने प्रमुख रूप से सामाजिक सत्य को ही ग्रहण किया है। यहाँ सामाजिक सत्यों को विभिन्न रूपों और रंगों में प्रस्तुत किया गया है। कवि का उद्देश्य कभी समाज के किसी अंग-विशेष का यथावत चित्रण या समाज की किसी धार्मिक भावना या अन्य गतिविधि पर व्यंग्य करना रहा है, तो कभी समाज की संकीर्ण मान्यताओं की परिधि रेखा में बन्द पड़ी किसी भावना या आकांक्षा को सहज सरस अभिव्यक्ति देना। [illegible]

व्यापार में कवि ने समाज से अनेक आधार-तत्वों को लेकर ऐसे अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनसे तत्कालीन सामाजिक गतिविधि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इन चित्रों में कलात्मकता हर जगह नहीं मिलती फिर भी उनके साथ एक विशेषता यह परिलक्षित होती है कि वे जैसे हैं उसी रूप में कवि के अभीष्ट व्यंग्य का सही-सही प्रकाशन कर देते हैं।

इस दृष्टि से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(१) हड्डियों की ठठरियों को देवता की कह कहकर
कहते हैं वे कर जोड़ते
और मांसल जिन्दगी के ताप को
वे वीतराग बना रहे हैं
त्याग, सत्य, सहिष्णुता कह
पूजते हैं।

—पंक्ति—पूर्वार्द्ध : रांगेय राघव हंस नवम्बर १९४७

(२) इन पुराने पीढ़ों का
कुछ न कर विश्वास ये सब
सौंप के नीचे समुन्दर में समाकर बुलबुले
बन गये हैं आज शाहंशाह बन के।

—ओ सिपाही हरिव्यास हंस अगस्त १९४७

(३) ये काम चोर
आराम तलब,
मोटे तोंदियल भारी भरकम
हट्टे-कट्टे सब औरों पर बोझा करते हैं;
हम कौशिक धरे हुक्के हैं। —केदार युग की गंगा, पृ० ४१

(४) चला-चला मैं सत्य खोजने,
कम की उठीं उँगलियाँ।
भ्रांति-व्यवस्थित परंपरा की
नाचीं नयन पुतलियाँ। —नीम अंगड़ाई, पृ० ११

(५) आज युगान्तर की बस्ती में
क्यों न दुश्मन सब बनना दें। —वही पृ० ९१

(६) आज शोषक-शोषितों में हो गया जग का विभाजन,
अस्थियों की नींव पर अकड़ा खड़ा प्रासाद का तन
धातु के कुछ ठीकरों पर मानवी-संज्ञा विसर्जन
मौन कंकड़-पत्थरों के बिक रहा है मनुज जीवन।

—सुमन विश्वास बढ़ता ही गया, पृ० ९

प्रथम चित्र में अभावग्रस्त नर-कंकाल तो सामने आता ही है, साथ ही उस 'देवता की कह' कहकर व्यंग भी किया गया है, व्यंग यह है कि जिन्हें आदमी को भूखा रखकर

सत्य संयम और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया जाता है उसके लिए कोई एक बाना एक कोड़ी तक देने को तैयार नहीं पर मुर्दे के लिए कफन की व्यवस्था की जाती है उसे मंजिल पर पहुँचाया जाता है। यहाँ 'डर' पर भी ध्यान देना अपेक्षित है। मुर्दे को कफन ओढ़ाते हैं इस डर से कि कहीं फुटपाथों या अन्य जगहों पर पड़ी नग्न लाश को देखकर लोगों में क्रान्ति की आग न जग जाय।

दूसरे चित्र में शोषकों पुराने शासकों और जन हित के अन्य प्रवाधक ठेकेदारों को रंग बदलकर शाहंशाह बने हुए गीदड़ों के रूप में व्यक्त कर तत्कालीन सामाजिक गतिविधि पर एक तीखा व्यंग किया गया है साथ ही उन पर विश्वास नहीं करने की चेतावनी भी है। तीसरे चित्र में दूसरों के श्रम पर अपने सुख-स्वप्नों का महल उठाने वाले पूँजीपतियों को हट्टे-कट्टे डांगर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'डांगर' से उनका चित्र तो स्पष्ट हो ही जाता है, साथ ही यह व्यंग भी ध्वनित होता है कि वे निरे पशु हैं जिनका मतलब सिर्फ अपना पेट भरने से रहता है। पाँचवें चित्र में कवि सत्य की खोज पर चल पड़ा है। उसकी प्रतिक्रिया में जड़ पुरातन रूढ़ियाँ काँप उठती हैं। भ्रान्ति-व्यवस्थित परम्परा की नयन पुत लियों के नाचने में यही व्यंग है। ऐसे ही छठे चित्र में पुराने कर्मकांडी एवं रीति-रिवाजों के शव को दफनाने की बात से कवि ने व्यंग्य-रूप से यह व्यक्त किया है कि वे अब मर चुके हैं शव-रूप में शेष हैं, समाज में सड़ान्ध उत्पन्न कर उसके वातावरण को दूषित कर रहे हैं, उन्हें अब दफना देना ही श्रेयस्कर है। अन्तिम चित्र में बालू के कुछ ठीकरों पर पत्थर कंकड़ के माथ मानव-जीवन के बिकने की ओर संकेत कर कवि ने तत्कालीन स्थिति का मनक्रम प्रस्तुत कर दिया है। सब चित्रों को मिलाकर देखा जाय तो समाज के शोषण उत्पीड़न और संकीर्ण रूढ़ियों और उनके नीचे दम तोड़ रहे निरीह प्राणियों की दयनीय स्थिति अपनी नग्नता में सामने खड़ी हो जाती है।

समाज के नूतन निर्माण के निमित्त प्रथमतः समाज की सकीर्ण मान्यताओं और रूढ़ियों की दीवार को ढहा देने की आवश्यकता है। इसके लिए जनता की चेतना पर छाये हुए सामन्ती-संस्कारों को मिटाना अनिवार्य है। इसीलिए, कवि देवमूर्ति को सम्मुख रखकर जनता के अन्दर जड़ जमाए बैठी हुई 'ईश्वर की उदार भावना' पर चोट करता है

छोटी-सी देवमूर्ति
आले में रक्खी थी
बेचारी औचक ही
चूहे के धक्के से
वाला के पत्थर पर
नीचे गिर टूट गयी
ताज्जुब है मुझको तो
करुणा के सागर के
अन्तर की एक बूँद
भूमि पर न ढलकी।

—केदार, युग की गंगा पृ० ६४

यहाँ दो बातों पर ध्यान देना है (१) चूहे के धक्के से भी अपनी हिफ़ाज़त करने में जो असमर्थ है वह दूसरों को कहाँ तक बचायेगा ? (२) करुणासागर भगवान को देवमूर्ति के टूट जाने पर तनिक भी दया नहीं आयी उनकी आँखों से आँसू की एक बूँद तक नहीं टपकी। ऐसे ही 'सोने के देवता' और 'देवताओं की आत्म-हत्या' (युगधारा पृ० २९ २८) में भी तीखा व्यंग्य ध्वनित हुआ है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी अर्थ-संकट, शोषण और उत्पीड़न के नीचे समाज तबाह होता रहा। लाभांश की अधिकाधिक प्राप्ति के लोलुप व्यक्ति जनता के मरने-जीने की परवाह न कर मुनाफ़ाखोरी की ओर उसी तरह दौड़े जैसे बंधन-मुक्त हो जाने पर कोई पशु हरियाली की ओर दौड़ता है। निम्नांकित पंक्तियों में ऐसे ही मुनाफ़ाखोरों को फसल चरने वाले हैवानों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बात-बात पर नाक रगड़ना पड़ता है इंसानों को।
हरी फसल चरने को छुट्टा छोड़ दिया हैवानों को।।

—नागार्जुन

बात-बात पर नाक रगड़ने की बात से साधनहीन उस जनता की तबाही का चित्र उपस्थित किया गया है जिसमें पड़कर उस छोटी सी छोटी बात के लिए भी वर्णनातीत परेशानियों को उठाना पड़ता है 'राशनिंग और कंट्रोल' के समय की तबाही सामने खड़ी हो जाती है।

ऐसे ही गरीब और बुरी तरह तबाह रिआया (जनता) के आँसुओं और दबी हाय पर मौज करने वाले सिपाहियों पुलिसों और अन्य कर्मचारियों की अन्धेर और फ़िज़ूलखर्ची पर भी एक व्यंग्य चित्र देखा जा सकता है

पुलिस और पल्टन के हाथी कितना चारा खाते हैं।

—नागार्जुन

पुलिस और पल्टन के अधिकारियों को बहुत ज्यादा चारा खाने वाले हाथी के रूप में रख देने से व्यंग्य के प्रकाशन में कितना बल आ गया है।

तत्कालीन समाज की गरीब रिआया पर ज़मींदारों के ज़ोर-ज़ुल्म का सजीव चित्रण निम्नलिखित पंक्तियाँ करती हैं

लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बन्धु खेतिहर को देख-देखकर।

—निराला

गाँव में सिपाही के आने से असहाय रिआया पर आतंक दौड़ गया है, सभी लोग मग्न हैं। सिपाही आता है और अकड़कर रोब-गालिब करता है और वापिस चला जाता है। उस समय लोगों के साथ बैठे हुए कुत्ते को अपने साथियों (मूक रिआया) से सहानुभूति होती है करुणा से बन्धु खेतिहर को देख-देखकर वह भूँकने लगता है। उसे तो सहानुभूति होती है, पर ज़मींदार या उसके सिपाही को तनिक भी दया नहीं आती। एक व्यंग्य तो यह है। और

दूसरा व्यंग्य है कुत्ते के भूँकने में विरोध की व्यंजना। कुत्ता कुत्ता होकर सिर उठा सकता है लेकिन आदमी नहीं। इस बात में व्यंग्य यह है कि जनता को भी सिर उठा कर जुल्म का सामना करना चाहिए।

अन्त में कुछ प्रतीकात्मक चित्रों को प्रस्तुत कर इस प्रसंग को समाप्त किया जाता है।

(१) आदर्शों के व्यक्त शिवालय के सूने में
स्वार्थी इच्छा श्वान दुबकते, सोते नीरव
हैं सुविधानुसार सत्यों के प्रयोग अभिनव।

—मुक्तिबोध हंस जुलाई, १९४७

(२) बर्बर रूढ़ियों की सामने प्राचीन फैली चीन की दीवार
कैसे यह सकोगे और कैसे कर सकोगे पार ?

—महेन्द्र भटनागर हंस, जुलाई, १९४७

(३) फनों पर सकल संसार, कुंडली मार
पड़ा हो अहि विशाल
आक्रांत धरा की छाती पर
गुमसुम बैठा मध्यान्ह काल।—
विषभरी बेरहम थपेड़ों से सबको पछाड़—
× × ×
क्या जीवन का अवरोध कहीं ?
उपहास क्रूर अधरों पर धर,
अपलक आँखों में ज्वाला भर,
अजगर मग देख रहा है मग।

—नरेन्द्र शर्मा पलाश वन पृ० ६९-७०

प्रथम चित्र मध्यवित्त' का है। यह वर्ग समाज पर कोढ़ के समान हावी है। उसके लिए कोई मान्यता नहीं है कोई आदर्श नहीं कोई सत्य नहीं। आदर्शों के व्यक्त शिवालय का अर्थ यह है कि उसके पास कोई आदर्श नहीं। उसमें से कुछ अति चतुर और व्यवहार पटु व्यक्ति अपने स्वार्थ-साधन के लिए नीच-से-नीच कर्म करने में भी नहीं हिचकिचाते। श्वानों के दुबक कर सोने में यही व्यंजना है। उनमें नैतिक साहस नहीं है, वे दुबके पड़े रहते हैं मौके की ताक में रहते हैं और समय पाते ही नये-नये सत्यों का अभिनव प्रयोग करते हैं। 'सुविधानुसार सत्यों के अभिनव प्रयोग' में व्यंजना यह है कि जब जैसी जरूरत पड़ती है वे वैसा कदम उठाते हैं उनके लिए नैतिक-अनैतिक सत्य-असत्य और कर्तव्य-अकर्तव्य कुछ नहीं। दूसरे चित्र में 'भावी युग' की निर्माण-कल्पना में बाधक तत्त्व एवं संकीर्ण रूढ़ियों को अजेय 'चीन की दीवार' कहकर यह व्यंग्य रूप से बताया गया है कि समाज की संकीर्ण और अनुदार रूढ़ियों और रूढ़िगत अन्य बुराइयों से संघर्ष करना सरल नहीं है। 'कार्य की कठिनाई की ओर ही संकेत किया गया है विजय की असंभावना की ओर नहीं। तीसरा चित्र पूर्णरूप से प्रतीक पर आधारित है जिसका व्यंग्य है विश्व-समाज के ऊपर कुंडली मारकर निश्चिन्त बैठे हुए अजगर के समान पूँजीवादी शोषण की सुदृढ़ स्थिति। ज्येष्ठ के

मध्याह्न को उसके अन्दर पूँजीवादी वृत्तियों की व्यंग्य रूप से प्रतिष्ठा कर—अजगर के रूप में कतिपय प्रतीक-उक्तियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। आक्रांत धरा पर घुमसुम बैठा मध्याह्न काल कुण्डली मारकर बैठे हुए विशाल अहि के सादृश्य सा, मूर्त हो जाता है। फुफकारने और आँखों में ज्वाला भर कर कुछ देखने की क्रिया से पूँजीवाद की अजगर रूप स्थिति सजीव हो गयी है। कला की दृष्टि से प्रगतिवाद में ऐसे संश्लिष्ट चित्र विरल हैं।

व्यावसायिक

इसके अंतर्गत कृषि-क्षेत्र कल-कारखाना, अस्पताल विद्यालय और अन्य कार्य-क्षेत्रों से उपकरण लिये गए हैं। उन उपकरणों पर आधारित कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं :

१—(क) उग रहीं तलवार की फसलें—

—विश्वास बढ़ता ही गया, पृ० ८९

(ख) नव-जीवन की नयी फसल यह
रक्तधार से धरा सिंची है—

—वही पृ० ११

(ग) इसी भाँति से फसलों सा इन्सान उठेगा,
और चूम लेने को जीवन-ज्वार छुटेगा—

—वही पृ० १०४

(घ) कुबलकृत भूमि यह किसान की
धरती के पुत्र को
बोलती है महरी सो बार-बार हल-धार
बोना महाशक्ति यहाँ बीज असंतोष का
काटनी है नये साल फागुन में जो क्रांति की।

—रामविलास शर्मा तार सप्तक, पृ० ६

२—(क) हिनहिनाते अश्व भीतर काँपते हैं भूमि रह-रह
और वे साहस बैठे हाँकते हैं जिन्दगी को
सिर्फ भाड़े के लिए ज्यों एक गाड़ी जा रही है। —रांगेय राघव

(ख) कोयले की खान की मजदूरनी सी रात
खोल होती तिमिर की बिमाल सी अनुवाद।

—रांगेय राघव

'एक' के चारों-के-चारों चित्र कृषि-श्रम के हैं। सभी फसल और भूमि पर आधारित हैं। यहाँ इन उपकरणों के माध्यम से तत्कालीन क्रांति और उससे संबंधित अन्य भाव नाओं की व्यंजना की गयी है। 'क' में तलवार की फसलों के उगने की ओर संकेत कर इस बात को व्यंजना रूप से प्रस्तुत किया गया है कि युद्ध पिपासु विश्व भावी युद्ध की तैयारी में अधिकाधिक शक्ति संचय करने में लगा है। 'ख' में रक्त की धारा से सिंचित नयी भूमि और नयी फसल के रूप में नयी मानवता के उत्तरोत्तर विकास की ओर संकेत करने के

निमित्त 'नयी फसल' की योजना की गयी है। 'ग' में रक्तपात शोषण और उत्पीड़न की व्यंजना 'इसी आँच' की योजना से की गयी है। कवि का व्यंग्य यह है कि इन सबसे इंसान मरने वाला नहीं है। इन्हीं जगरोधों से उसकी सुप्त शक्ति अँगड़ाई लेकर जाग उठेगी। लहलहाती फसलों के समान वह भी बढ़ेगा फैलेगा। दूसरी पंक्ति में चाँद को चूम लेने के लिए जीवन-ज्वार के उठने की ओर संकेत कर व्यंजना रूप से यह कहा गया है कि हमारा सामान्य जन-जीवन उत्तरोत्तर विकास करता जायेगा। 'चाँद' उन्नति के पराकाष्ठा-बिन्दु का प्रतीक है। 'घ' में वस्तुतः भूमि में नहीं किसानों के अन्दर असंतोष के बीज के बोये जाने की बात सम्मुख लायी गयी है। जब असंतोष फैलेगा तभी क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार होगी। कवि का उद्देश्य क्रांति की तैयारी करना है जिसके लिए जन-मानस में असंतोष का बीज डालना अनिवार्य है।

'दो' के 'क' में मन्थरगत घोड़ागाड़ी हाँकने वाले साईस का चित्र है। उस साईस को साईसी से जितना पैसा मिल जाय उसी से मतलब है। उसकी जिन्दगी और अन्य सुखों से विरक्त होकर साईसी की चक्की में मन्थरगत चलती जा रही है। 'ख' में अंधकार के बोझ को सिर पर लिए हुए रात के चलने का दृश्य उपस्थित किया गया है। रात अंधकार का बोझ ही ढोती है अंधकार में होने वाले सुख-दुख का उसको कोई ज्ञान नहीं। इसी बात की व्यंजना उपमान रूप में कोयले की खान की मजदूरनी को लाकर की गयी है। मजदूरनी दम तोड़-तोड़ कर सिर पर रात-दिन कोयले का बोझ तो ढोती है पर उसे इस बात का पता नहीं कि कोयले में कहीं ऐश्वर्य की खान भी छिपी है।

वर्णचित्र

(१)
भूखा है कुछ पैसे पा, गुनगुना
खड़ा हो जाता वह नर
वह पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोई चल रहा जानवर। —पंत ग्राम्या, पृ० २९ ३०

(२)
द्विजवर स्नान कर चढ़ा सलिल
शिव पर दूर्वादल, तंदुल तिल
लेकर झोली आये ऊपर
देखकर चले तत्पर वानर।
द्विज रामभक्त, भक्ति की आश
भजते शिव को बारहों मास
कर रामायण का पारायण
जपते हैं श्रीमन्नारायण
दुख पाते जब होते अनाथ,
कहते कपियों से जोड़ हाथ,
मेरे पड़ोस के वे सज्जन
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिरकर,
जिस ओर रहा वह भिक्षुक इतर,
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं—'धन्य श्रेष्ठ मानव।'

—निराला

प्रथम चित्र द्वार-द्वार पर जाकर भीख माँगते हुए भिखारी का है जिसकी दयनीयता को पिछले पैरों पर उठकर चलते हुए जानवर के सादृश्य से प्रस्तुत किया गया है। भीख पा जाने पर वह भिखारी वहाँ से अन्यत्र गमन करने के लिए धक्का-धक्का उसी तरह उठता है जैसे पिछले पैरों के बल पर कोई जानवर। यह उठने की क्रिया प्रकट-रूप से उसकी टूटी हुई शक्ति और जर्जर काया की प्रतीक है। द्वितीय चित्र में नित्य-प्रति दान-पुण्य करने में रत दानशील व्यक्ति को कुछ सजीव उपकरणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कवि का अभीष्ट ढोंगी व्यक्तियों की दानशीलता पर व्यंग्य करना है। इसके लिए वह उनकी दान क्रिया को दो विरोधी स्थितियों में रखता है। एक ओर वानर हैं और दूसरी ओर नर कंकाल-भिखारी। भूखा भिखारी जिस स्थिति में है, उसमें उसे 'पुए' की पुए न सही खाद्य वस्तु की सबसे अधिक आवश्यकता है। जबकि प्रश्न यह है कि वह भूखा भिखारी दीन-हीन मानव है। वानर (हनुमान) नहीं। कोई व्यक्ति दान पुण्य निस्वार्थ नहीं करता अभीष्ट की प्राप्ति के लिए करता है। उस अभीष्ट प्राप्ति में वानर सहायक हो सकते हैं, भूख से मरता हुआ आदमी नहीं। इसलिए दान के 'पुए' वानरों के लिए हैं, भूखे भिखारी के लिए नहीं। नित्य-प्रति के कार्य के माध्यम से ऐसी दानशीलता पर, कवि का यह सफल व्यंग्य है। प्रथम चित्र की तुलना में इस चित्र की विशेषता दो बातों से सिद्ध है। प्रथम चित्र में कवि ने निरासक्त भाव से भिखारी को उपस्थित कर दिया है, जबकि द्वितीय में कवि के साथ एक उद्देश्य भी है। यहाँ उसकी समाजोन्मुखता स्पष्ट है। दूसरी बात यह है कि विरोधी स्थितियों में पड़कर व्यंग्य कुछ ज्यादा तीखा हो गया है।

विविध

इसके अन्तर्गत कतिपय भाव चित्रों और प्रगतिवादी काव्य धारा के कुछ सफल प्रतीक-प्रयोगों की ओर संकेत किया गया है। देखिए

(१) बड़ी सुन्दरी लहर न जाने किस सागर की,
पहले पहले
सम्मुख आकर,
मुस्काकर बाँहों में भरकर
गले लगा लेती है मुझको।

—नदार मीद न बारन पृ० २१।०

(२) दलित प्रस्तर खंड में भी
नग्न-नारी देह सुन्दर

मांस की मृदुता भरे थी,
कांतिमय स्वस्थ यौवन खुल रहा था
हंस-ग्रीवा के सुकोमल वृन्त पर
मुख था कमलमय ;
सुगम भाव-प्रवाह प्रवाहक,
तार वीणा के सदृश, सब
केश जूड़े तक खिंचे थे,
रक्त मुखे नैन-नेही खुल गये थे
बन्द होंगे फिर न वैसे, रस भरे दोनों अधर,
होकर कड़े अति सट गये थे,
और कंधों से तनिक नीचे उतर कर,
वासना के हाथ से अब तक अछूते औ अशोषित
दो मृदुल उभार वृत्ताकार कुच थे,
ठीक जिनके बीच में सँकरे सुघर पथ
पंचशर ने पंच-बाणों को धरा था।
क्षीण कटि थी,
पीन जाँघें
थक नहीं सकते चरण थे।
दूर, अतिशय दूर—
धूमिल क्षितिज-रेखा पार जाकर,
आज तक आया न प्रेमी मूर्तिकार।
नग्न-नारी प्राणप्यारी चुप खड़ी थी।
—केदार युग की गंगा पृ० ५२

(३) बीच में ही नींद टूटी अप्सरा की
भग गयी कटि में लपेट दुकूल
शिथिल अस्तव्यस्त शय्या कह रही है,
रात में बिखरे यहाँ थे फूल।
—सुमन विश्वास बढ़ता ही गया पृ० ७४

(४) कच्चे दूध सरीखी गोरी-गोरी नग्न भुजाएँ,
जिनकी मोम-मृदुलता
स्निग्ध पक्षिल शीतलता—
क्षणिक, इनमें कस लो मुझको उर-धड़कन रुक जावे। —गुलाब

(५) यह महीन मलमल की सारी
उसके नीचे गरम गुलाबी चोली से ये कसे हुए,
पीनोन्नत स्तन
यह क कुच-आघात से कंपित काया,

यह तन
किसी सुहागिन की अर्थी पर
बड़ी-बड़ी चीलों के मानो तीक्ष्ण चञ्चु से बसे हुए।

—प्रभाकर माचवे

प्रथम चित्र में समुद्र की सुन्दर लहरों को मांसल रूप दिया गया है। पुलकाकुल बाँहों में भर कर गले लगा लेने की क्रिया से सिहरन भरे रोमांच की रति स्थिति की ओर संकेत किया गया है। द्वितीय चित्र प्रस्तर मूर्ति का है। नगी मूर्ति के उभरे अवयवों की ओर, उसके देह-विन्यास के चित्रण के क्रम में ध्यान विशेष रूप से खींचा गया है। नारी की नग्न देह-यष्टि का प्रबल आकर्षण मन को अनेक सेक्स आधारों पर उत्तेजित कर अपने में बरबस बाँध लेता है। मूर्ति के माध्यम से प्रिय आगमन की प्रतीक्षा में खोयी-खोयी कामोत्पीड़ित नारी को सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। चित्र में जितनी नग्नता है, उससे बढ़कर है आनुभूतिक सौंदर्य। कलात्मकता इसी बात में है। तृतीय चित्र में नग्नता तो काफी है पर उसकी कलात्मकता उसको ढँक लेती है। 'कटि में कुसुम लपेट कर नाचने' से रति क्रीड़ा में रत नग्न अप्सरा की ओर संकेत है। शय्या के अस्तव्यस्त स्थिति में होने और उस पर फूल के बिखरे पड़े होने से क्रीड़ा-चित्र में और रंग भर गया है। चतुर्थ चित्र में सेक्स भावना की नग्नता पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। यहाँ कलात्मकता के नहीं होने से यह नग्नता भद्दी हो जाती है। पंचम चित्र में तो कवि की कामुकता भावना की नग्नता पर दौड़कर बीभत्स हो गयी है। ऐसी काम-चेष्टा मृत्यु रति के अन्तर्गत आती है और स्वस्थ काव्य धारा के लिए हेय है।

अन्त में, प्रपद्यवाद में कतिपय सफल प्रतीक प्रयोगों की ओर संकेत कर इस प्रकरण को समाप्त किया जाता है। धीरेश्वर सिंह की 'कंघी' और नरेन्द्र शर्मा की 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' शीर्षक कविताएँ सफल और सशक्त प्रतीक प्रयोगों के रूप में पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी हैं। केदार की कविता 'धुआ ईंट' और 'देवताओं की आत्महत्या' भी इसी प्रकार कतिपय प्रतीकों पर आधारित है। 'धुआ ईंट'[1] समाज की उस अजेय शक्ति एवं कुर्बानी की प्रतीक है जो समाज की उन्नति की भव्य इमारत के निर्माण के मूल में अवस्थित है। 'देवताओं की आत्म-हत्या'[2] में देवता समाज की निरीहता और असमर्थता से फायदा उठाकर मान-प्रतिष्ठा प्राप्त उन शोषक शासकों के प्रतीक हैं जो जुल्म की कलई खुल जाने के भय से जन-जागृति के होते-होते आत्म हत्या कर बैठते हैं। शीन का 'दो पैसे का कार्ड'[3] मुफ्त में मिली खोखली आजादी पर व्यंग्य-प्रतीक है।

---

१. धुआ ईंट युग कंप पृ ४१
२. देवताओं की आत्महत्या वही पृ० २८
३ दो पैसे का कार्ड : शीन [illegible] पृ० २६-२७

अध्याय ७

प्रयोग काल

विषय प्रवेश एवं सामान्य प्रवृत्तियाँ

कविता में प्रयोग कोई नयी बात नहीं है। विषयवस्तु और उसकी अभिव्यक्ति की मौलिक समस्याओं को लेकर आरंभ से आज तक न जाने कितने प्रयोग हो चुके हैं। एक प्रकार की वस्तु कुछ दिन के निरंतर व्यवहार में पड़ने के कारण पुरानी पड़कर अपना रंग और आकर्षण खो देती है। यही हाल उसके अभिव्यक्ति-माध्यम का भी होता है। फलतः आत्मा की वाणी और शब्द शक्तियों के साधक को समय-समय पर प्रचलित परंपरा किंवा लीक से हटकर कुछ नयी वस्तुओं को प्रयोगरूप में अपनाना पड़ा है। नयी वस्तुओं के प्रयोग रूप में अपनाये जाने के फलस्वरूप अभिव्यक्ति-माध्यम में भी प्रयोग की आवश्यकता प्रतीत होती रही है इसलिए, प्रयोग होते रहे हैं। उदाहरण गिनाने का स्थल नहीं है इसीलिए प्रारंभिक प्रयोग के एक स्थल की ओर संकेत कर देना यहाँ पर्याप्त होगा।

वस्तु चयन और उसकी अभिव्यक्ति की जो एक सुस्पष्ट लीक वेदों में मिलती है, आदि कवि वाल्मीकि ने उससे पृथक् हटकर ही नयी वस्तु के रूप में अपनी आत्मा की वाणी को चुना (जिसके उद्भव का हेतु क्रौंच-वध की घटना है) और उसकी अभिव्यक्ति के लिए एक सर्वथा नवीन छन्द—अनुष्टुप को जन्म दिया। विचारपूर्वक देखा जाय तो यह भी एक प्रयोग ही रहा।

तब से आज तक जब-जब कवि के सम्मुख लीक से हटकर चलने का प्रश्न उपस्थित हुआ है तब-तब नये प्रयोग की अनिवार्यता भी सामने आयी है और इस प्रकार नये नये प्रयोगों के ब्याज से काव्य की आधार भूमियों एवं काव्याभिव्यक्ति के मार्ग में अनेकानेक परिवर्तन परिलक्षित होते आये हैं। वैदिक साहित्य की तुलना में पौराणिक एवं औपनिषदिक साहित्य पौराणिक एवं औपनिषदिक साहित्य की तुलना में हिन्दी साहित्य के आविर्भाव में उत्पन्न साहित्य के सभी प्रयोग ही तो हैं। इसी प्रकार वीर-काव्य भक्ति-काव्य रीति-काव्य और तत्पश्चात् आधुनिक काव्य एवं उसके विविध महत्वपूर्ण मोड़ों को भी एक-न एक दृष्टि से प्रयोग की सीमा रेखा में सीमित किया जा सकता है। इस दृष्टि से यह कहना कि काव्य क्षेत्र में प्रयोग के लाने का श्रेय आधुनिक कवियों—उनमें भी प्रगतिवाद-काल के कवियों को है—बिलकुल गलत होगा।

प्रगति और प्रयोग अपनी शाश्वत स्थिति में आज प्रचलित प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद से, एक बिलकुल भिन्न इकाई का निर्माण करते हैं। प्रगति मानव की प्रगतिशील चतना के

उत्तरोत्तर विकास एवं संवर्धन के साथ-साथ चलने वाली एक अविच्छिन्न रेखा है। ऐसे ही प्रयोग मानव के अन्तर्जगत् में जो उसके बाह्यजगत् की प्रतिक्रियाओं से प्रायः आंदोलित हुआ करता है—अनुभूत सत्य इकाइयों एवं उनकी उत्तरोत्तर नवीन होती जाने वाली प्रेषणीयता की अप्रतिहत भाव-धारा है। इनका रूढ़-अर्थ में प्रतिष्ठित प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद से कोई संबंध नहीं ये वादों की सीमा से परे के प्रश्न हैं।

प्रयोग की व्याप्ति मूलतः काव्य के विविध उपकरणों के चयन शब्द-शक्तियों की यथावत पहचान और तत्पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति में है। और विचार से देखा जाय तो यह कविता के साथ संबद्ध एक शाश्वत प्रश्न है। प्रयोग की व्याप्ति को अपने तक सीमित रखने वाली ये वे प्रक्रियाएँ हैं जिनकी उपेक्षा किसी भी कवि से संभव नहीं है।

प्रचलित प्रयोगवाद आंग्ल-शब्द एक्सपेरिमेंटलिज्म (Experimentalism) से आया है। Experiment का शाब्दिक अर्थ भी प्रयोग ही है। हिन्दी कविता में जो प्रयोग चल रहा है उसके मूल में हमारे कतिपय आभ्यंतरिक प्रेरणा-स्रोतों की अवस्थिति तो है ही साथ ही यह कहना भी गलत नहीं होगा कि उस पर आंग्ल-कविता विशेषकर टी॰ एस॰ इलियट, एजरा पाउण्ड की कविताओं का भी एक तगड़ा प्रभाव काम कर रहा है जिससे कभी कभी ऐसा भी होता है कि कविता का प्रकट रूप और स्वर छिन जाता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सामने पड़ी रेखाएँ कविता के रूप में कविता न होकर कुछ और ही हैं।

इतिहास की दृष्टि से प्रगतिवाद की धारा के शांत पड़ जाने के तुरन्त बाद हिन्दी कविता ने कोई ऐसा खास मोड़ नहीं लिया जिसके आधार पर फिर किसी नये वाद का श्रीगणेश माना जाय। वस्तुतः बात यह थी कि अभी जब प्रगतिवाद की अनुपयोगिता प्रमाणित नहीं हुई थी कि उसके समानान्तर में एक नयी काव्य-धारा परिलक्षित होने लगी। प्रगतिवाद एक विशेष मतवाद का आग्रह लेकर चल रहा था उसकी काव्य-वस्तु के उपकरण एक विशेष क्षेत्र की सीमारेखा तक ही सीमित थे। उसके भावों का उबाल प्रभुता-सपन्न और अधिकार प्राप्त वर्गों के प्रति रोष क्षोभ और घृणा के रूप में प्रकट होता था। उसने सामान्यतः ईश्वर को गालियाँ देना मनुष्य में घोर घृणा की भावना को उत्पन्न करना पूर्व प्रतिष्ठित राजनीतिक आर्थिक और अन्य सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं को छिन्न-भिन्न करना और सबसे ऊपर आग विध्वंस और आत्मघाती संघर्ष का सहारा लेना आदि को अपना नैतिक संकल्प मान लिया था। किन्तु इस नयी काव्य-धारा के साथ ऐसा कोई विशेष प्रतिबंध नहीं था।

इसके प्रतिकूल नयी काव्य-धारा संक्रांतिकालीन परिस्थितियों की उलझनों में उलझ कर भी अपने अनुकूल कोई एक नया रास्ता ढूँढने में व्यस्त दिखी। उसके सम्मुख धर्म ईश्वर, सामाजिकता और नैतिक-अनैतिक मान्यताओं आदि का प्रश्न उतने ज्वलंत रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ था, जितना काव्य की प्रकृत-चेतना को अप्रतिहत रूप में कायम रखने का। बहुत कुछ इसीलिए उसने, प्रारंभ में अपने को समाज के विभिन्न स्थलों पर प्रकट हो रहे अन्तर्विरोधों उसके संघर्षों एवं कुहासों से पृथक रखा। काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त रस आनन्द और कलात्मक परितोष की सम्प्राप्ति एवं समुचित विश्लेषण ही उसका अभीष्ट रहा। तथ्य की दृष्टि से कहा जाय तो इसे काव्य की वस्तु-परक स्थितियों और मान्यताओं पर उसकी सौंदर्य परक मान्यताओं एवं स्थितियों की विजय कह सकते हैं।

इस काल की कविता यद्यपि अनगढ़ थी और इसमें छायावाद जैसा मार्दव और प्रसाद-गुण नहीं था तथापि यह छंद विषय और उपमानों में एक ताजगी लिये हुए चली जा रही थी। सन् १९४१ ई० तक आते-आते इस प्रयोगकालीन कविता का रूप बहुत कुछ स्थिर होता जा रहा था। इस प्रकार के प्रयोगों के साथ नयी सामाजिक चेतना भी कविता का विषय बन रही थी जिसे प्रगतिवाद की संज्ञा दी गयी थी। लेकिन उस समय सामाजिक विषयवस्तु और रूप प्रकार के ये प्रयोग साथ मिलकर चल रहे थे और दोनों एक दूसरे के पूरक समझे जाते थे। परिपाटीगत माध्यमों से विद्रोह भी प्रगतिशील माना जाता था। ऐसी स्थिति में 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित तार-सप्तक सन् १९४३ ई० में प्रकाशित हुआ जिसमें छंद, भाषा उपमान अर्थात् रूप-प्रकार पर प्रयोग करने वाले कवियों की रचनाएँ भी थीं और सामाजिक वस्तु-तत्त्व को लेकर चलने वाली कविताएँ भी। इससे स्पष्ट है कि सन् १९४३-४४ ई० तक प्रयोगशील कविता का कोई अलग 'वाद' नहीं बना था। सन् १९४४-४५ के बाद जब नई सामाजिक चेतना मार्क्सवाद से संबद्ध की गयी तब केवल रूप-प्रकार पर किये हुए प्रयोगों को प्रयोगवाद का नाम दिया जाने लगा। इस नाम को देने का श्रेय प्रगतिवादियों को है जिन्होंने रूप प्रकार-प्रधान कविता में एक तरह के रूपवाद और प्रकृतिवाद का आभास देखा था। इसी बिन्दु से प्रगतिशील और प्रयोगशील कविता का अंतर बढ़ता गया। प्रगतिवादियों का प्रयोगशील कविता पर यह आक्षेप रहा है कि ऐसी कविता में रूप प्रकार पर ही अधिक जोर दिया जा रहा है जब कि सामाजिक वस्तु-तथ्य पर दिया जाना चाहिए। इसीलिए मात्र प्रयोगशीलता को व्यक्तिवादी और प्रतिक्रियावादी मानते हैं। इस सीमा तक यह आक्षेप सही हो सकता है किन्तु जब यही बात आगे बढ़ाकर इस हद तक ले जायी जाती है कि सामाजिक वस्तु तत्त्व ही प्रधान है अन्य सब चीजें गौण और निरर्थक हैं तब उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता'।[1]

प्रगतिवाद के समानान्तर चलने वाली *प्रयोगशील नाम से अभिहित यह नयी काव्य* धारा तत्कालीन अधिकांश कवियों के अन्तर्जगत् के भावों विचारों एवं अन्य छाया छवियों के मूर्तीकरण एवं अभिव्यक्ति के लिए बहुत अनुकूल लगी। इसीलिए कविता में सामाजिक तथ्यों और वस्तु-सत्यों की प्रतिष्ठा पर जोर देने वाले और कविता को अन्तर्जगत् के आनन्द और सौंदर्य के उन्मेष में सहायक मानने वाले दोनों ही गुटों के कवि सम्मिलित हुए। फलतः सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त नहीं होने पर भी यह काव्य धारा विशेष रूप से सप्राण और गतिवान होती गयी जब कि प्रगतिवादी धारा अपने संकीर्ण मतवादों के दुराग्रह के कारण *सामान्य पाठक और जन-साधारण की सहानुभूति खोकर धीरे-धीरे क्षीण और गौण होती जा* रही थी। अन्त में तो वह अस्तित्व-शेष भी नहीं नामशेष के रूप में ही रह गयी और उसकी जगह प्रयोगशील कविता का ही समर्थन और विरोध के बीच शनैः शनैः विस्तार हुआ और यह पाठक-वर्ग से अपेक्षित संपर्क प्राप्त करती गयी यद्यपि उसके ग्रहण की भूमि उतनी विस्तृत नहीं रही। प्रयोगवादी कविता के इस संभावित अभाव की ओर आचार्य विनयमोहन

१ प्रयोगशील कविता का अस्तित्व भविष्य आलोचनांक जनवरी १९५४

—ले० गिरिजाकुमार माथुर

शर्मा की पैनी दृष्टि गयी है और उन्होंने प्रयोग के कार्यक्षेत्र को एक प्रकार से मान्यता प्रदान करते हुए भी उस अभाव के परिहार के निमित्त अपना ठोस सुझाव दिया है प्रयोगवादी रचना में शैली की अभिनवता नूतन प्रतीक नव कल्पनाएँ, प्रचलित पदों का प्रयोग और नवीन छन्दों का सृजन आवश्यक समझा जाता है। कवि सदा प्रयोगवादी होता है। क्षण क्षण नवीनता की खोज में वह आतुर रहता है, इसलिए यह वाद कोई नूतन संदेश लेकर नहीं आ रहा है काव्य में समवत: गत्यवरोध दूर करने के लिए इसे प्रभावित किया जा रहा है। यदि प्रयोगवादी कवि भाषा और शैली को युगानुरूप बनाने के साथ ही उनमें सामान्य मानव-भावनाओं को भी जिनमें युग झाँकता रहता है, अंकित कर सकें तो वे हिन्दी कविता में सचमुच नूतनता सृजन करने के श्रेय के भागी होंगे।[1]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मान्य आलोचक के सुझाव में जो दर्शन है उससे इतना तो प्रमाणित होता है कि प्रयोगवादी कवि काव्य शिल्प को लेकर नूतन एवं अपेक्षित प्रयोग कर रहे हैं। अब प्रश्न है सामान्य भावनाओं को अंकित करने का। यह भी पूरा हो जाता है तो प्रयोगवादी प्रयास अभिनन्दनीय होगा विशेषतः इसीलिए कि उसकी सफलता से एक अभाव के दूर हो जाने की निश्चित संभावना है।

डा० भोलानाथ ने अपनी प्रबन्ध पुस्तक 'हिन्दी साहित्य (१९२६ १९४७ ई०) में प्रयोगवाद का स्पर्श करते हुए उसे व्यापक प्रगतिवाद के अन्तर्गत ही माना है। व्यापक प्रगतिवाद से उनका तात्पर्य क्या है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। उनकी यह धारणा है कि अभिव्यंजना की मानसिक प्रक्रिया संबंधी कुछ विशेषताओं को छोड़कर मूलत: उसमें प्रगतिवाद की ही प्रवृत्तियाँ हैं।[2] जब कि रूप-प्रकार वस्तु-चयन भावाभिव्यक्ति और चित्रांकन की दृष्टि से प्रयोगशील कविताओं ने अपना एक सर्वथा स्वतंत्र और पृथक् स्तर निश्चित किया है। सम्भव है, प्रगतिवादी गुट से आकर कुछ कवियों के काव्य के क्षेत्र में नये प्रयोग करने वाले कवियों के बीच आ मिलने का तथ्य ही उनकी इस धारणा के मूल में विद्यमान हो।

यहाँ तो बाद में चलकर प्रयोगशील कविता ने एक बिल्कुल नया मोड़ लिया। उसके पास किसी मतवाद का आग्रह नहीं था न ही उसने अपना कोई पृथक गुट खड़ा किया था। इस बात के प्रमाण में यह कहा जा सकता है कि 'तार सप्तक' में जिसके प्रकाशन के बाद से प्रयोगशील कविता को पृथक सत्ता मिली लगभग सभी प्रकार के कवियों का समावेश मिलता है। उसमें वे भी हैं जो उसके ठीक पूर्व घोर प्रगतिवादी कवि माने जाते रहे हैं,[3] वे भी हैं जो अतिशय शृंगारिक होने के कारण रीतिकालीन या छायावादी किसी रूप-लोभी कवि से पीछे नहीं पड़ते। अंतर केवल यही है कि शृंगारिक वर्णन या यौन-वृत्तियों का छाया ग्रहण उनकी काव्याभिव्यक्ति का आवश्यक उपादान रहा जब कि इनके लिए प्रारम्भ में वह एक चलन के अतिरिक्त और कुछ प्रमाणित नहीं हुआ।

ऐसे काव्य-क्षेत्र में प्रयोगशील कविता के आविर्भाव को ऐतिहासिक अनिवार्यता का

---

१. प्रो विनय मोहन शर्मा साहित्यावलोकन, पृ० १४ १५

२. डा भोलानाथ हिन्दी साहित्य पृ १८१

३ शमशेर बहादुरसिंह तथा हरिनारायण व्यास—दूसरा सप्तक

रिणाम कहा जा सकता है। इस कथन की पुष्टि में ऐतिहासिक क्रम का विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है। बात यह है कि द्विवेदीयुगीन कविता सच्चाई और सादगी का सबक लेकर चली तो हुई परन्तु ठीक से सँवर नहीं सकी लोकहित के आग्रही कवि लोकरुचि के उत्तरोत्तर परिष्कृत होते हुए कलात्मक स्तर के अनुरूप कविता को बढ़ा-सजा नहीं पाये। इसके ठीक विपरीत, छायावाद ने एक पराकाष्ठा तक कलात्मक सौष्ठव को ऊँचा तो उठाया पर लोक हित और जन-साधारण के सत्य से उसका सम्पर्क बना नहीं रह सका अन्ततः इसी दुर्बलता के कारण उसे प्रगतिवादी कविता को राह देने पर विवश होना पड़ा। फिर छायावाद की अतिशय कलात्मकता के विरुद्ध घोर वास्तविकता का आधार लेकर उठ खड़ी हुई प्रगतिवादी कविता को भी मुँह की खानी पड़ी किन्तु सामाजिक चेतना के रूप में जिस सत्य को लेकर वह हम पर हावी होना चाहती थी वह बाद में चलकर साम्प्रदायिक रंग में रँगे जाने के कारण अग्राह्य सिद्ध हुआ। तब कवि ने निरन्तर रूप से चली आती हुई अपनी इस विफलता का सजग होकर विश्लेषण किया जिसके फलस्वरूप उसे नये-नये प्रयोग करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।[1]

नये-नये प्रयोग करने का तात्पर्य किसी भी स्थिति में पृथक् निर्माण करना नहीं होता। प्रयोगों की सफलता और इनसे संबंधित मान्यताओं और स्थापनाओं का साहित्य में स्वीकार किया जाना उनके लिए विशेष स्थिति का निर्माण कर दें तो यह दूसरी बात है। इसमें संदेह नहीं कि प्रगतिवाद की अतिवादी धारा से असंतुष्ट दोनों कोटि की कवि प्रतिभाएं जिनमें छायावादी चेतना को लिये हुए सौन्दर्यवादी कवि और यथार्थवादी प्रगतिशील चेतनाओं के साथी भी आते हैं—कोई नया रास्ता ढूंढ निकालने की अनिवार्यता के नीचे आकर इकट्ठे हुए थे। प्रगतिवाद के रूढ़ि-ग्रस्त दर्शन और कृति से उत्पन्न त्रुटियाँ और असफलताएँ उनके सम्मुख अपना ताजा इतिहास लेकर खड़ी थीं। फलतः उनके सामने हिन्दी कविता के क्रमिक विकास एवं अपेक्षित परिमार्जन की अनेकविध *संभावनाएँ* प्रस्तुत थीं उनकी प्रतिक्रिया प्रमुखतः तीन रूपों में प्रकट हुई (१) काव्य की प्रगतिशील चेतना के ऊपर से 'मास्को छाप' की मुहर को उठा लिया गया। उसके साथ किसी विशेष साम्प्रदायिक मतवाद का आग्रह नहीं रहा इस आग्रह को जान-बूझकर दूर किया गया। (२) काव्याकाश में घोर प्रगतिवादी मर्मों की चकम-धूम की स्थिति के एक निश्चित काल तक बने रहने के उपरान्त फिर स्वच्छ एवं निर्मल आकाश के दर्शन हुए जिसके फलस्वरूप छायावादी नीलिमा आँख और मन को एक बार फिर छू गयी। इस स्पष्ट होकर कहा जाय तो कवि की सूक्ष्म सौन्दर्य-वृत्ति और व्यक्तिवादी चेतना का प्रत्यावर्तन हुआ। किन्तु छायावाद की सूक्ष्मता और कुहेलिका उसके पास अपने लिए कोई जगह नहीं पा सकी और छायावाद से अपेक्षाकृत वह विशेष बोधगम्य और सहज होकर प्रस्तुत हुई और (३) समष्टि-चेतना के बदले प्रमुखतः व्यष्टि चेतना को प्रथम और महत्त्व मिला। कविता का वस्तु-सत्य कवि की इकाई रेखा में सीमित होकर भी अपने उदात्तीकृत स्वरूप और स्थिति में उस विशेष ऊँचाई पर पहुँच सका जहाँ से वह समष्टिगत सत्य को आत्मसात करने में भी समर्थ हुआ। फलतः वह सामाजिक दबाव के विरुद्ध कवि की

१. नयी कविता का आदर्श कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह, 'आधार,' मार्च १९६९

व्यक्ति-चेतना के अहम् की उद्घोषणा होकर भी काव्य में वर्जित और अग्राह्य के भयंकर विस्फोट की दारुण छाया होने से बची रही। इसके मूल में कवि का अपना आग्रह-शून्य दृष्टिकोण और काव्यरसन ही था।

इसके पूर्व कि प्रयोगशील रचनाओं पर लगाये गये कतिपय आक्षेपों और उनके सुसंगत निराकरणों को प्रस्तुत किया जाय प्रयोग का अर्थ और प्रयोजन स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। तार-सप्तक के संपादक 'अज्ञेय' की तार-सप्तक की भूमिका-रूप 'विवृति और पुरावृत्ति' की निम्न पंक्तियाँ विचारणीय हैं

इससे यह परिणाम न निकाला जाय कि वे कविता के किसी एक स्कूल के कवि हैं या कि साहित्य जगत् के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं। बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं अभी राही हैं—राही नहीं राहों के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है।

आगे चलकर अज्ञेय जी फिर लिखते हैं

काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्रस्तुत संग्रह की सब रचनाएँ प्रयोगशीलता के नमूने हैं या कि इन कवियों की रचनाएँ रूढ़ि से अछूती हैं, या कि केवल ये ही कवि प्रयोगशील हैं और बाकी सब घास छीलने वाले। वैसा दावा यहाँ कदापि नहीं दावा केवल इतना ही है कि वे सातों अन्वेषी हैं।

ये पंक्तियाँ कुछ समय के लिए काव्य की वस्तु और शिल्प को लेकर पर्याप्त चर्चा का विषय रहीं। तार-सप्तक के कवियों द्वारा प्रस्तुत भूमिका और विशेष कर इन पंक्तियों को लेकर प्रयोग के विषय में लोगों की विचित्र विविध धारणाएँ सम्मुख आयीं। प्रारम्भ में तो साहित्य-जगत् में जो छीछालेदर हुई सो तो हुई ही बाद में इन प्रयोगशील कविताओं के पर्याप्त विस्तार और प्रसार पा जाने के उपरांत भी, इनकी कम दुर्गति नहीं हुई। इसका कारण यह नहीं था कि उस समय का पाठक किंवा आलोचक संकीर्ण बुद्धि अथवा असहिष्णु था। हाँ, इतना अवश्य था कि काव्य की जो एक स्वस्थ और मनोरम परम्परा उसे विरासत में मिली थी और जिसके अभिनव रूप-माधुर्य का आस्वादन वह छायावाद-युग में एक प्रकार से कर चुका था वह उसे कुछ समय पूर्व से ही ठीक से कहा जाय तो प्रगतिवाद के आविर्भाव काल से ही उससे छूट गयी थी। प्रगतिवाद उसे समाजोन्मुख कर के भी अपनी विकृतियों और संकीर्णताओं में संतुष्ट नहीं रख सका। तभी से सामान्य पाठक और आलोचक की तिलमिलायी हुई अभिरुचि को प्रयोगशील कवि भी ठीक नहीं कर सके। प्रयोगशील कवि काव्य के प्रति जो एक नूतन दृष्टिकोण नूतन मान नूतन अभिरुचि का आग्रह लेकर सम्मुख आये सामान्य पाठक और आलोचक उनका कुछ विशेष कारणों से साथ नहीं दे सका। वे कारण थे (१) प्रयोगशील कवि के साथ चूँकि प्रश्न प्रमुखतः अभिव्यक्ति के माध्यम में एक विशेष परिवर्तन का था प्रयोगवाद (यह संज्ञा इस काव्य-धारा को सहज ही प्राप्त हो गयी) काव्य विषय के सतर्क चुनाव की अपेक्षा शैली का प्रयोग प्रमाणित हुआ। और इस प्रयोग की सफलता के लिए जिस श्रम, कुशलता एवं ईमानदारी की अपेक्षा थी, उसका अभाव कुछ को

छोड़कर अधिकांश कवियों में परिलक्षित हुआ। (२) ये शैलीगत प्रयोग भी अधिकांशतः असफल प्रमाणित होते गये। कारण अधिकांश कवियों के अतमु खी और घोर व्यक्तिवादी होने के कारण उनकी वैयक्तिक कुण्ठाएँ उनकी अभिव्यक्ति को भी दुरूह बनाती गयीं। वे सफल या असफल रूप-चित्र देते गये जब कि सामान्य पाठक या आलोचक की काव्य-रुचि उनसे मात्र रूप चित्र की माँग न कर, कविता में सहज उपलब्ध जीवन और उसके प्रारम्भिक तत्त्व रस एवं आनन्द की प्रतिष्ठा भी चाहती थी। (३) काव्य की मान्यता उद्देश्य और विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति को किसी विशेष शिल्प-विधि का कोई मान्य अंकुश नहीं था, प्रयोगशील कवि अपनी-अपनी रुचि से विषय चुनते गये और उनकी अभिव्यक्ति भी अपने-अपने ढंग से होती गयी। फलतः उनमें कोई रूप-साम्य या वस्तु-साम्य दृष्टिगोचर नहीं हुआ। बल्कि जितने कवि थे कविता और काव्य-शिल्प के उतने ही प्रकार भी सम्मुख आये। यह स्थिति सामान्य पाठक और आलोचक के लिए अप्रिय और अमान्य सिद्ध हुई। कई स्थलों पर कहीं कहीं तो ऐसे भद्दे अश्लील और कुरुचिपूर्ण चित्रों के वर्णन हुए कि उन पर सामान्य पाठक और आलोचक का झल्ला उठना स्वाभाविक था। इसके मूल में कवि की वैयक्तिक कुण्ठाएँ और अव्यावेक काम-वर्जनाएँ थीं जो उसकी काव्य-दृष्टि को कुछ विशेष स्थलों पर कमजोर और दूषित करती जा रही थीं। कवि अपनी इन त्रुटियों में एक असामाजिक प्राणी और अपनी ही कुण्ठाओं एवं वर्जनाओं का शिकार प्रमाणित हुआ। (४) अधिकांश कवि कवि होने के अतिरिक्त घुमक्कड़ अध्ययनशील आलोचक और कुछ अन्य भाषाओं में भी पैठ रखने वाले थे। वे कुछ अपनी मौलिक सूझ और कुछ अनुकरण के सहारे अपनी शैली और वस्तु में नवीनता लाने का प्रयास करते रहे जो ठीक से आ नहीं सकी। वे कविता को हृदय की कम मस्तिष्क का ही अधिक विषय मानकर चले। सामान्य पाठक और आलोचक को यह भी पसन्द नहीं आया।

फलतः इस नयी काव्य-धारा (नाम-भेद से प्रयोगवादी कविता) के विषय में जो कुछ सामान्य धारणाएँ बना ली गयीं व निम्नलिखित हैं

(१) प्रयोगशील कविताएँ निरुद्देश्य हैं। अतएव समाज के लिए उनका कोई विशेष प्रयोजन नहीं।

(२) उनके प्रयोग-क्षेत्र की कोई निश्चित परिधि रेखा नहीं। इसलिए मनमाने ढंग से किये गये प्रयोग कविता के कलापक्ष के अपेक्षित विकास और निखार देने के स्थान पर उसे दुर्बलता और दुरूहता प्रदान करते हैं।

(३) उनका समाज के जीवन-मरण के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं वे सामान्यतः घोर असामाजिक प्राणी हैं और अपनी ही वैयक्तिक कुण्ठाओं और काम-वर्जनाओं से निर्मित संकीर्ण लोक में साँस लेकर जीते हैं।

(४) एक ओर वे इस कोटि के घोर अहंवादी हैं कि अपने को बहुत बड़ा सत्य मान कर अपनी समझ में बड़ा से बड़ा सत्य गढ़ जाते हैं और दूसरी ओर अपनी मान्तर विकृतियों और वासनाओं में इतने गिरे हुए हैं कि घोर अश्लील चित्र देने में भी नहीं हिचकते।

(५) ऊपर से उनका कोई आग्रह नहीं है, काव्य के विषय में उनका कोई विशेष दर्शन नहीं है। फिर भी वे चाहते हैं कि सामान्य पाठक या आलोचक उनके साथ चलें।

(जब कि उनके साथ चलने का निश्चित अर्थ यह होगा कि उस काव्य सम्बन्धी उनकी नयी मान्यताएं और स्थापनाएं स्वीकार हैं। और कठिनाई यही है कि वे उसके गले नहीं उतरतीं) नहीं तो वह उनकी दृष्टि में काव्य-संस्कार से हीन एक ऐसा प्राणी है जो कविता के किसी भी नये और मौलिक अभियान एवं मोड़ का कम से कम तीन सौ वर्ष बाद समझता है[१]। और विचार किया जाय तो यही उनका सबसे बड़ा आग्रह है।

सामान्य पाठक और आलोचक की ये सामान्य धारणाएँ ही इस नयी काव्य-धारा पर आक्षेपों के रूप में सवार होकर चलने लगीं जिसके फलस्वरूप नये-नये प्रयोग करने वाले इन कवियों को फिर से कुछ सोचना पड़ा काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण में अपेक्षित परिवर्तन करना पड़ा। कविता की काया को केवल शिल्प-गत प्रयोग के संकीर्ण ढाँचे में ही नहीं जकड़कर उसमें जन-जीवन से संचित कर कुछ प्राण-तत्त्व भी डालने पड़े क्योंकि असामाजिक करार नहीं दिये जाने की विकलता ने अन्ततः उन्हें वैयक्तिक घेरे से ऊपर उठाकर समाज के विस्तृत और ठोस धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया जहाँ के कुहराम के बीच उन्हें समाजोन्मुख और उनकी काव्याभिव्यक्ति को युग-सापेक्ष होना ही पड़ा।

काव्यक्षेत्र में प्रयोग के क्रम में प्रयोगवादी कवि के प्रारम्भ में प्रमुखतः शिल्प पर ही विशेष जोर देने के कारण सामान्य पाठक एवं आलोचक की एक तरह से यह सही धारणा हो गयी कि प्रयोगवादी काव्य-शिल्प को सैद्धान्तिक दृष्टि से प्राथमिकता देता है[२]। और उसके विषय प्रतिपादन की प्रभावहीनता अभिव्यक्ति की दुरूहता एवं उसके ऐकान्तिक एवं व्यक्तिवादी होने के कारण समाज से उसकी विमुखता को दृष्टि में रखकर उस पर यह भी आक्षेप लगाया कि प्रयोगवादी कविता की पृष्ठभूमि में साहित्य की वे पतनोन्मुख धाराएं दिखाई देती हैं जिनका जन्म पश्चिम के क्षयग्रस्त पूँजीवादी समाज में हो रहा है।[३] इस आक्षेप के साथ-साथ क्षयग्रस्त रोमांस का सम्बन्ध भी जुड़ा हुआ है जो इस नयी काव्यधारा के कवि

द्रष्टव्य

१. (क) दूसरा सप्तक की भूमिका—अज्ञेय

(ख) परिचय : अज्ञेय। नयी कविता : अंक २, पृ० ११

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'प्रयोगवादी रचनाएँ' शीर्षक निबन्ध में प्रयोगशील रचनाओं की छानबीन करने के पश्चात् अपने कुछ निष्कर्ष इस प्रकार दिये हैं :

(क) प्रयोगवादी रचनायें पूरी तरह काव्य की कोटि में नहीं आतीं। वे अतिरिक्त बुद्धिवाद से भरी हैं।

(ख) प्रयोगवादी रचनायें वैचित्र्य-प्रिय हैं रुचि का सहज अभिनिवेश उनमें नहीं।

(ग) प्रयोगवादी रचनायें वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी पूरा नहीं करतीं।

'आधुनिक साहित्य'

३ राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य : प्रयोगवाद और दूसरी नई कवितायें : ले० रामेश्वर शर्मा पृ० १००

४. वही पृ० १००

कांस मुक्त और रोमानी कवियों की कविताओं की अन्तरधारा के रूप में परिलक्षित होता है। इससे समाज की अस्मानेक अनिवार्यताओं के बीच जाग्रत सक्रियता नहीं बल्कि घातक निष्क्रियता एवं असामाजिक दृष्टिकोण का ही परिचय मिलता है।

ये आक्षेप किसी भी स्वस्थ और प्रगतिशील कवि एवं कलाकार को मान्य नहीं हो सकते। साथ ही जहाँ कला के क्षेत्र में वैयक्तिक नैतिकता और सामाजिक दायों के प्रति ईमानदारी का प्रश्न खड़ा होता है वहाँ यह भी सम्भव नहीं कि कवि आत्मपरीक्षण न करे। और आत्मपरीक्षण के पश्चात् जिन कमजोरियों और अभावों का आभास मिले उन्हें स्वीकार नहीं करें, उनके अपेक्षित परिहार के निमित्त सजग और सक्रिय होकर कुछ नहीं करें, या सोचें।

नयी काव्यधारा के कवियों ने अपने को अपने सामाजिक परिवेश के बीच रखकर देखा समझा। काव्य के प्रति अपने दृष्टिकोण को सामयिकता एवं कला के शाश्वत एवं गतिशील मानों की कसौटी पर परखा अपने एक-एक अभाव की सही-सही जानकारी प्राप्त की और तत्पश्चात् अपने दृष्टिकोण एवं विषयवस्तु के प्रतिपादन में अपेक्षित परिवर्तन किया। प्रयोगशील कविता अपने ऊपर से प्रयोग का बिल्ला हटाकर नयी कविता के रूप में पाठक एवं आलोचक वर्ग के सम्मुख खड़ी हुई। हिन्दी कविता का यह नवीनतम मोड़ नयी कविता के रूप में 'नयी कविता' के प्रकाशन काल से सामने आया जो पहली बार डा० जगदीश गुप्त के सम्पादकत्व में १९५४ में प्रकाशित हुई।

प्रारम्भ में इसकी भी बहुत गहरी और व्यापक प्रतिक्रिया हुई। कुछ लोगों ने तो नयी कविता' में सम्मिलित कतिपय कवियों के अनगढ़ अटपटे एव अशास्त्रीय प्रयोगों एवं अनेकानेक अप्रचलित अप्रस्तुत योजनाओं की भरमार से घबड़ाकर फिर वे ही पुराने आक्षेप दुहराये जब कि कुछ पाठकों एवं आलोचकों को उसमें नवीनता ताजगी और अपेक्षित विकास के कुछ स्वस्थ बीज भी मिले। सामान्य पाठक एवं आलोचक के भड़क उठने का एक कारण था। इसकी शास्त्रीय अभिरुचि एवं आलोचक दृष्टि पर संदेह प्रकट कर उसमें एक नयी अभिरुचि और दृष्टि की माँग की गयी। 'नयी कविता' के संपादक डा० जगदीश गुप्त ने लिखा है

हिंदी कविता को विकास की नई दिशाओं में ले जाने वाला कवि किस विवेकशील बुद्धिचेता भावक को लक्ष्य बनाकर अपनी बात कहता है या कहने का साहस करता है। निश्चय ही वह किसी भी कवि की तरह उनको लक्षित नहीं करता जो संवेदनशीलता से हीन अरसिक तथा अदाम होते हैं। यह असमता अज्ञान का परिणाम भी हो सकती है या कवि की अभिव्यक्ति के उपादानों के समानान्तर चलने में असामर्थ्यजन्य भी हो सकती है। नया कवि उस अधिकारी को भी अपना लक्ष्य नहीं बनाता तो जो हर प्राचीन के प्रति आकर्षण और हर नवीन के प्रति विकर्षण के भाव से परिचालित होता है। ऐसे व्यक्तियों में एक जड़ता निहित रहती है जो उनकी आंतरिक अप्रगति की द्योतक होती है।

यह 'नयी कविता' उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है अर्थात् जो उसके समानधर्मा हैं एक ओर जो पुरानी कविता की अभिव्यंजना प्रणालियों, शक्तियों और सीमाओं से परिचित हैं और जिनकी परितृप्ति परम्परागत वस्तु और अभिव्यक्ति से नहीं होती या

होती है तो सम्पूर्ण रूप में नहीं दूसरी ओर जो नयी विधाएँ खोजने में संलग्न नूतन प्रतिभा की क्षणिक असफलताओं और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूतिशील होकर नये कवि की वास्तविक उपलब्धि की प्रशंसा करने में संकोच नहीं करते। प्राचीन अभाव और नवीन आविर्भाव के बीच विवेक करते हुए ऐसे व्यक्ति कविता के क्षेत्र में किये गये नवीन प्रयासों का सम्यक मूल्यांकन कर सकते हैं।

इसके साथ-साथ दो अर्थ लगाये गये १—वे पाठक या आलोचक जो नयी कविता का साथ नहीं दे सके समय की दौड़ में पिछड़े हुए व्यक्ति हैं नये मूल्यांकन के योग्य बौद्धिक सामर्थ्य से हीन हैं और नयी कविता का पाठक एवं आलोचक सम्भवतः नयी कविता के लिखने वाले कवि के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। ये दोनों ही बातें नयी कविता की मान्यता दिलाने और लोकप्रिय बनाने में बाधक प्रमाणित हुई।[१]

एक दूसरी जगह पर कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने नयी कविता की सम्भावनाओं को दृष्टिगत करके लिखा है

नयी कविता ने मानव भावना के छायावादी सौन्दर्य के सुनहले पंखों से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन-समुद्र की उत्ताल लहरों में पंख मरने को छोड़ दिया है, जहाँ वह साहस के साथ सुख-दुःख आशा-निराशा के घात-प्रतिघातों में बढ़ती हुई युग-जीवन के आँधी-तूफानों का सामना कर सके। अन्तश्चेतना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवों से परिपक्व बन सके। नयी कविता विश्व सर्वस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा भाव के प्रत्येक पक्ष बदलते हुए युग-पट को अपने मुक्त छन्दों के संकेतों की तीव्र-मन्द गति-लय में अभिव्यक्त कर, युग-मानव के लिए नवीन भाव भूमि प्रस्तुत कर रही है।[२]

एक बार जहाँ इस नयी काव्यधारा के प्रति ऐसी आशाएँ व्यक्त की जा रही हैं वहाँ दूसरी ओर आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे सर्वमान्य एवं प्रबुद्ध आलोचक की इस धारा के प्रति निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त निराशा विचारणीय प्रश्न प्रस्तुत करती है।

क्रमशः यह (प्रयोगवाद) भाषा सम्बन्धी बीहड़ प्रयोगों का अड्डा बन गया जिससे पाठकों को भी थोड़ी बहुत दिलचस्पी होने लगी। आगे चलकर इसमें टी० एस० इलियट की शैली में आधुनिक जीवन के खोखलेपन का परिचय कराया जाने लगा। यह 'वाद' हिन्दी में आरम्भ से ही मध्य वर्ग के हाथ आये और फिर भी शौकीन तबीयत वाले व्यक्तियों के हाथ में रहा है। पिछले कुछ दिनों से इसमें इन निष्क्रिय व्यक्तियों की निराशा और गिरा हुआ मन प्रतिबिम्बित होने लगा है। आश्चर्य नहीं यदि निकट भविष्य में यह वही रमत धारण करे जो पश्चिम में अति-यथार्थवादियों की रचनाओं ने धारण किया है। यदि ऐसा हुआ तो पूर्वापरम्पाय वाली कहावत हिन्दी में भी चरितार्थ हो जायेगी।[३]

विचार करके देखा जाय तो इस नयी काव्य धारा के विश्लेषण के इन दोनों पहलुओं

---

१ नयी कविता—अंक पांच (नयी कविता नयी अभिरुचि) डा० जगदीश गुप्त

२. नयी कविता अंक एक, पृ० २

३. नया साहित्य नये प्रश्न—निबन्ध पृ० ११

—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

में सच्चाई रही है। एक ओर जहाँ पंतजी को नयी काव्य-धारा में मिट्टी और जीवन की गंध मिलती है जहाँ उनका विषाद आशावाद प्रकट हुआ है सच्चाई वहाँ भी है क्योंकि नयी काव्य-धारा पर विचार करते समय उनकी दृष्टि जिन सम्भावनाओं पर गयी है वे इस वैज्ञानिक-युग की बौद्धिकता एवं उससे आन्दोलित काव्य-साहित्य की अन्तर्धारा के सहज प्रतिफल हैं इससे कोई भी जागरूक कलाकार जिसका सतत गतिशीलता एवं उत्तरोत्तर प्रगति में तनिक भी विश्वास हो पलायन नहीं कर सकता। दूसरी ओर जहाँ वाजपेयीजी को टी० एस० इलियट की पुस्तक-शैली का निरा अनुकरण और आज के खोखले जीवन की निराशात्मक अभिव्यक्ति मात्र ही मिलती है, वहाँ किसी आलोचक की ऐसी प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही हो जाती है।

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि इस नयी काव्यधारा का परिवेश मनुष्य के हार जाये जीवन में उत्पन्न निराशा की काली रेखाओं से ही निर्धारित होता है। स्वयं वाजपेयीजी ने आगे चलकर यह स्वीकार किया है कि उनकी आलोचना और कवियों के आत्म-निरीक्षण —यहाँ इतना और जोड़ लें—के फलस्वरूप बहुत से प्रयोगवादी नये सिरे से समझदार हो गये हैं और कई तो ऐसा छोड़कर बाहर चले गये हैं।[1]

यहाँ प्रश्न जमा छोड़कर बाहर चले जाने का जितना नहीं है उससे अधिक वर्तमान युग-जीवन की सच्चाई और उज्ज्वल अनिवार्यताओं की अवहेलना न कर सकने का है। आज कवि जितना ही अपने को अपनी इकाई को सामाजिक परिवेश के बीच रखकर देखता परखता है, सामाजिक दायों के प्रति उतना ही सचेत और जागरूक होता जाता है। काव्य के क्षेत्र में जीवन से पलायन और मात्र सौन्दर्य या निर्जीव कलात्मकता का समर्थक न होकर अपने मानवीय सम्पर्कों एवं दायित्वों का प्रतिष्ठापक होता जाता है। इसलिए वह कविता को मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप मानता है। उसे मनुष्यमात्र की मातृभाषा कहता है। जीवन के गहन से गहन पहलुओं तक उसकी व्याप्ति है। इसीलिए जीवन की अतल गहराइयों में होने वाले परिवर्तनों की छाया साहित्य में सबसे पहले कविता पर पड़ती है। युग-मानस के सूक्ष्मतम आवर्तनों-विवर्तनों का परिचय शब्दों वर्णों भावों और विचारों के नये सन्तुलन से मिलता है। कविता ऐसे प्रत्येक सन्तुलन के साथ नयी होती रही है। आज जो सन्तुलन घटित हो रहा है वह अब तक होने वाले संतुलनों की अपेक्षा अधिक तलस्पर्शी अधिक मौलिक है क्योंकि मानव व्यक्तित्व को इतना अधिक महत्त्व किसी युग में नहीं मिला और न उसके आगे मानवता के सामूहिक निर्माण और विनाश का प्रश्न ही इससे अधिक उग्र होकर आया है।[2]

ऐसी स्थिति में कम से कम यह तो नहीं कहा जा सकता कि नयी काव्यधारा का कवि समाज से आँख या कान मूँदकर बैठा है। अपनी वैयक्तिक कुंठाओं एवं अन्य काम वर्जनाओं से ग्रस्त वह निरीह एवं दीन प्राणी नये युग की नयी वास्तविकता एवं नयी सामाजिकता से अछूता है। इतना अवश्य है कि विज्ञान ने आज हमारी कितनी सारी पुरानी

---

१. नया साहित्य नये प्रश्न आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, 'निकष' पृ० ११
२. 'नयी कविता' नयी कविता नया संतुलन जगदीश गुप्त पृ० २१-२२

मान्यताओं एवं आस्थाओं की जड़ें हिला दी हैं जिसके फलस्वरूप सामाजिकता एवं सामूहिकता की अपरिहार्य अनिवार्यताओं एवं मर्यादाओं के समक्ष भी व्यक्ति के इकाई-रूप अस्तित्व का महत्त्व कुछ पहले से अधिक उभर कर सामने आया है। इसका कारण यह है कि समाज ने सामूहिकता में व्यक्ति को जितना ऊँचा नहीं उठाया है उससे कहीं ज्यादा व्यक्ति ने अपनी विशेषता में ऊँचा उठकर समाज को ऊँचा उठाया एवं आगे बढ़ाया है। इसलिए आज का कोई भी व्यक्ति जिसमें कुछ सामर्थ्य है, अपने को समूह के समक्ष इतना हीन या नगण्य मानने को प्रस्तुत नहीं कि समूह के सम्मुख उसका कोई महत्त्व ही नहीं। यह दूसरी बात है कि सामूहिक कल्याण के सम्मुख व्यक्ति अपनी उदारता एवं महानता में अपने वैयक्तिक स्वार्थ का त्याग करने को तैयार हो जाय। लेकिन इससे उसके उस अहं एवं सबल व्यक्तित्व की स्थिति दुर्बल नहीं पड़ती जिसे विज्ञान ने आज सर्वोपरि स्थान दिया है बल्कि वह और उभर कर खड़ा हुआ है। अपनी असीम शक्ति एवं सम्भावनाओं में उसका अविजित विश्वास उसे बहुत ऊँचा उठाता जा रहा है और यही उसके व्यक्तित्व एवं पौरुष की स्थिति है। फिर भी वह इतना नासमझ और अनुदार नहीं कि अपने ऊपर आबद्ध सामाजिक दायों को इन्कार कर दे।[1]

यह सब कुछ है। जीवन के प्रति सजग दृष्टिकोण लेकर वह चल रहा है। उसका प्रयोग मात्र उस प्रयोग रूप में नहीं है जिसका प्रयोग के अतिरिक्त और कोई अर्थ या प्रयोजन नहीं। फिर भी यह नहीं है कि उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है उसका बौद्धिक उत्कर्ष एवं कलात्मक सौष्ठव अपनी अन्तिम परिणति को प्राप्त है। वह अपनी उपलब्धियों में पूर्ण है, उसे अब आगे और कुछ प्राप्त करना नहीं। उसमें त्रुटियाँ अब भी हैं और अभाव तो उनसे भी ज्यादा। फिर भी एक बात स्पष्ट है। उसका सामने का जीवन आज जितना बिखरा एवं उलझा हुआ है, उसमें वह कम उलझा एवं बिखरा हुआ है। बिखरे हुए जीवन की इतनी सारी त्रुटियाँ उलझनों एवं विशृंखलताओं को समेट कर जो उसने शक्ति, उपलब्धि एवं शृंखला की अन्विति की ओर कदम बढ़ाया है, वह इस संक्रांतिकालीन बिखरे जीवन के अनर्गल स्वरों के बीच संतुलित स्थिति सजग दृष्टिकोण एवं व्यवस्था ढूँढ़ने में इन विकलता के स्वरों का परिचायक है। वह अब तक किसी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सका है उसका कारण उसकी शक्ति की अक्षमता नहीं उसके युग-जीवन की अपेक्षाकृत जटिलतर समस्याएँ एवं उलझनें हैं।[2]

---

१ नयी काव्यधारा के सामान्य कवि के समाजोन्मुख होने के प्रमाण में निम्नांकित उद्धरण विचारणीय है —

यह दीप अकेला स्नेह भरा है गर्व भरा मदमाता
पर इसको भी पंक्ति को दे दो। —अज्ञेय
यहाँ स्नेह भरा दीप 'व्यक्ति' का प्रतीक है
और पंक्ति समूह का।

२. मिलाइये

Introduction to the first edition, Modern Verse Edited by Michael Roberts, Page 9

नयी कविता की अन्यानेक संभावनाओं को स्वीकार करते हुए भी डा० देवराज ने नयी कविता के कुछ अभावों की ओर संकेत किया है। वे निम्नलिखित हैं

(१) कविगण नयी 'दृष्टि' द्वारा मूलतया उत्पन्न न करके सिर्फ शब्दों तथा अलकारों की विलक्षणता द्वारा प्रभाव उत्पन्न करना चाहते हैं। श्री गिरिजाकुमार माथुर के शब्दों में वे 'चौंकाने ध्यान आकृष्ट करने नयी शैली का आभास पैदा करने' की ओर ही ज्यादा उन्मुख हैं।

(२) कवियों में व्यक्तित्व की कमी या अभाव। इस कमी के मूल में पारस्परिक अनुकरण या होड़ की प्रवृत्ति भी है और गंभीर साधना का अभाव भी। कवियों की साम्प्रदायिक-जैसी दीखने वाली एकता शैली अर्थात् मुहावरों चित्रों लय-विधान आदि की समानता जहाँ उन्हें संगठन का बल देती है, वहाँ उनके व्यक्तित्वों को अनिर्दिष्ट भी बना देती है।

(३) अधिकांश प्रयोगवादी कवियों की रचना में इस अनुशासन की कमी दिखाई देती है जो विशिष्ट कविता अथवा कृति को चुस्त संगठन एवं विशद ओज देता है।[1]

आत्म-निरीक्षण के पश्चात् तार-सप्तक के अन्यतम कवि श्री गजानन माधव मुक्तिबोध ने भी नयी कविता के एक ऐसे ही अभाव की ओर संकेत किया है

नयी कविता के (इस श्रेणी के) लेखकों में अपने अनुभव की साक्षात जीवन भूमि होते रहने और बढ़ने के बावजूद अपने ही उत्कट प्रयासों और पराजयों के कारणों की खोज की महान भावनाओं महान जिज्ञासाओं और पुन: प्रयासों की वास्तविकताओं के बावजूद काव्य में जो आया उसे उतारा वह केवल मानसिक प्रतिक्रिया के संकलित ही हैं, तमाम भरे जीवन के व्यापक मनोवैज्ञानिक और तथ्यात्मक सामान्यीकरणों का उसमें अभाव सा है।[2]

उक्त अभावों की ओर आलोचक और आत्म निरीक्षक कवि का संकेत तो सही है। किन्तु, एक बात विचारणीय है। आज का जीवन जिसमें कवि है कितना बिखरा हुआ है ? उसकी अनेकविध विपर्यस्तताओं के बीच किसी सुनिश्चित व्यवस्था एवं मर्यादा की कोई भाँकी ऐसा बहुत कम दीखती है। जबकि कवि के सम्मुख इसी संक्रमणशील जीवन की समन्वित अभिव्यक्ति देने का प्रश्न उपस्थित है। और समस्या जटिलतर कुछ यों है कि कवि के काव्य प्रयास की सफलता उसकी अभिव्यक्ति के समन्वित होने में है क्योंकि केवल तभी वह भावक वर्ग के बीच प्रतिष्ठित हो सकता है। कविता कवि और भावक-वर्ग के बीच एकात्मकता स्थापित करने का सबल माध्यम है। कवि अपनी कविता के साथ भावक-वर्ग के बीच खड़ा नहीं हो सका तो सब कुछ व्यर्थ है। यहीं पर अभिव्यक्ति का प्रश्न काव्य से संबंधित और सभी प्रश्नों से प्रमुख हो जाता है। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी सबल अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप सबल आकार विषयों की भी आवश्यकता पड़ती है।

नयी काव्य धारा का कवि अपनी अभिव्यक्ति पर विशेष जोर देकर चल रहा है। बहुत कुछ इसी कारण से, उसके प्रयोग शिल्प-गत प्रयोगों की सीमा में ही मूल्यांकित हुए हैं।

---

१ प्रयोगवादी कवि एक मेजरमणी डा० देवराज नयी कविता—अंक दो

२. 'नयी कविता' एक दायित्व—नयी दिशा अंक—१

किन्तु, विचार करके देखा जाय तो नूतन अभिव्यक्ति-माध्यम की खोज में कवि को नूतन आधारों की भी खोज करनी पड़ती है। ये नूतन आधार कविता के आवश्यक उपकरणों एवं सम्पादेय विषय-वस्तुओं का क्षेत्र निर्धारित करते हैं। आज कविता के आधारों (वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही) का क्षेत्र बहुत बृहद् है इसलिए कवि का काम पहले से कुछ अधिक कठिन हो गया है और भावक-वर्ग का मनोरंजन करना तो उससे भी कठिन। आज के संक्रमणशील युग-जीवन की विविधता और वर्धन विज्ञान को देखकर कभी-कभी ऐसा भी आभास होने लगता है कि कविता का मनोरंजक रूप भी बहुत कुछ बौद्धिक ही होगा। कविता पहले जैसी तो सहज-सरल कभी नहीं होगी भावक-वर्ग की अभिरुचि ही कुछ उतनी बढ़ी हुई और मांजिक हो गयी रहनी कि यांत्रिक युग की आज दुरूह लगने वाली अभिव्यक्ति भी उसका मनोरंजन कर सकेगी जिसके आधार पर उस स्थिति में भी कवि भावक वर्ग के पास अपनी जगह पा सकेगा।

यहीं पर कविता में साधारणीकरण की बात भी स्पष्ट हो जाती है। नयी कविता के कवि पर सामान्यतः यह आक्षेप लगाया जाता रहा है कि वह साधारणीकरण को साथ लेकर नहीं चल रहा है। बात अंशतः ठीक है। किन्तु उसके सामने भी अपनी अभिव्यक्ति में प्रेषणीयता देने का प्रश्न है और निश्चित रूप से कविता वह केवल अपने लिए नहीं लिखता। कविता के माध्यम से उसे कुछ कहना है, भावक-वर्ग के पास कुछ पहुँचाकर स्वयं भी पहुँचना है। इसलिए साधारणीकरण के प्रश्न की वह उपेक्षा नहीं करता बल्कि उसे साथ लेकर चल रहा है। अन्तर केवल यही है कि जीवन के बदलने के साथ उसकी अभिव्यक्ति के रंग और रूप भी बदल गये हैं और बहुत कुछ इसलिए भी कविता में साधारणीकरण लाने का उसका प्रयास पुराने प्रयासों एवं पद्धतियों से मिलते-जुलते नहीं होने के कारण सामान्य आलोचक की दृष्टि में नहीं आ रहा है।[1]

नयी काव्य-धारा का कवि सामान्यतः कविता के कलापक्ष पर जो जोर देकर चल रहा है उसके मूल में रूपवाद की भावनाएँ निहित हैं। रूपवादी आंदोलन विशेषतः साहित्य की समाजवादी और प्रतीकवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध चला था। रूपवादियों की दृष्टि में कला, शैली कौशल और कारीगरी से भिन्न नहीं है। कौशल केवल कला भी प्रणाली ही नहीं उसका उद्देश्य भी है। कला का इतिहास केवल विभिन्न काव्य प्रकारों या कला-प्रकारों के विकास का विश्लेषण है। साहित्यिक इतिहास केवल एक प्रकार का सौन्दर्यात्मक भाषा शास्त्र है। यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि आज का कवि रूपवाद की उस पराकाष्ठा तक नहीं पहुँचना चाहता जहाँ पहुँचकर उसके लिए साहित्य की समाजवादी प्रवृत्तियों का विरोध करना आवश्यक हो जाय। रूपवाद से प्रभावित वह केवल इसी अर्थ में है कि काव्य में भावाभिव्यक्ति को प्राथमिकता देता है जिसके लिए उसे कलापक्ष में शिल्प और शैली पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। अपने इसी प्रयास में वह बिम्बवाद के पास भी खड़ा मिलता है। बिम्बवाद प्रत्येक दृश्य बिम्ब को काव्य में ज्यों का त्यों उतार देने का पक्षपाती है चाहे वह

१ द्रष्टव्य

भूमिका दूसरा सप्तक, पृ ९-१०

भावात्मक हो या प्रत्यक्ष हो। किन्तु बिम्बवाद दृश्य-बिम्ब को ज्यों का त्यों उतार देने की विशेष प्रवृत्ति के कारण जो कुछ संकीर्ण हो गया वह नयी काव्य-धारा के कवि के लिए उतना अनुकूल प्रमाणित नहीं हुआ। उसकी काव्यात्मक योजना और अभिव्यक्ति के लिए छूट चाहिए थी। इसलिए उसे फिर काव्य में अतियथार्थवादी आन्दोलन ने कुछ विशेष प्रभावित किया क्योंकि अतियथार्थवादी उसे एक पराकाष्ठा तक छूट देता है। हरबर्ट रीड तो स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति और अति यथार्थवादी प्रवृत्ति में उतना कोई अन्तर ही नहीं मानता। स्वच्छन्दतावाद ने आज कवि को बहुत कुछ इसलिए प्रभावित किया है कि वह इसे आवश्यक नहीं मानता कि कोई भी बौद्धिकवाद या विवेक उसे अपने साथ चलने के लिए बाध्य करे। वह उसे शैली-गत प्रयोग के लिए अधिक-से-अधिक छूट देता है। ऐसे ही अति यथार्थवाद भी काव्य में काल्पनिक तत्वों की योजना को अत्यधिक महत्व देने के कारण उसकी काव्य वृत्ति के लिए अपेक्षाकृत विशेष अनुकूल लगा। क्योंकि अतियथार्थवाद कवि और कलाकार को अधिक-से अधिक उन्मुक्त बनाता है, उसकी चिन्तन धारा और शिल्प प्रयोग पर कोई बंधन नहीं डालता।[1] अभिव्यक्ति में विशेष अर्थ एवं चमत्कार की प्राण प्रतिष्ठा एवं उसके क्षेत्र विस्तार के निमित्त कवि को एक वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोण से परखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। पिकासो के घनवाद (cubism) का लक्ष्य भी यही है। इसलिये यह कहना भी गलत नहीं होगा कि अभिव्यक्ति के परिष्कार एवं काव्य-वस्तु के वृत्त विस्तार में आज के कवि को घनवाद से भी कुछ संकेत मिले हैं।

जहाँ तक कविता में बिम्बों की स्थिति का प्रश्न है—शैली में बिम्बों और मूर्त एवं अमूर्त भावों के आनुपातिक महत्व का प्रश्न सदा से बना रहा है। एजरा पाउंड के इस कथन पर ध्यान देना आवश्यक है, 'कविता तो प्रमुखतया बिम्बों का विषय है। कविता का प्रमुख अंग बिम्ब ही है। पाउण्ड बिम्ब को कोई अलंकार या विचार नहीं मानता। उसने सम्पूर्ण बिम्ब का प्रयोग एक समन्वयात्मक तत्व और रूप के अर्थ में किया है। एक वर्तमानवादी (वोर्टिसिस्ट) कवि कला के लिए किसी मुख्य माध्यम का ही प्रयोग करेगा। वह मुख्य माध्यम पाउण्ड के अनुसार बिम्ब के अतिरिक्त कुछ दूसरा नहीं। पाउण्ड इसे मानता है कि वर्तमान वाद वह धारा है जिसमें मन के सभी भाव निरन्तर वेग से दौड़ते रहते हैं। इस स्थिति में कविता में प्रयुक्त बिम्बवाद और वर्तमानवाद में कोई विशेष अन्तर नहीं मिलता। बल्कि पाउण्ड की बात मानी जाय तो वे एक ही हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से वर्तमानवादी कवि बिम्बों को कविता में प्रमुख महत्व देने के अतिरिक्त वर्तमान जगत में अपने अस्तित्व मात्रलोक और उसकी अनेक मुख्य समस्याओं और अन्यानेक आधारों के प्रति अपने सजग दायित्वों को लेकर अतीतवाद, प्रभाववाद और भविष्यवाद के विरुद्ध खड़ा होता है। नयी काव्यधारा के कवियों पर इस वर्तमानवाद का प्रभाव स्पष्टरूप से देखा जा सकता है क्योंकि नये कवि जहाँ बिम्बों को प्रमुख महत्व देते हैं वहाँ क्षणों में जीवित रहने वाले सत्य भाव और छाया-चित्र भी उसके आकर्षण-बिन्दु हैं।

वर्तमान की अनेकविध तरंगों से आन्दोलित आज का कवि-मानस अपने आवर्त में,

---

१. देखिये—अतियथार्थवाद, रामचन्द्र मुखेरी, आलोचना अंक ६

ठीक से कहा जाय तो उक्त सभी प्रश्नों और काव्य-सत्य के विविध पहलुओं को समेट कर चल रहा है। अभिव्यक्ति के माध्यम से कविता के विविध सत्यों का प्रयोग उसके सम्मुख एक बीहड़ प्रश्न के रूप में उपस्थित है और उसे सुलझाना कोई सरल कार्य नहीं। ऐसे कवि के सामने काव्य-सत्यों के विविध उपकरणों के संतुलित सचयन और फिर इनकी सरल सुबोध अभिव्यक्ति की जटिल प्रक्रियाएँ उसके मार्ग को सर्वत्र दुगम बनाती रहती हैं। फिर भी वह अपनी क्षमता में सहज-सरल बनकर चलता रहा है। टी० एस० इलियट ने एक स्थल पर लिखा है "कवि-मानस वह पात्र है जिसमें असख्य भाव उक्तियाँ और चित्र गृहीत और सुचित होते हैं और उसमें वे तब तक बने रहते हैं जब तक ऐसे समस्त तत्त्व एक साथ ही इकट्ठे नहीं हो जाते जो मिलकर एक नवीन पदार्थ का निर्माण कर सकें।

इस पृष्ठभूमि में आज की हिन्दी कविता की नयी धारा नाम भेद से नयी कविता (प्रयोगशील कविता) को रखकर परीक्षण किया जाय तो उसके सम्बन्ध में विशेषकर उसकी सर्जन प्रक्रिया को लेकर निम्नलिखित तथ्य निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाते हैं

१—नई कविता यूरोपीय काव्य-साहित्य में आये हुए प्रयोगवादी आन्दोलन की प्रमुख धारा के रूप में चल रही है।

२—अभिव्यक्ति की कलात्मक परिणति की प्राप्ति को वह प्रमुखता देती है। इसके लिए नये छन्द रूपों स्वर-लय कल्पना-चित्रों एवं भाव-भूमियों की योजना करनी पड़ती है।

३—उसकी भाव भूमि के पीछे अब तक काव्य-क्षेत्र में आ गये विविध 'वाद' गौण या प्रमुख रूप में अपना योग-दान कर रहे हैं।

४—उसकी अभिव्यक्ति का प्रमुख विषय कवि की अपनी इकाई और उस इकाई के अन्यानेक आधार हैं। साथ ही युग-जीवन की संक्रमणशील स्थिति से वह अछूता नहीं है। इस दृष्टि से उसके वस्तु-वृत्त का विस्तार बहुत ज्यादा है।

५—उसका स्वर प्रमुखतः वर्तमान स्थिति के प्रति गहरा असंतोष क्षोभ और ऊबन एवं उससे पलायन का स्वर है फिर भी कहीं-कहीं अपने अस्तित्व के अन्यानेक सामाजिक आधारों के प्रति उसकी आस्था बोल जाती है। यह इस बात का प्रमाण है कि कम-से-कम वह एक अनुत्तरदायी और असामाजिक प्राणी ही तो नहीं है।

६—उसके कुछ कवियों की प्रवृत्ति मुख्यतः रोमानी रही है जब कि कुछ की बौद्धिक व्यंग्य और अन्य सामयिक प्रश्न आयामों की। इसलिए उसके कथन और काव्य वस्तु में विविधता के दर्शन होते हैं।

७—मनुष्य की अपरिमित शक्ति में उसका पूर्ण विश्वास है।

८—वह भाव-जगत् से अधिक कला जगत् के नवीन आस्वादन का प्रतीक है जहाँ निश्चय ही भाव और उसके आधारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

९—प्रयोगों में उसकी दृढ़ आस्था है और अपनी सफलता पर अटल विश्वास लेकर वह चल रही है।

इस दृष्टि से कला-क्षेत्र में उसके कतिपय नूतन प्रयोगों की सफलता के उदाहरण देकर हम निश्चय पर पहुँचा जा सकता है कि कलात्मक-परिणति और भावाभिव्यक्ति को लेकर वह अपने पीछे की धाराओं से कितना आगे है।

व्यावहारिक पक्ष

कलात्मक परिणति उपलब्धि और अभाव

काव्य में रूप विधान की आवश्यकता उसके भावोत्कर्ष एवं सौन्दर्योन्मेष के निमित्त पड़ती है। अभिव्यंजना की परिणति में जो स्थान वक्रोक्ति का है—ध्यान रहे कि वक्रोक्ति को काव्य का 'जीवन' कहा गया है—लगभग वही स्थान काव्य में रूप-विधान का है। कविता का अभीष्ट सीधे रूप-दर्शन अथवा भावानुभूति कराना नहीं है। कहा जाय तो सीधे ढंग से जो रूप रूप है न उसके दर्शन सम्भव हैं न भाव की अनुभूति। काव्य की ये दोनों ही प्राण प्रक्रियाएँ (रूप-दर्शन और भावानुभूति) प्रथमतः एक विशेष स्थिति-योजना पर अवलम्बित हैं। इस स्थिति-योजना के मूल में आंग्ल-कविता में प्रयुक्त सिमली तथा मेटाफर और हमारे भारतीय काव्यांग में उपमा रूपक आदि की अनिवार्यता विद्यमान है। यहाँ एक विशेष स्थिति-योजना से अभिप्राय काव्य की उस सर्जन प्रक्रिया से है, जिससे कोई वस्तु या भाव किसी अन्य सम रूप या सम-धर्म वस्तु या भाव की 'भूमि' ग्रहण कर सहृदय संवेद्य भावक-धर्म तक अपना अभिप्रेत अर्थ प्रेषित कर सकने में समर्थ होता है। यही सर्जन प्रक्रिया रूप-विधान की प्रक्रिया है। श्वेत संगमरमर का भव्य ताजमहल स्थापत्य कला का एक अप्रतिम उदाहरण है, किन्तु काव्य के लिए पत्थर के टुकड़े के अतिरिक्त उसका कोई और अर्थ नहीं। कवि का काव्य-कौशल उसे और रूप से सवार कर ही अपना उपकरण बनायेगा। उसकी कल्पना और अनुभूति की प्रयोगशाला से वह मग्न-हृदय शाहजहाँ की अतृप्त आकांक्षाओं का इतिहास उसके अमर प्रेम की सजग गाथा मूक वेदना की प्रखर वाणी या ऐसे ही किसी अन्य रूप में निकलेगा। ऐसे ही हृदय में टीस के उठने की स्थिति का भान सीधे न करा कर वह कहेगा—हृदय में बिजली कौंध गयी या पत्थर (पत्थर हो गये हृदय) पर दर्द की रेखा उभर गयी। ऐसी स्थापनाएँ मूर्त को तो जीवन्त करती ही हैं अमूर्त को भी मूर्त कर देती हैं। रूप-विधान का यही चमत्कार काव्य की प्रारम्भिक स्थिति है।

रूप विधान के क्रमिक विकास का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि उपमान और रूप-विधान के अन्य उपकरण के संचयन में कवि का ध्यान जीवन-जगत् की ओर उतना न जाकर प्रमुखतः प्रकृति की ओर ही गया है। शास्त्रीय और पारम्परिक उपमानों की अधिक और नव्य उपमानों की अपेक्षाकृत कम खोज हुई है। "नव उज्ज्वल जलधार हार-हीरक सी सोहत' से लेकर जिनके जल-विहार में बहता चक्रवाल का गोरा बच्चन कालिंदी के नीचे पार को क्यों मँजा करती आलिंगन' अथवा 'सागर की रोज यहाँ बेगम तड़पा करता तब कवि की दृष्टि के सम्मुख प्रकृति का ही प्रमुख दृष्टि गोचर होता है। यही प्रकृति उसके विभिन्न उपादानों के माध्यम से मानवीय व्यापारों एवं रागों की वही व्यंजना। कोयले की खान की मजदूरिनी-सी रात' या 'आपरेशन थियेटर-सी जो हर काम करते हुए भी चुप है' जैसे उपमान बहुत कम मिलते हैं। आज विज्ञान मनो विज्ञान आदि विविध क्षेत्रों में जो नित नयी घटनाएँ घटित होती हैं जो आविष्कार होते हैं उन सबसे नये उपमान लिए जा सकते हैं। आज का जीवन अपनी विविधता में नये-नये अन्य अनेक ऐसे उपकरणों से भरपूर है जो उपमान बन सकते हैं। फिर भी कवि उन सब

उपकरणों को समेटने में अब तक पूर्ण रूप से समर्थ नहीं हुआ है।

काव्य की कलात्मकता की दृष्टि से भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग की कविताएँ उतनी आगे नहीं बढ़ी प्रतीत होतीं। यदा-कदा जो रूप-विधान के कुछ उदाहरण मिल जाते हैं उनमें वे ही परम्परागत उपमान प्रयुक्त हुए हैं। या तो नारी के नख-शिख का वर्णन है या प्रकृति की शोभा का। छायावादी चूँकि स्थूल के प्रति सूक्ष्म का इतिवृत्तात्मकता के प्रति कलात्मकता का विद्रोह था। सूक्ष्मातिसूक्ष्म सौन्दर्यांकन और कलात्मक सौष्ठव को लेकर कई कदम आगे बढ़ा है। किन्तु, उसमें भी उपमान रूप में प्रयुक्त प्राकृतिक उपकरणों का ही बाहुल्य है। भाषा अभिव्यक्ति और रूप विधान में निखार को अवश्य ही छायावाद की विशेष उपलब्धि के रूप में माना जा सकता है। कहीं कुंचित घुँघराली अलकें साड़ी की सलवटें रव, ड्रिलोंडे आदि चित्र-सृष्टि में प्रयुक्त हुए हैं और यह इस बात का प्रमाण है कि कवि की दृष्टि प्रकृति-जगत् से धीरे-धीरे उठकर मानवीय जगत् और उसके यथार्थ छाया-रूपों पर भी पड़ने लगी थी। फिर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के युग में पहुँचते-पहुँचते कवि यथार्थ जीवन और उसकी विविधता के बीच आकर खड़ा तो हुआ पर उसके बिखरे हुए उन उपकरणों को समेट नहीं सका जिसमें नव्य-रूप-विधान में ताज रंग और रेखाएँ डाली जा सकती थीं। इसका अर्थ यह नहीं कि इस युग में भी नव्य-रूप विधानों का अभाव खटकता है! नव्य-रूप-विधान मिलते तो हैं पर उनमें अपेक्षित विविधता और ताजगी का अभाव है। इस दृष्टि से प्रगति और प्रयोगकाल का कवि उसके सम्मुख जितने सारे नवीन उपकरण उपलब्ध हैं उन्हें समेटने में समर्थ नहीं हुआ है। फिर भी कुछ ताजगी तो आ ही गयी है। एक बात यहाँ भी ध्यान देने की यह है कि इस काल में भी देखा जाय, तो संख्या गुण और प्रभाव-सृष्टि की दृष्टि से प्राकृतिक उपकरणों का ही बाहुल्य है। ऐसे प्रसंग रूप में कुछ ऐतिहासिक पौराणिक और सामाजिक चर्चा के, जिसमें समाज और राष्ट्र के साथ ही विश्व भी सम्मिलित है उपकरणों की रूप-सृष्टि में प्रयुक्त हुए हैं और वे कवि के समाजोन्मुख एवं युग-चैतन्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सांस्कृतिक रूप-विधान

इसके अंतर्गत प्रथमतः मानवी रूपों पर आधारित रूप-विधान आते हैं। ये अधिक नहीं मिलते। पर जो मिलते हैं वे शुभ हैं और कला की दृष्टि से सुन्दर एवं सफल हैं; रूप से अन्य अभिप्रेत अर्थ को प्रेषणीय बनाने और अपेक्षित रूप को मूर्त करने की दृष्टि से।

पुरुष-रूप :

भैरव के मन्द स्वरों के पहले कंपन-सा
वे सात पहरुए उतर गये हैं पश्चिम में
के अँधियारे का सिंहासन

—भोर एक लैंडस्केप, धूप के धान गि० माथुर

यहाँ सबसे बारीक कारीगरी 'सप्ततारा' की स्थिति चित्रित करने में 'भैरव के मन्द

स्वरों के पहले कंपन' की योजना में है। रात्रि के ढलते पहरों की उत्तरोत्तर गहरी होती हुई खामोशी शून्य में कम्पन की स्थिति से जैसे आ जाती है। फिर रूपक की योजना कर तारों को पहरुओं का रूप दिया गया है, जिनका व्यापार अँधियारे के सिंहासन को लेकर पश्चिम में उतरने से और स्पष्ट हो जाता है। यहाँ एक सिंहासन शब्द के आ जाने से प्राचीन काल की एक राजकीय स्थिति का बोध सहज ही हो जाता है।

नारी-रूप :

नारी-रूप के उदाहरण में पहले भारतभूषण द्वारा प्रस्तुत मधुरी का चित्र द्रष्टव्य है

तू सत्य-स्वर्ण इस वसुधा पर। तेरे अंचल की छाँह तले
पलते हैं देव-तुल्य नर नव। —तार-सप्तक

मधुरी की महत्ता को व्यतिरेक द्वारा उसे सत्य-स्वर्ण कह कर बढ़ाया गया है। इससे मधुरी के रूप की कल्पना विशेषतः स्वप्न के सम्मुख रखने पर और सुबोध हो जाती है। ऐसे ही 'अंचल' की योजना से उसकी हरी भरी माटी और वैभवपूर्ण स्थितियाँ मूर्त हो जाती हैं।

कुछ मांसल चित्रों की सृष्टि में विशेष सिद्धहस्त कवि गिरिजाकुमार माथुर द्वारा प्रस्तुत धरती के उस समय का चित्र देखिये जब उस पर सावन के बादल झुक जाते हैं विशेषकर तब जब 'फूल-बाईं' खुल जाती हैं और 'लाज का आँचल' अपने आप हट जाता है

नहाकर वनस्पति हुई ऋतुमती-सी
मिलमिलि धरा ज्यों घूँघरि रसवती-सी
नवोढ़ा नदी ने नयन खोल खोले
सजी दीप तन की मिलन आरती-सी। —धूप के धान

प्रकृति-रूप

रूप-विधान का क्षेत्र यों तो प्रकृति का विशाल प्रांगण ही है। फिर भी जहाँ कहीं प्रकृति के किसी विशेष रूप को चित्रित करने में सांस्कृतिक उपकरण सहायक हुए हैं, वहाँ उस रूप विधान को सांस्कृतिक रूप विधान के अन्तर्गत ही लिया गया है।

उदाहरणार्थ।

मोरपंखी रात आकर निकल जाती
शीत माथे पर धरा कि। —धूप के धान, पृ० १०

या

चढ़ रहा है नया दूज का चाँद
हँसिया चाँद श्वेत हँसली सा। —धूप के धान, पृ० ८०

प्रस्तुत दोनों उदाहरणों में विशेषण के रूप में मोरपंखी और उपमान के रूप में हँसली का प्रयोग हुआ है। मोरपंख का उपयोग हमारे यहाँ सिंहासन और मुकुटों को सजाने में होता रहा है। कहीं-कहीं उसका प्रयोग यूँ भी किसी वेष भूषा में हुआ है और हँसली तो स्त्रियों का एक बहुत ही प्रसिद्ध गहना है। रात को मोरपंखी कह देने से उसकी तारों वाली

सपाचट सामने आ जाती है। ऐसे ही धूप का चाँद हँसुली के सम्मुख पड़ने पर और स्पष्ट हो जाता है। रूप सादृश्य के आधार पर इन अप्रस्तुतों की योजना कवि के सजग अन्वेषण का प्रमाण है।

ऐसे ही भारत भूषण ने किरणों के फूटने का चित्र अग्नि-बाण और ज्योति-शस्य की योजना करके खींचा है

फूटी किरणें ज्यों अग्नि-बाण, ज्यों ज्योति-शस्य
तरु-वन में जिनसे लगी आग। —तार-सप्तक

बहुत ही स्वाभाविक चित्रण है। प्रभाव में पक्का है। भोर के वर्णन में सिर्फ मूर्तीकरण हो गया था, किरणें धरती के घर-घर पर दौड़ पड़ीं—कहने से जो चित्रात्मकता नहीं आ पाती वह अग्नि-बाण और ज्योति-शस्य की क्रिया की कल्पना से मूर्तिमान हो जाती है। तत्पश्चात् तरुवन में आग लगने की व्यापार-योजना से प्रभाव-रूप से तरु-दल पर ज्योति किरणों के फैलने का बड़ा ही सशक्त चित्रण उपस्थित हो जाता है।

'दूसरा सप्तक' के अन्यतम कवि नरेश द्वारा प्रस्तुत एक दूसरा चित्र लीजिए

तम की अँधियारी अलकों में
कुंकुम की पतली-सी रेख
दिवस-देवता की लहरों के
सिंहासन पर हो अभिषेक
सब दिशि के तोरण-वन्दनवारों पर किरणों की मुसकान!

—उषस्—१

वर्णन उषा का है। तम की अलकों में कुंकुम की पतली रेखा दिवस-देवता के सिंहासन पर अभिषेक की रचना और फिर तोरण-वन्दनवारों की योजना—ये सभी सांस्कृतिक उपकरण हैं। बिखरे हुए रूप में इनका कोई महत्त्व नहीं। पर कवि द्वारा इनकी एकत्र योजना यहाँ उषा-वर्णन में रंग और रेखाएँ डाल देती है। उषा के आगमन के साथ ही या उसके कुछ पूर्व प्राची के क्षितिज पर एक पतली अरुणिम ज्योति-रेखा का उभर आना फिर सूर्य के ज्योति-लहरों से निर्मित-सिंहासन पर अभिषेक का होना और उसके बाद में विधिवत् दिशि दिशि में वन्दनवार सजे तोरणों पर किरणों का दौड़ जाना—आदि की क्रमिक योजना उषा के रूप-चित्रण में जान डाल देती है।

ऐसे ही कुछ अन्य सांस्कृतिक उपकरणों एवं रूपकों की योजना पर आधारित प्रात का निम्न चित्र भी दर्शनीय है

प्राची के दिक्पाल इन्द्र ने
छिड़का सोने का आलोक
विहगों के शिशु-मंत्रों के
कंठों में फूटे मधु श्लोक
वसुधा करने लगी अंग से वासन्ती रथ का आह्वान!

—उषस्—१

यहाँ मानवीकरण की योजना बहुत स्पष्ट है। कवि का अभीष्ट चित्र भी सम्मुख आ जाता है। फिर भी, उद्धरण १ से उद्धृत प्रथम चित्र की तुलना में यह बहुत कमजोर पड़ जाता है। इसमें क्रिया की क्रमबद्धता के अभाव में कलात्मक परितोष में व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि कवि की कल्पना ही यहाँ कष्ट-साध्य है। वैसी कोई बात नहीं। केवल क्रम भंग बीच में मेंड़ डालता है। चित्र का विश्लेषण करने से तीन बातें सम्मुख आती हैं (१) प्राची के दिक्पाल इन्द्र ने सोने का आलोक छिटका दिया (२) विहगों के शिशु गायकों के कंठों में मधु श्लोक फूटे और (३) वसुधा मंच से वासन्ती रव का आह्वान करने लगी। किन्तु प्रथम दो पंक्तियों का अर्थ व्याकरण की दृष्टि से यह होता है कि इन्द्र ने सोने का आलोक छिटका यानी छिटका कर—। इस पूर्वकालिक क्रिया के बाद इन्द्र की कोई और क्रिया आगे नहीं बढ़ती। फलतः छिटकाने के पश्चात् जो अपेक्षित क्रिया-क्रम है उसका अभाव हो जाता है, उसका फिर विहगों के कंठों में श्लोक फूटने या वसुधा द्वारा रव का आह्वान किये जाने से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। यह क्रम भंग सम्पूर्ण सौन्दर्यानुभूति को नष्ट कर देता है। यह सब नहीं होता अगर कवि ने यहाँ पूर्वकालिक क्रिया छिटका की जगह पूर्णभूत छिटकाया करके सोने के आलोक को स्वर्णिम आलोक कर दिया होता। इतना दिखलाने का अभिप्राय यही है कि एक छोटी-सी भूल किस प्रकार अच्छी-से-अच्छी रूप-योजना का सौन्दर्य नष्ट कर देती है।

नरेश का एक और चित्र देखिये :

विलायत की राजमेंट

हस्ति मकान—
मेघ के ऊँटों, अश्वों और हाथियों पर लादे
चमचम बादल के पशमीने
तोतापंखी के किमखाब दुशाले।
लाल पालकी
छोटे डोले,
संग बलाका चोले बगुले—
हीयो हीयो
समझ बूझ कर पैर रखो जी डोली वाले।

—विलायत की राजमेंट नरेश मेहता कल्पना, दि० १९५५

ऊँट अश्व और हाथी फिर पशमीने और तोतापंखी के किमखाब दुशाले फिर पालकी आदि एक साथ ही आकर एक शाही वैभव का दृश्य उपस्थित करते हैं। चित्र बहुत ही सरल और स्पष्ट है।

सांस्कृतिक उपकरणों पर आधारित प्रकृति के कुछ और चित्र दर्शनीय हैं।

(१) ये धतूरे चाँद का
पूँजल रँगा मंडल
और माथे पर गिरे, पड़
चंपई कुंतल।

—धूप के धान, पृ० ७४

(२) रातें रतनारी अरुण बदन
रस, गंध, परस, स्वर सुमन वती
तुमसे धरती है सुमनवती।

—धूप के धान, पृ० ८८

(३) सुन्दरियों के गोल बदन
छिपके गुलाल से
ज्यों सूरज पर सन्ध्या बादल।

—दूसरा सप्तक शकुन्तला माथुर

प्रस्तुत तीनों चित्रों में (३) अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। चित्र की योजना भी इतनी सरल और स्पष्ट है कि अभिमत सौन्दर्यानुभूति सहज ही हो जाती है। (१) में मंडल के ऐपन रँगा होने से जो एक हलका चित्र सम्मुख आता है, उसका अधूरे चाँद से ठीक-ठीक मेल नहीं खाता। उसके साथ ही मोर माथे पर चंपई कुंतल के उड़ने गिरने का तो और भी बेतुका मेल है। ऐसे इन चित्रों को अलग-अलग लिया जाय तो चित्रखंडों में सम्मुख आता है। सब मिलाकर इस असंश्लिष्ट चित्र-योजना की कल्पना तो कष्ट-साध्य ही प्रतीत होती है। ऐसे ही (२) में एक शब्द सुमनवती रूपानुभव कराने में सहायक होता है यद्यपि साथ की शेष दो पंक्तियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु (३) की चित्र-योजना में यह कमी नहीं खटकती। कुल तीन पंक्तियों में चित्र बड़ी सफाई से सजा कर रख दिया गया है। गुलाल में छिपते हुए सुन्दरियों के गोल बदन में जिस अप्रस्तुत की योजना की गयी है, वह प्रस्तुत के सौन्दर्योन्मेष में रूप-सादृश्य के बल पर बहुत ही सहायक हुआ है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित प्राकृतिक उपमान की एक और योजना देखिये।

विमल जल-विहार में बहता
बाल-श्याम का गोरा बदन
कालिन्दी के नीले जल को
ज्यों गंगा करती आलिंगन।

गंगा-यमुना के मिलन को सामने लाने से प्राचीन रनिवासों के जल-विहार का चित्र जैसे मूर्त हो गया है।

गुण-रूप उपकरणों पर आधारित रूप-विधान :

इसके अन्तर्गत वे उपकरण लिये गये हैं जिनसे गुण-सादृश्य के बल पर ही चित्र खड़े किये जाते हैं। स्पर्श मात्र से किसी वस्तु में कोई विशेष चमत्कार उत्पन्न करने के लिए सामान्यतः 'पारस' को रूपक उपमान या विशेषण के रूप में व्यवहृत किया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु को 'पारस' ही कह दिया जाय या पारस के समान। इससे भी न हुआ तो उसे विशेषण का रूप देकर किसी स्पर्श की विशेषता 'पारस स्पर्श' से प्रतिपादित की जा सकती है। ऐसे ही धूसरापन के लिए गोरज और पावनता पवित्रता आदि के लिए धूप, नैवेद्य दीपशिखा पूजा-अर्चना गंगा आदि शब्दों से बहुविध प्रयोग मिलते हैं।

धर्मवीर भारती द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना की कड़ी के रूप में कवि के अन्तर-लोक में बसी

किसी छाया-छवि का रूपांकन देखिये :

प्रात सद्य स्नात
कंधों पर बिखेरे केश
आँसुओं में ज्यों
धुला वैराग्य का संदेश
चूमती रह रह
बदन को अर्चना की धूप
यह सरल निष्काम
पूजा-सा तुम्हारा रूप

—ठंडा लोहा पृ० ११

यहाँ पृथक-पृथक तीन बिम्ब खड़े हैं। प्रथम बिम्ब आँसुओं में धुले हुए वैराग्य के संदेश के समान किसी सद्यस्नाता सुन्दरी के कंधों पर बिखरे हुए केश का है। द्वितीय रह रह कर बदन को चूमती हुई अर्चना की धूप का है। इन दोनों बिम्बों की पृष्ठभूमि में तृतीय बिम्ब आता है। बिम्ब में ध्यान देने की बात यह है कि प्रस्तुत छाया-छवि को पूर्ण रूप में चित्रित करने में किसी और उपमान को अभिप्रेत अर्थ देता न पाकर कवि ने उपमान रूप में पूजा को लिया है। और पूजा भी वह, जो सरल और निष्काम है। बिम्ब अत्यन्त ही सूक्ष्म है और साथ ही इसका ग्रहण भी कष्ट-साध्य है। कम-से-कम सामान्य कल्पना की पकड़ की तो बात नहीं ही है। बहुत प्रयत्न करने पर कुछ-कुछ अनुमान कर पाते हैं बहुत कुछ अनुमान करने से रह जाता है। ऐसे असंश्लिष्ट और बेतुके बिम्ब भावोन्मेष और सौन्दर्यानुभूति दोनों में कमजोर पड़ जाते हैं। रूपकों और उपमानों की योजना ऐसे स्थलों पर शाब्दिक-खिलवाड़ मात्र होकर रह जाती है।

भारती द्वारा प्रस्तुत एक दूसरा बिम्ब देखिये :

अर्चना की धूप सी तुम गोद में लहरा गई
ज्यों झरे केसर तितलियों के परों की मार से।

—ठंडा लोहा पृ० ११

यह बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक सुलझा हुआ और स्पष्ट है। ऐसे इसका असंश्लिष्ट होना सौन्दर्यानुभूति में यहाँ भी बाधक होता है। जहाँ तक प्रेयसी के गोद में आने की बात है, वह तो स्पष्ट है। पर उसके लहरा उठने में और वह भी अर्चना की धूप की तरह किसी विशेष अर्थ या बिम्ब की प्रतिष्ठा नहीं होती। लगता है, कवि को अर्चना और पूजा आदि जैसे शब्दों से कुछ विशेष मोह हो गया है। फिर, इस उपमान के लिए भी एक और उपमान की योजना की गयी है। प्रेयसी का कवि की गोद में अर्चना की धूप के समान लहराना वैसे ही हुआ जैसे तितलियों के परों की मार से केसर का झरना होता है। इस प्रकार दुहरे उपमान की योजना प्रशंसनीय तो है पर इसकी प्रभावान्विति के किसी संश्लिष्ट एवं अर्थ-योजना के अभाव में खंडित हो जाने के कारण कवि की सम्पूर्ण चेष्टा निरर्थक हो जाती है। कहाँ किसी का गोद में आना और कहाँ तितलियों के परों की मार से केसर का झरना ! दोनों एक-से-एक सुन्दर बिम्ब हैं। पर दोनों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं दिखता। ऐसे पूरा प्रसंग बहुत ही सरस और भावपूर्ण है।

इसके उपरान्त अब कई उपमानों पर आधारित एक पूर्ण रूप-विधान पर विचार कीजिये

एशिया के कमल पर तुम भारती सी
पूर्व के जन-जागरण की आरती-सी
इस सदी के साथ केसर चरण धरकर
आ गयी तुम भूमि स्वर्ग सँवारती-सी ।

—धूप के धान पृ० १

प्रस्तुत चित्र, सदियों की गुलामी और प्रताड़ना एवं शोषण के पश्चात् एशिया की अँगड़ाई का है जो राजनीतिक जागरण के रूप में प्रभातकिरणों के समान देखते-देखते एक कोने से दूसरे कोने में फैल गयी। उसी जागरण को कवि ने नई भारती के रूप में सम्बोधित किया है और उसके अमूर्त रूप को मूर्त करने के निमित्त कमलासन पर विराजमान भारती जन-जागरण की आरती फिर केसर के अनुरंजित चरण (यह योजना रश्मियों के लिए है) आदि उपमान-रूप उपकरणों को समेट कर तत्पश्चात् उसके द्वारा भूमि-स्वर्ग के सँवारे जाने की क्रिया की योजना से पूर्ण चित्र को संश्लिष्ट बना दिया गया है। इस कलात्मकता के प्रभाव स्वरूप चित्र तो स्पष्ट हो ही जाता है, अभिप्रेत अर्थ की अपेक्षित प्रेषणीयता भी बढ़ जाती है।

गुण-रूप उपमान पर आधारित जीवन के मासूम सुखों तथा तन एवं मन के स्वस्थ चैन की भोली मिठास की कुछ सुधियों का चित्र देखिये

और न लगते दिन निराश
रातें मरमसी
क्योंकि बड़ी भोली मिठास की सुधियाँ हैं ये
जीवन के मासूम सुखों की
तन के मन के स्वस्थ चैन की
जिनकी उजली उजली छापें
छिपी हुई हैं स्वस्तिक-सी कोने-कोने में।

—धूप के धान पृ० २६

यहाँ उपमान स्वस्तिक के आ जाने से पूरा चित्र आँखों के सामने घूम जाता है। 卐 इस आकार के मंगल चिन्ह को स्वस्तिक कहते हैं। प्राचीनकाल में शुभ अवसरों पर मांगलिक द्रव्यों से इसे अंकित किया जाता था। आजकल इसे चावल पीस कर भी अंकित किया जाता है। इसमें देवताओं का निवास माना गया है। इसके अतिरिक्त शरीर के कुछ विशिष्ट अंगों पर भी इस प्रकार के चिन्ह का उगना शुभ माना गया है। स्वस्थ-सुखी जीवन के रात-रसों के कतिपय चिन्हों का अब तक स्वस्तिकाकृति में बने रहना इस बात का सूचक है कि कवि उन्हें मंगल-चिन्ह मानकर सजाये हुए है, और इससे उसे मंगल-फल के रूप में सभी चीजें प्राप्त हैं। स्वस्तिक के प्रयोग से प्रौढ़ रोमांस की मधुमय घड़ियों की मीठी सुधियों का जो चित्र बनता है उससे मगल-भावना का साथ होने से अभिमत अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है।

वही कविता-कमला चिर साथ जीवन की
वही अंचल परस जिसका वरद पारस-सा। —तार-सप्तक

पारस-स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है—यह बात लोक प्रसिद्ध है। व्यंग्यार्थ से इसे किसी भी बिगड़े हुए काम के अच्छा हो जाने का बोध होता है। अंचल में पारस-गुण के समाविष्ट हो जाने से अंचल की गरिमा अर्थ-साम्य और बहुत ही स्पष्ट हो जाती है।

विविध

सांस्कृतिक बिम्बों में से कुछ ऐसे भी हैं जो उपरोक्त तीनों कोटियों में नहीं आते जो या तो किसी प्राचीन रनिवास की झाँकी प्रस्तुत करते हैं, या पुनीत भावना के अर्थ में प्रयुक्त किसी सांस्कृतिक उपकरण से बने प्रतीक पर आधारित होते हैं या सीधे युग-युग से चली आती हुई प्रलय-सृजन की कहानी बड़ी ही कलात्मकता के साथ दुहरा जाते हैं।

गिरिजाकुमार द्वारा प्रस्तुत प्राचीन रनिवासों के वैभव एवं रंगीनी का निम्नांकित चित्र दर्शनीय है

वैभव की वे शिला-भित्त सी यादें भारी
एक चाँदनी-भरी रात उस राजनगर की,
रनिवासों की नंगी बाहों की रागिनी
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की। —तार-सप्तक

चित्र स्पष्ट और अर्थ-बोध में सरल है। उपमान के रूप में पुरेतिहासिक एवं चिरकाल तक अमर रहने के अर्थ का बोध कराने के निमित्त शिलालेख की योजना फिर राग-रंग से पूर्ण यामी चाँदी की रात के लिए चाँदनी भरी रात का और भग्न-विलास एवं विहार के लिए संकेत रूप में नंगी बाहों का और तत्पश्चात् मिलन-मिठास के रेशमी होने का बोध कराने के निमित्त विशेषण का प्रयोग बहुत ही सफल एवं सुन्दर है। गिरिजाकुमार ऐसी रंगीन रेखाओं की योजना करने में एक सिद्धहस्त कवि हैं।

अन्त में 'दूसरा सप्तक' के अन्यतम कवि भवानीप्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत एक चित्र देकर यह प्रसंग समाप्त किया जाता है। चित्र की विशेषता उसके प्रतीकात्मक अर्थ की निपुण योजना में है। देखिए

फूल लाया हूँ कमल के।
क्या करूँ इनका ?
पसारें आप आंचल
छोड़ दूँ ;
हो जाए जी हल्का !
किन्तु होगा क्या कमल के फूल का ?
कुछ नहीं होता
किसी की भूल का
मेरी कि तेरी हो—
ये कमल के फूल केवल भूल हैं।

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं!
भूल भी यदि है
अछूती भूल है!
मानसरवाले
कमल के फूल हैं।

कमल मानसर और बीच—ये प्रसिद्ध सांस्कृतिक उपमान हैं जो क्रमशः कवि के गीत मानसलोक और भावुक-वर्ग के रुचि-वृत्त के अर्थ में प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। मानसर के कमल के रूप में गीतों का प्रयोग उनके अपूर्व सुन्दर सुकुमार एवं सुरभिपूर्ण होने का बोध कराने के निमित्त है, निश्चयतः रूप और भाव दोनों दृष्टियों से। गीतों को भूल-रूप में कहकर एक और अर्थ की योजना की गयी है—वह यह कि जीवन में नित होती रहने वाली भूल-चूक से उत्पन्न टीस या कसक की अनुभूति ही गीतों का उपादान-कारण है। इसके साथ ही ध्यान देने की दो बातें और हैं (१) भूल के अछूती होने की जिसका व्यंग्यार्थ गीतों और उनकी उद्भावना के मौलिक होने से है और (२) कमल के फूलों के तीर पर से नहीं बल्कि मानसर के बीच से लाये जाने की, इसका व्यंग्यार्थ यह है कि जिन भावनाओं पर ये गीत रचित हैं वे भावनाएँ जीवन में डूबकर पायी गई हैं। कोई यह न समझ ले कि जीवन को ऊपर या किनारे से ही देखकर रचित की गयी हैं। इस प्रकार कवि ने प्रतीकों की योजना कर अपने गीतों की प्रशंसा के लिए ही पुल बाँध दिए हैं जो उसकी गर्वोक्ति और आत्मश्लाघा के परिचायक हैं। कवि मीठे-मीठे मारने में कुशल प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक तथा पौराणिक रूप-विधान

पौराणिक उपकरणों पर आधारित रूप-विधान प्रयोग काल की कविताओं में कहीं-कहीं ही मिलते हैं और जो मिलते भी हैं, उतने कलात्मक नहीं लगते। कुछ नाम विशेषों के प्रयोग के कारण हम उनके अर्थ का अनुमान तो कर लेते हैं पर चित्र का ग्रहण नहीं कर पाते। कारण वे चित्र या तो शब्दों में हैं या इतने अस्पष्ट हैं कि नगण्य प्रतीत होते हैं। फिर भी धर्मवीर भारती द्वारा गंगा के रूप में कविता का निम्नांकित चित्र रेमिस्ताम में आपेक्षिक का स्मरण कराता है

वही कविता,
विष्णुपद से जो निकल
और ब्रह्मा के कमंडल से उबल
बादलों की तहों को झकझोरती
चाँदनी के रजत फूल बटोरती
शम्भु के कैलाश पर्वत को हिला

उतर आयी आदमी की जमीं पर
चल पड़ी फिर मुस्कुराती
शस्य श्यामल फूल-फल-फसलें खिलाती
स्वर्ग से पाताल तक जो एक धारा बन बही
पर न आखिर एक दिन वह भी रही
मर गयी कविता वहीं
एक तुलसी पत्र औ दो बूंद गंगाजल बिना
मर गयी कविता नहीं तुमने सुना ?

—कविता की मौत ठंडा लोहा

कविता की कहानी गंगा की कहानी के माध्यम से कही गयी है। गंगावतरण की योजना से कविता के मांगलिक उद्‌भव पद-बिम्ब और तदनन्तर उसके धरती पर आकर उसे हरा-भरा और पावन करने की बात व्यंग्यार्थ से सिद्ध है। फिर ब्रह्मा के कमंडल से उबल कर निकलने बादलों की लहरों को झकझोरने चाँदनी के रजत फूल बटोरने और फिर धरती पर उतर कर फूल-फल-फसलें खिलाने आदि सदृश मानवी व्यापारों की योजना से कविता को मूर्त रूप प्रदान किया गया है। पूरा चित्र साफ, सरल और अपेक्षित अर्थ वहन करने में समर्थ है।

दूसरा चित्र माचवे द्वारा प्रस्तुत 'मेघ' का है जिसके आधार पर यक्ष को सम्मुख लाकर गगन तक फैले हुए उसके विधुर उच्छ्‌वास की योजना की गयी है। चित्र देखिये

मिस श्यामा सघन, घन छोर हीन तू कह से
कौरव-पंखी किरमिजी, असित मटमैले
यक्ष के विधुर उच्छ्‌वास गगन तक फैले।

—तार-सप्तक मेघमल्हार

चित्र स्पष्ट है। मेघ के लिए नव निर्माण स्वरूप शब्द यक्ष के विधुर उच्छ्‌वास का प्रयोग किया गया है। तप्त उच्छ्‌वास की योजना से मेघों की धूमवत्‌ मूर्त हो जाती है।

पौराणिक रूप विधानों की ही भाँति यहाँ ऐतिहासिक रूप-विधानों की भी न्यूनता है। कहीं-कहीं जो ऐतिहासिक उपकरण मिलते भी हैं वे एक हल्के किस्म जैसे हैं। उनके लिए कोई विशेष योजना नहीं मिलती। जैसे नारी को आदि प्रेरणा या प्रथम श्लोक की पृथुल वेदना कह दिया गया अँधेरे को मीरो के सादृश्य से मूर्त किया गया; अमराई में लेटी-पड़ी चाँदनी के लिए दमयन्ती उपमान रूप में लाई गयी।

माचवे नारी को एक साँस में ही छायापथ ज्योति-शिखा उल्का आलोक-शलाका हरिणी मालिनी, शिखरिणी आदि नाम क्या-क्या कह गए हैं। उसी क्रम में नारी ऐतिहासिक आधार लेकर भी आती है जो बहुत ही सूक्ष्म है

तुम छन्दों की आदि प्रेरणा
प्रथम श्लोक की पृथुल वेदना तार-सप्तक पृ० ५१

प्रस्तुत चित्र बहुत ही सूक्ष्म कल्पना-तन्तुओं से निर्मित है। आदि कवि वाल्मीकि तो सम्पूर्ण और कल्पना-मात्र हैं पर काममोहित क्रौंच के वध के बाद क्रौंचिनी की मुखरा

वेदना से विवलित कवि-हृदय का कथन जो वाणी बनकर निकला बहुत ही सूक्ष्म है और उसकी कल्पना सामान्यतः उतनी सहज-सरल नहीं जबकि कवि का अभीष्ट चित्र तभी बन सकता है जब हम इस सूक्ष्म कल्पना-तंतु को पकड़ें।

अब, घने अँधेरे को मूर्त करने के निमित्त रोम के इतिहास प्रसिद्ध आततायी बादशाह नीरो की योजना देखिये

नव-जीवन के हाथों में विश्वास खड्ग है,
और अँधेरे नीरो का गिर रहा मुकुट है।

—दूसरा सप्तक नरेश मेहता पृ० ११७

यहाँ अभिप्रेत अर्थ को प्रेषणीयता प्रदान करने के निमित्त पृथक-पृथक दो चित्रों की योजना की गयी है (क) हाथों में विश्वास रूपी खड्ग लिये नवजीवन रूप जन-जागरण का और (ख) नीरो का जिसके सिर से मुकुट गिरा जा रहा है। अँधेरा दमन उत्पीड़न और क्रूर अत्याचार के काल का प्रतीक है जिसके विरोध में जन-जागरण सिर उठा रहा है फिर विम्बस्थ खड्ग की योजना स अबध जन-शक्ति की ओर संकेत किया गया है। उसके बाद गत्यात्मक स्थिति की योजना कर मुकुट क गिरने की ओर संकेत करने का अभिप्राय जन-शक्ति के सम्मुख अत्याचार के राज्य क मिटते जाने से है। यहाँ स्पष्टतः कवि की कथा सफलता अभीष्ट चित्र-ग्रहण के अनुकूल भावोन्मय में सहायक हुई है।

नरेश द्वारा प्रस्तुत अममनी-पूनम का चित्र भी देखने योग्य है

अमराई में दमयन्ती-सी
पीली पूनम कांप रही है।

—उषस—१ दूसरा सप्तक

वगन वर्षाकाल में उदास और अनमनी पड़ी पूनम पूनम की चाँदनी का है। उषा की अरुणिमा में पूनम अपना आकर्षण जो चुकी रहती है उसका रूप-अमल कुछ मंद पड़ जाता है, चेहरे पर स्थिर-दशाओं का भाव उसके अंतर की गहरी उदासी का परिचायक होता है। इन सब बातों की व्यंजना बड़ी ही कुशलता के साथ सिर्फ नल द्वारा छोड़ दिए जाने पर अमराई में छेनी-भरी उदास-मना, मलीन मुख दमयन्ती को उपमान रूप में सामने रखकर की गयी है।

प्राकृतिक रूप-विधान

इसके अन्तर्गत रूप-विधान क निमित्त प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को प्रमुखतः तीन रूपों में प्रस्तुत किया गया है [क] चाँद, चाँदनी तारे, नदी सागर, लहरें, पवत धरती आकाश आँधी पानी भाप बिजली साँझ उषा रात दिन आग्नि या तो उपमान बनकर आये या कहीं-कहीं सीधे वर्ण्य-वस्तु की कोटि तक पहुँच कर रह गए हैं [ख] कहीं-कहीं पशु पक्षी कीट-पतंगों के रूप-धर्म गुण-सादृश्य पर भी उपमान खड़े किये गये हैं और [ग] प्राकृतिक उपकरणों का मानवीकरण करके उनके माध्यम से मानवी-व्यापारों की व्यंजना की गई है।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज भी कवि का मन सामान्यतः प्रकृति के कोमल और सुन्दर पक्षों तथा मधुर-व्यापारों की ओर ही अधिक दौड़ता है, उसके कठोर

एवं उग्र पक्षों की ओर नहीं। इसलिए उपमानों की खोज करने के क्रम में उसकी दृष्टि सघन वर्षा की कड़ी पर्त ज्वालामुखी के भीषण विस्फोट, कोलाहलमय समुद्र की दहाड़ भूकम्प, बवण्डर और उल्कापात पर बहुत कम ठहरती है उसे अधिक आनन्द आता है साँझ प्रात मृदु हवा की लहर पर से कांतिमय मंद हास लेकर उतर रही अरुण तमुएवाली अप्सराओं पर फिसलने में स्वर्ण-कमल की नाव (लहर) पर दौड़ने में आमुनी बादल के अल्हड़पन को देखने और कजीली भोर रश्मि को चूम-चूम कर जगाने में। ऐसे ही बादल की मृदुल तरी बिजरी (बिजली) की चमचम चुनरी धूप-सदृश खिलते मौसम वनफूलों के समान वेदाग नयी वाणी आदि पर उसका मन कुछ अधिक रीझा हुआ प्रतीत होता है। प्रकृति के कोमल मधुर अंगों की ओर उसका सहज आकर्षण इस बात से भी प्रकट होता है कि एक ओर जहाँ मानवीकरण की योजना में उसने प्रकृति (स्त्री-रूप) के सलोने रूप को सँवारने में अपने मन के रँगों को कुबेर बनकर खर्च किया है तो दूसरी ओर उसकी आन्तर भावनाओं का उदात्तीकरण प्रकृति ने जितना अपने मधुर स्पर्शों से किया है, उतना और किसी से नहीं। सच तो यह है कि प्रकृति के रूप-ऐश्वर्य पर मुग्ध होकर कवि के मानव-मन ने अपना सब कुछ लुटा दिया और फिर भी उसे संतोष नहीं हुआ तो बदले में प्रकृति ने भी उसके भाव लोक को अपने पारस-स्पर्श से इतना धनी बना दिया कि आज तक वह रिक्त नहीं हुआ।

इस दृष्टि से तार-सप्तक और उसके बाद के कतिपय कवियों की रूप-योजना देखने योग्य है :

(क) यह विदाद जीवन कि जो आकाश-सा
या कि निर्झर-सा चपल लघु तीव्र है
क्या पूर्ण है ? क्या तृप्ति पाता शीघ्र है
वह ग्रीष्म-सा है या मधुर मधुमास-सा ?

—मुक्तिबोध तार-सप्तक, पृ० १४

(ख) अनजाने चुपचाप अधखुले वातायन से
आती हुई कुहाई-सा ही
तेरी छवि का सुधि सम्मोहन
आज बिखर कर सिमट बसा है मेरे मन में।

—नेमिचन्द्र तार-सप्तक, पृ० २६

(ग) सघन वर्षा की कड़ी पर्तें-सी
एक-एक कर अमित कड़ियाँ
सदियों से जमती आती हैं
तह-पर-तह
मानव जीवन पर।

—भारत भूषण : तार-सप्तक पृ० ३४

(घ) जीवनानुभूति की गहराइयों के बीच मेरी विनम्र कृतज्ञता
फैल गयी मुझे आकाश-सी।

—अज्ञेय : तार-सप्तक, पृ० ८४

(घ) निकलती ही जा रही घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस धूलि-सी
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली।

—गिरिजाकुमार माथुर आस और धूल धूप के धान, पृ० ५१

(ङ) हेम वर्ण तुम, मैं इन्दीवर
क्यों विद्युत से मिले श्यामघन।

—इन्दुमती धूप के धान पृ० १२८

(च) कली-सा तन किरन-सा मन, शिथिल सतरंगिया आँचल
उसी में खिल पड़े यदि भूल से कुछ होंठ के पाटल
किसी के होंठ पर झुक जाँय कच्चे नैन के बादल
मगर इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो?

—धर्मवीर भारती ठंडा लोहा पृ० १०

उपरोक्त भाव उद्धरणों में अभीप्सित रूप-योजना के लिए प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का उपमान रूप में उपयोग किया गया है। 'क' में जीवन की विशदता के लिए आकाश और उसकी चमकता, मधुरता एवं तीव्रता का बोध कराने के लिए शिखर को सम्मुख लाया गया है, तो 'ख' में किसी रूपसी के रूप-सम्मोहन को मूर्त करने के लिए जुन्हाई को प्रस्तुत किया गया है। 'ग' में मानव जीवन पर तह-की-तह जमी हुई घड़ियों का बोध सघन बर्फ की कड़ी पर्त के सादृश्य से कराया गया है। 'घ' में रूपक के आधार पर जीवनानुभूति की पहाड़ियाँ खड़ी की गयी हैं जिनके बीच खोयी हुई विनम्र-मूकता के असीम होने का बोध उपमान-रूप में आकाश को लाकर रूपानुभव के बल पर कराया गया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि रूपात्मकता पर कवि-दृष्टि के अत्यधिक जाने के फलस्वरूप कविता रूप-सी गयी है। इसकी तुलना में उद्धरण 'ख' में प्रदर्शित रूप-योजना और भाव-सृष्टि की कला अधिक सफल और सप्राण लगती है। 'घ' में उक्ति-वैचित्र्य कविता के शिथिल पड़ने पर भी, कल्पना के उन्मेष में सहायक हुआ है। जीवन की सुनहली घड़ियों के सरकते जाने की तुलना ग्रीष्म ऋतु की उस धूल से की गयी है जिसकी केसर [नमी] हवा द्वारा सोख ली गयी है। यहाँ भाव-निर्माण स्वरूप शब्दों की योजना भी ध्यान देने की बात है। मधुमय यौवन के लिए आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की सुनहली घड़ियों का प्रयोग किया गया है। 'ङ' उद्धरण में विद्युत के श्यामघन के मिलन की योजना की विशेषता के अनुरूप ही रूप-सृष्टि की दृष्टि से बहुत कलात्मक है। इसकी तुलना में 'च' उद्धरण में प्रयुक्त 'कली-सा तन किरन-सा मन', आदि योजनाएँ फीकी और बासी लगती हैं। यद्यपि यहाँ एक गहरा रोमानी रंग छाया हुआ है।

भावाभिव्यक्ति में सघनता लाकर काव्य में गूढ़ता का बोध कराने वाले रूप और उपमानों की योजना देखिये

मेरा जीवन—
घास की पत्ती से झूलती हुई यह अजानी ओस-बूँद

एवं उग्र पक्षों की ओर नहीं। इसलिए उपमानों की खोज करने के क्रम में उसकी दृष्टि सघन वर्फ की कड़ी पर्त ज्वालामुखी के भीषण विस्फोट, फेनोन्मत्त समुद्र की बहाव, भूकम्प बवण्डर और उल्कापात पर बहुत कम ठहरती है उसे अधिक आनन्द आता है साँझ प्रात मृदु हवा की लहर पर से कांतिमय नव हास लेकर उतर रही अरुण तरुएवाली अप्सराओं पर फिसलने में स्वर्ण-कमल की नाल (लहर) पर दौड़ने में आमुली बादल के अल्हड़पन को देखने और लजीली भोर रश्मि को चूम-चूम कर जगाने में। ऐसे ही बादल की मृदुल तरी बिजरी (बिजली) की चमचम चूनरी धूप-सदृश खिलते यौवन वनफूलों के समान बेदाम भरी वाणी आदि पर उसका मन कुछ अधिक रीझा हुआ प्रतीत होता है। प्रकृति के कोमल मधुर मर्मों की ओर उसका सहज आकर्षण इस बात से भी प्रकट होता है कि एक ओर जहाँ मानवीकरण की योजना में उसने प्रकृति (स्त्री रूप) के सलोने रूप को सँवारने में अपने मन के रँगों को कुबेर बनकर खर्च किया है तो दूसरी ओर उसकी आन्तर भावनाओं का उदात्तीकरण प्रकृति ने जितना अपने मधुर स्पर्शों से किया है, उतना और किसी से नहीं। सच तो यह है कि प्रकृति के रूप-ऐश्वर्य पर मुग्ध होकर कवि के मानव-मन ने अपना सब कुछ लुटा दिया और फिर भी उसे सतोष नहीं हुआ तो बदले में प्रकृति ने भी उसके भाव कोष को अपने पारस-स्पर्श से इतना धनी बना दिया कि आज तक वह रिक्त नहीं हुआ।

इस दृष्टि से तार-सप्तक और उसके बाद के कतिपय कवियों की रूप-योजना देखने योग्य है :

(क) यह विग्रह जीवन कि जो आकाश-सा
या कि निर्झर-सा चपल लघु तीव्र है,
क्या पूर्ण है ? क्या तृप्ति पाता धीम्र है
वह ग्रीष्म-सा है या मधुर मधुमास-सा ?

—मुक्तिबोध तार-सप्तक, पृ० १४

(ख) झलमलाते चुपचाप अधखुले वातायन से
आती हुई कुहराई-सा ही
तेरी छवि का मुधि सम्मोहन
आज बिखर कर सिमट चला है मेरे मन में।

—नेमिचन्द्र तार-सप्तक, पृ० २६

(ग) सघन वन की कड़ी पर्त-सी
एक-एक कर अमित कड़ियाँ
सदियों से जमती जाती हैं
तह-पर-तह
मानव जीवन पर।

—भारत भूषण तार-सप्तक, पृ० १४

(घ) जीवनानुभूति की पहाड़ियों के बीच मेरी विनम्र कृतज्ञता
फैल गयी मुझे आकाश-सी।

—अज्ञेय : तार-सप्तक, पृ० ८४

(च) निकलती ही आ रही घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस धूलि-सी
जिसकी गई केसर हवा ने सोख सी।

—गिरिजाकुमार माथुर आम और फूल धूप के धान, पृ० ५१

(छ) हिम वर्ण तुम, ये इन्दीवर
क्यों विद्युत से मिले श्यामघन।

—इन्दुमती धूप के धान, पृ० १२८

(ज) कली-सा तन किरन-सा मन, शिथिल सत रँगिया आँचल
उसी में खिल पड़े यदि भूल से कुछ होठ के पाटल
किसी के होठ पर झुक जाँय कच्चे नैन के बादल
महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो ?

—धर्मवीर भारती ठंडा लोहा पृ० १०

उपरोक्त सात उद्धरणों में अभीप्सित रूप-योजना के लिए प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का उपमान रूप में उपयमन किया गया है। 'क' में यौवन की विशदता के लिए आकाश और उसकी चपलता लघुता एवं तीव्रता का बोध कराने के लिए निर्झर को सम्मुख लाया गया है, तो 'ख' में किसी रूपसी के सुधि-सम्मोहन को मूर्त करने के लिए जुन्हाई को प्रस्तुत किया गया है। 'ग' में मानव-जीवन पर तह-की-तह जमी हुई रूढ़ियों का बोध सघन बर्फ की कड़ी पर्त के सादृश्य से कराया गया है। 'घ' में रूपक के आधार पर जीवनानुभूति की पहाड़ियाँ खड़ी की गयी हैं जिनके बीच फैली हुई विभ्रम-शून्यता के असीम होने का बोध उपमान-रूप में आकाश को लाकर रूपानुभव के बल पर कराया गया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि कलात्मकता पर कवि-दृष्टि के अत्यधिक जाने के फलस्वरूप कविता दब-सी गयी है। इसकी तुलना में उद्धरण 'ङ' में प्रदर्शित रूप-योजना और भाव-सृष्टि की कला अधिक सफल और सप्राण लगती है। 'च' में उक्ति-वैचित्र्य कविता के शिथिल पड़ने पर भी, कल्पना के उन्मेष में सहायक हुआ है। यौवन की सुनहली घड़ियों के सरकते जाने की तुलना ग्रीष्म ऋतु की उस धूल से की गयी है जिसकी केसर [नमी] हवा द्वारा सोख ली गयी है। यहाँ नव-निर्मित स्वरूप शब्दों की योजना भी ध्यान देने की बात है। मधुमय यौवन के लिए आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की सुनहली घड़ियों का प्रयोग किया गया है। 'छ' उद्धरण में विद्युत के श्यामघन के मिलन की योजना की विशेषता के अनुरूप ही रंग-सृष्टि की दृष्टि से बहुत कलात्मक है। इसकी तुलना में 'ज' उद्धरण में प्रयुक्त 'कली-सा तन किरन-सा मन', आदि योजनाएँ फीकी और बासी लगती हैं। यद्यपि यहाँ एक गहरा रोमानी रंग छाया हुआ है।

भावाभिव्यक्ति में सक्षमता लाकर काव्य में मूर्तमत्ता का बोध कराने वाले कुछ और उपमानों की योजना देखिये

मेरा यौवन—
घास की पत्ती से फूटती हुई यह अजानी ओस-बूँद

एवं उग्र पक्षों की ओर नहीं । इसलिए उपमानों की खोज करने के क्रम में उसकी दृष्टि सघन वर्षा की कड़ी पर्त ज्वालामुखी के भीषण विस्फोट, कोलाहलमय समुद्र की दहाड़, भूकम्प, बवण्डर और उल्कापात पर बहुत कम ठहरती है उसे अधिक आनन्द आता है सांझ प्रात मृदु हवा की लहर पर से कांतिमय नव हास लेकर उतर रही अरुण तनुपवाली अप्सराओं पर फिसलने में, स्वर्ण-कमल की नाल (लहर) पर दौड़ने में फागुनी बादल के अल्हड़पन को देखने और लजीली भोर रश्मि को चूम-चूम कर जगाने में । ऐसे ही बादल की मृदुल तरी, बिजरी (बिजली) की चमचम चूनरी धूप-सदृश खिलते यौवन वनफूलों के समान बेदाम नयी वाणी आदि पर उसका मन कुछ अधिक रीझा हुआ प्रतीत होता है । प्रकृति के कोमल मधुर अंगों की ओर उसका सहज आकर्षण इस बात से भी प्रकट होता है कि एक ओर जहाँ मानवीकरण की योजना में उसने प्रकृति (स्त्री रूप) के सलोने रूप को सँवारने में अपने मन के रंगों को कुबेर बनकर खर्च किया है तो दूसरी ओर उसकी आन्तर भावनाओं का उदात्तीकरण प्रकृति ने जितना अपने मधुर स्पर्शों से किया है, उतना और किसी से नहीं । सच तो यह है कि प्रकृति के रूप-ऐश्वर्य पर मुग्ध होकर कवि के मानव-मन ने अपना सब कुछ लुटा दिया और फिर भी उसे संतोष नहीं हुआ तो बदले में प्रकृति ने भी उसके भाव लोक को अपने पारस-स्पर्श से इतना धनी बना दिया कि आज तक वह रिक्त नहीं हुआ ।

इस दृष्टि से तार-सप्तक और उसके बाद के कतिपय कवियों की रूप-योजना देखने योग्य है :

(क) यह विशद जीवन कि जो आकाश-सा
या कि निर्झर-सा चपल लघु तीव्र है
क्या पूर्ण है ? क्या तृप्ति पाता शीघ्र है
वह ग्रीष्म-सा है या मधुर मधुमास-सा ?

—मुक्तिबोध तार-सप्तक, पृ० १४

(ख) झनझाते चुपचाप अधखुले वातायन से
आती हुई जुन्हाई-सा ही
तेरी छवि का मृदु सम्मोहन
आज बिखर कर सिमट चला है मेरे मन में ।

—नेमिचन्द्र तार-सप्तक, पृ० २६

(ग) सघन वर्षा की कड़ी पर्त-सी
एक-एक कर अमित कड़ियाँ
सदियों से जमती आती हैं
तह-पर-तह
मानव जीवन पर ।

—भारत भूषण : तार-सप्तक पृ० ३४

(घ) जीवनानुभूति की पहाड़ियों के बीच मेरी विनम्र ह्रस्वता
धँस गयी मुझे आक्रान्त सी ।

—अज्ञेय तार-सप्तक, पृ० ८४

(ग) तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती है।
[रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई
कुहासे सी चेतना को मोह ले।]

—अज्ञेय बावरा अहेरी पृ० १५

इन तीनों उद्धरणों में स्वाभाविक ऋजुता एवं सीधी-सरल भावाभिव्यक्ति ही भावोत्कर्ष एवं सौन्दर्योन्मेष में सहायक हुई है। न रूप-योजना में कोई मानसिक व्यापार और न अभिप्रेत अर्थ की प्रेषणीयता में कहीं कोई अटकाव। अज्ञेय द्वारा प्रस्तुत चित्र आनुभूतिक गहनता एवं गहराई को लेकर औरों की तुलना में कुछ सबल प्रतीत होता है जबकि वहाँ भी हृदय-पक्ष की तुलना में मस्तिष्क-पक्ष ही बलवान लगता है।

कलात्मक परिणति और भावोत्कर्ष की दृष्टि से चित्र-योजना के कहीं अधिक और कहीं कम सरल सुन्दर एवं सफल होने की इस बात को कुछ कवियों से एक-साथ ही दो-दो उदाहरण लेकर और स्पष्ट कर लीजिये

१ (क) जब कि सहसा तड़ित् के आघात से घिर कर
फूट निकला स्वर्ग का आलोक
बाह्य देखा,
स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य-सी निर्लज्ज, नंगी
औ' समर्पित।

—अज्ञेय तार-सप्तक पृ० १७-१८

प्रभावान्विति की दृष्टि से दोनों ही चित्र सुन्दर हैं। पर 'क' की कल्पना के अपेक्षाकृत क्लिष्ट होने से उसके चित्र-ग्रहण में कुछ बाधा आ गयी है। बिजली के तड़प-तड़प कर चमक उठने की बात को चमत्कार रूप में प्रस्तुत किया गया है। फिर विद्युत के प्रकाश को स्वर्गलोक की संज्ञा प्रदान कर जैसे किसी विराटत्व या अध्यात्म का आवरण डालने की चेष्टा की गयी है। इस पृष्ठभूमि में फिर आत्म-समर्पिता धरती को निर्लज्ज एवं नग्न रूप में सामने लाने के पूर्व उसकी मनःस्थिति एवं वस्तु-स्थिति का चित्रण है। मनःस्थिति यह कि वह स्नेह से आलिप्त और बीज की भवितव्यता से उत्फुल्ल है वस्तु-स्थिति यह कि वासना के पंक-सी फैली हुई है। एक साथ ही स्नेह-सिक्त एवं पंकिल वासना का प्रतिरूप होने में कोई तुक नहीं। पर कवि के लिए सब कुछ क्षम्य है। 'सावन की धरती फूल उठी है' इतनी सी बात को सम्मुख लाने के लिए इतनी चमत्कार भूमिका। चित्र सुन्दर तो है, पर बहुत प्रयास के बाद समझ में आ जाने पर। जब कि काव्य-सम्मत मत यह है कि कविता के

सूर्य की पहली किरण से जगमगा उठे और स्वयं
किरणें विकीरित करने लगे। —अज्ञेय बावरा अहेरी, पृ० १९

यहाँ जीवन को घास की पत्ती से फूटती हुई अजानी ओस-बूंद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस रूपक की योजना से वृक्ष-सादृश्य के बल पर उत्तरोत्तर विकासमान जीवन की उज्ज्वल स्थिति का बोध होता है यह नहीं कि जीवन ओस-बूंद के सदृश क्षणभंगुर है क्षणभंगुरता की ओर संकेत करना तो यहाँ अभीष्ट भी नहीं।

ऐसे ही, आलोच्य वस्तुओं के क्रियानुभव के आधार पर खड़ा किया गया यह चित्र भी द्रष्टव्य है

खिलता है देह-बीज से
पंकज मन का
सूरज से चलता
जैसे बिम्ब किरन का। —देह की आवाज धूप के धान पृ० १०७

अर्थ-बोध तो सरलता से हो जाता है जो शायद यहाँ कवि का अभिप्रेत रहा है। किन्तु खटकने की बात यह है कि इस योजना से काव्य के सौन्दर्य का उन्मेष नहीं हुआ है और न मधुर का भावन ही होता है।

इसकी तुलना में निम्न पंक्तियाँ भावाभिव्यक्ति और सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि से एक सफल प्रयोग प्रस्तुत करती हैं,

प्यार भी डूबेगा गोरी-सी बाँहों में
ओठों में, आँखों में
फूलों में डूबे ज्यों
फूल की रेशमी-रेशमी छाँहें —तार-सप्तक पृ० ४२

अप्रस्तुत के आधार पर माथुर द्वारा खड़ा किया गया जिन्दगी का यह चित्र भी देखने योग्य है

आज दुनियाँ के करोड़ों आदमी
सह रहे हैं धूप, सरदी औ' नमी,
जिन्दगी का एक भी सावन नहीं,
उम्र तपती धूप है, सावन नहीं। —नयी कविता अंक १ पृ० ८१

हालांकि यह एक पृथक प्रश्न है कि जिन्दगी तीखी (चढ़ती धूप) है या मधुर (सावन)। पर यहाँ यह निर्विवाद है कि प्रयत्न-साध्य कलात्मकता की मधुरता से भी ऐसे चित्रों में मन उतना नहीं रमता जितना इन चित्रों में।

(क) फूलों की पलकों पर रवि का चुम्बन
है चुभा रहा शबनम के आँसू कन। —ठंडा लोहा, पृ० १२

(ख) मुसकिरियों के गोल बदन
छिपते गुलाल से
ज्यों सूरज पर संध्या बादल।
—शकुन्त माथुर दूसरा सप्तक पृ० ४२

(ग) तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती है।
[रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई
कुहासे सी चेतना को मोह ले।]

—अज्ञेय बावरा अहेरी पृ० १५

इन तीनों उद्धरणों में स्वाभाविक ऋजुता एवं सीधी-सरल भावाभिव्यक्ति ही भावो
त्कर्ष एवं सौन्दर्योन्मेष में सहायक हुई है। न रूप-योजना में कोई मानसिक व्यापार और
अभिप्रत अर्थ की प्रेषणीयता में कहीं कोई अटकाव। अज्ञेय द्वारा प्रस्तुत चित्र आनुभूति
गहनता एवं गहराई को लेकर औरों की तुलना में कुछ सबल प्रतीत होता है जबकि यहाँ भ
हृदय-पक्ष की तुलना में मस्तिष्क-पक्ष ही बलवान लगता है।

कलात्मक परिणति और भावोत्कर्ष की दृष्टि से चित्र-योजना के कहीं अधिक और
कहीं कम सरल, सुन्दर एवं सफल होने की इस बात को कुछ कवियों से एक-साथ ही दो-दो
उद्धरण लेकर और स्पष्ट कर लीजिये,

१ (क) जब कि सहसा तड़ित् के आघात से घिर कर
फूट निकला स्वर्ग का आलोक
बाध्य देखा,
स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य-सी निर्लज्ज, नंगी
औ' समर्पित!

—अज्ञेय तार-सप्तक पृ० १७-१

प्रभावान्विति की दृष्टि से दोनों ही चित्र सुन्दर हैं। पर 'क' की कल्पना के अपेक्षा
कृत क्लिष्ट होने से उसके चित्र-ग्रहण में कुछ बाधा आ गयी है। बिजली के तड़प-तड़प कर
चमक उठने की बात को चमत्कार रूप में प्रस्तुत किया गया है। फिर विद्युत के प्रकाश को
स्वर्गलोक की संज्ञा प्रदान कर जैसे किसी निरपेक्ष या सम्भाव्य का आवरण डालने की
चेष्टा की गयी है। इस पृष्ठभूमि में फिर आत्म-समर्पिता धरती को निर्लज्ज एवं नग्न रू
में सामने लाने के पूर्व उसकी मन-स्थिति एवं वस्तु-स्थिति का चित्रण है मनःस्थिति यह कि
वह स्नेह से आलिप्त और बीज की भवितव्यता से उत्फुल्ल है, वस्तु-स्थिति यह कि वासना
के पंक-सी फैली हुई है। एक साथ ही स्नेह-सिक्त एवं पंकिल वासना का प्रतिरूप होने में
कोई तुक नहीं। पर कवि के लिए सब कुछ क्षम्य है। 'सावन की धरती फूल उठी है' इतनी
सी बात का सम्मुख लाने के लिए इतनी चमत्कार भूमिका। चित्र सुन्दर तो है पर बहु
प्रयास के बाद, समझ में आ जाने पर। जब कि सामान्य-सम्मत मत यह है कि कविता के

रसास्वादन में मस्तिष्क को जितना कम व्यायाम करना पड़े, उतना ही अच्छा, प्रवि प्राणायाम जैसी कोई वस्तु वहाँ अपेक्षित नहीं। इसके प्रतिकूल 'ख' की रूप-योजना ए कल्पना बहुत स्पष्ट और सीधी है। 'ख' की कुल नौ पंक्तियों में दो चित्र आये हैं जो पास पास खड़े होकर एक दूसरे के भावोत्कर्ष में सहायक होते हैं। पहला चित्र है नदी की बाँग प अँधियाले के सोने का जिसे देखकर चाँदनी डाह से सिहरी हुई है और चोरी-चुपके उचा कर झाँक जाती है। यहाँ दो भाव-क्रियाएँ हैं जिनसे चित्र सजीव हो उठा है (क) चाँद का डाह से सिहरना और फिर (ख) चोर पैरों से उचक कर झाँकना। हिलते डुलते झोपों व बीच से होकर नीचे उतरी हुई चाँदनी की स्थिति चोर से कुछ भिन्न नहीं इस स्थिति व उसके हरदम उचक रहने और उसके पैरों के उठे रहने की व्यंजना है। फिर प्रस्फुटन के व क्षणों का मोल सेफाली अपने मुग्ध प्राणों से आँक जाती है। यहाँ उसके अजाने भर जाने व सर्वस्वदान की व्यंजना है। दूसरा चित्र इसी पर आधारित है। एक ओर डाह से सिहरना है तो दूसरी ओर मुग्ध होकर झर पड़ना। दोनों स्थितियों के चित्र पास-पास खड़े होकर एक दूसरे की चमत्कार-वृद्धि में सहायक होते हैं। 'क' में अंकित चित्र के सम्मुख 'ख' के इन चित्र की यही विशेषता है। इनकी वस्तुभूमि भी बहुत मधुर है। 'क' में भाव और कल्पना प्रयास से सँवारी गयी लगती है जबकि 'ख' में वे कवि के अन्तरलोक से खुद ही सँवर कर आयी है। एक को खोज कर देखना पड़ता है, तो दूसरे चित्र अपनी भाव-गरिमा में स्वयं सामने खड़े हो जाते हैं।

१ (ख) सो रहा है झोंप अँधियाला
नदी की बाँग पर
डाह से सिहरी हुई यह चाँदनी
चोर पैरों से उचक कर झाँक जाती है
प्रस्फुटन के दो क्षणों का मोल
शेफाली
विजन की धूलि पर चुप चाप
अपने मुग्ध प्राणों से अजाने आँक जाती है।

—अज्ञेय हरी घास पर क्षण भर, पृ० ४८

२ (क) घिरते आकाश को ताकता हुताश
घहरे नभ में चाँद खोता जाता है;
अन्धकार
चुपचुप हँसता आता सब ओर —शमशेर दूसरा सप्तक, पृ० ९७

(ख) अब
हो चला है मौन का घर
और भी मौन ...
डूब चला है करुण सागर का हृदय
साँझ कोमल और भी अपनाव का अंचल
डालती है विवश के मुख पर। —शमशेर दूसरा सप्तक पृ० १११

दोनों चित्रों में प्रदर्शित कलात्मकता का अन्तर स्पष्ट है। आकाश को हताश ताकते हुए गहरे मन में चाँद के कोने और फिर अन्धकार के चुपके-चुपके हँसते हुए सब ओर उतरने में न तो कोई वस्तुगत नवीनता है और न कोई कलात्मक बारीकी ही परिलक्षित होती है। हँसना और वह भी चुपके-चुपके—इसमें भी कोई तुक नहीं मुसकाने की बात होती तो ऐसी शिकायत नहीं होती। और सब मिला कर यह चित्र भी टकसाली व्यायाम से तैयार किया गया लगता है। पर दूसरे चित्र में ऐसी बात नहीं। यहाँ कवि की सौन्दर्य-कल्पना उसके हृदय की निश्छल अभिव्यक्ति में कैद होकर इतनी मधुर और सलोनी हो गयी है कि उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति वाणी की विवशता बन जाती है। दिवस के मुख पर साँझ द्वारा अपनाने के अंचल के डाले जाने की कल्पना से हृदय में जिस नरम-नरम सुकुमार भावना की उत्पत्ति होती है, मस्तिष्क पर जो एक पहचानी-सी छवि अंकित हो जाती है, वही यहाँ उपलब्ध कलात्मक परितोष के मूल में अवस्थित है।

३ (क) कुसुम-कन्या से बना यह काम-शर कोई
आ लगा है
मौन सागर के हृदय में !

—पारस मारीमन प्वाइंट (२)

(ख) सागर की रोज यहाँ बेकस तड़पा करता।
जाने क्या है उसको जो—
मन आता है जब,
कुछ घबा-घबा कर उठता है,
कुछ गाता है,
फिर गिर पड़ता है मुँह के बल
औ' ठंडी आहें भरता है।

—पारस मारीमन प्वाइट (१)

देखने में प्रथम चित्र द्वितीय से निर्बल नहीं प्रतीत होता, प्रत्युत अधिक आकर्षक लगता है। प्रथम चित्र रूपकों के आधार पर खड़ा है, द्वितीय को मानवीकरण से सजीव बनाया गया है। कल्पना भी इन स्थलों पर सहज सरस है, फलतः अभीप्सित अर्थ की प्रेषणीयता अव्याहत है। किन्तु, इनके मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करने के निमित्त सूक्ष्म विश्लेषण यहाँ अपेक्षित है। प्रथम चित्र के दो पक्ष हैं एक ओर मौन पड़ा सागर, दूसरी ओर सागर-तट (मरीन ड्राइव)। इस पक्ष के दो रूप हैं और इन्हीं रूपों के अकम में कलात्मकता है। मरीन ड्राइव कुसुमकन्या है। कुसुमकन्या से अभिप्राय मारीमन प्वाइंट के पास के सागर-तट पर शाम को घूमने आयीं छाया-छवियों की पंक्ति-रेखा से है। मरीन ड्राइव से लग कर समुद्र के कुछ भीतर तक एक और रेखा गयी है जिसके अन्तिम बिन्दु को मारीमन प्वाइंट कहा जाता है। यह कुसुमकन्या से छूटा हुआ वह कामशर है जो मौन पड़े सागर के हृदय में चुभ गया है। तीन पंक्तियों में इतनी सारी स्थिति का चित्रण है रूपांकन और वहाँ अभीप्ट अर्थ के संवहन को लेकर ये पंक्तियाँ सतसइया के दोहरे बन जाती हैं। परन्तु, शिकायत यही है कि यहाँ कलात्मकता ही मिलती है, कोरी कलात्मकता। स्थिति

विरोध के कारण रोमानी रंग कुछ उभर अवश्य आया है पर इसमें कलागत सौन्दर्य के प्राणतत्त्व भावोन्मेष की स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। वह यहाँ-का-वहाँ रह जाता है। पर द्वितीय चित्र के साथ यह बात नहीं। यहाँ भाव की सहज सरल अभिव्यक्ति ही कलात्मक परिणति का प्राण-तत्त्व है। चित्र पहले भावों में बन जाता है कल्पना बाद में उसमें रंग भरती है। 'सागर भी रोज यहाँ बेकस तड़पा करता'—में मात्र 'भी' के जुड़ जाने से एक अक्रम भाव की स्थिति बन जाती है। जिस बात की ओर कवि ध्यान आकर्षित करना चाहता है उसका जिक्र भी नहीं होता बिना कहे ही अनकही बात कह दी जाती है। सागर भी तड़पा करता है—में व्यंजना यह है कि कोई और तड़पता रहता है कोई और यानी कवि का हृदय कवि जैसों के हृदय—जिनमें छाया छवियाँ एक अनजान टीस पैदा कर जाती हैं। आन्तर भावों की यह अनायास अभिव्यक्ति आनुभूतिक चित्रात्मकता को लेकर अप्रतिम है, शब्द-शब्द में जैसे हृदय सिमट कर बाहर आ गया है।

४ (क) इस उदासी के धुएँ में
संधि-युग के बादलों में
बह गया ध्वनि का प्रभंजन
टूटती वाणी अकेली
ज्यों अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों में।

—मुहूर्त्त ज्वलित मेघों धूप के धान पृ० ६०

(ख) उड़ती भीनी गंध हवा में दूब की
बिखरा सोयी कोरे कुंतल कामिनी
खुली ओस में बिछी दुधिया सेज-सी
पानी-सी ठंडी है ऋतु मनभावनी।

—चाँदनी गरवा धूप के धान पृ० ७१

प्रथम उद्धरण में अंकित चित्र का सम्बन्ध अंतिम तीन पंक्तियों से है जिसमें अकेली वाणी के टूटने का चित्र उस लहर को उपमान रूप में प्रस्तुत कर स्पष्ट किया गया है जो पत्थरों में आकर टूट जाती है। आरम्भ की तीन पंक्तियों से प्रस्तुत चित्र का कोई सम्बन्ध नहीं न ही उनसे उसकी कोई पृष्ठभूमि ही निर्मित होती है। कल्पना का क्रम जैसे यहाँ टूटा हुआ है। दूसरे, यहाँ विषय में भी कोई नवीनता नहीं है फिर अभिव्यक्ति चमत्कार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसके प्रतिकूल द्वितीय उद्धरण में अंकित चित्र बहुत ही सुन्दर और मधुर है अतएव मोहक भी है। दो चित्र हैं। एक कामिनी के कोरे कुंतल बिखरा कर सोने का—खुली ओस में बिछी दुधिया सेज-सी—का और दूसरा है मनभावनी ऋतु के पानी-सी ठंडी होने का। हवा में दूब की भीनी भीनी गंध मनभावनी ऋतु, दुधिया सेज इनसे जिस एक संश्लिष्ट भाव-चित्र की सृष्टि होती है उसकी पृष्ठभूमि में कामिनी के कोरे कुंतल बिखरा के सोयी होने की कल्पना के साथ जो एक मधुर भावना लिपटी जाती है, वही इस चित्र की कलात्मकता का प्राण है।

इस और ऐसे अन्यानेक उपमानों और उपकरणों के बल पर यहाँ प्रकृति के विभिन्न

व्यापारों की व्यंजना की गयी है वहाँ उसके निमित्त कभी-कभी पशु-पक्षी और कीट-पतंगों को भी आधार-वस्तु के रूप में चुना गया है। नीचे दिये गये कतिपय उद्धरणों से ऐसे प्रयोगों की वांछनीयता और अवांछनीयता की बात स्पष्ट हो जाती है

(१) रात का साँप है खा गया
चाँद का नेवला
और चाँदनी यह
मर गये उस साँप के केंचुल-सी
पड़ी निर्जीव है—

—सतीशचन्द्र चौबे, नये स्वर

(२) पास जैसे दूर तक फैले हुए पर्वत शिखर
सुबह की गहरी ललाई से पसीजा हुआ अम्बर
और उन पर तड़पते हैं बादलों के पवन
विहग दल अति श्यामकाय
जैसे रेल-पाँती पर
अचानक कट गयी कोई कलेवर गाय।

—गुरुदेव चौबे नये स्वर

(३) लो अम्बर के इस मटियाये मैदान बीच
हैं मेघों के हाथी बिगड़े—मस्ताये से
हैं पूँछ सूँड़ फटकार रहे, चिंघाड़ रहे—
पछुवा का वीर महावत जिनको रहा दबा
चमकार मार, बिजली के अंकुश भोंका भोंका।

—मुक्त यायावर, पृ० ७

(४) सोने की यह मेघ चील,
अपने चमकीले पंखों में से अन्धकार
अब बैठ गयी दिन ढले पर।

—नरेश मेहता दूसरा सप्तक पृ० ११२

साँप और नेवले की लड़ाई बहुत प्रसिद्ध है, वह रोमांचकारी है तो साथ ही साथ कारुणिक भी। प्रथम चित्र में कवि ने चाँद और चाँदनी को नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। चाँद जैसे सुन्दर एवं चाँदनी जैसी सुकुमार वस्तु के चित्रीकरण के निमित्त उसने वीभत्स दृश्य को सम्मुख रखा है। चाँद और चाँदनी को लेकर कितने सुन्दर-सुन्दर उपमान और चित्र उपस्थित किये गये हैं कवि ने शायद इस तथ्य को भुला दिया है। नवीन एवं मौलिक होने के निमित्त परम्परा को तोड़ा है। यहाँ परम्परा को तोड़कर चलने के लिए उसकी दाद दी जा सकती है अगर मौलिकता और नवीनता का अर्थ सुन्दर को भ्रष्ट रूप में प्रस्तुत करना हो। दूसरे, चित्र अपने इस अनपेक्षित रूप में भी पूरा नहीं उतरता। एक तो रात की कल्पना साँप रूप में नहीं होती न ही चाँद नेवला बनकर सम्मुख आता है। फिर, कठिनाई यह है कि एक ही स्थल पर चाँद को नेवला और फिर चाँदनी को मरे साँप

के केंचुल के रूप में मानने को मस्तिष्क तैयार नहीं होता। इस प्रकार कल्पना में ही को तारतम्य नहीं फिर चित्र पूरा कैसे जाये। ऐसा प्रयास निश्चित रूप से अवांछनीय है।

दूसरे उद्धरण की अवांछनीयता भी कुछ इसी दृष्टि से सिद्ध है। दृश्य सुबह की गहरी सफाई से पसीजे हुए अम्बर का है, जिस पर धवल एवं विकृत तथा कृशकाय मेघखं तड़प रहे हैं। यहाँ तड़पने में कोई अर्थ नहीं मिलता दौड़ने उछलने-कूदने या धीरे-धी सरकने-टहलने की कोई बात होती तो समझ में भी आती। लेकिन प्रसंग मेघखण्डों के तड़पं का लाया गया है। क्योंकि कवि उसके आगे अपनी एक मौलिक सूझ दिखाने वाला है। जैं रेल पर कोई कलेवर गाय अचानक कट जाय वैसे ही ये मेघखंड अम्बर पर तड़पने लगे हैं यही कवि की मौलिक सूझ है। इसमें चमत्कारिकता तो है बशर्ते कि चमत्कारिकता की एक वा बीभत्सता भी मान ली जाय। आज से बहुत पहले आचार्य केशवदास भी कुछ ऐसी ही मौलि सूझ दिखा गये हैं

[प्रभातकालीन अरुण का वर्णन है]

कै शोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को।

—रामचंद्रिका, पृ० १०

कहाँ कापालिक का शोणित कलित कपाल और कहाँ दिग्भामिनी का भाल। पर नहीं ऐसी कल्पना में क्या चमत्कार है?

इसका अर्थ यह नहीं कि प्रकृति के सभी पक्ष मनोरम ही हैं, बीभत्स एवं कुरूप की यहाँ कल्पना नहीं की जा सकती। प्रकृति में एक ओर कलियों की मन्द मुसकान निर्झर क कल-गान और मुग्धा चाँदनी का नर्तन है, तो दूसरी ओर ज्वालामुखी का अट्टहास तूफान का भैरवनाद और विध्वंस का ताण्डव भी है। किन्तु कविता के मृदुल या मधुर और मनोरम होने के कारण उसकी वस्तु और व्यंजना का भी तद्रूप होना अपेक्षित है। किसी क्रूर बीभत्स और भयंकर पक्ष को लाना हो तो इतना ही पर्याप्त है कि वैसे ही पक्ष चुने जायें लेकिन मौलिकता की प्रतिष्ठा के फेर में पड़कर काव्य-मर्यादा से मर्यादित किसी कोमल औ मधुर पक्ष को भी बीभत्स या कुरूप कर देना निश्चित रूप से कम से-कम काव्य-कला क्षेत्र में न्यायसंगत नहीं है। इसी दृष्टि से उपरोक्त दोनों उद्धरणों की कल्पना और चित्र योजना अवांछनीय है।

इनकी तुलना में तीसरे उद्धरण में अंकित चित्रों की कल्पना एवं कला-योजन प्रशंसनीय है। तीसरे में अम्बर के मदान में मेघ के बिगड़े और बेलगाम हाथियों के निरंकुश होकर सूँड़-सूँड़ फन्कारने और चिग्घाड़ने का दृश्य है जिन्हें पवन का वीर महावत बिजली के अंकुश से वश में करने के लिए प्रयत्नशील है। चित्र जितना साफ है, उतना ही सहज-रूप में ग्रहण में भी आ जाने वाला है। मस्त हाथी के व्यापारों की व्यंजना मेघों के उमड़ने-घुमड़ने और गरजने में अनायास ही हो गयी है। महावत की नियंत्रण-कुशलता की व्यंजना उसक हाथ में बिजली-अंकुश को देकर की गयी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन व्यापारों की योजना से वातावरण और उसमें जम कर अपना रंग उभार रहे चित्रों में सहज ही सजीवता आ गयी है।

चौथे चित्र की कल्पना के कुछ क्लिष्ट होने पर भी उसकी रमणीयता श्लाघनीय है। सूर्यास्त के समय का चित्रण रूपकों के आधार पर किया गया है। सोने की चील जिसके चमकीले पंखों से प्रकाश फूटता था—अब अपने पंखों में अंधकार लेकर दिन-भर के पर बैठ गयी है। सूर्यास्त होने पर धीरे-धीरे अंधकार के उतरने का कितना स्वाभाविक चित्र है यह।

ऐसे चित्रों के निरूपण के अधिक विस्तार में न जाकर, सम्प्रति यहाँ मानवीकरण के कुछ उदाहरण देकर प्राकृतिक रूप-विधान के प्रसंग को समाप्त किया जाता है। प्राकृतिक रूप-विधान या प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के माध्यम से मानवी व्यापारों की व्यंजना में मानवीकरण का सहारा छायावाद और उसके बाद के प्रायः सभी कवियों ने किसी-न किसी रूप में अवश्य लिया है। यों तो इसका प्रयोग बहुत पहले भी मिलता है, पर इधर अधिकता से होने लगा है। कवियों की मनमानी कल्पना के हाथ पड़कर सागर का हाथ मारना, लहरों का उचक-उचक कर किनारे की ओर किसी को देखना या निराश होकर तट से सिर टकराना, हवा का कानों में आकर कुछ फुसफुसा जाना, धरती का ऋतुमती हो जाना, आकाश का किसी धमाके में खोकर अवाक् हो जाना आदि आज की कविता के लिए आम बात हो गयी है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं

(१) ऐसे ही वे मेघ बवंडर के
यही चाँद कहता था
मुझको आँख मार के—
'अजी तुम्हारा मैं हूँ साथी—
जीवन भर इस धुली चाँदनी में तुम
खेला करना, खेल प्यार के।

—अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर, पृ० ५१

(२) पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली
सिरिस ने रेशम से वेणी बाँध ली
नीम के भी बौर में मिठास देख
हँस उठी है कचनार की कली
टेसुओं की आरती सजा के
बन गयी वधू वनस्थली।

—अज्ञेय : बावरा अहेरी पृ० १८

प्रथम उदाहरण में मानवीकरण का विषय चाँद है। यहाँ 'आँख मार के कहने' के व्यापार से पुरुष-रूप में चाँद की प्रतिष्ठा बड़े ही कलात्मक रूप से हुई है। क्रिया के व्यापार से जिस भाव-स्थिति का निर्माण होता है उसी में चित्र खड़ा होता है। बाह्य रूप-साम्य का कोई आधार उसे प्राप्त नहीं। चाँद के आँख मारने की कोई स्थिति नहीं। यही इस रूप योजना की त्रुटि है। चित्र के आधार भाव की सृष्टि तभी होती है जब हम आँख मारने की बात को मान लेते हैं। किन्तु, दूसरे उदाहरण में सिरिस के रेशम से वेणी बाँधने कचनार की कली के हँस उठने और टेसुओं की आरती सजा के वनस्थली के वधू बन जाने के व्यापारों से उनके सजीव चित्र सम्मुख खड़े हो जाते हैं। इसकी कलात्मकता सहज ही सुन्दर है।

अब रघुवीर सहाय का बन की रानी को देखिये ठीक हरियाली के समान मोका अस्तर है उसका। सरसों के फूलों के समान उसकी बनामी खिल रही है। पकी फसल-सा उसका गस्मा मदरासा तन है। धर्मीली इतनी कि दूर ही से प्रिय पर दृष्टि पड़ते ही लाज में गड़-सी जाती है। कवि की रूप-योजना देखिये

बन की रानी, हरियाली-सा मोका अस्तर
सरसों के फूलों-सी खिलती खिली बनामी
पकी फसल-सा गस्का मदरस्या जिसका तन
अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती।

—रघुवीर सहाय दूसरा सप्तक पृ० १५१

ऐसे हाथों रघुवीर सहाय की कल्पना की पकड़ में आये हुए सूरज के शैतान छोकरे को भी देख लीजिये

दूर क्षितिज पर महलों की दीवार खड़ी है
जिस पर चढ़ कर सूरज का शैतान छोकरा
झांक रहा है।

—दूसरा सप्तक पृ० १७०

ताजे रंगों वाले ऐसे सरल सुन्दर और स्वाभाविक चित्रों के सम्मुख गिरिजाकुमार माथुर द्वारा रात, दिवस, धूप साँझ, बरसात और बात के मानवी रूप फीके लगते हैं रोने के व्यापार की योजना से इन वस्तुओं का मानवीकरण हुआ है और यह बहुत घिसी पिसायी क्रिया है। देखिये—धूप के धान,पृ० ७१। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि माथुर के सभी काव्य-उपादान इसी तरह फीके और घिसे पिसाये हैं। चित्रों में रंग भरने में वे एक सिद्धहस्त कवि हैं, उनके कला-नैपुण्य के एक नहीं अनेक उदाहरण अन्यत्र देखे जा सकते हैं। इस अध्याय के प्रारम्भ में इस बात की प्रतिष्ठा की गयी है कि छायावाद में कवि अपनी कविता को कलात्मक सौष्ठव की जिस ऊंचाई तक उठा ले गया था प्रयोगकालीन कवि वहाँ से नीचे नहीं उतरे हैं प्रत्युत कलात्मक सौष्ठव के उत्तरोत्तर विकास की नवीनतम कड़ी के रूप में सामने आते जा रहे हैं। इस बात के प्रमाण में कई उदाहरण दिये जा चुके हैं। कुछ और उद्धरण द्रष्टव्य हैं:

(क) क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात
दूध से भीगे अभी तक चाँदनी के गात।
देह से चिपका बरफ-सा श्वेत झीना दुकूल
नवत-वेणी में रहे उलझे जुही के फूल,
बह गये कुछ लहरियों के साथ दूर अकूल,
और यह रात्रि—भेंट कमला ने किया जलजात।
क्षीर-सागर में नहा कर लौट आयी रात।

—जगदीश गुप्त नाव के पाँव पृ० ६१

(ख) रच दिया पथ ज्योति के आवर्तनों से और मैं
रात की पैनी किरन की उँगलियों से खोलकर
बाँध अपने को लिया अनगिन पलों से और मैं।

—जगदीश गुप्त : नाव के पाँव पृ० ७१

(ग) देश को अपने विदेशी जायगा,
चन्द्र का प्रस्थान होगा दूर पर
हाँ, अकेली राह
चंदन के वनों में चाँदनी
फिर फिर सिहरती
ओस से आँसू गिराती
सहसा पड़े गुलाब पर।

—शकुन्त माथुर : दूसरा सप्तक पृ० ४४

छायावाद में, ऐसे तो मानवीकरण के एक-से-एक बढ़कर सुन्दर और सफल उदाहरण अनेक हैं। किन्तु पन्त की 'छाया' और 'चाँदनी' तथा निराला की 'सन्ध्या-सुन्दरी' के बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित उदाहरण हैं। क्या रूपांकन क्या कलात्मकता और क्या मानवी हाव-भाव और व्यापारों की व्यंजना—जिस दृष्टि से भी हो उपरोक्त तीनों चित्रों का मूल्यांकन कीजिये। सजीव भावारोपण से की गयी प्राण-प्रतिष्ठा और उन्हें सँवारने वाली कलात्मकता किसी भी अर्थ में निम्न-कोटि की प्रतीत नहीं होती।

इसके पश्चात् आदि में दिये गये वर्गीकरण के अनुसार अब मानव-रूप-विधान के अन्तर्गत पहले क्रमशः सामयिक, व्यावसायिक, दैनिक और वैज्ञानिक चित्रों को देना चाहिये था। किन्तु, इसलिए कि इन क्षेत्रों से अलग-अलग उतने अधिक चित्र नहीं उपलब्ध हैं इन सबको यथासंभव बाद में 'विविध-रूप विधान' के अन्तर्गत दिया जायगा। उसके पूर्व इसलिए कि भावात्मक और गुणात्मक रूप-विधान अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं भावात्मक और गुणात्मक रूप-विधानों को ही यहाँ दिया जा रहा है।

भावात्मक रूप-विधान मुख्यतः प्रेम और उससे सम्बन्धित अन्य व्यापारों पर खड़े होते हैं। इनमें विरह मिलन और उनकी विभिन्न स्थितियाँ—सुख दुख आशा निराशा उत्कंठा आदि पर आधारित चित्र सम्मिलित हैं। साथ ही कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्य—लज्जा घबराहट, ऐंठन, उत्सुक आदि भी हैं, जिन पर भावात्मक चित्र खड़े होते हैं। मानव के इस असीम प्रेम-व्यापार में काम का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण कहीं-कहीं कुछ सेक्स-चित्र भी मिल जाते हैं। काव्य में इन सेक्स-चित्रों की वांछनीयता और अवांछनीयता पर निर्णय देना यहाँ संभव नहीं। पर, इतना निश्चित है कि आदि-काल से ही काव्य में प्रेम व्यापारों की व्यंजना के साथ सेक्स-चित्र भी जाने-अनजाने आते रहे हैं। कवि के अन्तर्मन की यह अनिवार्य विवशता आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

इस दृष्टि से कुछ भाव-चित्र द्रष्टव्य हैं

(१) बूँद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से

कि जैसे हँस दिया हो,
हँस रही-सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो,
ठगा-सा कोई किसी की आँख
देखे रह गया हो
उस बहुत-से रूप को, रोमांच रोके
सह गया हो।

—भवानीप्रसाद मिश्र दूसरा सप्तक पृ० १८

(२) गुलाबी पाँखुरी पर एक हल्की सुरमई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती कभी बरसात की दुपहर।
इन फिरोजी होठों पर।

—धर्मवीर भारती दूसरा सप्तक पृ० १८४

(३) ठंडी ठंडी हवा
लहरियादार
कि जैसे सुलेपन की धीर प्रतीक्षा में पीछे से
कंधे पर आ ठिठका कोई गरम-गरम कुछ बहुत मुलायम हाथ
रात बरसात की।

—पारस बरसात एक इम्प्रेशन

(४) आओ बैठें
इसी ढाल की
हरी घास पर।
माली चौकीदारों का यह समय नहीं है
और घास तो
अधुनातन मानव-मन की भावना की तरह
सदा बिछी है हरी, न्योतती
कोई आकर रौंदे।

—अज्ञेय हरी घास पर क्षण भर, पृ० ५९

(५) किन्तु सृजन की और मरण की रेखाओं में
घिर अनंत निष्कम्प एक लौ फिरती वाली
धरती का तप जिस प्रकाश में पूर्ण हुआ है।
देश दिशा में, काल लोक सीमा से आगे
वह विभूति बरसाती जाती मन के फूलों पर
अपने श्यामल गौर चरण से पावन करती
पर्वों तिथियों युगों-युगों के इतिहासों को।

—गिरिजाकुमार माथुर तार-सप्तक, पृ० ४५

प्रथम उद्धरण में मन से एक बूँद के टपकने का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह

चित्र जितना शब्द-संकेतों पर खड़ा है उतना बूंद शब्दों पर नहीं । उन शब्द-संकेतों से विविध भावों और कल्पनाओं की सृष्टि होती है और फिर उन भावों और कल्पनाओं के मिश्र प्रभाव से एक पूर्ण चित्र बनता है । बूंद के नभ से टपक पड़ने में उसकी निज की ऐसी कोई विशेष स्थिति नहीं होती, जिससे हमारा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो सके । किन्तु, उसके टपकने के व्यापार को जिन सादृश्यों के साथ सामने रखा गया है उनसे एक विशेष भाव-स्थिति का निर्माण अवश्य होता है । बूंद का नभ से टपकना क्या है जैसे किसी ने झरोखे से झांक कर (किसी पर) हँस दिया हो यह हँसना निश्चित रूप से अट्टहास नहीं स्मित-हास की ही कोटि में आता है । अब कल्पना कीजिये उस स्थिति की जब कोई चोर एक बार झांक कर किसी मुग्ध हृदय की मनगिन कलियों को एक बारगी खिला जाता है । बूंद के नभ से टपकने के तीन सादृश्य और हैं हँसती-सी आँख का किसी को कस जाना, किसी की आँख को देखकर किसी का ठगा-सा रह जाना और फिर इन सब घटना-क्रियाओं के फलस्वरूप मस्तिष्क-पटल पर अङ्कित विविध रूपों को अपने अन्दर रोमांच रोककर सह जाना—यह स्थिति अन्तर की उस मुग्ध-मधुर विवशता की है जो या तो एक कसमसाहट बन कर रह जाती है या फिर दिल पर दर्द की एक बारीक रेखा बन कर उभर जाती है । भाव स्थितियों के इतने बड़े चित्र-फलक पर बूंद के नभ से टपकने का सजीव चित्र खड़ा हो जाता है जो हमारे मन को बरबस कस लेता है । भवानीप्रसाद मिश्र के चित्र की गहराई के परिचय के लिए ये पंक्तियाँ काफी हैं ।

दूसरा चित्र धर्मवीर भारती द्वारा प्रस्तुत फिरोजी होठों पर दौड़ रही एक हल्की सुरमई आभा का है यह आभा ठीक वैसी ही है जैसे बरसात की दुपहर का एकाएक करवट बदल लेना । यहाँ बरसात की दुपहर के करवट बदलने में भी एक विशेष व्यंजना है । झमझम करती हुई बरसात के श्यामल आकाश के किसी कोने से बादलों के छट जाने या उनकी पर्त के पतली पड़ जाने पर, किसी हलकी प्रकाश रेखा के दौड़ जाने से जो एक अरुणिमा थिरक जाती है, वैसी ही कुछ अरुणिमा इन फिरोजी होठों की है । यह चित्र बहुत ही सूक्ष्म है और इसकी सूक्ष्मता यदि बाधक न हो तो बहुत सुन्दर और मधुर भी है । इसकी कलात्मकता उस भाव-सृष्टि में है जो इस चित्र के सामने आ जाने पर स्वतः हो जाती है ।

तीसरे उद्धरण में पारस द्वारा प्रस्तुत बरसात का एक सम्प्रेषण है । भाव और कल्पना के रंगों के आनुपातिक मिश्रण से भावक-मन के मस्तिष्क रूपी चित्र-फलक पर सुन्दर और सजीव चित्र बनाने बसना उनके लिए बहुत सरल कवि-कर्म प्रतीत होता है । इसके पीछे उनके उर्वर मस्तिष्क और भावुक हृदय की अवस्थिति का पता चलता है । कहने के लिए तो बहुत सीधे ढंग से कह दिया कि बरसात की हवा ठंडी-ठंडी और लहरियादार है । यहाँ लहरिया दार से हवा के लहराये चलने का बोध तो हो जाता है, वह ही ठंडी-ठंडी से उसके ठंडा होने का भाव होता है । परन्तु प्रश्न है—केवल ठंडी कहने से तो उस हवा का भी बोध होता है जो हड्डियों में छेद कर देती है । इसी बिन्दु पर कवि की चमत्कारकला देखते बनती है । अभीप्सित अर्थ की व्यंजना उपमान के रूप में की गयी है । वह हवा वैसी ही है जैसे एकान्त में किसी की प्रतीक्षा में आकुल व्यक्ति के कंधे पर आकर ठिठक गया किसी का बहुत मुलायम हाथ गरम-गरम स्पर्शों वाला हाथ । इस गरम-गरम और मुलायम हाथ के पीछे जिस

न-लोक की अवस्थिति है, अभीप्सित बिम्ब की सृष्टि उसी में होती है; और फिर, उसी बिम्ब सम्मुख रख कर हम बरसात की रात और उसकी ठंडी हवा को मूर्त रूप में पाते हैं।

चौथा बिम्ब अज्ञेय का है। कवि का उद्देश्य हरी घास को सामने लाना है जिसके ए वह पहले सूनेपन की ओर संकेत कर एक मनोवैज्ञानिक वातावरण की सृष्टि करता है। सम्बोधन से पता चलता है कि उसके साथ और भी कोई है जो हरी घास पर क्षण भर न्ने में उसका साथ देगा। लेकिन फिर बौद्धिकता सवार हो जाती है और यह हरी घास ' तुलना अनुशासन मानव-मन की उस भावना से करने लगता है जो हरी (उर्वर) और सबको इस बात के लिए खुले आम आमंत्रित करती है कि आकर उसे रौंद जाय। उसी के रौंदे जाने में एक बहुत ही क्रूर मर्म की व्यंजना है जो शायद यहाँ अपेक्षित न हो। पर वि ने 'रौंदे' का प्रयोग किया है। हरी घास के हरियालेपन का सुख उसे मखमली मखौया समझकर उस पर बैठने पर ही मिलता है या उस पर अपने नरम-नरम पाँव रख कर चलने। पर यह बात किसी भावना के रौंदे जाने की-सी नहीं है। मगर रौंदने का अर्थ आलोचना पालोचना से लिया जाय तो बात कुछ साफ हो जाती है। यहाँ कथ्य तो स्पष्ट है पर द्धिकता काव्य के रसात्मक-बोध में बाधक सिद्ध होती है। अज्ञेय के कवि के साथ एक यही टि या विशेषता है हर जगह उनका 'चिन्तनकार' भी साथ लगा रहता है।

इसी बात की अनुपस्थिति पाँचवें बिम्ब को परम सुबोध और सहज सुन्दर बना देती। ऐसे एक मर्म-मर्म तथ्य की व्यंजना इसमें भी है, पर यहाँ उसके रसात्मक बोध में बा पहुँचाने के लिए कोई बौद्धिकता नहीं आती। यहाँ कवि का उद्देश्य एक सर्वथा पावन ृति को सजीव करना है। इसके लिए वह सृजन और मरण की रेखाओं के बीच एक चिर रुद्ध और निष्कम्प सी की कल्पना करता है, फिर 'राम लक्ष्मण जानकी' की त्रिमूर्ति के प में लाता है, तब हमारे मन के फूल आते हैं जिन पर वे तीनों अपने श्यामल और गौर रण भर कर धरा को ज्योतित दान करते हुए बढ़ते जा रहे हैं। एक सबल भावलोक की ष्टि कर अभीप्सित मन की व्यंजना करने में ही यहाँ कवि की कलात्मकता सिद्ध है।

अब कुछ ऐन्द्रिय-बिम्बों का देखिये :

(१) घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद श्वासाहत चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र-सा, यदि तड़ित् से झुलसा हुआ-सा —अज्ञेय तार-सप्तक पृष्ठ ७७

(२) बल से संलग्न, पर अस्तित्व के उस इन्द्रधनु के छोर,
नहीं करना चाहते थे
मेरे मानव जीव की रात-दिन बुभुक्षा के
कुलाहल का आस्फालन
उस कुहर में नहीं गूँजी
अलग हृदयों की अनुरणन तीव्रतर होती हुई धड़कन
—अज्ञेय तार-सप्तक पृष्ठ ८१

प्रथम चित्र में 'भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा विशद श्वासाहत चिरातुर छन्न का नीला बसं'—और द्वितीय चित्र में 'वस्त्र के संभ्रम' की ओर संकेत से जिस बात की व्यंजना होती है उससे रति का चित्र ही सम्मुख आता है। अज्ञेय के अन्दर ही अवदमित वासना ऐसे स्थलों पर जबर्दस्ती उभर आती है। व्यक्तिनिष्ठ कवियों की काम-वर्जनायें ही ऐसे चित्रों की सृष्टि में मूलरूप से अवस्थित रहती हैं।

और देखिये

(१) पुष्प ग्रीवा में नवोदित सूर्य की सुन्दर किरण ने
डाल दी है बाँह अपनी
दूर के भटके हुए दो प्राण-तन
आज फिर से मिल रहे हँस-हँस गले।

—हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक पृ० ७७

(२) इस धरा के नयन, अधर, भुज
बस मिलन का मास
बहुत दिनों के बाद मिले
आलिंगन का उल्लास
बूँदें पड़ती फिर-फिर अंकित प्यार-सी
आँखें मुँदती मुख भीगे खींच बार सी

—गिरिजाकुमार माथुर धूप के धान पृ० ११०

(३) सुकुमार चाँदनी रही भूल,
उन्मत्त चाँद की बाँहों में।
घर घर लहरे काले कुंतल।
क्यों उमड़ चली यमुना की लहरें,
डूब गये दो ताममहल
पुलकित सपनों की चहल-पहल।
किरणें ओसायन गयीं भूल,
तम सघन कुंज की छाहों में
मत पलकों में अवभू के भँवर।
क्यों खोल रहे धीरे-धीरे
घन अवगिाक में उलझे पर।
साँसें घुलतीं साँसों के स्वर
खिल गया लाज का रक्त कुसुम
अनगिन अनबोली चाहों में।

—जगदीश गुप्त नाव के पाँव पृ० ६६

प्रथम चित्र में पुष्प ग्रीवा में नवोदित सूर्य की किरणों के बाँह डालने का व्यापार सम्मुख लाया गया है। यहाँ भी मन्तव्य यह है कि इस संकेत से उभरती हुई संभ्रम भावना पर 'दूर के भटके हुए दो प्राण-तन के फिर से हँस-हँस के गले मिलने' के दृश्य की ओर

संकेत कर संकुच डाला गया है जो मधुर अनुभूति में परिणत हो जाता है। किन्तु पाठकों पर कवियों की ज्यादती यहीं से शुरू हो जाती है जहाँ से उनकी काम भावना को उद्धरण सं० २ और ३ में दिये गये बिम्बों को सम्मुख लाकर उभारा जाता है। द्वितीय बिम्ब को लीजिए। कवि ने अपने प्रबल आवेगों के उन्मद क्षणों में आकर क्या नहीं कह डाला है? 'मगन, अधर, भुज बल मिलन का मार्ग' 'आलिंगन का उल्लास अंकित प्यार-सी बूंदों का फिर फिर झर पड़ना और आँखों का मुंद-मुंद जाना'—ये ही सब वे उपकरण हैं जिनसे स्मृति के सहारे रति का पूर्णरूपेण नग्न चित्र खींचा गया है। तृतीय बिम्ब भी नग्नता और कामोत्तेजना को लेकर द्वितीय बिम्ब से किसी अर्थ में कम नहीं बढ़कर ही है। पहले तो उन्मत्त चाँद को (मुग्धी) बाँहों में सुकुमार चाँदनी को झूमते दिखाया जाता है। फिर उसका रूप वर्णन है। चुम्बक जैसा कितना बड़ा आकर्षण है इसमें? मन बरबस बँध जाता है। गौर कीजिए, चाँदनी के उर पर काले कुन्तल लहर रहे हैं, यह लहरना कुछ वैसा ही है जैसा उमड़ती यमुना की लहरों का। यहाँ तक तो गनीमत थी। पर कवि हमें कुछ और दिखाना चाहता है —'उन लहरों में लगता है कि दो ताजमहल डूब गये हों।' यहाँ ताजमहल का प्रयोग बिल्कुल संगत नहीं। फिर भी इस प्रयोग की वांछनीयता इस बात में है कि 'ताजमहल' से कवि का निशाना ठीक बैठता है। अर्थ यह कि ताजमहल के यमुना में डूबने से चाँदनी के लहराते उर पर दो कुचों की कल्पना सहज ही हो जाती है। इस तरह कवि उसके रूप-वर्णन में पाठक के मन को कैद कर फिर उसे उस निविड़ रहस्यलोक में ले जाता है जहाँ का अन्धकार ही मुक्ति बन जाता है। और तब वह धीरे से 'रिपोर्ताज' सुनाता है— 'साँसें सुनती साँसों के स्वर। खिंच गया लाज का स्लथ दुकूल अनगिन बरजोरी बाहों में।' यह रति का नग्न-चित्र नहीं तो और क्या है? साँसों का स्वर साँसें क्यों सुनती हैं? उस स्थिति की कल्पना न करें, यही अच्छा।

इस कलात्मकता के बावजूद यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि ऐसे चित्रों का पाठक के मस्तिष्क और भावों पर क्या प्रभाव पड़ता है। कवि की कुशलता यह है कि वह पहले पाठक के मन को अपने भाव एवं कल्पना-सूत्रों में बाँध लेता है। फिर उसके सामने ऐसे आलिंगन चुम्बन और बलजोरी आदि नाना सेक्स-व्यापारों का नग्न और उत्तेजित चित्र उपस्थित करने लगता है। पाठक की या तो ऐसे दृश्यों से वितृष्णा जगती है या वह अपने चारों ओर अभाव का कुछ गरम-गरम वातावरण महसूस कर एक ठंडी आह भरता है। ऐसे चित्रों की काव्य-साहित्य में वांछनीयता क्या है, यह तो कवि ही बतायें। पर निश्चित रूप से एक स्वस्थ एवं परिष्कृत काव्य-रुचि के पाठक के लिए काम-वर्जनाओं के ये उभरे चित्र अग्राह्य हैं।

ऐसे चित्र प्रयोगवादी कविता में बहुत मिलते हैं। कहीं-कहीं निराला पन्त बच्चन नरेन्द्र अंचल सुमन आदि की कविताओं में भी हैं। अज्ञेय के बाहु किसी को घेरकर रुके रह जाते हैं, गिरिजाकुमार माथुर को किसी की छुवन (स्पर्श) भी नहीं छुवन की स्मृति सिहरा जाती है पारस को कोई हवा पास से गुजर कर हिला जाती है, तो धर्मवीर भारती के लिए बादलों की पाँत दुश्मन बन जाती है

तुम्हारे स्पर्श के ही
कुसुम से संयम न टिक पाया
तुम्हारी सांस में बारीक
कुम्हल की लहर छाई
हवाओं में पिरोती
गुदगुदी कम्बख्त पुरवाई
पसी कमज़ोर तन में
आ घिरे ये फूल के बादल
उमगते आ रहे जैसे
परस्पर कामिनों के दल।

—धर्मवीर भारती ठंडा लोहा, पृ० १२

ये कवि नामधारी जीव कभी-कभी निरीहता में इतने बेसुध हो जाते हैं कि यह नहीं सोच पाते कि किस कुबन की सिहरन को अन्तर में ही दबाकर रखा जाय, किस आह को बाहर किया जाय जो दर्द या ऐंठन उनके अन्तर मानस पर बोझ बनकर सवार है, उससे पिंड छुड़ाने के लिए जगह-बे-जगह समय-बे-समय का ख्याल किए बिना उतार फेंकते हैं, चाहे कोई पिसे या मरे। काव्य में कलात्मकता के नाम पर ऐसे असंगत प्रयासों का मूल्य चाहे जो हो पर काव्य-नीति की दृष्टि से तो निश्चयतः ये ग्राह्य नहीं हैं। कवियों को यह समझना चाहिये कि उनके दर्द और ऐंठन में बहुत कुछ ऐसा है, जो केवल उन्हीं के लिए है, उन्हीं तक रहे तो उचित है।

पुष्पप्रयक रूप-विधान

विभिन्न इन्द्रियों के धर्म-स्वरूप कतिपय तथ्य भी रूप-विधान का आधार बन जाते हैं। त्वचा नेत्र, नासिका जिह्वा कर्ण का धर्म क्रमशः स्पर्श, रस (या रूप) गंध स्वाद और श्रवण है। इनके अतिरिक्त मन बच जाता है। इसके भी धर्मस्वरूप दो प्रक्रियाएँ हैं स्मृति और अनुभूति। कहीं-कहीं ऐसा स्थल भी मिला है जहाँ मात्र स्मृति और अनुभूति ही रूप-विधान के मूल में अवस्थित हैं। उदाहरणार्थ

(१) स्पर्श

(क) तुम्हारी याद प्रिय
पत्तियों पर बस गई हिम की सतह-सी
सरल पावन और चिर अविकार;

—नेमिचन्द्र तार-सप्तक पृ० १७

(ख) उफ मेरी बाँहों में सब बंधा ठंडा
कौन गिरा ?

—धर्मवीर भारती ठंडा लोहा, पृ० १७

(२) रंग

(क)

बिजली चमकी
सुरपति के इस लघु इंगित पर
लो यहाँ जामुनी बादल नभ में ठहर गये।

—रघुवीरसहाय दूसरा सप्तक, पृ० १५५

(ख)

क्या न था काफी
जलाने को मुझे पागल
तुम्हारे गर्म होठों पर
सुलगता मूँगिया बादल

—धर्मवीर भारती ठंडा लोहा पृ० २२

(ग)

काले मगर से उठे लाल बादल

—माथुर धूप के धान, पृ० ४१

(घ)

इन्द्रधनुष के टुकड़ों जैसे
तितली के रंग भरे चटुल पंखों की सुन्दरता से छिपकर
जो बेसुध हो जाने वाले।

—जगदीश गुप्त नाव के पाँव पृ० ११

(३) गंध

(क)

पत्थरों के इन कँगूरों पर
अजानी गंध-सी
अब छा गयी होगी
अपेक्षित रात।

—अज्ञेय बावरा अहेरी, पृ० ५१

(ख)

तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देती है।

—अज्ञेय बावरा अहेरी पृ० १५

(४) स्वाद

जिह्वा को भी
कोई उससे मजा नहीं चखना है :
तीता-तीता स्वाद
मिठाई-सी मीठे मुँह में समझो तो नीम—
भला अच्छा लगने की चीज।

—पारस : काफी का प्याला

(५) श्रवण

अस्पताल में
दवा की शीशियों की जाती हुई ट्रे की
प्रतिक्षण क्षीण होते हुए भी
एक गति में बँधी झनझनाहट-सी,
जिसकी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है—
—सर्वेश्वर नयी कविता अंक १ पृ० ९१ ९२

(६) स्मृति और अनुभूति

इस सीढ़ी पर, यहीं जहाँ पर लगी हुई है काई
फिसल पड़ी थी मैं, फिर बाँहों में कितना शर्मायी !
यहीं न तुमने उस दिन तोड़ दिया था मेरा कंगन !
यहाँ न आऊँगी अब, जाने क्या करने लगता मन।
—धर्मवीर भारती ठंडा लोहा, पृ० २१

ये सभी के सभी उद्धरण स्पष्ट हैं। उद्धरण १ में हिम की सतह-सी और शव जैसा ठंडा—दोनों से किसी वस्तु के अतिशय ठंडी होने का बोध कराया गया है जो स्पर्श के बिना संभव नहीं। उद्धरण २ में बादल के रंग के चित्र में लाने के लिए पृथक्-पृथक् तीन विशेषण जामुनी मूँगिया और काले-काले अगर लाये गये हैं। फिर तितली के चटकीले रंगों वाले पंखों को इन्द्रधनुष के टुकड़े के सादृश्य से सम्मुख लाया गया है। उद्धरण ३ में एक जगह रात के चुपचाप कहीं आ जाने के दृश्य का अजानी गंध के एकाएक फैल जाने के सादृश्य से बोध कराया गया है। दूसरी जगह स्मरण में भी पग देने वाली किसी की देह-वल्ली को कनक-चम्पे की कली के रूप में सामने लाया गया है। उद्धरण ४ में काफ़ी के स्वाद की व्यंजना 'मिठाई से मीठे मुँह में नीम' की कड़ुवाहट से की गयी है। ऐसे ही उद्धरण ५ में दूर तक किसी की सुनायी पड़ने वाली आवाज़ का बोध अस्पताल में दवा की शीशियों की जाती हुई ट्रे की झनझनाहट से कराया गया है जो बिस्तर पर पड़े हुए मरीज़ों के लिए एक हद तक सान्त्वना का हेतु बनती है। ६वें उद्धरण में स्मृति और तज्जन्य अनुभूति चित्र के निर्माण में पूर्णरूपेण सहायक हुई है। इन चित्रों की रसात्मकता कहने की बात नहीं अनुभूति की वस्तु है।

इसके अन्तर्गत जैसा अन्यत्र संकेत किया गया है फुटकल रूप से मिलने वाले सामयिक, दैनंदिन व्यावसायिक वैज्ञानिक और अन्य प्रकार के चित्र दिये जा रहे हैं। देखिये

विविध

(१) (क) पैकिंग की चिकनी सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है,
नवजीवन के हाथों में गुस्से की मुट्ठी बँधी हुई है,
पेशानी पर किसी आक्रमण की चिन्ता है
दौड़-दौड़ कर चरण देश के द्वार बंद करने में रत हैं

आज बमियाँ तीस वर्ष के बाद उतरतीं,
लगातार बारूद उगलते बन्दूकें भी हाँफ रही हैं ।

—नरेश : दूसरा सप्तक पृ० ११५

(ख) चीन देश की वसुधा अपने स्तन से दूध पिलाती उस टापू को
ज्वालामुखी मस्तक है जिसका,
दूर छिपकिली-सा वह छोटा टापू है जापान देश का,
जो कि मर चुका एटम बम से ।
सूख गयी बूटों की डालें, सिसक रहा कोढ़ी-सा जीवन
विहान, धुएँ के अजगर-सा है लील रहा सब रंग रेशमी
मधु-मज्जा का ।
हिरोशिमा में मनुज मर गया । —नरेश दूसरा सप्तक पृ० ११५

(२) (क) संगीनों से कभी नहीं गेहूँ उगता है
खल-पुरुषों के खेतों में ही बम की फसल हुआ करती है ।

—नरेश दूसरा सप्तक पृ० १४१

(ख) केंचुल को तोड़ते हुए उठो
जैसे बीज छिलके को फोड़ता हुआ उठता है
संघर्ष के फौलादी झकोरों को
तोड़ते हुए बढ़ो
जैसे अंकुर
कंकड़ पत्थर तोड़ता हुआ बढ़ता है;
फूलो फलो
जैसे पेड़ फूलता फलता है—

—गिरिधर गोपाल नयी कविता अंक १ पृ० ७५

(३) (क) गगन खोह से सूरज ग्वाला हाँक रहा है दिन की गायें

—नरेश दूसरा सप्तक, पृ० ११२

(ख) भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ
छोटी-छोटी चिड़ियाँ
मंझोले परेवे
बड़े-बड़े पंखी
डैनों वाले डील वाले
डौल के बेडौल
उड़ते जहाज —अज्ञेय : बावरा अहेरी, पृ० १६

(ग) साँझ, दिवस की पत्नी, अपने नील महल में बैठी
कात रही है बादल,
विधि की चारों कन्याएँ हैं गूँथ रहीं तारों की चुन्नियाँ
—नरेश दूसरा सप्तक, पृ० १३२

४ बिजली बजाती
खुद जिसके लिए क्लोरोफार्म का
एक मीठा और भरा हल्का झोंका है,
—सर्वेश्वर नयी कविता अंक १ पृ० ९१

प्रथम उद्धरण में दो चित्र हैं। दोनों ही राजनीतिक घटनाओं पर आधारित हैं। प्रथम चित्र युद्ध से जर्जरित चीन का है वहाँ के वर्दीपोश सिपाहियों का है वहाँ की त्रस्त-जनता का है। पेकिंग की बिजली सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है कहकर कवि ने वहाँ के वातावरण पर छायी हुई मुर्दनी को मूर्त किया है। द्वितीय चित्र नागासाकी और हिरोशिमा पर हुए अणुबम के विस्फोट के बाद का है।

द्वितीय उद्धरण में पृथक-पृथक दो चित्र दिये गये हैं। ये चित्र व्यावसायिक-क्षेत्र से लिये गये हैं जो क्रमशः कारखाना और कृषि-क्षेत्र के किसी-न-किसी उपकरण पर खड़े हुए हैं। वैसे ही तृतीय उद्धरण में जीवन के नित्य प्रति के व्यापार से तीन चित्र दिये गये हैं जिनमें प्रथम दो चित्र घर के बाहर के हैं और तीसरा चित्र घर के अन्दर का है। ये तीनों ही चित्र बहुत कलात्मक हैं और इनकी योजना से काव्य-सौन्दर्य का अपेक्षित उत्कर्ष हुआ है। चतुर्थ उद्धरण में प्रस्तुत चित्र वैज्ञानिक उपकरण पर आधारित है और इसकी योजना भी बहुत ही कलात्मक है।

अन्त में कुछ ऐसे चित्रों का जिक्र कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है जिनका भाव-सौन्दर्य उनकी प्रतीक-योजना में है। उदाहरण के लिए पूरी की पूरी कविता को लिया जा सकता है। अज्ञेय की दो कविताएँ 'नदी के द्वीप'[1] और 'यह दीप अकेला'[2] और भवानीप्रसाद मिश्र की एक कविता 'फूल लाया हूँ कमल के'[3] इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसे भवानीप्रसाद मिश्र की एक और कविता—शब्दों के महल[4] भी पर्याप्त रूप से बनी है, पर उसकी कलात्मकता—प्रमुखतः प्रतीक-योजना वैसी नहीं है जैसी प्रथम तीनों कविताओं की है। 'नदी के द्वीप' में नदी या स्रोतस्विनी को जिसे अन्त में कवि ने 'माता' के रूप में सम्बोधित किया है—समाज की सामूहिक चेतना के रूप में लिया जा सकता है और द्वीप को व्यक्ति के रूप में। 'व्यक्ति' अपने आप में एक चिर-प्रतिष्ठित सत्य है अपने सत्य-रूप में प्रतिष्ठित होने में ही उसकी मर्यादा है। नदी बहती है, द्वीप नहीं हां, द्वीप उससे रूप आकार और नये संस्कार भले ही ग्रहण करता है। द्वीप द्वीप इसीलिए है कि अपनी जगह पर अडिग है,

---

१ नदी के द्वीप : हरी घास पर क्षण भर पृ० ९५
२. यह दीप अकेला बावरा अहेरी पृ० ६१-६२
३ फूल लाया हूँ कमल के : दूसरा सप्तक, पृ० २
४, शब्दों के महल नयी कविता अंक २

जो वस्तुएँ नदी के प्रवाह के साथ चलती हैं उन्हें अन्त में बालू का रूप धारण करना पड़ता है। व्यक्ति और समाज का यह सघर्ष चिरन्तन है। सत्य और मांगलिक भी इसलिए है कि प्रकृत्या निर्माणात्मक है। समाज के घात प्रतिघातों से व्यक्ति का व्यक्तित्व नष्ट नहीं होता, प्रत्युत् निखरता है। ऊपर-ऊपर से देखने में स्रोतस्विनी कभी अगर किसी द्वीप को पूर्णरूपेण आत्मसात् भी कर ले तो उस द्वीप का अस्तित्व मिटता नहीं' उसे फिर कहीं और सुदृढ़ आधार पर नये व्यक्तित्व का आकार मिलता है। नदी के द्वीप में प्रतीकों के माध्यम से इसी सत्य की व्यंजना की गयी है। ऐसे ही 'यह दीप अकेला' में दीप और पंक्ति को क्रमशः व्यक्ति और समूह के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कवि ने दीप को पंक्ति के लिए दे देने की बात कर अपनी चैतन्य सामाजिक भावना का परिचय दिया है। 'फूल लाया हूँ कमल के' में कमल के फूल कवि के भावप्रवण मुग्ध-मधुर गीतों के लिए आये हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या अन्यत्र की जा चुकी है। कुछ ऐसी ही बात 'सम्राटों के महल' के साथ भी है। सम्राटों के महल से कवि की कविता का अर्थ लिया जाय अथवा न लिया जाय, इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। उसका अर्थ और उद्देश्य बहुत साफ है।

अध्याय ८

हिन्दी-रूप-विधान का क्रमिक विकास

आधुनिक हिन्दी कविता का युग एक प्रकार से भारतेन्दु-युग से प्रारंभ होता है। यद्यपि इस युग में रीतिकालीन काव्य-मान्यताओं पर खड़े ब्रजभाषा-काव्य का ही प्राधान्य था फिर भी इसलिए कि खड़ी बोली हिन्दी में गद्य का निर्माण होने लगा था आधुनिक हिन्दी कविता (खड़ी बोली हिन्दी में लिखी जाने वाली कविता) की भी सर्जन भूमि तैयार होने लगी थी। दूसरे, आधुनिक हिन्दी कविता में बाद में विकसित रूप में परिलक्षित होने वाली राष्ट्रीयता की सुरसरि-धारा को भी जन्म देने वाली भारतेन्दु-मनीषी ही हैं किसी भगीरथ प्रयास से बाद में उसे सामान्य भाव भूमि पर उतारा, यह दूसरी बात है।

इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में रूप-विधान के विकास क्रम का विश्लेषण हमें भारतेन्दु-युग की कविता में उपलब्ध रूप-विधान के विश्लेषण से ही करना होगा।

भारतेन्दु-युग में जैसा कि पहले कहा जा चुका है ब्रजभाषा-काल के काव्य संस्कार अभी लुप्त नहीं हुए थे। बाद में आधुनिक हिन्दी कविता के रूप में खड़ी होने वाली कविता-कामिनी रीतिवादी चिलमन से ही बाहर निकलने का कोई मार्ग देख रही थी मार्ग निकालने का प्रश्न तो अभी दूर था। फलतः कविता में कुछ वैसे ही रंग, कुछ वैसी ही आनुभाविक चेष्टाएँ, कुछ वैसे ही परंपरित उपमान और रूप-विधान परिलक्षित होते हैं। कवियों की भावाभिव्यक्ति के मानवेतर आधारों में प्रमुखतः प्रकृति ही आती है। और समस्या यह रही कि उस प्रकृति के रूप-वर्णन के लिए भी कोई नयी दृष्टि नहीं थी। इसीलिए भारतेन्दु-युग की कविता में रूप-विधान की योजना में कोई नवीनता परिलक्षित नहीं होती।

लगभग यही बात द्विवेदी-युग की कविता में भी मिलती है। द्विवेदी-युग खड़ी बोली का निर्माण-काल रहा है। भाषा का संस्कार और कविता की ब्रजभाषा से मुक्ति—इस युग की ये ही दो *प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। द्विवेदी के निर्माण-कुशल नेतृत्व और उनके 'स्कूल'* के कवियों की अनवरत साधना के फलस्वरूप खड़ी बोली हिन्दी कविता को एक निश्चित स्वरूप तो मिला खड़ा होने के लिए नयी भाव भूमि भी मिली किन्तु उसके अन्तर की आभा पर न तो कला का पानी चढ़ा न उसके शरीर पर किसी कुशल रंगसाज द्वारा छापी गयी रंगीन साड़ी लहरायी। इसके प्रमुखतः दो कारण थे (१) प्रश्न पहले कविता की नयी भाषा के निर्माण और परिष्कार का था अभिव्यक्ति में चमत्कार लाने का नहीं और (२) तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की अनिवार्य माँग जन-जागरण के मूल मंत्र के लिए थी कल्पना-क्रीड़ा और भाव-विलास की नहीं। इसीलिए 'भारत भारती' और 'साकेत'

का धूमधाम के साथ जन-मानस की जिस व्यापक भाव भूमि पर स्वागत हुआ वहाँ 'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' को खड़े होने तक को स्थान नहीं मिला यद्यपि वे कलात्मकता को लेकर 'भारत भारती' और 'साकेत' से भी कई कदम आगे बढ़े हुए हैं। इस प्रसंग में निराला की 'जुही की कली' की 'सरस्वती' से लौटायी जाने की ऐतिहासिक घटना को भी सप्रसंग स्मरण किया जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में द्विवेदीयुगीन कविता का इतिवृत्तात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। बात वहाँ प्रमुखतः खड़ी बोली में कविता करने की ही थी कविता को कलात्मक संस्कार देने की नहीं। इसलिए रूप-विधान की दिशा में कोई विशेष रुचि या प्रगति दृष्टिगत नहीं होती। यत्र-तत्र रूप विधान की योजना का प्रयास कहीं मिलता भी है तो उसमें कलात्मकता का अभाव खटकता है। द्विवेदी-युग की विशेषता इस बात में है कि उसने कविता को खड़ी होने के लिए नई आधार भूमि देकर नया रूप दे दिया, अब उसके सँवारे जाने की आवश्यकता अनुभूत हुई जो आगे चलकर छायावाद में पूरी हुई।

छायावाद का आविर्भाव द्विवेदी-युग की स्थूल इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध सूक्ष्म की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। और, इसलिए कि वहाँ प्रश्न पहले भावाभिव्यक्ति के माध्यम में अभिनव रूप, रंग और प्रयोग लाने का था प्रमुखतः भाषा-शैली में ही परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। चित्र भाषा को लेकर छायावाद की अपनी भिन्न शैली प्रतिष्ठित हो गयी। यद्यपि परिवर्तन छायावाद के आधार विषयों में भी हुआ, फिर भी शैली के निजीपन के सम्मुख वह गौण पड़ गया और छायावाद के आविर्भाव और उत्थान को सामान्यतः कला-आन्दोलन के रूप में लिया गया। जबकि वास्तविकता यह नहीं थी। छायावाद का आविर्भाव एक सर्वथा नूतन कवि-दृष्टि को लेकर हुआ था। छायावादी कविता को नवीन भाव भूमि पर खड़ा होना पड़ा तथा अपने निजीपन की प्रतिष्ठा के निमित्त उसे नूतन रंग, रूप और संस्कार भी ग्रहण करने पड़े। छायावाद की काव्य-कल्पना को, इसलिए कि उसका अभीष्ट अमूर्त भावनाओं की अधिकाधिक अभिव्यक्ति ही था अपनी भावाभिव्यक्ति के अनुकूल क्षेत्र और उपकरण चुनने के लिए प्रकृति के विशाल परिपार्श्व में ही खड़ा होना पड़ा। इसका एक मंगल फल यह हुआ कि स्वयं प्रकृति में रंगों एवं रूपों की जितनी विविधता परिलक्षित होती है वे सभी विविधताएँ छायावाद के काव्य-कलेवर पर भी उभर आयीं। फलतः रूप विधान को वहाँ एक उर्वर और विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ।

ध्यान से देखा जाय तो छायावाद जहाँ एक कला-आन्दोलन था वहीं वह भाव-क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन की एक अपरिहार्य अनिवार्यता लेकर खड़ा हुआ। यूरोपीय स्वच्छन्दतावाद के प्रभाव से जहाँ वह भिन्न आधार-तत्वों को लेकर खड़ा हुआ वहीं अपने स्वरूप निर्धारण की यथेष्ट घड़ियों में उसका परिचय भारतीय दर्शन की भूमि से अंकुरित विकसित अन्यानेक संभावनाओं से भी हुआ। कविता में लौकिक प्रेम-व्यापार की व्यंजना के लिए अलौकिक आधार को चुना गया कवि को अपने निजी रागों भावनाओं एवं अनुभूतियों पर उन्हें सामान्य स्तर पर ग्रहण कराने के निमित्त आध्यात्मिक आवरण डालना पड़ा। ऐसे ही ब्रह्म और जीव के भिन्न रूपात्मक रहस्य-संबंधों के उद्घाटन की अनिवार्यता ने भी काव्याभिव्यक्ति के लिए नये उपकरणों एवं रंगों का एक अक्षय कोष खोल

लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि छायावाद-युग में कवि की स्वानुभूति की तीव्रता और उस स्वानुभूति के स्तरों की विविधता के कारण काव्याभिव्यक्ति में भी कितने ही रूपों और प्रकारों की सृष्टि हुई। कवि को अपने व्यंग्य के अभीप्ट प्रकाशन के निमित्त नये-नये उपकरणों उपमानों एवं प्रतीकों को चुनना पड़ा। इस प्रकार छायावाद युग में रूप-विधान के विकास के लिए सम्भावनातीत सम्भावनाओं की एक असीम भूमि तैयार हो गयी। और कविता एक दृष्टि से कलात्मक सौष्ठव की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी।

प्रगतिवाद-युग में कलात्मक सौष्ठव के इस स्तर का निर्वाह नहीं हो सका। कारण कवि की निजी भावनाओं पर सामाजिक भावनाओं की विजय थी। तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के क्रूर पंजे में पड़कर कविता का रूप अस्त-व्यस्त हो गया। मृदु स्पर्श से पुलकित होने वाले उसके कोमल अंग संघर्षकालीन स्थिति में पड़कर धूलि धूसरित हो गये। स्वर्णिम स्वप्न सँजोकर चलने वाली उसकी मीठी नींद धरती की चीख पुकार में टूट गयी। उसके कानों में अपने ही अनुरंजित हृदय की मृदु-मधुर और मोहक-ध्वनि के बदले शोषण उत्पीड़न और दमन की चक्की का घर्घर स्वर पड़ने लगा। काव्य की कोमलकान्त पदावली और भावमयी भंगिमा की जगह सहज-सरल अभिव्यक्ति और जन शक्ति की अँगड़ाई पर थिरकने वाली भंगिमा परिलक्षित होने लगी। काव्य की भाषा जन-भाषा के समीप आ गयी। प्रकृति के विभिन्न उपकरणों में वायवीलोक की मानवीय छाया-छवियों की जगह जन-जागरण के प्रतीकस्वरूप 'कतार की कतार चींटियाँ' और किसी शिल्प तले नभ से स्वस्थ वल्लरी-सी झिलमिला उठी हुई छाया की जगह खेतों में आने वाली विपत्ति का सामना करने के लिए, मुरेठा बाँध और कमर कसकर तैयार 'चना' दिखाई पड़ने लगा। पथिक को किसी अज्ञात प्रियतम की प्रतीक्षा में न तो अभिसार करने का अवसर मिला न तारों के गजरे देने का न ही सर्द-सर्द आहें भरने का; कोयले की खान की मजदूरनी के समान सिर पर अंधकार का बोझ ढोते हुए वह अवश्य दिखाई पड़ी। इस प्रकार, कवि की निजी भावनाओं और प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापारों की व्यंजना की जगह लोक-मानस में उठते हुए कुहराम और युग-जीवन के अन्यानेक प्रश्न अपनी समग्रता में अनेकविध अभिव्यक्ति पा गये। काव्य के उपादान और रूप-विधान के आधार उपकरण युग जीवन के पास खड़े मिले। कविता के ऊपर से रहस्यवादी अवगुंठन उठा कलात्मकता कुछ क्षीण पड़ गयी पर नवीन सत्यों की अनुभूति और व्यंजना से उसके जिस रूप की प्रतिष्ठा हुई वह अपनी गरिमा में किसी से कम नहीं था। अन्तर यही था कि उस रूप में कलिका के आरक्त गालों पर ढुलकी पड़ी शबनम का नहीं प्रतिकूल परिस्थितियों एवं ह्रासोन्मुखी शक्तियों से अनवरत संघर्ष करते हुए अपने भाग्य और अभ्युदय का मार्ग खोजने के अनीरव प्रयास में रत किसी भूप-देवता के उन्नत ललाट और पुष्ट वक्षस्थल पर छाया करके बड़े स्वेद-कणों का आभास मिलता है। कल्पना-लोक की किसी मोतिया परी की जगह यहाँ धरती स्वयं बोलती है।

इसके पश्चात् प्रयोगवाद-युग में रूप-विधान की स्थिति और संभावनाओं पर विचार के पूर्व, उत्तरछायावाद-युग पर दृष्टि निक्षेप करना आवश्यक प्रतीत होता है। सच कहा जाय तो कविता पर से छायावादी आवरण का उठना उत्तरछायावाद के कवियों के हाथ से

ही शुरू हो गया था और जहाँ तक काव्य-चेतना और भाषा के क्षेत्र में परिवर्तन का प्रश्न है, ये कवि उसकी पृष्ठभूमि में खड़े मिलते हैं। उन्होंने भाषा को जनता के पास तो पहुँचाया ही साथ ही उसमें युग-सापेक्ष परिवर्तन भी किया। काव्यगत तथ्य और विकास-क्रम की दृष्टि से कहा जाय तो विभिन्न सामाजिक भाव भूमियों से उत्थित इन दो भिन्न काव्य-अभियानों के बीच की कड़ी उत्तरछायावाद के ये कवि ही हैं।

प्रयोगवाद-युग में फिर कवि की सामाजिक भावना पर उसकी वैयक्तिक चेतना का प्रभुत्व छा गया; कविता अनिवार्य रूप से युग-जीवन की आशा-आकांक्षाओं और अन्यानेक समस्याओं की अभिव्यक्ति न होकर उसकी कुण्ठाग्रस्त निजी मन:स्थितियों की अभिव्यक्ति भी होने लगी। काव्यवस्तु ने अपेक्षाकृत अधिक उलझे हुए रूप को ग्रहण किया। कवि अपने अन्तर में अवदमित वासनाओं और काम-वर्जनाओं को पालकर भी ऊपर-ऊपर से बुद्धिवादी बनने का स्वाँग करने लगा। बुद्धिवादी के संस्कारों से रहित होकर भी बुद्धिवादी बनने लगा। उसने चिंतन भी किया पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना उसके वश की बात नहीं थी। उल्टे वह और उलझता गया। फलस्वरूप उसकी आत्माभिव्यक्ति का रूप भी उसी अनुपात में उलझा हुआ सम्मुख आया। कविता दुरूह हो गयी इसलिए कि उसके प्रतीक कल्पना के लिए कष्टसाध्य थे। इसीलिए प्रयोगवाद के प्रारम्भिक चरण में कविता का रूप अधिकाधिक उलझा हुआ मिलता है। न चिंतन का कोई व्यवस्थित क्रम है न ही उसकी अभिव्यक्ति की कोई मान्य पद्धति। कविता का सामान्य स्वर भी नकारात्मक ही प्रतीत हुआ। इसलिए इस युग के प्रारम्भिक चरण के कुछ सफल प्रयोगों को छोड़कर कविता में और जितने प्रयोग हुए वे प्रायः असफल और अस्पष्ट थे। कविता में निगूढ़ता और उसकी रूप योजना में असंबद्धता के जो दर्शन होते हैं उसके मूल में काव्य-संबंधी किसी सुनिश्चित मान्यता का अभाव ही विद्यमान है। बाद में चिंतन के साथ-साथ कुछ और तत्त्व भी वहाँ आश्रय पाने लगे। कवि को जहाँ अपने अहं का पोषण और व्यक्तित्व की उद्घोषणा अभीष्ट रही, वहीं नये युग की नयी सामाजिकता की भी वह उपेक्षा नहीं कर सका। उसके मस्तिष्क का उलझाव कुछ दूर हुआ क्योंकि नयी सामाजिकता और उससे समुद्भूत काव्य की नयी मान्यताओं ने वैयक्तिक होने के साथ-साथ सामाजिक होने के लिए भी उसे विवश कर दिया। कविता उसके मस्तिष्क के चक्रव्यूह से बाहर आकर कभी-कभी सामान्य भाव भूमि पर भी खड़ी होने लगी। काव्य के आधार-विषय, प्रतीक और उपमानादि भी सामान्य दृष्टि से परिचित स्तरों से लिये जाने लगे। कविता की दुरूहता मिटती गयी अभी मिटती जा रही है यह नहीं कहा जा सकता कि पूर्णतः मिट गयी। इसी क्रम से रूप विधान में भी दुरूहता और स्पष्टता को आँका जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, प्रयोगवाद-युग को एक विशेष परिस्थिति में खड़ा होने का भी फायदा है। प्रयोगवादी कवि के सम्मुख आज काव्य के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है। साथ ही वैज्ञानिक युग की विभिन्न क्षेत्रों की उन्नति ने भी उसके विषय-क्षेत्र को व्यापक बना दिया है। आज उसकी कविता का विषय धरती पर रेंग रहे कीट से लेकर अणुबम और उद्जन बम के परीक्षणों से प्राप्त सत्य भी हो सकता है। आज के युग-जीवन की अभिव्यक्ति का उसकी कविता में होना अनिवार्य है। और तब आज

के जीवन के समान ही उसकी कविता में भी यदि किसी उलझाव या दुरूहता का आभास मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। इसके लिए कवि को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। आज के कवि को पिछले सभी युगों के कवि से अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत भाव-भूमि मिली है, कविता के लिए नये आधार-सत्य अभिव्यक्ति के लिए नये उपकरण नये-नये ढंग और सबसे ऊपर मूल्यांकन की नित नवीन होती जा रही दृष्टियाँ मिलती जा रही हैं। काव्य में प्रयोग का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हो गया है। कविता को विविध रूप रंग और प्रकार देने के लिए ठोस आधार उपकरणों की न्यूनता तो कम-से-कम आज नहीं है।

रूप विधान के विश्लेषण के माध्यम से आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम के अध्ययन के पश्चात् जिस निष्कर्ष पर मैं पहुँचा हूँ वह बहुत ही आशाजनक है। एक तो यह कि कविता की कलात्मक परिणति की ओर हम उत्तरोत्तर अग्रसर होते जा रहे हैं। दूसरे, कवि-दृष्टि कोरे भावुक होने की जगह अत्यधिक वैज्ञानिक होती जा रही है। तीसरे, कवि-दृष्टि में प्रसार भी अपेक्षाकृत अधिक होता जा रहा है। उदार मानवतावादी स्वर उस दृष्टि का और सबल बनाते जा रहे हैं। चौथे कविता में बुद्धिवादी तत्त्व प्रमुख होते तो जा रहे हैं पर ऐसा नहीं है कि हमारे हृदय की रागात्मक वृत्तियाँ उनसे दबने लगी हों। यहाँ कवि को ध्यान सिर्फ इसी बात का रखना है कि कविता मात्र बुद्धि की नहीं हृदय की भी वस्तु होती है। और यह संतोष का विषय है कि आज का कवि बुद्धिवादी होते हुए भी एक हृदय रखता है उस हृदय में कहीं कोई टीस होती है, कोई कसक होती है कोई आहत भाव होता है तो कोई-न-कोई उद्दीप्त आकांक्षा भी अवस्थित रहती है। और यह कविता को नीरस होने से बचाने के लिए कम नहीं है। पाँचवें आज की कविता युग-जीवन को उसकी समग्रता में समेटकर विविध रूप रंग और प्रकारों में प्रकट हो रही है। यह भिन्न बात है कि कवि-मानस का स्तर लोक-मानस के सामान्य स्तर से कुछ ऊपर उठ गया है। रूप विधान के क्रमिक विकास का सिंहावलोकन करने के पश्चात् अब वर्तमान रूप-योजना की कतिपय विशेषताओं पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। रूप-विधान की शक्ति और महत्ता की ओर संकेत करने के विचार से कल्पना और रूप-विधान पर विचार करते हुए अन्यत्र इस बात की प्रतिष्ठा की गयी है कि जिस प्रकार कविता की कल्पना कल्पना तत्त्व की अनुपस्थिति में नहीं की जा सकती उसी प्रकार उसके सौन्दर्योन्मेष एवं भावोत्कर्ष की कल्पना भी रूप-योजना के अभाव में असंभव है। कल्पना मानव-मस्तिष्क की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो अपने सचेष्ट क्षणों में उन नूतन और अनेक-रूप छाया-छवियों का बिम्ब ग्रहण किया करती है जो कभी दृष्टि-पथ या अनुभूति की परिधि में आ जाने के कारण मन-पटल पर सुप्त अथवा जागृत संस्कारों के रूप में पड़ी रहती हैं यद्यपि रूप-विधान उस कल्पना के उन सचेष्ट क्षणों की परिपूर्णता की स्वतः स्फुरित भाव-निष्पत्ति या प्रतिफल मात्र है। एक गुण से विधायक है दूसरा सहज विधान दोनों में कार्य-कारण का संबंध है। कल्पना कार्यरूप सजग अवस्थिति है रूप-विधान उस सर्जन अवस्थिति के कारणरूप फलान्विति। कल्पना सप्राण होने के लिए रूप में व्यक्त होना चाहती है जब कि अदृश्य रेखाओं में बिखरा हुआ रूप जीवन की रंग-रेखा की प्राप्ति के निमित्त कल्पना का मुखापेक्षी हुआ करता है। दोनों प्रकृति से भिन्न हैं पर अस्तित्व से अभिन्न। ये है दो भिन्न इकाई

सत्ता है जो अपने अस्तित्व की रक्षा के हेतु परस्पर मिलकर एक ऐसे पृथक अस्तित्व का निर्माण करती हैं जो काव्य को प्राण, रूप और रंग देने के निमित्त ध्वनि से अंबर तक सब कुछ प्रस्तुत किया करते हैं। इस तथ्य को पृष्ठभूमि में रखकर अब वर्तमान रूप-योजना की विशेषताओं का विश्लेषण सरलता से किया जा सकता है। संक्षेप में कहा जाय तो वर्तमान रूप योजनाएँ कविता के क्षेत्र में निम्नलिखित दृष्टियों से अपना विशेष महत्त्व प्रमाणित करती हैं

(१) कविता के प्राण-तत्त्वों, सूक्ष्मातिसूक्ष्म आधार सत्यों को मूर्त और इन्द्रियगम्य बनाने में रूप-योजना का विशेष हाथ है। इस प्रक्रिया में रूप-विधान का इन्द्रिय-ज्ञान से घनिष्ठ संबंध है। इस कारण कुछ लोगों का विचार है कि कविता का दूसरा नाम रूप विधान ही है।

(२) रूप-विधान की सृष्टि में कल्पना और अनुभूति का विशेष हाथ है। रूप विधान की निर्माण प्रक्रिया में कवि काव्य में अपेक्षित कल्पना-तत्त्वों और अनुभव-सत्यों को समेट लेता है। ये ही कल्पना-तत्त्व और अनुभव-सत्य कविता को रूप देते हैं। आज का कवि अपनी कविता को भाव की गहराई, कल्पना की ऊँचाई और अनुभूति का आधार देने के निमित्त रूप-विधान का आश्रय लेता है।

(३) रूप विधान अपने साथ विविध रूप रंग एवं प्रकारों को समेटकर चल रहे हैं, इसलिए वे कविता में नवीन रंगों रूपों एवं प्रकारों की सृष्टि कर एक विशेष आकर्षण एवं शक्ति उत्पन्न कर देते हैं। साथ ही उनके कारण कविता के वस्तु और भाव-क्षेत्र का विस्तार भी होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, एक प्रकृति को लेकर इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। हिन्दी कविता की संस्कृत से प्रभावित परंपरा के प्रतिकूल एक अंश तक आंग्ल कविता से प्रभावित आधुनिक काव्य-धारा प्रमुखतः अन्तर्वृत्ति-निरूपिणी हो गयी। इस कारण आलम्बन और उद्दीपन का कम अधिक अप्रस्तुत रूप-विधान का सहारा लिया जाने लगा। फलतः आधुनिक कविता में प्रकृति-चित्रण की प्राचीन परंपरा से भिन्न प्रकृति चित्रण की एक पृथक् प्रणाली का निर्माण हुआ जिसके अन्तर्गत प्रकृति कवि के अन्तर्मन में उत्थित सुख-दुःख की भावनाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त भिन्न चित्रों, पृष्ठभूमियों, मानवीरूपों आलम्बन एवं उद्दीपनगत भाव एवं घटनाओं अप्रस्तुत योजना के विविध आधारों रहस्य-संकेतों दार्शनिक तथ्यों एवं प्रतीकात्मक व्यंग्यों के प्रकाशन एवं प्रतिष्ठा के निमित्त भी प्रयुक्त हुई। छायावाद में प्रकृति को इन भिन्न रूपों में विशेष रूप से देखा जा सकता है। इस दृष्टि से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रूप-विधान की अनिवार्यता ने काव्य की वस्तु-सीमा का अनिवार्य रूप से विस्तार किया।

(४) काव्य में प्रयुक्त तथ्यों को तुलनात्मक प्रक्रिया में रखकर रूप-विधान उसके सौन्दर्योन्मेष में अनिवार्य रूप से सहायक होते हैं। इस प्रकार, आज की कविता को कलात्मक परिणति की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर करते रहने में रूप-विधान का विशेष हाथ है।

(५) रूप-विधान अपनी विविधता में आकर कविता के मूल्यांकन के लिए नयी कसौटी की माँग करते हैं। इस प्रकार, आधुनिक कविता के उत्कर्ष में रूप विधान के महत्त्व के अधिकाधिक बढ़ते जाने से नवीन साहित्यिक मान्यताओं की सम्भावना प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

इसी क्रम में थोड़ा इस बात पर भी विचार करना अपेक्षित है कि हिन्दी कविता पर आंग्ल कविता का क्या प्रभाव है। मैं इस बात को स्वीकार करने में वैयक्तिक रूप से कोई आपत्ति नहीं मानता कि आंग्ल काव्य के सम्पर्क में आने से हमारे कवियों को नवीन दृष्टि मिली है। ऐसे हमें इस बात पर पूर्ण गौरव है कि हमारे सामने संस्कृत-साहित्य के रूप में एक अक्षय कोष वर्तमान है, हमें विरासत में एक समृद्ध काव्य-परंपरा मिली है। साहित्य के बड़े होने के लिए भी हमारे पास एक उदार विश्वबादी दर्शन की ठोस आधार-भूमि है। फिर भी मैं इस सत्य का कायल हूँ कि अपने सामाजिक परिवेष्टन में रूपों एवं प्रकारों की विभिन्नता रखते हुए भी मानव सर्वत्र मानव है उसके विकास एवं सांस्कृतिक अभ्युदय की समस्याएँ पूर्णरूप से अभिन्न न होकर भी बहुत अंशों में एक-दूसरे से मिलती जुलती हैं। इसी प्रकार हमारे सोचने के क्रम में भी एक समानता का सूत्र ढूँढ़ा जा सकता है। और विशेषतः जब साहित्य को साहित्यकार की वैयक्तिक अनुभूतियों से अनुरंजित होने पर भी समाज की सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में मैं मानता हूँ मेरे पास यह कहने का पर्याप्त आधार है कि किसी इतर भाषा के क्षेत्र से कतिपय प्रभाव और संस्कार ग्रहण करना किसी हीनता का नहीं वरन् नवीन के अंगीकार करने की सक्रिय उत्कंठा का परिचायक है। इसी परिप्रेक्ष्य में अब हिन्दी कविता पर आंग्ल कविता के प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।

हिन्दी कविता पर आंग्ल कविता के प्रभाव का विश्लेषण दो दृष्टियों से किया जा सकता है (१) कविता के वस्तु-क्षेत्र में परिवर्तन एवं प्रकारों के परिवर्द्धन की दृष्टि से और (२) कला के क्षेत्र में नवीन शैली के प्रचलन की दृष्टि से।

काव्य में व्यवहृत परंपरित उपकरणों एवं एक अभिजात शैली से सर्वथा विच्छेद का श्रेय यूरोप के रोमांटिक आंदोलन को है। काव्य और साहित्य संबंधी बदली हुई मान्यताएं विशेषतः उस समय से परिलक्षित होती हैं। पहले का कवि या कलाकार प्रमुखतः वस्तुनिष्ठ हुआ करता था उसके विषय किसी विशेष दैवी शक्ति या ऐतिहासिक महापुरुष या उनके प्रतीकों से संबंधित हुआ करते थे। पर रोमांटिक युग के कवि एवं कलाकारों के सामने कोई ऐसी विशेष लीक नहीं रह गयी। उन्होंने साधारण से साधारण वस्तु को भी अपना विषय बनाया। उनकी निजी अनुभूतियाँ भी श्रेष्ठ कलाकृति के रूप में प्रतिष्ठित हुइं। इस प्रकार वस्तु-क्षेत्र में तो परिवर्तन हुआ ही कला के क्षेत्र में भी परिवर्तन अनिवार्य हो गया। फलतः नूतन भाषा नूतन छन्द एवं शैली एवं नूतन प्रतीकों की प्रतिष्ठा हुई। बाद में, आंग्ल काव्यधारा में दो और नवीन विचार-धाराओं का युगान्तरकारी मिलन हुआ। मार्क्सवाद और फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद और क्रोच के सौन्दर्यवाद पर बड़े अन्तश्चेतनावाद इन दोनों के प्रसार और प्रतिष्ठा के कारण कविता और कला के वस्तु-क्षेत्र में परिवर्तन तो हुआ ही अभिव्यक्ति के माध्यम और शैली में भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुआ। वस्तु-क्षेत्र में परिवर्तन के कारण अन्ततः मूल्यांकन की दृष्टि को भी बदलना पड़ा। इस प्रकार, हिन्दी कविता पर जहाँ आंग्ल कविता का प्रभाव स्पष्ट हुआ है, वहाँ काव्य संबंधी कुछ नवीन मान्यताएं भी उस पर हावी नजर आती हैं।

संक्षेप में कहा जाय तो हिन्दी कविता पर आंग्ल कविता के निम्नलिखित प्रभाव स्पष्ट हैं :

(१) कविता में असाधारण वस्तु से लेकर साधारण से साधारण वस्तुओं को भी ग्रहण किया जाने लगा है।

(२) अहं की उद्घोषणा और व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा काव्य-सर्जना के आवश्यक अंग के रूप में गृहीत हो चुकी है।

(३) व्यक्तिवादी स्वर के उभार के कारण कविता में अवदमित काम-वर्जनाओं और मस्तिष्क की उलझी हुई चिन्तनाओं की भी अभिव्यक्ति होने लगी है। इस कारण से कविता में कहीं-कहीं दुरूहता और अश्लीलता मिलने लगी है।

(४) बुद्धितत्त्व प्रधान और रागतत्त्व गौण पड़ गया है। फलतः सरसता की ध्वनि मुखरित लगी है और नीरसता को प्रसार मिलने लगा है। साथ ही, कवि कभी-कभी काव्य-धर्म का भूल कर युग-मानव बनने के उपक्रम में 'पैगम्बर' के रूप में भी सम्मुख आ जाता है।

(५) प्रकृति के माध्यम से कविता में अज्ञात शक्ति के रहस्यात्मक संकेतों की प्रतिष्ठा छायावाद-युग की अपनी विशेषता रही है। यद्यपि इसके उत्स-बिन्दु को अपने प्राचीन वाङ्मय में भी खोजा जा सकता है, पर स्पष्ट रूप से यह रोमांटिक कविता से आया हुआ प्रतीत होता है।

(६) आज के वैज्ञानिक युग में एक ओर जहाँ भौतिक उन्नति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच रही है आध्यात्मिक चिन्तना और उपलब्धि में निराशाजनक अपूर्णता मिलती है। साथ ही, युग-जीवन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने वाली विषमता और विग्रह भावना भी निराशा और उसमें कटुता एवं असंतोष के मूल में अवस्थित है। इसके फलस्वरूप कविता में निराशा क्षोभ और कटुता के साथ ही कहीं-कहीं व्यंग्य भी ध्वनित होने लगे हैं। ठीक से कहा जाय तो व्यंग्य आज की कविता का एक आवश्यक अंग हो गया है।

(७) कभी-कभी कवि को कुछ कठोर या अति सूक्ष्म सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आधार लेना पड़ता है। इस कारण काव्य में कभी-कभी क्लिष्टता का दोष भी आ जाता है।

(८) कविता में हिन्दी कविता के पिछले युगों से भिन्न छायावाद की जिस चित्र भाषा शैली का निर्माण हुआ उस पर भी आंग्ल कविता का प्रभाव स्पष्ट है। विशेषकर, मानवीकरण विशेषण-विपर्यय और भाव-व्यंजकता को लेकर। ऐसे चित्र भाषा-शैली में 'लक्षणा' का भी विशेष योग मिलता है जो भारतीय काव्य की अपनी निजी विशेषता है।

इस परिप्रेक्ष्य में आज की कविता में बुद्धिवादी तत्त्वों का अधिकाधिक आग्रह दुरूह प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग अन्तर-जगत् में प्रसुप्त पड़ी काम-वर्जनाओं की संयत-असंयत अभिव्यक्ति उस अभिव्यक्ति में पग पग पर क्लिष्टता नूतन उद्भावना के प्रयास में अप्रचलित उपकरणों का चयन आन्तर विक्षेपों और विग्रहों की कुरुचिपूर्ण व्यंजना आदि का प्राधान्य देखा जा सकता है। काव्याभिव्यक्ति में इन सभी तत्त्वों का प्रमुख हाथ होने से आज की कविता अपेक्षाकृत कुछ अधिक दुरूह होती जा रही है।

जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, काव्याभिव्यक्ति में रूप विधान का प्रमुख योग होता है। काव्य-वस्तु एवं उसके व्यंग्य के स्वयं उलझे हुए होने से रूप-विधान का फिर उलझे

हुए रूप में आना अपरिहार्य हो जाता है। कविता जहाँ स्पष्ट और सबल होती है वहाँ उसके भाव-तत्त्व भी प्रभावकारी और स्पष्ट होते हैं। इसलिए, स्वयं काव्य के विषय जहाँ जिगूढ़ हैं, वहाँ उनके व्यक्त करने वाले रूप-विधान की योजना सहज ही बोधगम्य नहीं हो सकती। रूप-विधान के दुरूह होने का एक प्रमुख और स्पष्ट कारण तो यह है ही, इसके अतिरिक्त भी कुछ और कारण गिनाये जा सकते हैं। मेरे विचार से वे निम्नलिखित हैं

(१) रूप-विधान भावों या विचारों को इस सीमा तक दबा दें कि उनका मूल रूप ही छिप जाय।

(२) जब कलाकार ऐसे रूप-विधानों की सृष्टि करता है जो अत्यन्त असाधारण होने के कारण पाठकों या श्रोताओं को बाजीगरी प्रतीत होने लगते हैं। फलतः उनका साधारणीकरण नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ, डा० रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' से अन्यत्र प्रस्तुत किये गये कुछ ऐसे चित्र देखे जा सकते हैं जो अप्रचलित और दुरूह उपकरणों पर प्रयत्न पूर्वक खड़े किये गये हैं।

(३) जब रूप-विधान देश-काल और भौगोलिक सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं तब भी उनमें दुरूहता आ जाती है। जैसे, भारतीय प्रकृति स्त्रियों की नीली आँखों और पीले केशों पर रीझने की नहीं है। भारतीय स्त्री के रूप-चित्रण में इन तत्त्वों की योजना विचित्र प्रतीत होगी।

(४) जब रूप-विधान ऐसे उपकरणों या प्रतीकों पर खड़े होते हैं जो युग के अनुकूल न हों। जैसे किसी व्यक्ति को बेवकूफ कहने के लिए 'गदहा' हम कह सकते हैं। पर वही 'गदहा' कहीं-कहीं सम्मान-सूचक अर्थ में भी व्यवहृत होता है। परन्तु, इस कारण हम 'गदहे' को अपने यहाँ सम्मान-सूचक अर्थ में नहीं ला सकते क्योंकि वह अप्रचलित होगा और कल्पना के लिए कष्ट-साध्य भी।

रूप-विधान की योजना के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह तो कवि-मानस की निर्माण प्रक्रिया का एक सहज और वैज्ञानिक प्रतिफल है। उसकी सफल योजना जिस प्रकार सहजता से हो सकती है, उस प्रकार प्रयत्न से नहीं। कविता में जहाँ प्रयत्न आता है वहीं अस्वाभाविकता और दुरूहता की सृष्टि हो जाती है। खैर, यह एक पृथक प्रश्न है और इस पर विस्तारपूर्वक अन्यत्र विचार किया जा चुका है। मेरा उद्देश्य यहाँ काव्य या रूप-विधान में आने वाली दुरूहता की ओर संकेत भर कर देना था।

इसी क्रम में कविता में अकाव्योपयोगी और अप्रचलित रूप-विधान के प्रयोग और उसके कतिपय दुष्परिणामों पर भी विचार करना समीचीन होगा। अपने विश्लेषण के क्रम में कई स्थलों पर मुझे ऐसा देखने को मिला है कि मात्र नूतन उद्भावना या नूतन कल्पना की सृष्टि के फेर में पड़ जाने के कारण कवि या तो अपनी कल्पना से ही उलझ जाता है या कभी-कभी ऐसे अरुचिकर और अकाव्योपयोगी उपादानों का प्रयोग करता है जिससे कविता का कलेवर तो निश्चित रूप से अप्रिय और भद्दा हो ही जाता है उसकी व्यंजना भी या तो इतनी उलझी हुई होती है कि कुछ समझ में नहीं आता या वह इतनी अश्लील या वीभत्स होती है कि तबियत भिन्ना उठती है और वैसी कविताओं के प्रति अरुचि उत्पन्न होने लगती है। संकेत मात्र के लिए कुछ उदाहरणों को दे देना आवश्यक

प्रतीत होता है।

(१) जानु बनी रंभा की खंभा सोभा होत अपार।
मूसरि-फूल सरिस कटि राजत कवि जन केहु विचार ॥
—राग संग्रह भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ४५६

(२) गजराज पंक में धँसा हुआ,
छटपट करता था फँसा हुआ।
हथिनियाँ पास चिल्लाती थीं
वे विवश विकल चिल्लाती थीं। —साकेत षष्ठ सर्ग, पृ० १५७

(३ क) वीक्षण अराल—
बज रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छन्द, ताल
मौन में मन्द्र
ये दीपक जिसके सूर्य चन्द्र,
बँध रहा जहाँ दिग्देश काल,
उसी स्पर्श से खिली
प्रणय के प्रियंगु की डाल-डाल —सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति : निराला

(ख) नहीं आँसुओं से आँचल तर,
जन-विछोह से हृदय न कातर,
रोती वह रोने का अवसर,
जाती ग्राम-वधू पति के घर। —ग्राम-वधू पंत

(४) यह महीन मल-मल की सारी,
उसके नीचे गरम गुलाबी चोली से कसे हुए
पीनोन्नत स्तन
यह कुंकुम अक्षत से चर्चित माथा
यह तन
किसी सुहागिन की अर्थी पर
बड़ी-बड़ी चीलों के मानो लोलुप चक्षु से कसे हुए।
—प्रभाकर माचवे

(५ क) और मेरे आगे है अनन्त
आदि हीन शेषहीन पथ वह
जिस पर
एक दृढ़ पैर का ही स्थान है
और वह दृढ़ पद मेरा है
ध्रुव, स्थिर, स्थाणु-सा गड़ा हुआ
तेरी प्राण-पीठिका पै लिंग-सा खड़ा हुआ।
—आह्वान अज्ञेय

(२ ख) आसमान जो खुले बदन था
सन्निपात के रोगी जैसा शून्य पड़ा है ।
कठिन ठण्ड से नीली पड़ती काली चमड़ी
थर-थर काँप रही बालक की नरम पसुलियाँ ।
ध्रुवतारे-सा प्राण
कंठ में अटका, अकुलाता चलने को ।
उस नभ की छाती पर
शीशा चाँद पड़ा है
नभ-गंगा के कपसीले सूतों में बँधकर
ज्यों तावीज़ इनायत की हो किसी पीर ने ।
और गगन के गरम ओंठ से
लहू सरीखी तरल चाँदनी
टपक रही है ।
स्वर्ण भस्म की डिबियों जैसे
बिखरे तारे बेहिसाब हैं
किसी डाक्टर के नुस्खे की परची जैसी
टुकड़ों-टुकड़ों में कटकर के
गिरा हुआ धरती के ऊपर शीशा-सागर ।
मीलों लाल हवा के पत्तों जैसी बिखरी
हवा रात को बहती है बासी साँसों-सी ।
सुबह हो गयी
डूब गया ध्रुवतारा
जिसके प्राण कंठ में हिलते थे जो
और सुबह का तारा
टूट गिरा नीचे को
ज्यों माथे से गोल हो गयी
पके काँच की सस्ती टिकुली ।
आसमान पर धूप छा गयी
'काँप लनाय' के कफन सरीखी
चार बाँस की अरथी सूरज
नये दिवस के कंधों पर अब
डोल रहा है
मौत हो गयी
कल के रोगी, बूढ़े अन्धे आसमान की ।
बोल रहा घड़ियाल दूर पर
स्यार सपीला

और पंचनामे-सी परतों के ऊपर ये
परबत काले
बूढ़े पंखों के हस्ताक्षर टेढ़े-मेढ़े।

—नये स्वर गुरुदेव चौबे काश्यप

(घ) कब्रस्तान है आकाश का
जहाँ बादलों के सफेद टुकड़ों की
धुआँमुखी छोटी-बड़ी मजारें सैकड़ों हैं।
× × ×
रात का अंतःपुर वीरान
जहाँ बैठी हवाओं की विधवाएँ
शोक के काले धूप परिधानों में लिपटी
तारों के स्वरों में हैं रो रहीं
हैं गा रहीं
उन बादलों की मजारों में गड़े पुत्रों की यादें कर
आहें भर।

—मजारें आकाश के कब्रस्तान पर सतीशचन्द्र चौबे

प्रथम उदाहरण में कटि की उपमा गूलर-फूल से दी गयी है। गूलर का फूल ऐसी लोकोक्ति है, फूलता तो है पर दिखायी नहीं पड़ता किसी को कभी मिलता भी नहीं अत: दुर्लभ होता है। गूलर के फूल के समान कटि को सम्मुख लाने का उद्देश्य यह है कि वह इतनी पतली है कि दिखायी नहीं पड़ती। रीतिकालीन संस्कार और उर्दू शायरी की कलाबाजी के प्रभाव इस रूप-योजना पर स्पष्ट हैं। यहाँ यह रूप-विधान अकाव्योपयोगी तो नहीं पर कृत्रिम और अप्रचलित अवश्य है। कृत्रिमता के भार से इस रूप चित्रण से उस रस की सृष्टि नहीं हो पाती जो नारी रूप-चित्रण से अपेक्षित है।

ऐसे ही दूसरे उदाहरण में राम-वन-गमन के शोक में निमग्न दशरथ और उनकी रानियों की स्थिति को सम्मुख लाने के लिए कवि ने भद्दी कल्पना का आश्रय लिया है। राजा और रानियों को हाथी और हथिनियों के रूप में प्रस्तुत कर शोक की स्थिति में अपेक्षित करुणा की सृष्टि के बदले उपमान की भद्दी योजना से कुरुचिपूर्ण अनपेक्षित हास्य की सृष्टि हो गयी है।

तीसरे उदाहरण के प्रथम चित्र में 'भीषण कराह' के साथ-साथ रेखांकित शब्दों का सम्बन्ध बिल्कुल अस्पष्ट है, इसलिए किसी निश्चित अर्थ की उपलब्धि नहीं होती। कोई भी पाठक ऐसी अस्पष्ट पंक्तियों के पीछे माथा खपाने को प्रस्तुत नहीं होगा। निराला जैसे सबल और समर्थ कवि भी ऐसी रेखाओं में पाठक की आस्था प्रतिष्ठित कर सकने में असमर्थ रहे हैं। दूसरे चित्र में अपने घर और स्वजनों तथा सखियों-सहेलियों से विदा होकर ससुराल जा रही ग्राम-वधू का चित्र है। दो ही क्षण के बाद पति से हिल-मिल जाती है। यह सम्बन्ध विकास का बहुत ही अस्वाभाविक क्रम है। साथ ही प्रस्तुत पंक्तियों से ध्वनित अर्थ से हमारी सनातन भावना पर चोट आती है विशेषकर तब जब कवि उसे नूतन उद्भावना की दृष्टि

से, लोकाचार, मानता है। सुसंस्कृत काव्य-रुचि के पाठक को कवि की ऐसी नूतन उद्भावना खलती है। चौथे उदाहरण में सेक्स की नग्न-भावना का इतना अशोभन प्रकाशन हुआ है कि कवि की कल्पना से घृणा होने लगती है। कफन में लिपटा हुआ शव—बालक का हो या वृद्ध का या तरुणी का, शोक और करुणा की सृष्टि करता है जबकि प्रस्तुत पंक्तियों से युवती की देह-यष्टि पर पड़ती हुई लोलुप और वासनातुर दृष्टि बीभत्स दृश्य को सम्मुख लाती है। ऐसी रूप-योजना कविता के प्रति अरुचि के सिवा और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती।

पाँचवें उदाहरण का प्रथम चित्र लिंग प्रतीक पर खड़ा होने के कारण बहुत बीभत्स हो गया है। दूसरे चित्र में आसमान को सन्निपात के रोगी के रूप में प्रस्तुत कर बाद में उसे मृतक के रूप में दिखाया गया है। साथ में जितने चित्र आये हैं वे सभी मृत्यु और उसके बाद की स्थिति के द्योतक हैं। कल्पना नयी अवश्य है, रूप-योजना भी इतनी संश्लिष्ट और सबल है कि कवि के कौशल की दाद देनी पड़ती है। पर जो बात खटकने वाली है वह यह है कि उसने नूतन उद्भावना के फेर में पड़ कर आकाश, चाँद और चाँदनी जैसी मनोरम वस्तुओं को भी वीभत्स-रूप में अंकित किया है और यही इसका अकाव्योपयोगी प्रयास है। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि सन्निपात का रोगी खून की कै नहीं करता, जबकि आकाश के ओठ से लहू सरीखी तरल चाँदनी को टपकते हुए दिखलाया गया है। ऐसे ही तीसरे चित्र में आकाश को कब्रिस्तान बनाकर धवल मेघ-खंडों को चूना-पुती मजारों के रूप में अंकित किया गया है। ऐसे चित्रों से हम इन कवियों की कल्पना का लोहा तो मान लेते हैं पर यह नहीं मानते कि यह कल्पना काव्य के अपेक्षित आनन्द की सृष्टि करने वाली है। यदि ये कवि अपनी दृष्टि को बीभत्स से सुन्दर की ओर उन्मुख करें, तो उनकी कल्पना और कौशल के अधिकाधिक योग से निश्चय ही हमें सशक्त से सशक्त और मनोरम चित्र मिल सकते हैं। प्रयोग की नवीनता और नूतन उद्भावना के नाम पर कम-से-कम ऐसी कुरुचिपूर्ण काव्य प्रवृत्तियों को तो प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता।

रूप-विधान के कतिपय अकाव्योपयोगी और अमर्यादित प्रयासों और उसके दुर्व्यापि मार्गों पर विचार करने के उपरांत इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि सब रूप-विधान की ग्रहण भूमि के सार्वजनिक होने की भी कोई सम्भावना है कि नहीं? भारतेन्दु-युग से लेकर प्रयोगवाद-युग तक रूप विधान के क्रमिक विकास के विश्लेषण के क्रम में हम बात की प्रतिष्ठा कतिपय पुष्ट आधारों पर की गयी है कि रूप-विधान का क्षेत्र अपनी अनेकविध सम्भावनाओं को समेट कर उत्तरोत्तर विकसित हो रहे आज के युग-जीवन के सदृश ही दिन-प्रति-दिन विस्तृत होता जा रहा है। कविता के क्षेत्र में अपेक्षित कलात्मक परिणति की दृष्टि से भी हम पीछे नहीं हटते जा रहे हैं अपनी नानाविध चेतनाओं में बुरी तरह से उलझा हुआ आज का जीवन कविता पर अपनी छाप छोड़कर उसकी अभिव्यक्ति को कभी कभी उलझा हुआ रूप प्रदान कर जाता है यह एक दूसरा प्रश्न है। पर यह प्रश्न टाल देने का नहीं है। कवि मानस के बौद्धिक-स्तर के ऊँचा उठने के साथ ही हम पाठक की ग्रहण शक्ति के भी ऊपर उठने की अपेक्षा करते हैं। जो पाठक-वर्ग बाइबिल और पुराण के पारायण से अपने मानस को पुष्ट कर सका है, उसके सामने 'पैराडाइज लास्ट' और 'कामायनी' को

उसी विश्वास के साथ नहीं रखा जा सकता है जिस विश्वास के साथ बाइबिल और पुराण को रखा जा सकता है। कल का पाठक-वर्ग मिल्टन और ब्लेक की रचनाओं को दुरूह कह सकता था पर वाल्ट-व्हिटमन की रचनाओं को तो दुरूह कह कर नहीं टाल सका था। आज का साहित्य-सुधार एजरा पाउंड और अरविन्द की रचनाओं के अर्थ पाने में अपनी असमर्थता भले ही प्रकट कर ले पर 'वेस्ट लैंड' और 'कुरुक्षेत्र' की भाव-भूमि तो उसे समझनी ही पड़ेगी। इसी तथ्य को दृष्टिगत कर मैंने रूप-विधान और साधारणीकरण के सम्बन्ध पर अन्यत्र विस्तार के साथ विचार करते हुए यह लिखा है कि रूप-विधान का भी साधारणीकरण होता है होना अनिवार्य है पर इसका अर्थ यह नहीं कि साधारणीकरण के प्रश्न को लेकर कवि, इस आशंका से कि अभी अनुकूल भाव भूमि तैयार नहीं हुई है जहाँ-का-तहाँ खड़ा रहे रूप-विधान के नये आधार उपकरणों को ग्रहण न करे, उसकी अन्यानेक सम्भावनाओं से आँख मूँद ले। और जब आज का पाठक-वर्ग नदी के द्वीप[1] यह दीप अकेला[2] टूटा हुआ पहिया[3] के प्रतीक को समझ सका है तो कोई कारण नहीं कि वह 'धूप किरण और हवा में धुम, और वे'[4] 'बिल्ली का रास्ता'[5] और बासी बेवें पागल कुत्ते और बासी कविताएँ,'[6] के प्रतीक अर्थों को न समझे।

विश्लेषण के क्रम में मैंने एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण देकर रूप-विधान के सामान्य स्तर पर अपनाये जाने और उनके माध्यम से होने वाले भावोत्कर्ष और सौन्दर्योन्मेष की बात का प्रमाण देकर रूप-विधान की विकास-दिशा की ओर इंगित किया है। अपितु आज रूप विधान को लेकर प्रश्न यह नहीं है कि वे दुरूह हैं प्रश्न यह है कि रूप-विधान के उत्तरोत्तर ऊँचे उठते जा रहे स्तर के साथ हमारी ग्रहण शक्ति का सामान्य स्तर भी ऊँचा उठता जा रहा है कि नहीं?

इस प्रसंग में एक प्रश्न और विचारणीय है। आधुनिक रूप-योजनाओं का क्रमागत रूप-योजनाओं से कोई सम्बन्ध रह गया है कि नहीं? यदि कोई सम्बन्ध है तो वह किस अनु-पात में और कैसा है? इस प्रश्न पर भी मैं अन्यत्र विस्तार के साथ विचार कर चुका हूँ। जिस निष्कर्ष पर मैं पहुँचा हूँ वह आधुनिक हिन्दी कविता की उपलब्धि और अभाव दोनों ही ओर संकेत करता है। मेरा यह निश्चित मत है कि उपमान और रूप-विधान के अन्य उप-करणों के चयन में कवि की दृष्टि जीवन-जगत् की ओर उतनी नहीं गयी है जितनी प्रकृति की ओर। शास्त्रीय और परंपरित उपमानों की अधिक और नव्य उपमानों की अपेक्षाकृत कम खोज हुई है नव्य उपमान ग्रहण ही नहीं किए गये हैं—ऐसा नहीं कहा जा सकता।

---

१ अज्ञेय
२. अज्ञेय
३ धर्मवीर भारती
४ पारस
५. रामावतार चेतन
६ रामावतार चेतन
७. सर्वेश्वर

"नभ उज्ज्वल जल धार हार हीरक-सी सोहति"¹ से लेकर "जिनके रस-विहार में कटता वसन्तकाल का सारा बन्धन, कालिन्दी के नील जल को ज्यों करती गंगा आलिंगन"² अथवा 'सागर की रोक नहीं केवल लहरा करता'³ तक कवि की दृष्टि के सम्मुख प्रकृति का रंगीन वैभव ही खड़ा दीखता है। यही प्रकृति उसके विभिन्न उपादानों के माध्यम से मानवीय व्यापारों एवं रागों की वही व्यंजना। अन्य प्रकार कहीं-कहीं देखा गया है। "कोहरे की शाम की मन दूधिमी-सी रात"⁴ या 'आपरेशन थियेटर-सी जो हर काम करते हुए भी चुप है'⁵ जैसे उपमान बहुत कम मिलते हैं। आज विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विविध क्षेत्रों में जो नित नयी घटनाएँ होती हैं या आविष्कार होते हैं उन सबसे नव-नये उपमान लिये जा सकते हैं। मध्यवर्गीय जीवन को राह में 'पंक्चर' या 'बर्स्ट' हो गयी मोटर या साइकिल की 'टायर' के सादृश्य से उपस्थित किया जा सकता है। आज के कवि-प्रयास में जो अभाव सबसे अधिक खटकता है वह यह है कि कवि उन अनाम उपकरणों को समेटने में समर्थ नहीं हो पा रहा है जिन्हें आज का जीवन अपनी विविधता में समेटे हुए बढ़ रहा है।

अन्त में एक और प्रश्न का निराकरण करना बाकी रह जाता है — कविता में ह्रास होता जा रहा है या उत्तरोत्तर विकास? इस प्रश्न को आवश्यकता से अधिक दुहराया जा चुका है और प्रत्येक बार यह विश्वासपूर्वक कहा गया है कि कविता में ह्रास का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ऊपर से बौद्धिक पच्चीकारी के कारण यदि कोई अन्यथा परोक्ष दिखायी पड़े तो दूसरी बात है। बौद्धिकता के प्रभाव के कारण कविता लय, संगीत, ताल और सुर से अलग होती जा रही है। उसकी भाषा काव्य की परिचित भाषा न होकर गद्य की भाषा होती जा रही है। कहीं-कहीं तो यह गद्यात्मकता इस मात्रा में बढ़ी प्रतीत होती है कि यह एक प्रश्न हो जाता है कि कविता के रूप में प्रस्तुत पंक्तियाँ वस्तुतः कविता (पद्य का तो नाम ही उठ जायगा) भी हैं या गद्य भी। कहीं-कहीं तो गद्य-कविता का प्रश्न भी उठाया जाने लगा है। गनीमत यही है कि गद्य के साथ अभी कविता का नाम जुड़ा हुआ है उसे उठा नहीं लिया गया है। इतना होने पर भी मैं कविता की ओर से निराश नहीं हूँ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में मानव-मन की उस उन्मुक्त अवस्था का कायल हूँ जिसे रस-दशा कहते हैं। उत्पादन-शक्ति का नियन्त्रक अंततः मनुष्य ही रहेगा, जड़ या यन्त्र नहीं हो जायेगा और जब तक वह मनुष्य रहेगा अपने हृदय के अन्दर उठने वाले भावों की उपेक्षा करना उसके सामर्थ्य की बात नहीं होगी, उसमें यह भी नहीं हो सकेगा कि हृदय के राग तत्त्वों को नष्ट कर केवल बुद्धि-तत्त्वों को ही जीवित रख और स्वयं जिन्दा रहे। जिस दिन लहरों की संकेत भरी मुस्कान उसके लिए मौत का अट्टहास बन जायेगी, जिस दिन सुकुमार हवा का मृदु-स्पर्श उसके लिए सर्प-दंशन बन जायगा, जिस दिन सूर्य अँधेरा और चाँद जहर

---

१. हरिश्चन्द्र
२. गिरिजाकुमार माथुर
३. पन्त
४. रश्मि राय
५. सर्वेश्वर

उबलने लगेगा उस दिन वह और कोई कार्य करने के पहले स्वयं आत्महत्या कर लेगा। किन्तु मनुष्य मरेगा नहीं और जब तक वह नहीं मरेगा कविता अपनी साँस तोड़ देगी—यह बात समझ में नहीं आती।

इस कथन की पुष्टि एक और प्रकार से होती है। कविता सम्भावित ह्रास के लिए सामान्यतः आज के बुद्धिवाद और विज्ञान को दोषी ठहराया जा रहा है। और चूँकि विज्ञान का प्रभुत्व हम पर दिन-प्रतिदिन और बना होता जा रहा है कविता के बचाव के लिए विज्ञान से प्रादुर्भूत शक्तियों अथवा प्रतिक्रियाओं पर हम अंकुश नहीं रख सकते हैं। इस दृष्टि से निराशा का अंधकार और गहरा जा रहा है। किन्तु 'विज्ञान स्थूल मनुष्य का प्राण है। सूक्ष्म मनुष्य खोज रहा है कि उसकी गम कहाँ है। और सूक्ष्म मनुष्य को समाधान देने के लिए या तो कविता का विज्ञान के साथ आत्मसात करना होगा अथवा कविता की पकड़ में आने के लिए विज्ञान को ही संशोधन स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि सूक्ष्म के अनशन से स्थूल की आयु बढ़ती नहीं क्षीण होती है।'[1] यहाँ सूक्ष्म मनुष्य से तात्पर्य मनुष्य की उस सत्ता से है जो सौंदर्य के लिए भूखी रहती है और जिसे मिटने देकर वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न आज का पराक्रमी मनुष्य स्वयं अपने अन्त को आमंत्रित करेगा। मंत्र की खोज में कविता की अनिवार्य सत्ता ही व्यंग्य रूप से विद्यमान है। कविता के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना इससे बढ़कर और क्या हो सकती है।

इस प्रसंग में एक और उद्धरण दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। महर्षि अरविंद ने इस प्रश्न पर बहुत गहराई में जाकर विचार किया है। उन्होंने भविष्यत् काव्य की कल्पना मंत्र प्रकृति के रूप में की है। पुरुष और प्रकृति के कुछ सूक्ष्मतम सत्यों के साक्षात्कार से सम न्वित प्रेरणा अवतरण और दर्शन (विजन) से युक्त चिंतन की वाणी को मंत्र कहा गया है। उसकी दृष्टि में महान काव्य की भाषा की प्रकृति मंत्र प्रकृति ही होती है।

इस परिप्रेक्ष्य में भविष्यत् काव्य की कल्पना करते हुए वे लिखते हैं कि इस नव मंत्र काव्य की नयी काव्य-दृष्टि अतीत की भाँति जीवन से दूर रहस्यमयी अस्पष्टता से युक्त, अन्तर्मुखी और हमारे ऐन्द्रिक अस्तित्व से विमुख न होगी वरन् दिव्यताओं को धरती के अधिक निकट खींच लाने का प्रयास करेगी। फिर धरती माता से हमारे किसी प्रकार के वैराग्यवादी नकारात्मक संघर्ष भाव न रहेंगे। एक चेतना (जिसमें समग्र जीवन आश्रय पायेगा क्योंकि वह समग्र जीवन से अधिक व्यापक होगी) इस नयी कविता का नया काव्य-सत्य बनेगी जिसमें हम अपनी समग्र शक्ति से अस्तित्व धारण करेंगे। और यदि ऐसा होता है या युग-मानस इसकी ओर प्रबल वेग से प्रवृत्त भी होता है, तब इस बात की पूर्ण संभावना है कि कविता अपनी खोयी हुई पवित्र प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर ले। बहुत-सा ऐसा काव्य-सृजन होता रहेगा जो पुरानी लीक पीटता रहेगा, और यह स्वाभाविक भी है किन्तु ऐसा भी कवि अवतरित हो सकता है जो ऋषि हो द्रष्टा हो सत्य साम का गायक हो और दिव्य सत्य तथा दिव्य-सौंदर्य का स्वर-ज्ञापक हो।'[2]

---

१ कविता का भविष्य मर्दाना गैसर दिसम्बर, पृ ६१

२ भविष्यत् काव्य श्री अरविन्द मनोरमा पृ६८

कविता में आज जीवनगत तमाम असंगतियों एवं विपर्यस्तताओं के प्रवेश के बावजूद कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं जिनके बल पर मानव मस्तिष्क और हृदय के समीप उसका महत्त्व बना हुआ है। वे तत्त्व हैं मनुष्य के अन्तर्जगत् की अभिव्यक्ति, उसके मन की भूख और प्यास। कविता के लिए सबसे सबल और आशाजनक आधार इस बात का है कि मनुष्य अपनी ही महत्त्वाकांक्षा से कदम-कदम पर मात खाकर भी घात प्रतिघातों के बीच से विकास-पथ पर निरन्तर बढ़ता जा रहा है। मैं मानव जगत् के उत्तरोत्तर विकास में विश्वास करता हूँ और कम-से-कम इस मात तो यह मानने को कभी तैयार नहीं कि मनुष्य के सुसंस्कृत संस्कारों की परिचायिका कविता ह्रासोन्मुखी होती जा रही है। उसकी प्रकृति गद्य प्रकृति हो या प्रबंध प्रकृति इस प्रश्न पर मतभेद हो सकता है, मतभेद का प्रश्न यह भी हो सकता है कि उसमें बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो या राग-तत्त्व का पर उसके मंगल-धाम अविनाश्य व्यक्तित्व पर कोई मतभेद नहीं हो सकता भविष्य में बने रहने वाले उसके अक्षुण्ण अस्तित्व पर कोई प्रश्न वाचक चिह्न नहीं लग सकता यह सृष्टि के साथ गुंजन बनकर आयी है महाप्रलय के साथ 'शांति' बनकर आयेगी बीच की कोई शक्ति उसे मिटा नहीं सकती।

उसमने समेगा उस दिन वह और कोई कार्य करने के पहले स्वयं आत्महत्या कर लेगा। किन्तु मनुष्य मरेगा नहीं और जब तक वह नहीं मरेगा कविता अपनी साँस तोड़ देगी—यह बात समझ में नहीं आती।

इस कथन की पुष्टि एक और प्रकार से होती है। कविता संभावित ह्रास के लिए सामान्यतः आज के बुद्धिवाद और विज्ञान को दोषी ठहराया जा रहा है। और चूँकि विज्ञान का प्रभुत्व हम पर दिन प्रतिदिन और घना होता जा रहा है कविता के अभाव के लिए विज्ञान से प्रादुर्भूत शक्तियों अथवा प्रतिक्रियाओं पर हम अंकुश नहीं दे सकते हैं। इस दृष्टि से निराशा का अंधकार और गहरा जा रहा है। किन्तु विज्ञान स्थूल मनुष्य का ग्रास है। सूक्ष्म मनुष्य खोज रहा है कि उसकी गंध कहाँ है। और सूक्ष्म मनुष्य को समाधान देने के लिए या तो कविता को विज्ञान के साथ आत्मसात करना होगा अथवा कविता की पकड़ में आने के लिए विज्ञान को ही संशोधन स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि सूक्ष्म के अवसान से स्थूल की आयु बढ़ती नहीं क्षीण होती है।[1] यहाँ सूक्ष्म मनुष्य से तात्पर्य मनुष्य की उस सत्ता से है जो सौंदर्य के लिए भूखी रहती है और जिसे मिटने देकर वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न आज का पराक्रमी मनुष्य स्वयं अपने अन्त को आमंत्रित करेगा। गंध की खोज में कविता की अनिवार्य सत्ता ही व्यंग्य रूप से विद्यमान है। कविता के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना इससे बढ़कर और क्या हो सकती है।

इस प्रसंग में एक और उद्धरण दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। महर्षि अरविंद ने इस प्रश्न पर बहुत गहराई में जाकर विचार किया है। उन्होंने भविष्यत् काव्य की कल्पना मंत्र प्रकृति के रूप में की है। पुरुष और प्रकृति के कुछ गूढ़तम सत्यों के साक्षात्कार से समन्वित प्रेरणा अवतरण और दर्शन (विजन) से युक्त चिंतन की वाणी को मंत्र कहा गया है। उसकी दृष्टि में महान काव्य की भाषा की प्रकृति मंत्र प्रकृति ही होती है।

इस परिप्रेक्ष्य में भविष्यत् काव्य की कल्पना करते हुए वे लिखते हैं कि इस नये मंत्र काव्य की नयी काव्य-दृष्टि अतीत की भाँति जीवन से दूर, रहस्यमयी अस्पष्टता से युक्त अन्तर्मुखी और हमारे ऐन्द्रिक अस्तित्व से विमुख न होगी वरन् विभुताओं को धरती के अधिक निकट खींच लाने का प्रयास करेगी। फिर वाणी माता से हमारे किसी प्रकार के वैराग्यवादी नकारात्मक समय शेष न रहेंगे। एक चेतना (जिसमें समग्र जीवन आश्रय पायेगा क्योंकि वह समग्र जीवन से अधिक व्यापक होगी) इस नयी कविता का नया काम्य सत्य बनेगी जिसमें हम अपनी समग्र शक्ति से अस्तित्व धारण करेंगे। और यदि ऐसा होता है या युग-मानस इसकी ओर प्रबल वेग से प्रवृत्त भी होता है तब इस बात की पूर्ण संभावना है कि कविता अपनी खोयी हुई पवित्र प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर ले। बहुत-सा ऐसा काव्य-सृजन होता रहेगा जो पुरानी लीक पीटता रहेगा, और यह स्वाभाविक भी है, किन्तु ऐसा भी कवि अवतरित हो सकता है जो ऋषि हो द्रष्टा हो सत्य नाम का गायक हो और दिव्य सत्य तथा विश्व-सौंदर्य का स्वर-साधक हो।[2]

---

१ कविता का भविष्य अज्ञेय रेडियो ...., पृ० ६९

२. भविष्यत् काव्य श्री अरविन्द आलोचना अंक ८

कविता में आज जीवनगत तमाम असंगतियों एवं विसंगतियों के प्रभाव के बावजूद कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं जिनके बल पर मानव मस्तिष्क और हृदय के समीप उसका महत्त्व बना हुआ है। वे तत्त्व हैं मनुष्य के अन्तर्जगत् की अभिव्यक्ति, उसके मन की भूख और प्यास। कविता के लिए सबसे सबल और आशाजनक आधार इस बात का है कि मनुष्य अपनी ही महत्त्वाकांक्षा से कदम-कदम पर मात खाकर भी आज प्रतिघातों के बीच में विकास-पथ पर निरन्तर बढ़ता जा रहा है। मैं मानव जगत् के उत्तरोत्तर विकास में विश्वास करता हूँ और कम-से-कम इस नाते तो यह मानने को कभी तैयार नहीं कि मनुष्य के सुसंस्कृत संस्कारों की परिचायिका कविता ह्रासोन्मुखी होती जा रही है। उसकी प्रकृति गीत प्रकृति हो या प्रबंध प्रकृति इस प्रश्न पर मतभेद हो सकता है, मतभेद का प्रश्न यह भी हो सकता है कि उसमें बुद्धितत्त्व का प्राधान्य हो या राग-तत्त्व का, पर उसके मंगलमय अविभाज्य व्यक्तित्व पर कोई मतभेद नहीं हो सकता। भविष्य में बने रहने वाले उसके अक्षुण्ण अस्तित्व पर कोई प्रश्न वाचक चिह्न नहीं लग सकता। वह सृष्टि के साथ गुंजन बनकर आयी है, महाप्रलय के साथ 'शांति' बनकर जायेगी। बीच की कोई शक्ति उसे मिटा नहीं सकती।

अप्रस्तुत योजना या रूप विधान दुरूह क्यों हो जाते हैं

१—जब रूप-विधान (Images) भावों या विचारों को इस सीमा तक दबा लें कि उनका मूल रूप ही छिप जाय।

२—जब कलाकार ऐसे रूप-विधानों की सृष्टि करता है जो इतने असाधारण होते हैं कि पाठकों या श्रोताओं को वह बाजीगरी प्रतीत होने लगते हैं। फलतः उनका साधारणीकरण नहीं हो पाता।

३—जब रूप-विधान देश काल और भौगोलिक सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं तब भी उनमें दुरूहता आ जाती है। जैसे भारतीय प्रकृति स्त्रियों की नीली आँखों और पीले केशों पर रीझने की नहीं है। ये विदेशी रूप-विधान हैं। इसी प्रकार अरब वाले ऊँट की चाल पर मस्त हो सकते हैं किन्तु हम तो हाथी की चाल पर ही रीझते आये हैं।

४—ऐसे प्रतिमान जो युगानुकूल नहीं होते भाव-प्रदर्शन में असमर्थ होते हैं। जैसे एक मनुष्य को हम गधा, हंस, बंदर कह सकते हैं। किन्तु भिन्न भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न समाज में इसके अलग-अलग अर्थ लगाये गये हैं। कहीं-कहीं गधे सम्मान-सूचक माने जाते हैं जैसे रोम में हंस। सूअर भी किसी युग या किसी देश में सम्भवतः पवित्र मान गये हों। (भारतवर्ष में वाराह अवतार प्रसिद्ध है) घड़ियाल इजिप्ट में सम्मानित होते हैं और बंदर भारत में (हनुमान जी के वंशज होने के कारण)।

दुरूहता दूर करने के लिए दो मुख्य नियम काम में लाए जा सकते हैं—बाहर से लाये गये रूप विधान श्रोता या पाठक के जगत के हों जिससे उनका परिचय हो और जो उन्हें बुद्धिगम्य हों। एक कल्पना एक समय केवल एक ही चित्र बना सकती है अतः दो विभिन्न पदार्थों का प्रयोग एक ही समय एक वस्तु को समझाने के लिए न किया जाय। अन्यथा दोनों कल्पनायें उलझ जायेंगी।

यह आवश्यक नहीं कि कल्पना नवीन ही हो, साधारण वस्तुओं से भी नवीन कल्पना की उद्भावना की जा सकती है। जैसे हम कुर्सी की टाँग, सूई की आँख इत्यादि कहते हैं।

ग्रन्थ-सूची

(हिन्दी)

अ

१	अर्चना	श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
२	अनामिका	
३	अपरा	„
४	अणिमा	
५	आराधना	
६	अतिमा	श्री सुमित्रानन्दन पंत
७	अंजलि	„ रामकुमार वर्मा
८	अभिशाप	„
९	अन्धायुग	„ धर्मवीर भारती
१०	अग्निशस्य	नरेन्द्र शर्मा
११	अपराजिता	रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
१२	अँगड़ाई	वही
१३	अर्धनारीश्वर	„ रामधारी सिंह 'दिनकर'
१४	आँसू	„ जयशंकर प्रसाद
१५	आधुनिक साहित्य	नन्ददुलारे वाजपेयी
१६	आधुनिक समीक्षा	„ देवराज
१७	आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना	सुश्री शकुन्तला शर्मा
१८	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्ण लाल
१९	आधुनिक हिन्दी साहित्य	सम्पादक श्री नगेन्द्र
२०	आधुनिक हिन्दी साहित्य	श्री लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
२१	आधुनिक काव्य धारा	केसरीनारायण शुक्ल
२२	आधुनिक हिन्दी काव्य भाग—२	कमलाकांत पाठक

इ

२३	इतिहास के आँसू	श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

उ

२४	उत्तरा	श्री सुमित्रानन्दन पन्त
२५	उद्धव शतक	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
२६	उदय पथ	„ धीर

क

२७	काव्य में अभिव्यंजनावाद	श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
२८	कालिदास ग्रन्थावलि	सीताराम चतुर्वेदी
२९	कवि निराला	„ रामरतन भटनागर
३०	कामायनी	जयशंकर प्रसाद
३१	क्वासि	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
३२	कुरुक्षेत्र	„ रामधारी सिंह 'दिनकर'
३३	कामायनी अनुशीलन	रामलाल सिंह
३४	कुंकुम	बालकृष्ण शर्मा नवीन'
३५	कुणाल	सोहनलाल द्विवेदी
३६	कुकुरमुत्ता	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
३७	कवि प्रसाद आँसू तथा अन्य कृतियाँ	विनय मोहन शर्मा
३८	कविता में प्रकृति चित्रण	रामेश्वरलाल खंडेलवाल
३९	किरण वेला	रामेश्वर शुक्ल अंचल'
४०	कानन कुसुम	जयशंकर प्रसाद
४१	काव्य में अप्रस्तुत योजना	रामदहिन मिश्र
४२	काव्यालोक (द्वितीय उद्योत)	„ ,
४३	काव्य दर्पण	,
४४	काव्य और कल्पना	„ रामखेलावन पाण्डेय
४५	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	„ जयशंकर प्रसाद
४६	काव्य निर्णय	„ भिखारी दास
४७	कविता कौमुदी भाग १, २, ३	, सम्पादक श्री रामनरेश त्रिपाठी
४८	काश्मीर सुषमा (प्रथम संस्करण)	प० श्रीधर पाठक

ग

४९	गद्य-पथ	श्री सुमित्रानन्दन पन्त
५०	ग्राम्या	,
५१	गीतिका	„ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
५२	गीति काव्य	रामखेलावन पाण्डेय
५३	गुंजन	„ सुमित्रानन्दन पन्त

च

५४	चिन्तामणि भाग १ २	श्री रामचन्द्र शुक्ल
५५	चित्रा	, सोहनलाल द्विवेदी
५६	चित्ररेखा	„ रामकुमार वर्मा

छ

५७	छायावाद	श्री प्रताप साहित्यालंकार
५८	छायावाद युग	शंभूनाथ सिंह
५९	छायावाद और रहस्यवाद	गंगाप्रसाद पाण्डेय
६०	छायावाद और प्रगतिवाद	सम्पादक श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा
६१	छायावाद	श्री नामवर सिंह
६२	छायावाद का पतन	„ देवराज
६३	छायावाद की काव्य साधना	„ क्षेम

ज

६४	जयशंकर प्रसाद	श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
६५	जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त	„ लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
६६	जीवन के गान	„ शिवमंगल सिंह 'सुमन'
६७	जौहर	श्यामनारायण पाण्डेय

झ

६८	झरना	श्री जयशंकर प्रसाद

ठ

६९	ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएँ	श्री धर्मवीर भारती

त

७०	तार सप्तक	संपादक श्री अज्ञेय

द

७१	द्वापर	श्री मैथिलीशरण गुप्त
७२	द्वन्द्व गीत	रामधारी सिंह दिनकर
७३	दिल्ली	
७४	दीप शिखा	सुश्री महादेवी वर्मा
७५	देव पुरुष	श्री अम्बिकादत्त व्यास
७६	देहरादून	पं० श्रीधर पाठक
७७	दूसरा सप्तक	सम्पादक श्री अज्ञेय

ध

७८	धरती	श्री त्रिलोचन शास्त्री
७९	धूप छाँह	दिनकर
८०	धूप के धान	गिरिजा कुमार माथुर

न

८१ नया साहित्य नये प्रश्न	श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
८२ नयी समीक्षा	श्री अमृतराय
८३ नए स्वर	छत्तीसगढ़ी कवियों की कविताओं का संग्रह
८४ नाव के पाँव	श्री जगदीश गुप्त
८५ नींद के बादल	श्री केदार
८६ नीरजा	सुश्री महादेवी वर्मा
८७. नीहार	सुश्री महादेवी वर्मा
८८. नील कुसुम	श्री दिनकर
८९ नूरजहाँ	श्री गुरुभक्त सिंह

प

९० परिमल	श्री निराला
९१ पन्त और गुंजन	,, हरिहरनिवास द्विवेदी
९२ पन्त का काव्य और युग	,, यशदेव
९३ पन्त की काव्य चेतना में गुंजन	,, वासुदेव
९४ पल्लव	,, सुमित्रानन्दन पन्त
९५ प्रगति और परम्परा	,, रामविलास शर्मा
९६ प्रगतिवाद	,, शिवदान सिंह चौहान
९७ प्रलय-सृजन	शिवमंगल सिंह 'सुमन'
९८ प्रभाती	,, सोहनलाल द्विवेदी
९९. प्रवासी के गीत	, नरेन्द्र शर्मा
१०० प्रकृति और हिन्दी काव्य	,, रघुवंश
१०१ प्रसाद का काव्य	,, प्रेमशंकर
१०२ प्रबन्ध पद्म	,, निराला
१०३ पिघलते पत्थर	,, रांगेय राघव
१०४ प्राचीन और नवीन काव्य धारा	,, सूर्यबली सिंह
१०५ प्रेम पथिक	,, जयशंकर प्रसाद
१०६ पंचवटी	,, मैथिलीशरण गुप्त
१०७. पद्मावत	,, जायसी
१०८. पलाश वन	,, नरेन्द्र शर्मा
१०९ प्रिय प्रवास	,, 'हरिऔध'

ब

११० बावरा अहेरी	श्री अज्ञेय
१११ ब्रज साहित्य में नायिका-भेद	,, प्रभुदयाल मित्तल
११२ बुद्ध चरित	,, रामचन्द्र शुक्ल

छ

५७. छायावाद — श्री प्रताप साहित्यालंकार
५८. छायावाद युग — „ शंभूनाथ सिंह
५९. छायावाद और रहस्यवाद — गंगाप्रसाद पाण्डेय
६० छायावाद और प्रगतिवाद — संपादक श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा
६१ छायावाद — श्री नामवर सिंह
६२ छायावाद का पतन — „ देवराज
६३ छायावाद की काव्य साधना — „ क्षेम'

ज

६४ जयशंकर प्रसाद — श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
६५ जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त — „ लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
६६ जीवन के गान — शिवमंगल सिंह 'सुमन'
६७ जौहर — श्यामनारायण पाण्डेय

झ

६८ झरना — श्री जयशंकर प्रसाद

ठ

६९ ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएँ — श्री धर्मवीर भारती

त

७० तार सप्तक — संपादक श्री अज्ञेय

द

७१ द्वापर — श्री मैथिलीशरण गुप्त
७२ द्वन्द्व गीत — रामधारी सिंह दिनकर
७३ दिल्ली
७४ दीप शिखा — सुश्री महादेवी वर्मा
७५ देव पुरुष — श्री अम्बिकादत्त व्यास
७६ देहरादून — पं० श्रीधर पाठक
७७ दूसरा सप्तक — सम्पादक श्री अज्ञेय

ध

७८. धरती — श्री त्रिलोचन शास्त्री
७९ धूप छाँह — दिनकर
८० धूप के धान — गिरिजा कुमार माथुर

न

८१ नया साहित्य नये प्रश्न	श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
८२ नयी समीक्षा	श्री अमृतराय
८३ नए स्वर	छत्तीसगढ़ी कवियों की कविताओं का संग्रह
८४ नाव के पाँव	श्री जगदीश गुप्त
८५ नींद के बादल	श्री केदार
८६ नीरजा	सुश्री महादेवी वर्मा
८७. नीहार	सुश्री महादेवी वर्मा
८८. नील कुसुम	श्री दिनकर
८९ नूरजहाँ	श्री गुरुभक्त सिंह

प

९० परिमल	श्री निराला
९१ पन्त और गुंजन	„ हरिहरनिवास द्विवेदी
९२ पन्त का काव्य और युग	„ यशदेव
९३ पन्त की काव्य चेतना में गुंजन	„ वासुदेव
९४ पल्लव	„ सुमित्रानन्दन पन्त
९५ प्रगति और परम्परा	„ रामविलास शर्मा
९६ प्रगतिवाद	„ शिवदान सिंह चौहान
९७ प्रलय-सृजन	„ शिवमंगल सिंह 'सुमन'
९८. प्रभाती	सोहनलाल द्विवेदी
९९. प्रवासी के गीत	„ नरेन्द्र शर्मा
१०० प्रकृति और हिन्दी काव्य	„ रघुवंश
१०१ प्रसाद का काव्य	„ प्रेमशंकर
१०२ प्रथम पद्म	„ निराला
१ ३ पिघलते पत्थर	„ रांगेय राघव
१०४ प्राचीन और नवीन काव्य धारा	„ गुरुभक्त सिंह
१०५ प्रेम पथिक	„ जयशंकर प्रसाद
१ ६ पंचवटी	, मैथिलीशरण गुप्त
१०७. पद्मावत	„ जायसी
१०८. पलाश वन	„ नरेन्द्र शर्मा
१०९. प्रिय प्रवास	„ 'हरिऔध'

ब

११० बावरा अहेरी	श्री अज्ञेय
१११ ब्रज साहित्य में नायिका-भेद	„ प्रभुदयाल मित्तल
११२ बुद्ध चरित	„ रामचन्द्र शुक्ल

म

११३ भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि	श्री किशोरी लाल गुप्त
११४ भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा खंड)	ब्रजरत्नदास
११५. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका	डा० नगेन्द्र
११६ भारतीय साहित्यशास्त्र (प्रथम तथा द्वितीय खंड)	श्री बलदेव उपाध्याय
११७ भैरवी	सोहनलाल द्विवेदी
११८ भूमि की अनुभूति	„ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

म

११९ महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग	श्री उदयभानु सिंह
१२० मधुबाला	„ बच्चन
१२१ महाराणा का महत्व	„ जयशंकर प्रसाद
१२२ महाप्राण निराला	„ गंगाप्रसाद पाण्डेय
१२३ महादेवी का रहस्यवाद	विश्वम्भर 'मानव'
१२४ महादेवी वर्मा	सुश्री शचीरानी गुर्टू
१२५ मिट्टी की ओर	श्री दिनकर
१२६ मिट्टी और फूल	„ नरेन्द्र शर्मा
१२७ मिलन	रामनरेश त्रिपाठी
१२८ मधूलिका	अंचल

य

१२९ यामा	सुश्री महादेवी वर्मा
१३० यायावर	श्री रामबहादुर सिंह 'मुक्त'
१३१ युग पथ	पंत
१३२ युग की गंगा	केदार
१३३ युगवाणी	„ पंत

र

१३४ रसवन्ती	श्री दिनकर
१३५ रस मीमांसा	„ रामचन्द्र शुक्ल
१३६ रत्नाकर भाग १ २	नागरी प्रचारिणी सभा
१३७ राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य	श्री रामेश्वर शर्मा
१३८ रजत शिखर	„ पंत

१३९. रामचन्द्रिका	श्री केशव
१४० रोमांटिक साहित्यशास्त्र	,, देवराज उपाध्याय
१४१ रूपराशि	,, रामकुमार वर्मा

ल

१४२ लहर	श्री जयशंकर प्रसाद
१४३ लाल चूनर	अंचल

व

१४४ वर्षान्त के बादल	श्री बच्चन
१४५ वक्रोक्ति और अभिव्यंजना	,, रामनरेश वर्मा
१४६ विचार और वितर्क	हजारी प्रसाद द्विवेदी
१४७ विचार और विवेचन	नगेन्द्र
१४८ वीणा-ग्रन्थि	,, पंत
१४९ विस्मृति के फूल	,, भगवतीचरण वर्मा

स

१५० स्वर्ण किरण	श्री पंत
१५१ स्वर्ण धूलि	,, पंत
१५२ *समीक्षा दर्शन*	,, *रामलाल सिंह*
१५३ साहित्य दर्शन	सुश्री शचीरानी गुर्टू
१५४ साहित्य चिन्ता	श्री देवराज
१५५ साकेत	,, मैथिलीशरण गुप्त
१५६ साहित्य साधना की पृष्ठभूमि	,, बुद्धिनाथ झा कैरव
१५७ समीक्षा शास्त्र	,, सीताराम चतुर्वेदी
१५८. साहित्य	,, शिवनारायण शर्मा
१५९ साहित्य समीक्षा	,, देवेन्द्र शर्मा
१६० सामधेनी	,, दिनकर
१६१ सुमित्रानन्दन पंत	सुश्री शचीरानी गुर्टू
१६२ सुमित्रानन्दन पंत	श्री विश्वम्भर मानव
१६३ साहित्यावलोकन	,, विनय मोहन शर्मा
१६४ सोपान	,, बच्चन
१६५ सौन्दर्य शास्त्र	,, हरद्वारीलाल शर्मा
१६६ स्वप्न	रामनरेश त्रिपाठी
१६७ साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव	,, कन्हैयालाल सहल
१६८. साकेत : एक अध्ययन	,, नगेन्द्र
१६९. स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद

ह

१७० हिन्दी कविता में युगान्तर — श्री सुधीन्द्र
१७१ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव — ,, रवीन्द्र सहाय वर्मा
१७२ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास — ,, भगीरथ मिश्र
१७३ हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा — प्रकाशचन्द्र गुप्त
१७४ हिल्लोल — ,, शिवमंगल सिंह 'सुमन'
१७५ हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१७६ हिम तरंगिनी — श्री माखनलाल चतुर्वेदी
१७७ हरी घास पर क्षण भर — ,, अज्ञेय
१७८ हिन्दी कविता में प्रगतिवाद — ,, विजयशंकर मल्ल
१७९ हिन्दी साहित्य में विविध वाद — प्रेमनारायण शुक्ल
१८० हिन्दी साहित्य — भोलानाथ
१८१ हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण — सुश्री किरण कुमारी गुप्ता

ज्ञ—मराठी

१८२ ज्ञानेश्वरीतील विरम्य रसवृत्ति — श्री रामचन्द्र शंकर वाळिंबे

संस्कृत

१ अलंकार चन्द्रिका २ कविकण्ठाभरण ३ काव्य प्रकाश ४ काव्यानुशासन ५ चन्द्रालोक ६ तैत्तिरीय उपनिषद ७ दशरूपक ८ ध्वन्यालोक ९ रस गंगाधर, १० बृहदारण्यक उपनिषद ११ वाग्भट्टालंकार, १२ सरस्वती कण्ठाभरण, १३ साहित्य दर्पण १४ साहित्यसागर, १५ साहित्यसार, १६ शिशुपालवध।

पत्र-पत्रिकाएँ

१ अवन्तिका आलोचना विशेषांक
२ आलोचना — अंक ९
३ आलोचना — अंक १६
४ आधार — मार्च १९५५
५ आधार — १९५६
६ काव्य धारा पुस्तक पत्रिका-संख्या १— १९५५
७ कल्पना — दिसम्बर १९५५
८ माधुरी — अगस्त-सितम्बर १९२५
९ नई कविता — अंक-१ सम्पादक डा० जगदीश गुप्त
१० नई कविता — अंक २ ,, ,, ,,
११ नई चेतना — अंक-५ : १९५१
१२ नया साहित्य — अगस्त १९५१

१३ स्याम	१९३२
१४ सरस्वती	जुलाई १९०६, खंड ५ १९०४ खंड ६ १९०५, नवम्बर १९१४; जुलाई १९१६ (खंड १७) संख्या ५, १९१६ (खंड १९) संख्या १२, १९१८
१५ श्री वेंकटेश्वर समाचार	(११ अक्टूबर १९००)
१६ हंस (प्रगति अंक)	जून १९४२ अक्टूबर १९४१ नवम्बर १९४६, अक्टूबर नवम्बर जुलाई १९४७ जनवरी फरवरी १९४० दिसम्बर १९४५, जुलाई १९४८ अगस्त १९४८

ENGLISH

A

1 A Defence of Poetry	Shelley
2 A History of English Literature	Legonis and Cazamian
3 A Study of Poetry	Bliss Perry
4 An Anthology of Critical Statement	
5 An Introduction to the Study of Literature	W H. Hudson

B

6 Biographia Literaria	Coleridge

C

7 Countries of Mind	John Middleton Murry
8 Coleridge on Imagination	I A. Richards
9 Creative Imagination	June E Downey

D

10 Dialectical Materialism	Karl Marx
11 Discovering Poetry	Elizabeth Drew

E

12 English Critical Essays (Nineteenth Century)	Editor E.D Jones

I

13	Illusion and Reality	Cristopher Caudwell
14	Imagery and Imagination	John Middleton Murry
15	Imagery in Imaginative Literature	Prof E. Allison Peers
16	Imagism and Imagists Literature	Hughes Gleron
17	Introduction to the (Ist Edition of) Modern Verse	Michael Roberts

J

18	John Keats to John Taylor (letter)	

L

19	Lenin on Art and Literature	Lunacharsky
20	*Literature and Marxism*	*Angil Elowerence*

M

21	Marxism and Modern Art	F D Klingenger
22	Materialism and Empirio criticism	Lenin
23	Mid Summer Night Dream	W Shakespeare

N

24	New Method for the Study of Literature	Miss Edith Richard
25	Notes on Language and Style	T E. Hulme

26	Poetics	
27	Poetic Imagery	
28	Poetic Process	
29	Preface to I	
30	Psych'	

ি

S	
Scepticism and Poetry	D G James
Science and Poetry	I. A. Richards
Science of Thoughts	Max Muller
Selected Essays	John Ford
Shakespeare s Imagery and what it tells us	Dr Caroline Spurgeon
8 Shakespeare s Literative Imagery	C F F Spurgeon
39 Studies in a Dyeing Culture	Christopher Caudwell
T	
40 The Development of Shakesp-are s Imagery	W H Clemen
41 The Essence of Aesthetics	Croce
42 The Early life of Thomas Hardy (Diary)	Thomas Hardy
43 The Imagery of Keats and Shelley	Richard Harter Fogle
44 The Indian Theory of Dhvani	K. Krishna Moorty
45 The Interpretation of Dreams	Freud
46 The Making of Literature	R A Scott James
47 The Name and Nature of Poetry	A.E Housman
48 The Poetic Image.	Day Lewis
49 The Poetic Mind	Prescott
50 The Principles of Criticism	W Basil Worfold
51 The Psychology of Emotion	J T Mac Curdy
52 The Psychology of Imagination	Jean Paul Sartre
53 The Rudiments of Criticism	E A Greening Lamborn
54 The Substance that is Poetry	Robert Trisbram Coffin
55 The Theory of Poetry	Lascells Abercrombie
56 The world's Body	John Crowe Ransom
57 The world of Imagery	Stephen J Brown
U	
58 Use and Abuse of Alankar in Sanskrit	Raghavan

I

13	Illusion and Reality	Cristopher Caudwell
14	Imagery and Imagination	John Middleton Murry
15	Imagery in Imaginative Literature	Prof E. Allison Peers
16	Imagism and Imagists Literature	Hughes Gleron
17	Introduction to the (Ist Edition of) Modern Verse	Michael Roberts

J

18	John Keats to John Taylor (letter)	

L

19	Lenin on Art and Literature	Lunacharsky
20	Literature and Marxism	Angil Elowerence

M

21	Marxism and Modern Art	F D Klingenger
22.	Materialism and Empirio criticism	Lenin
23	Mid Summer Night Dream	W Shakespeare

N

24	New Method for the Study of Literature	Miss Edith Richard
25	Notes on Language and Style	T E. Hulme

P

26	Poetics	Aristotle
27	Poetic Imagery	H W Wells
28	Poetic Process	George Whalley
29	Preface to Iliad	George Chapman
30	Psychological Studies in 'Rasa	Rakesh Gupta
31	Psychology	Elie Rabier

R

32.	Romanticism	Abercrombie

S

33 Scepticism and Poetry — D G James
34 Science and Poetry — L A. Richards
35 Science of Thoughts — Max Muller
36 Selected Essays — John Ford
37 Shakespeare s Imagery and what it tells us — Dr Caroline Spurgeon
38 Shakespeare s Literative Imagery — C F F Spurgeon
39 Studies in a Dyeing Culture — Christopher Caudwell

T

40 The Development of Shakespeare s Imagery — W H Clemen
41 The Essence of Aesthetics — Croce
42 The Early life of Thomas Hardy (Diary) — Thomas Hardy
43 The Imagery of Keats and Shelley — Richard Harter Fogle
44 The Indian Theory of Dhvani — K. Krishna Moorty
45 The Interpretation of Dreams — Freud
46 The Making of Literature — R. A. Scott James
47 The Name and Nature of Poetry — A E. Housman
48 The Poetic Image. — Day Lewis
49 The Poetic Mind — Prescott
50 The Principles of Criticism — W Basil Worfold
51 The Psychology of Emotion — J T Mac Curdy
52 The Psychology of Imagination — Jean Paul Sartre
53 The Rudiments of Criticism — E. A. Greening Lamborn
54 The Substance that is Poetry — Robert Trisbram Coffin
55 The Theory of Poetry — Lascells Abercrombie
56 The world s Body — John Crowe Ransom
57 The world of Imagery — Stephen J Brown

U

58 Use and Abuse of Alankar' in Sanskrit — Raghavan

I

13 Illusion and Reality — Cristopher Caudwell
14 Imagery and Imagination — John Middleton Murry
15 Imagery in Imaginative Literature — Prof E. Allison Peers
16 Imagism and Imagists Literature — Hughes Gleron
17 Introduction to the (Ist Edition of) Modern Verse — Michael Roberts

J

18 John Keats to John Taylor (letter)

L

19 Lenin on Art and Literature — Lunacharsky
20 Literature and Marxism — Angil Elowerence

M

21 Marxism and Modern Art — F D Klingenger
22 Materialism and Emphrio criticism — Lenin
23 Mid Summer Night Dream — W Shakespeare

N

24 New Method for the Study of Literature — Miss Edith Richard
25 Notes on Language and Style — T E. Hulme

P

26 Poetics — Aristotle
27 Poetic Imagery — H W Wells
28 Poetic Process — George Whalley
29 Preface to Iliad — George Chapman
30 Psychological Studies in 'Rasa — Rakesh Gupta
31 Psychology — Elic Rabier

R

32 Romanticism — Abercrombie

S

33 Scepticism and Poetry — D G James
34 Science and Poetry — I A. Richards
35 Science of Thoughts — Max Muller
36 Selected Essays — John Ford
37 Shakespeare s Imagery and what it tells us — Dr Caroline Spurgeon
38 Shakespeare s Literative Imagery — C F F *Spurgeon*
39 Studies in a Dyeing Culture — Christopher Caudwell

T

40 The Development of Shakespeare s Imagery — W H Clemen
41 The Essence of Aesthetics — Croce
42 The Early life of Thomas Hardy (Diary) — Thomas Hardy
43 The Imagery of Keats and Shelley — Richard Harter Fogle
44 The Indian Theory of Dhvani — K. Krishna Moorty
45 The Interpretation of Dreams — Freud
46 The Making of Literature — R. A. Scott James
47 The Name and Nature of Poetry — A.E. Housman
48 The Poetic Image. — Day Lewis
49 The Poetic Mind — Prescott
50 The Principles of Criticism — W Basil Worfold
51 The Psychology of Emotion — J T Mac Curdy
52 The Psychology of Imagination — Jean Paul Sartre
53 The Rudiments of Criticism — E A Greening Lamborn
54 The Substance that is Poetry — Robert Trisbram Coffin
55 The Theory of Poetry — Lascells Abercrombie
56 The world s Body — John Crowe Ransom
57 The world of Imagery — Stephen J Brown

U

58 Use and Abuse of Alankar' in Sanskrit — Raghavan

JOURNALS

1 Journal of Oriental Research Madras. Vol III
2 Journal of the History of Ideas III
3 Mind Vol. XVI 1907
4 The British Journal of Psychology Vol XIV 1923 24
5 'Philosophy' (The Journal of the Research Institute of Philosophy)
6 Editor-Spencer E Hooper—April July 1953